नियमसार प्रवचन भाग-१

(श्री नियमसार शास्त्र के शुद्धभाव अधिकार पर
पूज्य गुरुदेवश्री के सन १९६९ आध्यात्मिक अक्षरशः प्रवचन)

श्री महावीरस्वामी

श्री सीमंधरस्वामी

श्री नियमसार

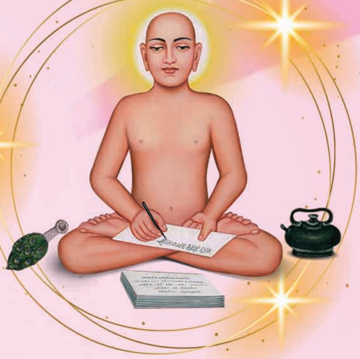

श्री कुंदकुंदाचार्य

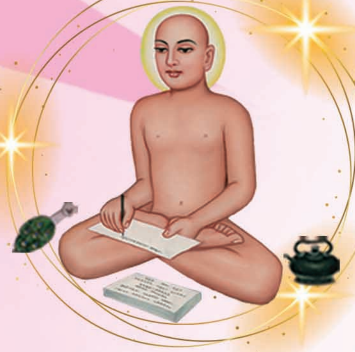

श्री पद्मप्रभमलधारिदेव

पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

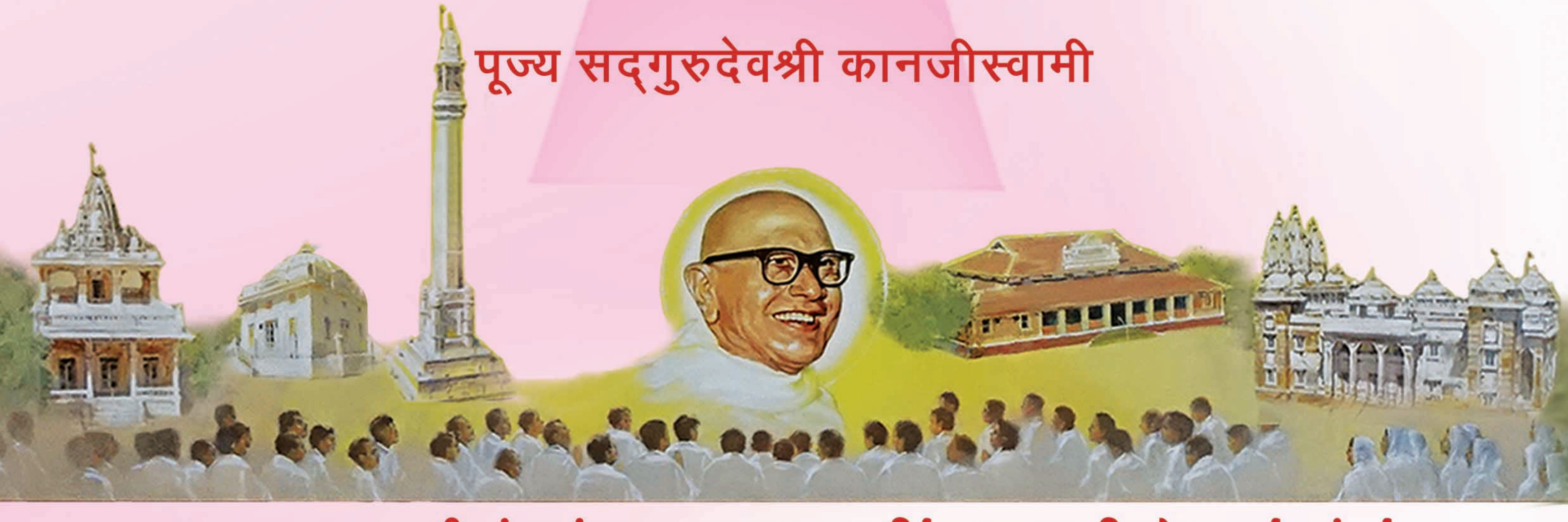

प्रकाशकः- श्री कुंदकुंद-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विले पार्ला, मुंबई

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

नियमसार प्रवचन

(भाग - 1)

(श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यवर प्रणीत श्री नियमसार के
शुद्धभाव अधिकार पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.सन् १९६९ के वर्ष के अक्षरशः प्रवचन)

●

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

●

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2077	2548	2021

—: प्रकाशन :—
भगवत कुन्दकुन्दाचार्यदेव की साधनास्थली पौन्नूर हिल
में स्थापित जिनमन्दिर के वार्षिकोत्सव के उपलक्ष्य में
दिनांक 26 दिसम्बर से 31 दिसम्बर 2021

प्राप्ति स्थान :
— श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250, फोन : 02846-244334
— श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820
Email - vitragva@vsnl.com

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

प्रकाशकीय निवेदन

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी,
मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैनधर्मोस्तु मंगलं।

महावीर भगवान और गौतम गणधर के बाद जिनके नाम का उल्लेख किया जाता है, ऐसे भरत के समर्थ आचार्य, साक्षात् सदेह विदेह जाकर सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि का प्रत्यक्ष रसपान करनेवाले श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव महान योगीश्वर हैं। अनेक महान आचार्य उनके द्वारा रचित शास्त्रों का आधार देते हैं। इससे ऐसा प्रसिद्ध होता है कि अन्य आचार्य भी उनके वचनों को प्रमाणभूत मानते हैं।

वे निर्मल पवित्र परिणति के धारक तो थे ही, परन्तु पुण्य में भी समर्थ थे कि जिससे सीमन्धर भगवान का साक्षात् योग हुआ। महाविदेह से वापस आने के बाद पौन्नूर तीर्थधाम में साधना करते-करते उन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की। जिसमें श्री समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, अष्टपाहुड़—यह पाँच परमागम तो प्रसिद्ध हैं ही, परन्तु इसके अतिरिक्त भी अनेक शास्त्रों की रचना उन्होंने की है।

श्री समयसार इस भरतक्षेत्र का सर्वोत्कृष्ट परमागम है। उसमें नौ तत्त्वों का शुद्ध दृष्टि से निरूपण करके जीव का शुद्धस्वरूप प्रकाशित किया है। श्री प्रवचनसार में नाम-अनुसार जिन प्रवचन का सार झेला है और उसे ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन, ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन और चरणानुयोगसूचक चूलिका नामक तीन अधिकारों में विभाजित किया है। श्री नियमसार में मुख्यरूप से शुद्धनय से जीव, अजीव, शुद्धभाव, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, प्रायश्चित, समाधि, भक्ति, आवश्यक, शुद्धोपयोग इत्यादि का वर्णन है। श्री पंचास्तिकायसंग्रह में कालसहित पाँच अस्तिकायों का (अर्थात् छह द्रव्यों का) और नौ पदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग का निरूपण है। तथा श्री अष्टपाहुड़ एक दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसमें सम्यक् रत्नत्रय एक ही मोक्षमार्ग है, इसकी दृढ़तापूर्वक स्थापना की है।

यह नियमसार परमागम मुख्यरूप से मोक्षमार्ग के निरूपचार निरूपण का अनुपम ग्रन्थ है।

'नियम' अर्थात् जो अवश्य करनेयोग्य हो वह अर्थात् रत्नत्रय। 'नियमसार' अर्थात् नियम का सार अर्थात् शुद्ध रत्नत्रय। इस शुद्ध रत्नत्रय की प्राप्ति परमात्मतत्त्व का आश्रय करने से ही होती है। निगोद से लेकर सिद्ध तक की सर्व अवस्थाओं में—अशुभ, शुभ या शुद्ध विशेषों में—रहा हुआ जो नित्य-निरंजन टंकोत्कीर्ण शाश्वत् एकरूप शुद्धद्रव्यसामान्य वह परमात्मतत्त्व है। वही शुद्ध अन्तः तत्त्व, कारणपरमात्मा, परमपारिणामिकभाव इत्यादि नामों से कहा जाता है। इस परमात्मतत्त्व की उपलब्धि अनादि काल से अनन्त-अनन्त दुःख को अनुभव करते हुए जीव ने एक क्षणमात्र भी नहीं की और इससे सुख के लिये उसके सर्व प्रयत्न (द्रव्यलिंगी मुनि के व्यवहाररत्नत्रय तक) सर्वथा व्यर्थ गये हैं। इसलिए इस परमागम का एकमात्र उद्देश्य जीवों को परमात्मतत्त्व की उपलब्धि अथवा आश्रय कराने का है।

इस शास्त्र में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव की प्राकृत गाथाओं पर तात्पर्यवृत्ति नाम की संस्कृत टीका लिखनेवाले मुनिवर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव हैं। वे श्री वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य हैं और विक्रम की १३वीं शताब्दी में हो गये हैं। श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के हृदय में रहे हुए परम गहन आध्यात्मिक भावों को अपने अन्तर्वेदन के साथ मिलान कर इस टीका में स्पष्ट रीति से खुल्ले किये हैं। इस टीका में आनेवाले कलशरूप काव्य अतिशय मधुर हैं और अध्यात्म मस्ती से तथा भक्तिरस से भरपूर हैं। टीकाकार मुनिराज ने गद्य तथा पद्य रूप से परमपारिणामिकभाव को तो बहुत-बहुत गाया है। पूरी टीका मानो कि परमपारिणामिक भाव का और तदाश्रित मुनिदशा का एक महाकाव्य हो, ऐसा मुमुक्षु हृदयों को मुदित करता है। संसार दावानल समान है और सिद्धदशा तथा मुनिदशा परम सहजानन्दमय है—ऐसे भाव का एकधारा वातावरण रखकर टीका में ब्रह्मनिष्ठ मुनिवर ने अलौकिक रीति से सृजित किया है और स्पष्टरूप से दर्शाया है कि मुनियों की व्रत, नियम, तप, ब्रह्मचर्य, त्याग, परिषहजय इत्यादिरूप कोई भी परिणति हठपूर्वक, खेदयुक्त, कष्टजनक या नरकादि के भयमूलक नहीं होती, परन्तु अन्तरंग आत्मिक वेदन से होती परम परितृप्ति के कारण सहजानन्दमय होती है।

श्री नियमसार में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने १८७ गाथायें प्राकृत में रची हैं। उन पर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने तात्पर्यवृत्ति नामक सस्कृत टीका लिखी है। ब्रह्मचारी श्री शीतलप्रसादजी ने मूल गाथाओं का तथा टीका का हिन्दी अनुवाद किया है। श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट द्वारा इस नियमसार की मूल गाथायें, उनका गुजराती पद्यानुवाद, संस्कृत टीका और उस गाथा-टीका का अक्षरशः गुजराती अनुवाद तथा उसका हिन्दी रूपान्तरण भी प्रसिद्ध किया गया है। इस शास्त्र में प्रतिपादित विषयवस्तु को निम्नानुसार बारह अधिकारों में प्रस्तुत किया गया है।

(1) जीव अधिकार, (2) अजीव अधिकार, (3) शुद्धभाव अधिकार, (4) व्यवहार चारित्र अधिकार, (5) परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार, (6) निश्चय प्रत्याख्यान अधिकार, (7) परम आलोचना अधिकार, (8) शुद्धनिश्चय प्रायश्चित अधिकार, (9) परम समाधि अधिकार, (10) परम भक्ति अधिकार, (11) निश्चय परम आवश्यक अधिकार, और (12) शुद्धोपयोग अधिकार।

यह नियमसार ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री को अत्यन्त प्रिय था। आचार्यदेव ने निजभावना के निमित्त रचना की गयी होने से कारणपरमात्मा को बहुत ही घोंटा है, जो गुरुदेवश्री अपने आचार्य गुरुवर की उत्कृष्ट साधना याद कराता था। उन्होंने उस पर बहुत ही गहराई से स्वाध्याय किया था और प्रसिद्ध में बहुत बार उस पर प्रवचन भी किये थे। इन प्रवचनों में से अपने पास छह बार के प्रवचन सम्पूर्णतः उपलब्ध हैं। यहाँ प्रस्तुत प्रवचन वीर संवत् २४९५ के (ईस्वी सन्. १९६९) श्रावण-भाद्र महीने के नियमसार के शुद्धभाव अधिकार के बाईस प्रवचन हैं। गर्मी के महीने में नियमित सोनगढ़ में ग्रीष्मकालीन शिक्षण शिविर का आयोजन होता था। उस शिक्षण शिविर में, बहुत दूर-दूर से मुमुक्षु आते थे और पूज्य गुरुदेवश्री को निरन्तर ऐसी भावना रहती थी कि वे नीतरते सतधर्म का श्रवण करके और निज कल्याण के मार्ग में आगे बढ़ें। इसी उत्कृष्ट भावना से ऐसा गहन विषय इस शिविर में लिया गया था। यह गहन २२ प्रवचन यहाँ अक्षरशः शब्दरूप से प्रस्तुत किये जाते हैं। इस प्रकार यह शास्त्र वास्तव में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रभावना का ही फल है। अध्यात्म का रहस्य समझाकर पूज्य गुरुदेवश्री ने जो अपार उपकार किया है, उसका वर्णन वाणी से व्यक्त करने में हम असमर्थ हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की सुरक्षा सी.डी., डी.वी.डी., वेबसाईट (www.vitragvani.com) तथा ऐप (vitragvani app) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा की गयी है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की यह भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का अधिकतम लाभ सामान्यजन ले, कि जिससे यह वाणी शाश्वत् सुरक्षित रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरशः ग्रन्थारूढ़ हों, ऐसी भावना के फलस्वरूप नियमसार शास्त्र के शुद्धभाव अधिकार पर सन् 1969 में हुए 22 प्रवचन यहाँ प्रकाशित किया जा रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ऑडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झवेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरतधारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उनके आभारी हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। इन प्रवचनों को सुनकर गुजराती में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा इम्प्रेशन्स द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्री अतुलभाई जैन और श्रीमती आरतीबेन जैन, मलाड द्वारा किया गया है। प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तरण और सी.डी. से मिलान का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। इस प्रसंग पर ट्रस्ट सभी सहयोगियों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारी पूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक तथा उपयोग की एकाग्रतापूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशन कार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के प्रति क्षमाप्रार्थी हैं। सर्व मुमुक्षुजनों से निवेदन है कि अशुद्धियों की नोंध ट्रस्ट को प्रेषित करें जिससे आगामी आवृत्ति में अवश्य संशोधन किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के करकमल में सादर समर्पित करते हैं। पाठकवर्ग इन प्रवचनों का लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधे, इसी भावना के साथ विराम लेते हैं। इति शिवम्।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ www.vitragvani.com पर शास्त्र भण्डार में पूज्य गुरुदेवश्री के शब्दश: प्रवचन ग्रन्थ विभाग में उपलब्ध है।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

मुम्बई

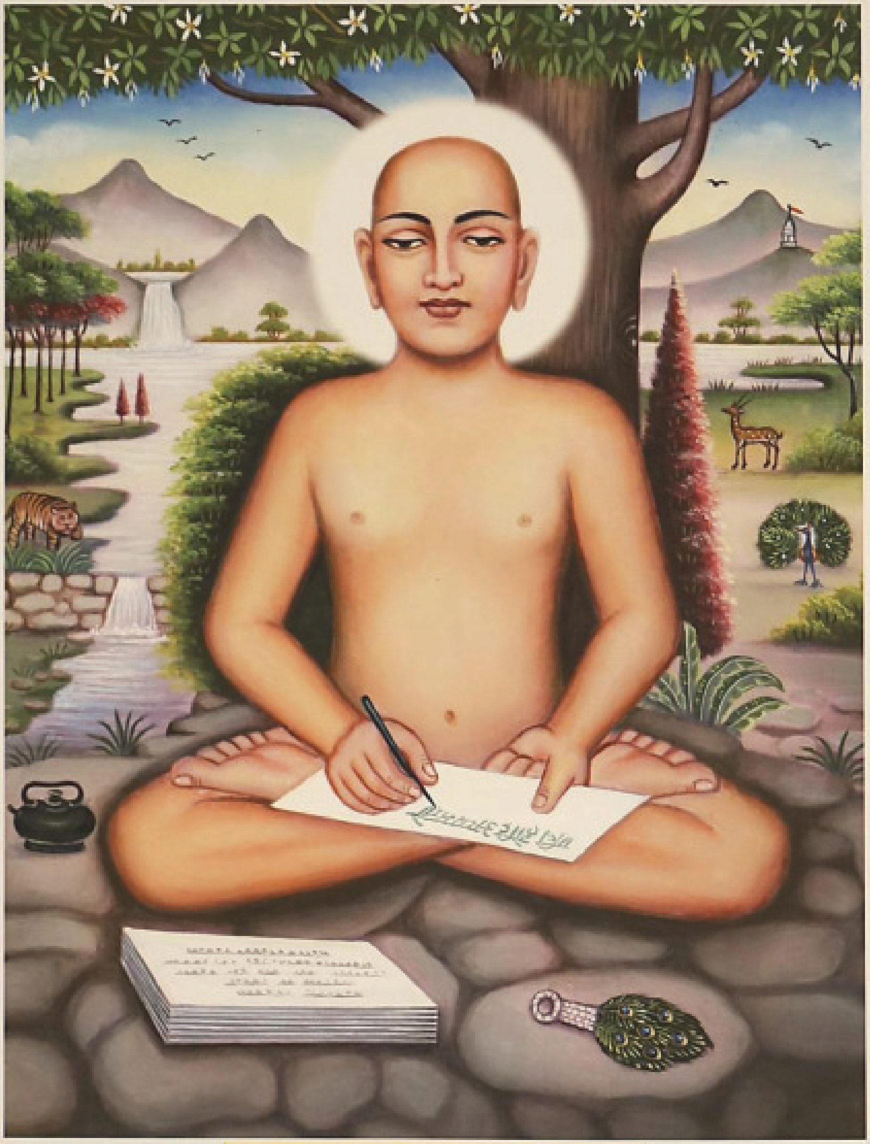

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्यर्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन–उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते–करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों

की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन	दिनांक	गाथा	श्लोक	पृष्ठ क्र.
१	०९-०९-१९६९	३८	-	१
२	१०-०९-१९६९	३८	५४	१७
३	११-०९-१९६९	३९	५५	३६
४	१२-०९-१९६९	४०	५५	५३
५	१३-०९-१९६९	४१	५६, ५७	७०
६	१४-०९-१९६९	४१	-	८८
७	१५-०९-१९६९	४१	-	१०७
८	१७-०९-१९६९	४१	५८, ५९	१२७
९	१८-०९-१९६९	४२	-	१४७
१०	१९-०९-१९६९	४३	६०, ६१	१६४
११	२०-०९-१९६९	४३	६२, ६३	१८२
१२	२१-०९-१९६९	-	६३ से ६७	१९९
१३	२२-०९-१९६९	४४	६८	२१६
१४	२३-०९-१९६९	४४-४६	६९	२३३
१५	२४-०९-१९६९	४७	७०, ७१	२५२
१६	२५-०९-१९६९	४८, ४९	७२	२७१
१७	२६-०९-१९६९	४९	७३	२९०
१८	२७-०९-१९६९	५०	-	३०९
१९	२८-०९-१९६९	५०	-	३२८
२०	२९-०९-१९६९	५१ से ५५	७४	३४५
२१	३०-०९-१९६९	५१ से ५५	-	३६४
२२	०१-१०-१९६९	५१ से ५५	७५	३८५

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

नियमसार प्रवचन

(भाग-1)

(श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यवर प्रणीत श्री नियमसार के शुद्धभाव अधिकार पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के ई.सन् १९६९ के वर्ष के अक्षरशः प्रवचन)

श्रावण कृष्ण १३, मंगलवार, दिनांक ०९-०९-१९६९
गाथा-३८, प्रवचन-१

यह एक नियमसार शास्त्र है, इसका तीसरा अधिकार, शुद्धभाव अधिकार। नियमसार अर्थात् क्या? सम्यग्दर्शन, ज्ञान और सच्चा स्वभावरत्नत्रय, उसे नियम कहते हैं और सार अर्थात् उसमें विकल्प और व्यवहार का अभाव, उसे नियमसार कहा जाता है। क्या कहा, समझ में आया? '**णियमेण य जं कज्जं**' नियम से जो करनेयोग्य है, जो निश्चय से करनेयोग्य कार्य है, जीव के हित के लिये-मोक्ष के लिये जो अनन्त काल से किया नहीं, वह जो करनेयोग्य है, '**णियमेण य जं कज्जं**' निश्चय से जो करनेयोग्य है, वह नियम है। नियम अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। वहाँ स्वभाव सम्यग्दर्शन (की बात है), व्यवहार सम्यग्दर्शन नहीं। समझ में आया?

स्वभाव अर्थात् निर्मल शुद्ध चैतन्यद्रव्य, उसकी अन्तर में अनुभूति में प्रतीति, उसका ज्ञान और उसकी लीनता, वह स्वभावभावरूप, निर्विकारी पर्यायरूप नियम, उसे मोक्ष का मार्ग कहा जाता है और सार अर्थात् व्यवहार, विकल्प आदि, भेद आदि उसमें नहीं। समझ में आया? उसे नियमसार, आत्मा की सच्ची भक्ति उसे कहा जाता है। इस

समय भक्ति का वाँचन होता है न दोपहर को ? यह भक्ति अभी परमार्थभक्ति की व्याख्या चलती है। उसका यह तीसरा अधिकार, शुद्धभाव। शुद्धभाव अर्थात् त्रिकाली परमपारिणामिक ध्रुवस्वभाव। शुद्धभाव अर्थात् यह पर्याय, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा न! शुद्धभाव अधिकार अर्थात्? त्रिकाली परमस्वभावभाव कि जो रागरहित और एक समय की पर्यायरहित ऐसा जो त्रिकाली ध्रुव परमस्वभाव। परमपारिणामिक (भाव), सत् का सत्त्व, उसे यहाँ शुद्धभाव कहा जाता है। वे शुभ, अशुभ और शुद्ध जो पर्याय के (भेद), वे यहाँ नहीं। मोक्षमार्ग जो है, वह शुद्ध स्वभावरूप रत्नत्रय है, परन्तु यह अधिकार है, वह शुद्धभाव त्रिकाली का अधिकार है। समझ में आया? त्रिकाली जो द्रव्य—वस्तु एक समय की पर्याय—अवस्था बिना का तत्त्व, मूल तत्त्व, परमेश्वरतत्त्व, परमतत्त्व, उसे यहाँ शुद्धभाव कहने में आता है। समझ में आया? उसका अधिकार है।

अब शुद्धभाव अधिकार कहा जाता है। गाथा-३८।

जीवादिबहित्तच्चं हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।
कम्मोपाधिसमुब्भवगुणपज्जाएहिं वदिरित्तो ॥३८॥

हैं हेय सब बहितत्त्व ये जीवादि, आत्मा ग्राह्य है।
अरु कर्म से उत्पन्न गुणपर्याय से वह बाह्य है॥३८॥

इसकी टीका :— **यह हेय और उपादेयतत्त्व के स्वरूप का कथन है।** छोड़नेयोग्य कौन है और ग्रहण करनेयोग्य कौन है—इसका कथन है। **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है।** क्या कहते हैं? एक समय की जीव की जो पर्याय... एक समय की जीव की पर्याय, उसे व्यवहार जीव कहा जाता है। समझ में आया? एक समय की... जीव जो ध्रुव चैतन्य त्रिकाली स्वभावभाव, उसकी एक समय की जो अवस्था, जीव की-आत्मा की, यहाँ जीव उसे कहते हैं और आत्मा फिर त्रिकाली को कहेंगे। समझ में आया? एक समय की पर्याय, अनन्त गुण की एक समय की जो अवस्था, उसे यहाँ व्यवहार जीव कहा है। वह व्यवहार जीव हेय है। ऐई!

वीरचन्दभाई! यह नयी बात है थोड़ी। समझ में आया? क्या? सुकनचन्दजी...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, राग तो हेय है। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प तो हेय है। यह आयेगा। परन्तु एक समय की पर्याय है... वस्तु जो त्रिकाली चिदानन्दध्रुव अनन्त... अनन्त... शक्ति का सत्व का धाम, महाधाम भगवान, उसमें एक समय की जो पर्याय है—अवस्था है—हालत है—दशा है, उसे व्यवहारजीव गिनकर उसे हेय कहने में आया है। समझ में आया? अजीव तो हेय है ही। समझ में आया? और इस जीव के अतिरिक्त दूसरे जीव भी हेय है ही। वे यह जीव नहीं, इसलिए दूसरे जीव, वे भी एक न्याय से 'यह जीव नहीं' (इसलिए) वे सब अजीव में जाते हैं, वे हेय हैं। यह भगवान आत्मा जीव है, वे यह जीव नहीं। यह जीवभाव है, वे यह जीवभाव नहीं।

देखो! यह तो अमृतसागर की बात चलती है। अनुभव करनेयोग्य क्या चीज़ है? और किसका अनुभव करना? और किसे हेय जानना? यह मुख्य बात है। समझ में आया? भगवान आत्मा की एक समय की पर्याय को व्यवहार जीव कहकर उसके अतिरिक्त के दूसरे जीव भी यह जीव नहीं, इसलिए उन्हें भी दूसरे में—अजीव में डालकर, दूसरे अजीव जो हैं आदि, उन्हें भी हेय में डालकर, और उसमें दया, दान, पुण्य-पाप का भाव होता है, वह आस्रवतत्त्व है, उसे भी हेय में डाला, वह छोड़नेयोग्य है। नवनीतभाई! उसमें जो संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय होती है, वह भी हेय है। अंगीकार करने (योग्य) उपोदय—आदरणीय नहीं। जाननेयोग्य है, परन्तु हेयरूप से जाननेयोग्य है। समझ में आया?

आत्मा **जीवादि सात तत्त्वों...** (अर्थात्) जीव की पर्याय, उसका राग, उसकी संवर-निर्जरा की शुद्ध पर्याय और मोक्ष की पर्याय। वह मोक्ष भी एक समय की दशा है। वे **जीवादि सात तत्त्वों का समूह...** जीव, अजीव, आस्रव, अटका हुआ राग—वहाँ अटके, वह बन्ध और संवर, निर्जरा और मोक्ष—इन सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य है। पण्डितजी! आहाहा! समझ में आया? **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण...** ऐई! प्राणभाई! यह सेठिया व्यक्ति है। कभी वहाँ सुना न हो, किसी को खबर

न हो कि यह क्या कहते हैं? आहाहा! भगवान! अनुभव करनेयोग्य हो तो त्रिकाली द्रव्य ध्रुव स्वद्रव्य है, वह अनुभव करनेयोग्य है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसमें यह है। समझ में आया? '**ववहारोऽभूदत्थो**' जो कहा है, उसमें यह निश्चित होता है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा को '**अप्पणो अप्पा**' ऐसा शब्द प्रयोग किया है। '**अप्पणो अप्पा मुवादेय**' और '**जीवादिबहित्तच्चं हेयं**' ऐसा शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! अलौकिक बात है।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य ने हेय....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कुन्दकुन्दाचार्य ने पाठ में (शब्द) प्रयोग किया है। पाठ में प्रयोग किया, उसका यह अर्थ करते हैं। आहाहा! अर्थात्? कि भगवान आत्मा अनन्त गुण का एकरूप परमस्वभावभाव, ध्रुव, नित्य, पर्याय की क्रिया—परिणमन की क्रिया बिना का। समझ में आया? उसे यहाँ '**अप्पणो अप्पा**' अर्थात् अपना आत्मा है, ऐसा कहा गया है और सात तत्त्व अपना आत्मा नहीं, वह परद्रव्य है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! यह मोक्षमार्ग... यह नियमसार है न? यह मोक्षमार्ग की पर्याय को भी यहाँ तो परद्रव्य कहा है। समझ में आया? ऐई! मनसुखभाई! समझ में आया या नहीं यह?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पीछे क्यों बैठे? यहाँ जगह बहुत है। किसलिए आये? पहले आना चाहिए न? रेल के समय पहले जाये। एक-दो मिनिट क्यों? रेल पर जाये तो पहले जाते होंगे या नहीं? १५ मिनिट।

मुमुक्षु : .... यहाँ तो दूसरे दिन।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ दूसरे दिन भी दूसरा होता है, यह नहीं होता। आहाहा!

देखो भाई! यह मनुष्य देह मिला, उसमें कौनसा तत्त्व आदरणीय है और कौन सा हेय है—इसका यहाँ विवेक बताते हैं। भगवान आत्मा ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... नित्य...

नित्य... नित्य... एकरूप सामान्य ज्ञायकभाव त्रिकाल, वही '**अप्पणो अप्पा**' वह अपना आत्मा उसे कहते हैं और वह अंगीकार करने और उसका अनुभव करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया?

जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण... आहाहा! चिल्लाहट मचाये दूसरे तो। यह तो वेदान्त जैसा हो गया होगा? परन्तु स्वद्रव्य और परद्रव्य, ऐसे भाग ही कहाँ हैं वहाँ? पर्याय और द्रव्य... अलिंगग्रहण की जहाँ बात हुई तो एक व्यक्ति कहे, यह तो सब—यह जैन में मानी हुई क्रियायें यह व्रत और यह और वह और यह, उसकी तो इसमें कीमत आयी नहीं। आहाहा! भाई! भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु अकेला आनन्द का कन्द, आनन्द का समुद्र स्वभाव से भरपूर, ऐसा जो ध्रुव भगवान आत्मा, उसी जीव को सम्यग्दर्शन में आदरनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? वे हरसमय पर्यूषण में दूसरा वाँचते थे जो गत वर्ष से चलता (हो)। आज तो नियमसार आया। प्रवचनसार पूरा हो गया न! कहो, समझ में आया?

यह आत्मा उसकी जो एक समय की अवस्था—पर्याय, उस पर्याय को यहाँ व्यवहार जीव कहा है। व्यवहार जीव अर्थात्? आदरनेयोग्य नहीं। समझ में आया? और अजीव तथा दूसरे तत्त्व तो आदरणीय है नहीं। सिद्ध भगवान साक्षात् हो और अरिहन्त त्रिलोकनाथ परमात्मा (हो, परन्तु) आत्मा को आदरणीय वे हैं नहीं। आहाहा! क्योंकि जिसमें से नयी आनन्द की और शान्ति की पर्याय प्रगट हो, ऐसा जो त्रिकाली द्रव्य, उसका अनुभव करने से दशा में आनन्द आवे, वह उपादेयतत्त्व ध्रुव है। समझ में आया? यह तो मूल मुद्दे की रकम की बात है। बाकी ऊपर की सब बातें अनेक प्रकार की चले। चरणानुयोग में ऐसा करना, यह किया और वह किया सब। वह तो ज्ञान करने के लिये ऐसी चीज़ों का वर्णन होता है। परन्तु आदरणीय के लिये तो एक यह द्रव्य त्रिकाली है।

जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण... क्योंकि पहला शब्द यह पड़ा है न, इसलिए ऐसा लिया है। परद्रव्य है। आहाहा! जैसे शरीर और जड़ में से आत्मा को नयी आनन्द की, शान्ति की दशा प्रगट होने का वह स्थान नहीं है, उसी

प्रकार जीव की एक समय की पर्याय रागवाली या राग बिना की संवर, निर्जरावाली या आस्रववाली, उन सब पर्यायों में से नयी धर्मदशा—पर्याय उनमें से प्रगट नहीं होती, इसलिए उन्हें परद्रव्य कहकर हेय कहा है। आहाहा! कहो, देवीलालजी! कठिन काम, भाई! यहाँ तो अभी देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, उसे हेय कहे, वहाँ तो पसीना उतर जाये। अरर! ऐसा होगा? यह तो व्यवहार का लोप हो जाता है। सुन न अब! व्यवहार का लोप कब होता है? निश्चय का आदर करे, तब व्यवहार का लोप होता है न? और व्यवहार का लोप करे तो निश्चय का आदर होता है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **वास्तव में उपादेय नहीं है।** ऐसा वापस, भाषा है न? वास्तव में आदरणीय नहीं। जीव की एक समय की अवस्था, संवर, निर्जरा की अवस्था, मोक्ष की दशा—अवस्था—हालत, दया-दान के विकल्प की हालत और वह भावबन्धरूप पर्याय और अजीव—किसी जीव को-आत्मा को उपादेय, आदरणीय, दृष्टि करके अनुभव करनेयोग्य वे सात तत्त्व नहीं हैं। धन्नालालजी! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! कहो, भीखाभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ठीक है। ... कर डाली परन्तु इसने।

भाई! तेरे घर में अनन्त परमात्मा स्थित हैं, भाई! आहाहा! इस तेरे ध्रुवस्वभाव में अनन्त परमात्मा हैं। बराबर होगा? सिद्ध की दशा जो अनन्त प्रगट हुआ करे, सिद्ध भगवान की जो दशा हुई मोक्ष की, वह पर्याय तो अवस्था है, उस अवस्था का व्यय होकर नयी अवस्था होती है। ऐसी-ऐसी आत्मा में मोक्षदशा होने पर अनन्त मोक्ष की अवस्थायें होती हैं। वे सब सिद्ध की मोक्षदशा आत्मा की शक्ति में पड़ी है। आहाहा! समझ में आया? अरे! जहाँ नजर डालनी है, वह निधान महा परमस्वभाव से भरपूर सागर है। समझ में आया? जहाँ नजर डालनी है, वह निधान... कहते हैं कि यह नजर है, वह पर्याय है, परन्तु वह पर्याय आदरणीय नहीं। क्योंकि पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, इसे द्रव्य पर लक्ष्य करना है। आहाहा! समझ में आया

जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य... है। ओहो! शरीर परद्रव्य, कर्म परद्रव्य,

अरिहन्त परद्रव्य, सिद्ध परद्रव्य, शास्त्र (तो) परद्रव्य है; परन्तु जीव में होनेवाली मोक्ष की अवस्था, वह परद्रव्य! अमरचन्दभाई! जीव में होता मोक्ष का मार्ग, निश्चय, हों! व्यवहार, वह मोक्षमार्ग है ही नहीं। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ उसे अवलम्बन करने से, उसके ध्येय को विषय करने से, जो पर्याय निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की (दशा) प्रगट हो, कहते हैं कि वह भी परद्रव्य है। क्योंकि नयी पर्याय प्रगट हो, वह कहीं उसमें से नहीं आती। समझ में आया?

जीवादि सात तत्त्वों का समूह... कहो, अन्यत्र सात तत्त्व होंगे वीतराग के अतिरिक्त? सात प्रकार की पर्यायें? समझ में आया? अवस्था। अवस्था अर्थात् हालत-दशा। सात प्रकार की दशा—जीव की पर्याय, आस्रवपर्याय, पुण्य-पाप की या यह बन्ध की या संवर-निर्जरा-मोक्ष की पर्यायें। उन्हें ही यहाँ परद्रव्य कहकर हेय कहा है। कहो, समझ में आया? आहाहा! अभी तो व्यवहाररत्नत्रय... चरणानुयोग का जो व्यवहाररत्नत्रय है, वह होता है तो फिर आत्मा का समकित होता है। यह तो कहीं... कहीं... कहीं... इसकी बुद्धि भटकती है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो हेय—छोड़नेयोग्य हो, ऐसे सातों ही तत्त्वों की दशा, वह लक्ष्य करनेयोग्य नहीं अर्थात् छोड़नेयोग्य है, ऐसा। उपादेय नहीं। **वास्तव में उपादेय नहीं है।**

सहज वैराग्यरूपी... मुनि जरा अपनी बात करते हैं। है तो यह सबके लिये, हों! अन्त में लेंगे। **अति-आसन्न भव्यजीवों को ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त (अन्य) कुछ उपादेय नहीं है।** मुनि अपनी बात करके बात लेते हैं। मुझे तो यह है और सबके लिये यह है, ऐसा फिर अन्त में यह लेंगे। समझ में आया? मुनि उसे कहते हैं कि जो **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है,...** कलगी डालते हैं न ऐसे कलगी? उसमें ऊपर रत्न होता है। ओहो! मुनि को तो पुण्य-पाप के विकल्प से भी जिन्हें महावैराग्य है। समझ में आया? व्रत, अव्रत के राग से भी जिन्हें अन्तर में उदासभाव है।

सहज वैराग्यरूपी महल... बड़ा मकान, बँगला, उसका शिखर, उसका शिखामणि। इसी प्रकार मुनि उसे कहते हैं (कि जो) विकल्प से उदास है। इस एक समय की पर्याय

से भी जो उदास है। समझ में आया? निमित्त से तो उदास है, शुभ-अशुभराग से तो उदास है परन्तु एक समय की पर्याय से सहज वैराग्यरूपी महल... महल समझ में आता है? यह महल नहीं होते? राजा का विशाल महल। साढ़े तीन करोड़ का नहीं हुआ यह मैसूर में? यहाँ वे लोग होंगे न सब भटकनेवाले जॉर्ज और है न बड़े-बड़े घर? तीन-तीन करोड़ के घर। मर गया रात्रि में ऐं... ऐं... देखा तो मुर्दा था। भान नहीं था भान। मर गया कब खबर नहीं, लो। मर गया कौन? जॉर्ज। बड़ा तीन करोड़ का बँगला। वह बँगला कब तेरा था? सुन न अब! वह तो धूल का ढ़ेर। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जैसे वह विशाल महल हो, उसी प्रकार मुनि तो स्वाभाविक वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि हैं। आहाहा! देखो तो यह! समझ में आया? उदास... उदास... उदास... बीस वर्ष का जवान लड़का मरता हो और सब कहा जानेवाला कुटुम्ब एकत्रित हुआ हो और वह दो वर्ष की विवाहिता (खड़ी हो), वह असाध्य हो गया हो और मरने की तैयारी हो। वह चिल्लाहट मचाये। हाय रे! कुँए में बीच में उतारकर एकदम डोरी काट दी, ऐसे रोते हैं न? ऐई! नवनीतभाई!

यह हमारे घर में हुआ था न! हमारे बड़े भाई मर गये थे। छोटी उम्र में। छोटा तो मेरी दीक्षा के बाद (गुजर गया)। हमारे सबसे बड़े भाई थे न, उस समय मेरी उम्र, (संवत्) १९५७ में गुजर गये, (मेरी) ११ वर्ष की उम्र। वह जहाँ मरने की तैयारी हुई, वहाँ वह बाई रोने लगी। हम तो छोटी उम्र के। कहे कि बाहर निकलो। लड़कों को कहे, बाहर निकलो। ५७ की बात है। (संवत्) १९५७। आठ वर्ष का विवाहित। एक वर्ष का लड़का हुआ। ऐसे जहाँ आँख वैसी होने लगी, समाप्त होने का समय आया। बाहर निकलो लड़कों। वह रोने लगी। ११ वर्ष की उम्र में यह सब देखा था, हों! समझ में आया? आहाहा! शोक... शोक... शोक... शोक... फैल गया था।

उसी प्रकार धर्मी को बाहर से उदासीनता छा गयी होती है, ऐसा कहते हैं। बाह्य चीज़ से उदास... उदास... कहीं होश नहीं, कहीं उत्साह नहीं। विकल्प से, निमित्त से, आहाहा! समझ में आया? सहज वैराग्य। पर से हटकर... पुण्य-पाप के अधिकार में कहा है न? वैराग्य किसे कहते हैं? कि जो पुण्य-पाप के विकल्प हैं, उनसे हट गया

है। 'खसी गयो', समझ में आया? हट गया है। पीछे हटे हैं। व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प से भी पीछे हटे हैं, ऐसा वैराग्य, कहते हैं कि समकिती को होता है, और यह तो मुनि हैं। आहाहा! समझ में आया?

सहज वैराग्यरूपी महल.... उसका शिखर, उसका शिखामणि है मुनि। वे **परद्रव्य से जो पराङ्गमुख है,...** देखो यह! परद्रव्य जो कहे, उनसे पराङ्मुख है। एक समय की पर्याय संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि, उनसे पराङ्मुख है। समझ में आया? सबके लिये यह बात है। स्वयं लिखनेवाले हैं, इसलिए कहते हैं। परन्तु वापस कहा कि ऐसा आत्मा **अति-आसन्न भव्यजीवों को ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त (अन्य) कुछ उपादेय नहीं है।** सम्यग्दृष्टि जीव को अति अल्प काल में जिसका संसार में पार आनेवाला है और मुक्ति का किनारा जिसे दिखता है, अल्प काल में मुक्ति है—ऐसे भव्य जीव को यह सात तत्त्व आदरणीय नहीं है। ऐई! मनहरभाई! गजब बात! चैतन्यरत्न भगवान के आश्रय और उपादेयता के कारण धर्मात्मा को परद्रव्य से पराङ्मुखता वर्तती है। आहाहा! परद्रव्य से विमुखता वर्तती है। स्वद्रव्य में समुखता, स्व सन्मुख की मुख्यता, परद्रव्य की विमुखता। स्वद्रव्य की सन्मुखता। आहाहा!

मुमुक्षु : निमित्त आया या नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ निमित्त आया न! निमित्त से विमुखता। समझ में आया?

परद्रव्य से जो पराङ्गमुख है,... परद्रव्य से जो विमुख है। आहाहा! देखो, सम्यग्दृष्टि की दशा! सम्यग्दृष्टि ऐसा धर्मी, वह परद्रव्य से तो विमुख है। समझ में आया? अब फिर मुनि अपनी बात करते हैं। **पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिसे परिग्रह है,...** परद्रव्य से पराङ्मुखता तो सम्यग्दृष्टि को भी होती है। परन्तु तदुपरान्त स्वयं अपनी दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं, परदेहमात्र पाँच इन्द्रियों का विस्तार ही जहाँ नहीं। अणीन्द्रिय स्वरूप को पकड़ा है आत्मा की चीज़ को। पाँच इन्द्रिय का जहाँ विस्तार ही नहीं। समझ में आया? **पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित...** आहाहा! **देहमात्र जिसे परिग्रह है,...** ऐसे मुनि को वस्त्र का भी धागा होता नहीं। समझ में आया? देहमात्र। श्रीमद् में भी आता है या नहीं? संयम के हेतु से... 'मात्र देह वह संयम हेतु...' 'मात्र देह वह

संयम हेतु... ' समझ में आया ? **देहमात्र जिसे परिग्रह है,...** अर्थात् यह रहा है। (देह में) रहा है, परन्तु छूटा हुआ है दृष्टि में से। यह (देह) छोड़ा जाये नहीं, इसी प्रकार विकल्प है, वह छोड़ा नहीं जाता। भले हो, परन्तु उसकी पकड़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? **देहमात्र जिसे परिग्रह है,....**

वैसे तो सिद्ध को भी, भाई! संयमी कहा है, हों! संयम की व्याख्या करते हुए। सिद्ध के एक हजार आठ नाम हैं न ? संयमी—संयम के धारक। क्योंकि वमन हो गया है न! बाकी कुछ नहीं, इसलिए इन्होंने ऐसा शब्द प्रयोग किया है। एक हजार आठ नाम हैं न सिद्ध भगवान के ? वे संयमी हैं। तब कोई बारह व्रत (करना) या वे अव्रत टालना है—ऐसा नहीं है, परन्तु वे संयमी ही हैं, ऐसा। संयम के धारक हैं सिद्ध भगवान, ऐसा यह कहते हैं। समझ में आया ? परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि उस पर्याय का भी जहाँ आदर नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

यह तो आया न ? परम जिनयोगीश्वर। **पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिसे परिग्रह है, जो परम जिनयोगीश्वर हैं,...** महा जिनयोगीश्वर, वीतरागी योगीश्वर है। रागरहित वीतरागमूर्ति आत्मा में जिसका जुड़ान है अर्थात् उसे जिन, परम जिनयोगीश्वर कहा है। इतने चार शब्द प्रयोग किये। परम, जिन, योग और ईश्वर। कैसे मुनि हैं ? मुख्य तो मुनिपने से बात है। स्वयं मुनि हैं न ? पद्मप्रभमलधारिदेव यह टीका करनेवाले। इसलिए मुनिपने से बात की है, परन्तु सम्यग्दृष्टि के लिये ही यह बात है। समझ में आया ?

धर्मी को पर की बिल्कुल उपेक्षा वर्तती है और आत्मा ध्रुव की ही अपेक्षा दृष्टि में वर्तती है। आहाहा! यह मुद्दे के माल की बात है, इसलिए जरा सूक्ष्म पड़े, तो भी इसे समझना तो पड़ेगा या नहीं ? क्योंकि करना है यह। इसके बिना सब समझने जैसा है। जिसकी समझण में यह यथार्थता नहीं, उसका प्रयोग अन्तर्मुख में कैसे हो ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धपर्याय परद्रव्य, सिद्ध की पर्याय परद्रव्य, मोक्षपर्याय परद्रव्य। सेठी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य। आहाहा!

परद्रव्य से जो पराङ्गमुख है, पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिसे परिग्रह है, जो परम जिनयोगीश्वर हैं,... महा परम उत्कृष्ट वीतरागता के भाव में जुड़ानवाला ऐसा ईश्वर। अन्तर में स्थिरता की रमणता की उग्रता है। वीतरागबिम्ब को पकड़कर पूरा बिम्ब चैतन्यबिम्ब ध्रुव है, उसे पकड़कर उत्कृष्ट वीतरागता के भाव को जिसने प्रगट किया है, ऐसा परमयोगीश्वर है। व्यवहार को साधता है और पंच महाव्रत को पालता है—ऐसी यहाँ कोई बात नहीं ली। वह तो राग है। आहाहा! अभी इस सच्ची बात की समझ का ठिकाना नहीं होता। समझ में आया? यह बात सुनने को मिलती नहीं, वह समझे कब? विचारे कब? और प्रयोग में लावे कब? यह तो चौरासी के जन्म-मरण के दुःख का व्यय करने का मार्ग है। समझ में आया? जिसमें जन्म-मरण की पर्याय तो नहीं, परन्तु संवर, निर्जरा की, मोक्ष की पर्याय जिसमें नहीं, ऐसा द्रव्य, वह ऐसा कहते हैं। ऐसा आत्मा, ऐसा कहते हैं।

स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है— भगवान ध्रुव अन्तर्मुख प्रवेशकर... अन्तर्मुख में प्रवेश कर... स्ववस्तु जो ध्रुव है, वह स्वद्रव्य है, उस स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्णबुद्धि है। आहाहा! समझ में आया? **ऐसे आत्मा को...** अभी तो इतना। वह आत्मा कैसा है, यह बाद में वर्णन करेंगे। '**अप्पणो अप्पा**' यहाँ तो ऐसा आत्मा है, परन्तु जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि अन्दर है, ऐसे आत्मा को '**आत्मा' वास्तव में उपादेय है।** वह आत्मा कैसा? यह बाद में लेंगे। समझ में आया?

जिसकी स्वद्रव्य में तीक्ष्ण बुद्धि है, परद्रव्य से पराङ्मुख है। पर्यायबुद्धि से पराङ्मुख है, ऐसा कहना है। द्रव्यबुद्धि में दृष्टि जहाँ पड़ी है... आहाहा! ऐसे आत्मा को... ऐसा जो आत्मा, उसे '**आत्मा' वास्तव में उपादेय है।** यह पाठ की व्याख्या की है। '**उपादेयम् अप्पणो अप्पा**' ऐसा आत्मा उसे... ऐसे आत्मा को, वह आत्मा उपादेय—अंगीकार करनेयोग्य है। वहाँ दृष्टि देकर वह आदरणीय है। बाकी ज्ञानी को दूसरा कोई आदरणीय नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

उसमें आया था न ? वास्तव में उपादेय नहीं है, ऐसा कहा था वहाँ। यहाँ उपादेय है। उसमें 'हेय है' ऐसा न कहकर 'उपादेय नहीं' ऐसा कहा था। पाठ में हेय रखा है, उसके बदले नकार से बात की। जीवादि सात तत्त्वों का परद्रव्य समूह, वह उपादेय नहीं, लक्ष्य करनेयोग्य नहीं, आश्रय करनेयोग्य नहीं। तब ? ऐसा आत्मा, अन्तर में तीक्ष्ण दृष्टि रखी है जिसने, ऐसे आत्मा को आत्मा वास्तव में उपादेय है। अन्तरवस्तु ध्रुव, वही आदरणीय, अंगीकार करनेयोग्य, आश्रय करनेयोग्य है। समझ में आया ?

अब यह आत्मा का वर्णन करते हैं। समझ में आया ? **औदयिक आदि चार भावान्तरों को अगोचर होने से...** भगवान आत्मा कारणपरमात्मा, वह त्रिकाली ध्रुव सत् का बड़ा महास्वरूप, ऐसा जो कारणपरमात्मा एक समय की पर्याय बिना का। **औदयिक आदि चार भावान्तरों को अगोचर...** अर्थात् ? यह उदय अर्थात् पुण्य-पाप के उदय के भाव... आते हैं न ? आयेगा, आगे आयेगा। गति, राग, द्वेष, पुण्य, पाप विकल्प। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी उदयभाव है, उससे वह गम्य नहीं। यहाँ तो क्षायिकभाव से गम्य नहीं, इसका अर्थ कि वह आश्रय करनेयोग्य नहीं, ऐसा। ज्ञात होता है क्षायिकभाव, उपशमभाव से, परन्तु उसका आश्रय होकर ज्ञात हो, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? गजब !

कहते हैं कि उदयभाव—पुण्य, पाप के विकल्प आदि, गति आदि भाव, उससे आत्मा अगम्य है अथवा उनके आश्रय से आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। उपशमभाव, समकित, चारित्र आदि का उपशमभाव, उसके आश्रय से भी आत्मा की उपादेयता नहीं होती। क्षायिकभाव... क्षायिकभाव के आश्रय से ही आत्मा उपादेय नहीं हो सकता। तथा क्षयोपशमभाव के आश्रय से भी आत्मा अंगीकार नहीं हो सकता। भावान्तरों को अगम्य है, इसका अर्थ यह। गम्य तो क्षयोपशम, उपशम और क्षायिक से गम्य है, परन्तु उनके आश्रय से गम्य नहीं, इसलिए उनसे गम्य नहीं, ऐसा कहने में आया है। आहाहा !

कहते हैं, उदय—पुण्य-पाप का विकल्प आदि, उपशम-समकित, चारित्र आदि, क्षयोपशम-ज्ञान, दर्शन वीर्य का उघाड़ आदि। क्षायिक-समकित, चारित्र की पर्याय क्षायिक—इन पर्यायों से अगम्य है। अगम्य है अर्थात् ? इन पर्यायों के आश्रय से आत्मा

ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया? चार भाव के आश्रय से आत्मा गम्य नहीं, अर्थात् चार भाव से वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। इसलिए चार भाव का लक्ष्य करे, उसे आत्मा लक्ष्य हो, ऐसा आत्मा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात, भाई! एक ओर समकित आदि को परद्रव्य कहना और उस परद्रव्य से द्रव्य ज्ञात हो, ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं है। चार भाव के लक्ष्य से लक्षित हो, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। बाकी तो क्षायिकभाव से गम्य है, परन्तु यहाँ... वापस उसमें उन लोगों को तर्क आता है कि जब क्षायिक आदि पर्यायों को परद्रव्य कहा, तो परद्रव्य को गम्य आत्मा है? भाई! यह दूसरी बात है, सुन न! वह परद्रव्य के आश्रय से गम्य नहीं, इसलिए स्वद्रव्य के आश्रय से गम्य है, ऐसा कहना है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! अनुभव की दशा में अकेला आत्मा ही आदरणीय रहता है, ऐसा कहते हैं। यह है अनुभव की पर्याय-अवस्था, परन्तु उसे परद्रव्य गिना, क्योंकि उसका लक्ष्य करनेयोग्य नहीं है। (क्योंकि) उसके लक्ष्य से आत्मा का अनुभव नहीं होता। आहाहा! गजब बात!

औदयिक आदि चार भावान्तरों को... भावान्तर क्यों (कहा?) (फुटनोट में स्पष्टीकरण है) **अन्य भाव। (औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक — ये चार भाव परमपारिणामिकभाव से अन्य होने के कारण,...** परमपारिणामिक अर्थात् त्रिकाल परमस्वभावभाव, ध्रुवस्वभावभाव ऐसा जो परमस्वभाव, ध्रुवस्वभाव एकरूप भाव, उससे चार भाव अन्य हैं, इसलिए उन्हें भावान्तर कहा गया है। भावान्तर—अन्य भाव। भाव जो त्रिकाली परमस्वभाव, त्रिकाली परमभाव, ऐसे भाव की अपेक्षा से चार भाव अन्य भाव हैं। भावान्तर शब्द है न? **चार भावान्तरों...** अर्थात् परमस्वभावभाव भगवान, आहाहा! कारणपरमात्मा त्रिकाली चैतन्य का ध्रुवस्वभाव, उस भाव की अपेक्षा से उदय, उपशम, क्षायिकभाव, वह भावान्तर है—अन्य भाव है। (उसके) भाव की अपेक्षा से अन्य भाव हैं (क्योंकि) उनके आश्रय से यह भाव ख्याल में नहीं आता। अमरचन्दभाई! आहाहा! सूक्ष्म बात है, सेठी! इस पर्यूषण में और यह आया। सुने तो सही। समझ में आया?

ओहो! भगवान आत्मा, एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में महा तत्त्व का सत्व प्रभु, परमस्वभावभाव, परमपारिणामिकभाव है। अर्थात्? जिसमें निमित्त की ओर निमित्त के अभाव की अपेक्षा नहीं। क्योंकि उदयभाव में तो कर्म के उदय की अपेक्षा आयी, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक में निमित्त के अभाव की अपेक्षा आयी। यह तो अभाव और सद्भाव की अपेक्षा बिना का जो तत्त्व, ऐसा जो परमस्वभावभाव, उसे भाव गिनकर, इन चार भाव को भावान्तर कहा है। इस भाव से अन्य भाव कहा है। समझ में आया? आहाहा!

आदि चार भावान्तरों को... ओहोहो! क्षायिकभाव से आत्मा (भिन्न, क्योंकि) क्षायिकभाव के लक्ष्य से आत्मा लक्ष्य नहीं होता, क्षायिकभाव के आश्रय से आत्मा का आश्रय नहीं हो सकता। आहाहा! ऐसा कहते हैं। वहाँ और व्यवहाररत्नत्रय राग उदयभाव, उसके आश्रय से आत्मा को (लाभ होता है)। ऐसा कि व्यवहार पहले हो तो फिर निश्चय लक्ष्य में आता है। अरे! भाई! यह तेरी जाति ऐसी नहीं है, भाई! समझ में आया? शोभालालजी! यह तो अलौकिक अमृत की बातें हैं। धूल की पूँजी में मोहित हो गया है। अरे! एक समय की पर्याय में उलझा, वह द्रव्यदृष्टि को चूक जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भावान्तर... चार भावान्तर... भावान्तर अर्थात्? परमभाव ऐसा त्रिकाली ध्रुव, उससे उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, वह भावान्तर—अन्य भाव, उसे अगोचर है। अगोचर अर्थात् उसके लक्ष्य से आत्मा लक्ष्य नहीं हो सकता, ऐसा लेना। समझ में आया? आहाहा! देखो! कहा है यहाँ। **परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है—ऐसा कारणपरमात्मा...** इन चार भावान्तरों को अगोचर है। अर्थात् चार भाव के आश्रय से वह लक्ष्य में नहीं आता। चार भाव के लक्ष्य से उसका—आत्मा का ध्येय पकड़ में नहीं आता। आहाहा! यह तो अगमनिगम की बातें हैं, भीखाभाई! समझ में आया? आहाहा!

भाई! क्षीरसागर—समुद्र का पानी लाते हैं न भगवान को स्नान (जन्माभिषेक) करने के लिये? यह तो कहते हैं, अमृत का सागर उछलता है न अन्दर, भाई! आहाहा! समझ में आया? अनन्त अपरिमित आनन्द और ज्ञान का ध्रुवस्वरूप जिसमें सत्व का—

शक्ति का परिमितपना नहीं; अपरिमित स्वभाव है—मर्यादावाला स्वभाव नहीं। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... ऐसी एकरूप शक्ति का तत्त्व, ऐसा जो परमस्वभाव, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है। और सम्यग्दर्शन और ज्ञान का आश्रय करने से चारित्र नहीं होता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने के बाद चारित्र होता है, वह कहीं सम्यग्दर्शन और ज्ञान के आश्रय से चारित्र नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! जिसे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाव कठोर पड़े न कठोर। ... भक्तिवाले सही न वे? कलकत्तावाले। सेठिया का पत्र आया था। सुमेरुचन्दजी। भक्ति, कल्याण के.... वेदान्ती थे, फिर यहाँ दीपचन्दजी सेठिया के साथ... यह... उसमें आया निहालचन्दजीभाई के द्रव्यदृष्टिप्रकाश में। भगवान की भक्ति का भाव, वह भट्टी है। चिल्लाहट मचा गये। हाय... हाय! पत्र आये एक, दो, तीन, रामजीभाई के प्रति आये कि यह कैसे? भाई! यह विकल्प उठता है, वह उदयभाव है (और) उदयभाव है, वह कषाय है। देखो! यह उदयभाव हो वापस। ... है। आहाहा! तब क्या हमारे भगवान की भक्ति नहीं करना? और ऐसा कहे। अब सुन तो सही! यह तो कर निश्चित। ....चन्द्रभाई! शुभभाव होता है, वह जाननेयोग्य है; आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! उसका ज्ञान हो पर्याय में, वह आदरनेयोग्य नहीं, (ऐसा) यहाँ तो कहते हैं। राग, वह आदरनेयोग्य नहीं, परन्तु उस काल में स्व के लक्ष्य से स्व-परप्रकाशक ज्ञान की पर्याय में राग का—पर का जानना होता है, वह पर्याय भी आदरणीय नहीं। देवीलालजी! यह तो अगमनिगम की बातें हैं। आहाहा! जिसे मार्ग चाहिए हो और संसार के जन्म-मरण के दुःख (रूप) भावसागर में डूबा हुआ प्राणी, उसे तिरना हो तो यह एक उपाय है। समझ में आया? अरे! उसे डूबने का दुःख लगता नहीं। चौरासी के अवतार—स्वर्ग के, सेठिया के अवतार, वे सब दुःख से भरपूर, अग्नि से सुलगे हुए अंगारे हैं। प्राणभाई! यह क्या? दुःख के सरदार में सुलगता है। अग्नि से सिंकता है। भाई! तुझे खबर नहीं।

भगवान! शीतलसागर भगवान स्थित है, भाई! उसमें विकल्प का उठना... अशुभ का उठना, वह तो अग्नि है, (परन्तु) शुभ का उठना, उसके लक्ष्य से आत्मा लक्ष्य हो, ऐसा नहीं है। क्योंकि वह तो कषाय है और भगवान तो पूर्णानन्द अकषाय का रस है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं... 'जाना हुआ प्रयोजनवान' जो कहा। ओहोहो! वह

पर्याय जो जानी राग की, उस पर्याय पर लक्ष्य करने से आत्मा का लक्ष्य नहीं होता। आहाहा! अरे! वीतरागमार्ग के पंथ की रीति तो देखो! समझ में आया? कहते हैं, ऐसा जो भगवान चार भावान्तर से अगम्य है, अर्थात् कि चार भाव के लक्ष्य से उसका लक्ष्य नहीं हो, ऐसा है।

जो (कारणपरमात्मा)... कारणपरमात्मा अर्थात् अपना त्रिकाली स्वभाव, वह कारणपरमात्मा। जिसमें से सिद्धरूपी कार्यदशा हो, जिसकी खान में अनन्त सिद्ध (रूप) कार्यदशा पड़ी है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा अनन्त मुक्तदशा का नाथ, सिद्ध का भी नाथ। ऐसी तो अनन्त दशा जिसके एक-एक गुण में पड़ी है। एक केवलज्ञान की पर्याय, ऐसा ज्ञान अनन्त, दर्शन की पर्याय अनन्त उसमें पड़ी है, अनन्त आनन्द, वह आनन्द में पड़ा है। ऐसा जो ध्रुव भगवान स्वभाव को मर्यादा और हद नहीं हो सकती। ऐसा भगवान ध्रुवस्वरूप, वह चार भाव से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। तो यह तो कहते हैं कि व्यवहार से ज्ञात होता है, व्यवहार हो तो ज्ञात होता है, राग ऐसा मन्द पड़े, कषाय की मन्दता हो... चले गये भाई और। वे तो बेचारे... विपरीतता घुस गयी है न बहुत। त्यागी के नामवालों को इतना कठिन लगे यह। और पण्डित पढ़े हों दूसरा, उसके सिर पर चोट पड़े कि यह तेरा ज्ञान खोटा है। आहाहा!

भगवान! तेरे परमात्मा की भेंट होने में, कोई पर्याय और राग का आश्रय करने से भगवान की भेंट हो, ऐसा आत्मा नहीं है... ऐसा आत्मा नहीं है, ऐसा लंगड़ा आत्मा नहीं है। आहाहा! नवनीतभाई! नियमसार के समय किसी समय हो, न हो... भाग्यशाली है, भाई! आहाहा! ऐसी बातें सुनने को मिलना महाभाग्य है! आहाहा! उसके विकल्प में जो पुण्य बँधता है, वह भी दूसरे प्रकार का होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बँधता है, वह अलग प्रकार का (यह) बतलाया। उसमें आदरणीय-फादरणीय की कहाँ बात की? समझ में आया? आहाहा!

ऐसा कारणपरमात्मा कैसा है? कि जो आदरणीय और उपादेय कहा पाठ में। उसकी व्याख्या करेंगे विशेष। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १४, बुधवार, दिनांक - १०-०९-१९६९
गाथा-३८, श्लोक-५४, प्रवचन-२

मोक्षमार्ग का अधिकार है, उसमें शुद्धभाव अधिकार है। शुद्धभाव अर्थात् त्रिकाली परमस्वभाव ध्रुव, उसे यहाँ शुद्धभाव कहने में आया है। त्रिकाली ध्रुव परमस्वभाव, उसे ध्रुव कहकर वही अंगीकार करने (योग्य) और आदरणीय है। इसके अतिरिक्त कोई चीज़... सम्यग्दृष्टि को—धर्मी को ध्रुव चिदानन्द आत्मा उपादेय (है, इसके) अतिरिक्त सबकी उपेक्षा है, सबका त्याग है। समझ में आया? सात तत्त्व कहे न? सात तत्त्व, वे बहिर्तत्त्व हैं, वे आत्मा नहीं। सूक्ष्म बात है। जीव की एक समय की पर्याय, वह भी स्वद्रव्य नहीं, वह परद्रव्य है। उसमें होते पुण्य, पाप, दया, दान विकल्प आदि आस्रव, वह भी परवस्तु है, वे आत्मा की नहीं, वह आत्मा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह छह द्रव्य में यह त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से एक समय की पर्याय को परद्रव्य कहा गया है। छह द्रव्य में ही यह है। समझ में आया? आत्मा की एक समय की दशा भले क्षायिक समकित हो, तो भी उसे एक समय की अवस्था के कारण से उसे त्रिकाली स्वद्रव्य की अपेक्षा से कहकर उसे परद्रव्य कहा है। स्वरूपचन्दभाई!

मुमुक्षु : सूक्ष्म बहुत।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी यह बात ही चलती नहीं। अभी तो यह करो, यह पालन करो, व्रत करो, उपवास करो, दया करो और दान करो। सब अज्ञान और मिथ्यात्व का पोषण है।

मुमुक्षु : .... मिथ्यात्व का पोषण हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व का बाप अर्थात् गृहीतमिथ्यात्व, ऐसा। कठिन काम, भाई! धर्म की दृष्टि में... देखो तो सही, यह वस्तु! एक समय का ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, वही आदरणीय है, इसके अतिरिक्त सबका त्याग दृष्टि में से हो गया। आहाहा! इस त्याग

की तो खबर नहीं होती। दृष्टि में से परद्रव्य का तो अभाव-त्याग है, अन्दर दया, दान के विकल्प उठें, उनका भी त्याग और एक समय की अवस्था का त्याग अर्थात् उसकी उपेक्षा। एक त्रिकाली भगवान ध्रुवस्वरूप की अपेक्षा, उसका अंगीकार करना। ऐसा आत्मा, उसे दृष्टि में अंगीकार करे, तब उसे सम्यग्दर्शन का पहला धर्म होता है। शोभालालजी! आहाहा! कठिन काम।

आत्मा वास्तव में उपादेय है, ऐसा आया है न? और चार भावों से तो अगोचर आत्मा है। आहाहा! भगवान ध्रुवबिम्ब, चिद्घन, ध्रुव नित्य वस्तु की वर्तमान पर्याय जो क्षायिक हो या राग, विकल्प, दया, दान हो, उससे वह जाना नहीं जा सकता, अर्थात् कि उसके आश्रय से जाना नहीं जा सकता। समझ में आया?

तो कहते हैं कि ऐसा आत्मा उपादेय है कि जो 'औदयिक आदि चार भावान्तरों को अगोचर...' है। ऐसा कारणपरमात्मा जिसमें अनन्त मुक्तदशा, सिद्धदशा रही हुई है, ऐसा कारणतत्त्व अथवा कारणजीव। लो, कारणजीव। त्रिकाली ध्रुव चैतन्य पूर्ण सहजानन्दमूर्ति, उसे भगवान कारणजीव कहते हैं, उसे कारणआत्मा कहते हैं, उसे कारणपरमात्मा कहते हैं और उसे वास्तव में आत्मा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसे आत्मा की अन्तर्दृष्टि रखकर उसमें एकाकार होनेयोग्य है। अंगीकार करनेयोग्य का अर्थ यह है। आहाहा! कठिन काम, भाई! अब व्यवहार के दया, दान और व्रत, तप, यह विकल्प तो कहीं रह गये। वे तो बन्ध के कारण अधर्मरूप है। पोपटभाई! कठिन बात, भाई! यह तो उसमें अन्तर द्रव्यस्वभाव वस्तु, जिसमें महा अनन्त-अनन्त शान्ति और आनन्द की खान एकरूप वस्तु, उसे अंगीकार करने से सब चीज़ें दृष्टि में से उपेक्षित वर्तती है। ऐसी दृष्टि सम्यक्, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा!

यह आत्मा कैसा है? वहाँ समुच्चय बात की थी कि वास्तव में आत्मा को आत्मा उपादेय है। परन्तु अब कैसा वह? कि जिसमें द्रव्यकर्म नहीं। आठ कर्म का जिसमें अभाव है। भगवान आत्मा वस्तु जो ध्रुव चैतन्यकन्द, आनन्दकन्द, सहजानन्द का सागर ऐसा जो प्रभु है, उसमें आठ जड़कर्म नहीं, वह जड़कर्म से रहित है।

मुमुक्षु : कब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। कब क्या ? अभी। अत्यारे, समझते हो ? अभी। आहाहा!

भगवान चैतन्य सहजानन्दमूर्ति, प्रत्येक का आत्मा ऐसा जो ध्रुव, नित्यानन्द सहज सुख से बना हुआ भगवान ऐसा जो आत्मा, वह जड़कर्म से रहित है। एक बात। **भावकर्म...** उसमें दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, ऐसा जो विकारभाव है, वह तो विकार है। शुभभाव—भावकर्म विकार है, उससे भी वह वस्तु भिन्न—पृथक् है। आहाहा! समझ में आया ? **भावकर्म और नोकर्म...** इन तीनों को उपाधि कहा है। भाषा देखो। द्रव्यकर्म जड़, वह उपाधि; पुण्य-पाप के भाव शुभ-अशुभराग, दया, दान, व्रत, काम, क्रोध परिणाम, वे भी उपाधि, उससे भगवान आत्मा अन्दर भिन्न—पृथक् है। आहाहा! प्राणभाई!

और **नोकर्म...** यह शरीर आदि, इसकी उपाधि से... **उपाधि से जनित विभावगुणपर्यायों से रहित है...** आहाहा! क्या कहते हैं ? उसमें पुण्य-पाप के विकल्प, वह तो विभाव, द्रव्यकर्म विभाव सब, परन्तु उससे उत्पन्न हुआ कर्म के अभावरूप क्षायिक आदि, पुण्य आदि भाव, क्षायिक आदि भाव, इन सब विभावगुणपर्यायों से रहित आत्मा है।

मुमुक्षु : क्षायिकभाव को विभाव कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : विभावभाव है। बस बात ली है।

मुमुक्षु : इससे विरुद्ध का भाव है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। आहाहा! समझ में आया ?

परमस्वभावभाव भगवान ध्रुव चैतन्य महा अनन्त-अनन्त ज्ञान-आनन्द की खान ऐसा निधान, वह चीज़ ऐसी है कि जिसमें उदय, उपशम आदि सब विभावभाव कहे जाते हैं। विभावभाव—विशेषभाव—विकृतभाव अथवा एक समय का विभावभाव, उससे रहित आत्मा है। आहाहा! समझ में आया ?

उपाधि से जनित... यह कर्म के निमित्त से और निमित्त के अभावभाव, वह सब उपाधि है, ऐसा कहा। समझ में आया ? यह परमात्मा चैतन्य भगवान कारणप्रभु अन्दर

विराजता है, जिसमें से कार्यपरमात्मा की दशा प्रगटे, ऐसा कारणप्रभु, कारणपरमात्मा... स्वयं, हों! वापस उसका—आत्मा का कारण दूसरा कोई वीतराग परमेश्वर या कोई ईश्वर है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? उसे पर से तो कुछ लेना नहीं है, परन्तु उसकी पर्याय में से उसे लेना नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा चिदानन्द प्रभु ध्रुव चैतन्यद्रव्य को पर से तो कुछ लेना नहीं, पर में से कुछ मिले, ऐसा नहीं, क्योंकि पर का उसमें अभाव है। परन्तु एक समय की पर्याय में से कुछ लेना नहीं, क्योंकि वस्तु में उसका अभाव है। आहाहा! जहाँ नजर लगानी है वस्तु के ऊपर, उस वस्तु में तो, कहते हैं कि उस वर्तमान की पर्याय का भी अभाव है। ऐसा आत्मा... है न? **विभावगुणपर्यायरहित है...** गुण अर्थात् पर्याय और सब विभावगुणपर्याय लेना। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि यह सब विभावगुणपर्यायें हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! बात कठिन पड़े। भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : बहुत सूक्ष्म आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म आता है। अब यहाँ तो ऐसा यह तत्त्व न समझे तो अवतार व्यर्थ जायेगा। इसकी पद्धति भी ख्याल में न आवे और वह क्या चीज़ है कि जहाँ दृष्टि रखने जैसी है और जिसमें से दृष्टि उठाने जैसी है? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, इसके बिना का है, अर्थात् क्या? कि पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम पर दृष्टि रखी है, परन्तु वह तू नहीं, वह तुझमें नहीं, उसके बिना की चीज़ है वह। आहाहा! यहाँ तो अभी करते-करते धर्म होगा। दया पालते हैं और व्रत करते हैं और तप करते हैं विकल्प।

मुमुक्षु : वह व्यवहार साधन तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी साधन नहीं। समझ में आया? कठिन बात है, बापू! वीतरागमार्ग की। दुनिया को साधारण बुद्धिवाले को बेचारे को कुछ मिला नहीं और साधारण बातें करे, तो ठीक लगे।

मुमुक्षु : उसे चाहिए हो वैसा मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसे रुचि हो, ऐसी बात मिले। दया पालो, व्रत करो,

अपवास करो, यह करो, यह करो। अब यह तो बेचारा मूढ़ तो है, भान तो कुछ नहीं। उसे यह करो... करो... कहे तो वह कराने में मिथ्यात्व का पोषण होता है, इसकी उसे खबर नहीं। आहाहा! यह तो भारी कठिन काम, भाई! ऐई! भीखाभाई! पर्यूषण में तो धमाल चलती हो। ऐई... कितने अपवास किये? किसने इतने किये? किसने प्रौषध किये? किसने यह किया?

मुमुक्षु : किसने कितने किये?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कितने किये। अंक फिरे आठ, पचास, सौ। आठ हुए और पन्द्रह के दस हुए, महीने के पाँच हुए, फलाना इतने। अरे! धूल भी नहीं, सुन न! उसमें तो महा... क्योंकि स्वयं महा चैतन्य है, जिसमें दृष्टि देनी है, उसमें तू विकल्प उठावे, वह उसमें नहीं। आहाहा! उसमें है, वह इसमें नहीं और इसमें है, वह उसमें नहीं। आहाहा! ऐई! नेमिदासभाई! क्या अब यह प्रौषध करे और प्रतिक्रमण करे, क्या करना? बापू! यह मार्ग की प्रणालिका की पद्धति पूरी अलग है। दुनिया को सुनने को मिलता नहीं, वह समझे कब और रुचि करे और मिले कब अन्तर में? समझ में आया?

कहते हैं, कितना त्याग दृष्टि में आता है और कितना ग्रहण महाप्रभु का आता है, उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा! महाप्रभु अतीन्द्रिय चैतन्यकन्द, वह दृष्टि में अंगीकार आता है और राग तथा निमित्त की, एक समय की पर्याय का दृष्टि में त्याग वर्तता है, इस त्याग की दृष्टि की कीमत नहीं और यह (बाहर का) त्याग किया और यह छोड़कर बैठे और यह किया। वहाँ तो धर्म का त्याग है। समझ में आया? आहाहा!

यह अधिकार नियमसार मोक्षमार्ग है न? तो कहते हैं कि मोक्षमार्ग की पर्याय, वह पर्याय है। वह द्रव्य के लक्ष्य से प्रगट होती है। वह पर्याय कहीं राग, निमित्त और पर्याय के लक्ष्य से प्रगट नहीं होती। देवीलालजी! आहाहा! दुनिया के साथ तो कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं है। प्राणभाई! प्राणभाई ने आठ अपवास किये थे। कहो, समझ में आया? आहाहा! कठिन बातें, भगवान! तेरी महिमा की बात है। राग से लाभ हो, (इसमें) तुझे कलंक लगता है। आहाहा! समझ में आया? यह जन्मकलंक, परन्तु यह तो बाह्य का त्याग किया और यह छोड़ा, यह छोड़ा, ऐसा भाव है, वह मिथ्यात्वभाव,

वह तुझे कलंक है। समझ में आया? जो इसमें नहीं, उसे कहता है कि मैंने इसका त्याग किया, मैंने इसका त्याग किया। परन्तु कहाँ था इसमें (आत्मा में)? समझ में आया? बात तो ऐसी है।

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा ने जो यह आत्मा अन्दर है, उसे देखा और प्रगट किया प्रभु ने। उसे प्रगट करने की रीति—प्रभु ने इस प्रकार से किया, वह रीति कहते हैं। यह विभाव, मोह, पर्याय बिना का है। तब क्या है अब? यह तो नकार से आया।

यह **अनादि-अनन्त....** भगवान आत्मा तो अनादि-अनन्त है। जिसकी शुरुआत नहीं, जिसकी आदि नहीं, जिसका अन्त नहीं। ऐसा **अनादि-अनन्त अमूर्त...** अमूर्तिक है। **अतीन्द्रिय स्वभाववाला...** आहाहा! यह अतीन्द्रिय स्वभावस्वरूप ही वह है। (प्रवचनसार गाथा) ९२ में आया था अपने, अतीन्द्रिय महापदार्थ। आहाहा! बाहर की बात की लोगों को ऐसी मिठास आती है। चरणानुयोग की बात चलती हो कि यह करना... यह करना... यह करना। यह करने की बात जहाँ आवे कर्तृत्वबुद्धि की, वहाँ इसे ठीक लगता है। परन्तु इस कर्तृत्वबुद्धि में तो पूरी बात करूँ... करूँ (की होती है)। परन्तु स्थिर होऊँ... स्थिर होऊँ.... आत्मा में। नवनीतभाई!

भगवान चैतन्यतत्त्व महा, वह अनादि-अनन्त है, अमूर्त है। अतीन्द्रिय स्वभाववाला स्वरूप है। अतीन्द्रियस्वभावस्वरूप है। अतीन्द्रिय स्वभाववाला अर्थात् अतीन्द्रियस्वरूप ही वह है। वह इन्द्रियों से ज्ञात हो, ऐसा नहीं और इन्द्रियाँ उसमें है नहीं। जड़ इन्द्रियाँ उसमें नहीं, तथा खण्ड इन्द्रिय वह वस्तु में है नहीं; इसलिए वह अतीन्द्रिय स्वभाववाला है। अतीन्द्रिय स्वभाववाला उसका अस्तित्व—सत्ता का अस्तित्व। अतीन्द्रिय स्वभाववाला है।

शुद्ध-सहज-परम-पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है... आहाहा! कितने विशेषण दिये। देखो! कैसा है भगवान आत्मा? शुद्ध... एक तो महा शुद्ध पवित्र है। वह सहज स्वाभाविक वस्तु है। समझ में आया? पर्याय तो नयी होती है और पुरानी पर्याय जाती है। वह ऐसा नहीं है। वह तो सहज परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है। परमस्वभावभाव पारिणामिकभाव। पारिणामिकभाव अर्थात्? जिसे किसी पर की अपेक्षा

पर्याय में आवे, ऐसी अपेक्षा उसमें नहीं। ऐसा परमस्वभावभाव भगवान आत्मा... आहाहा! समझ में आया? यह भाषा भी समझना कठिन पड़े। ऐई! जेठाभाई! अरे! ऐसा होगा? परन्तु ऐसा क्या, यह कहते हैं? अरे! तुझे खबर नहीं। सुना नहीं। भाई! परमपारिणामिक। पारिणामिक अर्थात्? सहजस्वभाव। जिसे किसी निमित्त के सद्भाव या निमित्त का अभाव, ऐसी कोई अपेक्षा ही नहीं। आहाहा! कोई अपेक्षा ही नहीं। ऐसा परमपारिणामिकभाव। पर्याय को भी पारिणामिकभाव कहा जाता है। उदयभाव को पारिणामिकभाव की पर्याय कहा जाता है। तथा चार भाव को पारिणामिकभाव की पर्याय कहा जाता है, परन्तु वह तो पारिणामिकभाव की पर्याय, उस परमपारिणामिकभाव में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? इससे परमपारिणामिक शब्द प्रयोग किया है। लो! परमपारिणामिकभाव सहजात्मस्वरूप ध्रुव अनादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाववाला सहज शुद्ध पारिणामिकभाव जिसका अर्थात् आत्मा का स्वभाव है।

ऐसा कारणपरमात्मा... ऐसा उसका जो नित्यस्वरूप, ध्रुवस्वरूप, कारणप्रभु, कारणजीव एकरूप सत्व जीव का जो है, **ऐसा कारणपरमात्मा वह वास्तव में 'आत्मा' है।** देखो, भाषा देखो! पर्याय, वह आत्मा (नहीं), ऐसा आत्मा, वह वास्तव में आत्मा है। पर्याय, वह व्यवहार आत्मा है। वह वास्तव में आत्मा नहीं। गजब! शोभालालजी! ऐसा तो किसी समय यहाँ आवे, हों! यह तो आज फिर।

मुमुक्षु : यह पहली बार आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहली बार। यह सब इस बार सुने तो सही। प्रवचनसार पूरा हो गया। नय का अधिकार बाकी है परन्तु वह कुछ समझे नहीं अभी। वह अमुक प्रकार का... यह तो समझ में आये ऐसी शैली और सादी (भाषा) है यह। वस्तु भले ऊँची, परन्तु उसमें भाव समझने को सादापन है। समझ में आया?

कहते हैं कि यह आत्मा कैसा है? कि भगवान अनादि-अनन्त अमूर्त, अतीन्द्रिय स्वभाववाला अपना निज आत्मा, निज, हों! जो श्रद्धा करने के योग्य जो आत्मा, श्रद्धा करने के योग्य आत्मा ऐसा है। कैसा? कि सहज शुद्ध पारिणामिक सहजभावरूप ऐसा कारणपरमात्मा, उसे वास्तव में यथार्थरूप से—वास्तविकरूप से उसे निश्चय आत्मा

कहा जाता है। आहाहा! आत्मा के दो भाग—एक निश्चय आत्मा और एक व्यवहार आत्मा। गजब बात, भाई! समझ में आया? आहाहा!

भगवान इसे वास्तव में आत्मा (कहते) हैं। यह परमात्मा स्वयं कारणप्रभु, वही सच्चा आत्मा—वास्तविक आत्मा—निश्चय आत्मा है। एक समय की उसकी निर्मल पर्याय, वह भी व्यवहार आत्मा है। '**व्यवहारोऽभूदत्थो**' इसकी यह सब व्याख्या है। समझ में आया? पण्डितजी! आहाहा! इसका प्रसन्नपना तो, वस्तु त्रिकाल है, उसमें दृष्टि जाने से आनन्द आवे, वहाँ प्रसन्नपना है। आहाहा! समझ में आया? अब इसमें पैसेवाले से धर्म होता है, यह कितना इसमें कहाँ आता होगा?

मुमुक्षु : परन्तु जीव पैसावाला.... यहाँ तो पर्याय भी नहीं, फिर पैसावाला कहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! कितने ही ऐसा कहते हैं कि पैसेवाला हो तो धर्म की शोभा हो, धर्म की प्रभावना हो। लो, यह पैसेवाले बिना होगी?

मुमुक्षु : धर्म की प्रभावना आत्मा के आश्रय से होगी या पैसे के आश्रय से होगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐई! यह सब पैसे कितने खर्च करे? यह पैसेवाले खर्च करे। गरीब व्यक्ति खर्च कर सके? चार लाख का तुम्हारे परमागम (मन्दिर) बनाना है। कहाँ गये? यह रहे। यह तीन लाख का था, अब चार लाख आया है। अब होते-होते क्या आता है? यदि पैसेवाले हों तो पैसे से यह हो न, तो धर्म की शोभा होती है—ऐसा नहीं? यहाँ तो कहते हैं कि पैसावाला आत्मा है नहीं न! पैसे इसके हैं ही नहीं न! उससे धर्म की प्रभावना हो, ऐसा वस्तु में नहीं है। मैं पैसेवाला नहीं और पैसे में राग मन्द करके जो कुछ पुण्य हो, वह भी मैं नहीं। अरे! इस पुण्य के परिणाम को जानने की उस क्षण में ज्ञान की पर्याय हो, वह मुझमें नहीं। आहाहा! भगवान! आहाहा! काम ऐसा है। पोपटभाई! यह पोपटभाई को कराना है न कानातलाब? देखो! तीज को जायेंगे। ऐई! मणिभाई! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? रमणीकभाई वहाँ से आयेंगे, उड़कर आयेंगे। नाम नहीं आता। क्या कहलाता है वह? प्लेन। उड़कर आयेंगे इतना बोले। नाम नहीं आता। आहाहा! भगवान! तेरा घर कितना बड़ा है! और उस घर में कितना माल भरा है! और उसे अंगीकार करके दृष्टि में उसे लेने योग्य है। आहाहा! समझ में आया?

यह मूल बात है वीतरागमार्ग की अथवा आत्मा के मार्ग की। इसके अतिरिक्त दूसरी बातें करे, वे सब थोथा। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं... वापस भाषा कैसी? कारणपरमात्मा, वह वास्तव में आत्मा है, हों! पण्डितजी! यह भाषा समझते हो? वह त्रिकाली ध्रुव वस्तु...

मुमुक्षु : ....पर्याय भी मेरी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय नहीं। क्योंकि एक समय की पर्याय तो अंश रहा। वह तो व्यवहार में गया, व्यवहार आत्मा हुआ। निश्चय आत्मा तो पूरी वस्तु, वह निश्चय आत्मा, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। वह सम्यग्दर्शन उसे अंगीकार करता है। आहाहा! स्वरूपचन्दभाई! है ऊँचा, परन्तु समझ में आये ऐसा है। समझ में आये ऐसा है न? पुराने व्यक्ति हैं। आहाहा!

भाई! तेरा आत्मा तुझे वास्तविक किसे कहना? वास्तविक तू कौन? सच्चा कौन? वास्तविक कौन? यथार्थ कौन? कि कर्म-फर्म तो नहीं, दया, दान, विकल्प और पुण्य, पाप में तू नहीं, परन्तु एक समय की पर्याय... यहाँ तो ख्याल यह आया कि वह राग होता है न, वह राग नहीं और राग का निमित्त सामने लक्ष्मी आदि, वह तो नहीं, परन्तु यहाँ राग का ज्ञान होता है न, एक समय की पर्याय में (कि जिसे) व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान (कहा है, वह भी तू नहीं)। आहाहा! एक समय की राग को जानने की पर्याय, वह तू सच्चा आत्मा नहीं। आहाहा! पन्नालालजी! गुना में यह सब कठिन पड़े लोगों को। एकान्त है रे एकान्त है। अरे! भगवान! सुन तो सही, भाई! कुछ इससे लाभ होगा। दया, दान, व्रत, भक्ति करते, तप करते-करते कल्याण होगा। ऐसी बात हो तो अनेकान्त कहलाये। यहाँ कहते हैं कि ऐसे तेरे कुछ तप, व्रत को अज्ञानरूपी भैंसा निगल गया। सुन! समझ में आया? श्रीमद् में कहा है न, भाई? तेरा अज्ञानरूपी भैंसा वहाँ निगल गया। अज्ञानरूपी भैंसा। समझे न? पाडा, समझते हो? भैंसा। अज्ञानरूपी भैंसा तेरे व्रत, तप के पूळा कुछ निकल गया। छिलके हैं तेरे, सुन न! तुझे तेरी खबर नहीं होती और तू धर्म करने बैठा। कहाँ से धर्म होगा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक कहते हैं यह। ऐसा कि, वे लोग ऐसा कहते हैं, ऐसा भाई कहते हैं। ऐसा कि तुम्हारे से व्रत, तप की क्रिया नहीं होती न, इसलिए तुम उसका निषेध करते हो। परन्तु सुन न अब, तेरे व्रत, तप किसे कहना? सुन न! अब थोड़ी दया पालने का भाव हुआ या अहिंसा (भाव हुआ), वह तो राग है, पुण्य है और मैंने उसकी दया पालन की, वह तो मिथ्यात्वभाव है, उसमें आत्मा का महाखून है। यह कहते हैं। भाई कहते हैं। करके तो देखो। पालन करके तो देखो एक बार। नग्नपना लो, व्रत, अहिंसा व्रत पाँच महाव्रत लो। अरे! भगवान! सुन न भाई! अब तेरे महाव्रत के परिणाम तो अनन्त बार लिये अज्ञानभाव से। समझ में आया? नौवें ग्रैवेयक गया, वहाँ उसमें कुछ तेरा हित नहीं हुआ। आहाहा! समझ में आया? महीने-महीने के, दो-दो महीने के अपवास, अपवास, छह-छह महीने के अपवास, दो-दो महीने के सन्थारा। सन्थारा अर्थात् ऐसे वृक्ष की डाली न हिले, परन्तु इसका लक्ष्य वहाँ है कि यह क्रिया करता हूँ और यह राग मेरा और इस राग को मैं करता हूँ और इस राग को मैंने छोड़ा है, यह दृष्टि वहाँ है, वह मिथ्यादृष्टि आत्मा के शान्ति का खून करनेवाली है। समझ में आया? कठिन काम!

यहाँ सम्यग्दृष्टि उसे कहते हैं कि जिसे एक समय की पर्याय भी अभूतार्थरूप से, व्यवहाररूप से लक्ष्य में आती है। आहाहा! कैसी शैली से बात की है! मूल तो (समयसार) ११वीं गाथा की शैली से बात है। **'ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ' 'भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदी जीवो'** व्यवहार, वह अभूतार्थ है। एक समय की पर्याय अनित्य और क्षणिक है, (इसलिए) वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। क्योंकि इससे नयी शान्ति की पर्याय नहीं आती; इसलिए उसे व्यवहार आत्मा कहकर, अभूतार्थ कहकर, वह खोटा आत्मा (कहा), सच्चा नहीं। कठिन भाई! समझ में आया? अमरचन्दभाई! समझ में आया? ऐसी टीका न समझ में आये न फिर... है ऐसा करके जैसा अर्थ इसमें भरना चाहिए, वे भरे नहीं, टीका में तो उलझन कर डाली, ऐसा (लोग) कहते हैं। यह टीका पढ़कर। पद्मप्रभमलधारिदेव ने तो सारी टीका में बहुत उलझन कर डाली, क्लेश कर दिया।

मुमुक्षु : गाथा तो सरल थी, परन्तु टीकाकार ने क्लिष्ट कर डाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्लिष्ट कर डाली, ऐसा कहते हैं। अरे! गाथा में से सरलरूप से उसका स्पष्ट कर दिया है। सुन न! आहाहा!

मुमुक्षु : सब निचोड़ निकालकर प्रस्तुत किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं। चार भाव को अगम्य (कहकर) क्लिष्ट कर डाली टीका। जुगलकिशोर और यह रतनचन्दजी और वे सब ऐसा कहनेवाले। आहाहा! वह (जुगलकिशोर) मुखत्यार है न?

कहते हैं, भाई! यह तो स्पष्ट किया है। पाठ भी है या नहीं यहाँ? पाठ क्या है? '**जीवादिबहित्तच्चं हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।**' यह पाठ है, उसका तो यह स्पष्टीकरण चलता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहा? परन्तु इसका अर्थ ही यह हुआ। वह द्रव्य ही परद्रव्य है। आहाहा! '**जीवादिबहित्तच्चं**' बाह्य तत्त्व, बाह्य भाव, बाह्य द्रव्य, परद्रव्य— यह सब एक ही है। समझ में आया? आहाहा! यह तो परमात्मा भगवान के भेंट की बातें हैं। ऐसा ध्रुव तत्त्व, उसका माहात्म्य न आवे और इसे कहीं भी विकल्प और निमित्त और पर्याय का माहात्म्य आवे तो उसका मिथ्यात्व नहीं जायेगा। आहाहा! समझ में आया?

इन्होंने तो हल्का किया। उसमें हेय कहा है, तो इसमें वास्तव में उपादेय नहीं, ऐसा शब्द प्रयोग किया है, ऐसा। पहला शब्द रखा कि '**हेयोपादेयतत्त्वस्वरूपाख्यानमेतत्**' पश्चात् '**जीवादिसप्ततत्त्वजातं परद्रव्यत्वान्न ह्युपादेयम्**' आहाहा! समझ में आया? उसे स्वयं को समझ में न आवे, इसलिए टीकाकार का दोष निकालते हैं। भाई!

मुमुक्षु : विद्वान को न आवे, ऐसा बने?

पूज्य गुरुदेवश्री : अब विद्वान कहना किसे? यह तो आ गया था, नहीं? विद्वान निश्चय को तजकर व्यवहार में वर्ते, परन्तु मुक्ति तो निश्चय के आश्रय से है। पुण्य-पाप (अधिकार) में आ गया न? विद्वान पढ़-पढ़कर व्यवहार निकालते हैं और व्यवहार से

कल्याण होगा, ऐसा मानते हैं और व्यवहार में वर्तते हैं, उसे तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि कहा है। ऐसा निकाला वह शास्त्र पढ़कर? जहर निकाला। पुण्य-पाप (अधिकार) में है न? विद्वानजन भूतार्थ तज व्यवहार में वर्तन करे। नित्या... आहाहा!

जयसेनाचार्य ने तो यह कहा, विद्वान हो, वह व्यवहार में प्रवर्ते नहीं। ऐसा अर्थ किया है। आहाहा! दो अर्थ हैं। विद्वान—जिसे वास्तविक तत्त्व और पर्याय का ज्ञान है, वह व्यवहार में वर्तता नहीं, वह निश्चय ज्ञानानन्दस्वरूप में वर्तता है। उसे निश्चय का जाननेवाला विद्वान कहा जाता है। बाकी सब मूर्ख कहे जाते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? हजारों लोगों को समझाना आया, यह कहना आया, परन्तु तत्त्व अन्दर वस्तु है ध्रुव, उसका आश्रय करना, वह शरण है, पर्याय का आश्रय करनेयोग्य नहीं—ऐसा सीखा नहीं तो वह विद्वान नहीं, परन्तु बड़ा मूर्ख है। दूसरा है, लो न, ऐसा लो।

हमारे भाई लालन बोलते थे नहीं कि यह न हो तो? स्वयं पाप, ऐसा न बोले। तो लोग कहे, पाप। हाँ यह। लालन पण्डित थे न श्वेताम्बर। ९० वर्ष की उम्र। और जरा मजाकिया भी थे, जामनगर के। भाषण दे, फिर कहे, देखो, भाई! इसका नाम धर्म और इसका नाम पुण्य, इसके अतिरिक्त दूसरा वह? वह कहे, दूसरा कहे पाप। हाँ, वह। पाप न बोले स्वयं।

मुमुक्षु : नाम न ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम न ले, ऐसे थे वे। वे सब ऐसे थे। अमेरिका में २०-२० हजार लोगों में भाषाण दे। २०-२० हजार में बड़ा भाषण (दे) तो लोग ऐसे... समझे न? पाँच-पाँच, सात-सात रुपये देकर उसका व्याख्यान रखे। बड़ा पण्डाल हो लाख-लाख का। रुपये बहुत उपजे। उसमें भला क्या हुआ? तेरा तत्त्व कौन है और किसकी शरण में जाना और किससे हटना—इसकी खबर बिना तेरी खबर कहाँ की सच्ची हुई? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि 'कारणपरमात्मा वह वास्तव में 'आत्मा' है।' गजब बात! चिदानन्द ध्रुव वस्तु जो है, वह अपना कारणप्रभु आत्मा है और वही वास्तव में उसे ही सच्चा आत्मा कहने में आता है। आत्मा में भी सच्चा और खोटा।

मुमुक्षु : नय दो प्रकार से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नय है न? समझ में आया? आहाहा!

अब कहते हैं... पहले तो स्वयं की बात की थी न मुनि की? यह तो अति-आसन्न भव्य जीवों को... अति आसन्न भव्य जीव (अर्थात्) नजदीक में जिनका—भव्य का मोक्ष होने की पात्रता है, ऐसे **अति आसन्न भव्य जीवों को...** जिसे मोक्ष अति आसन्न अर्थात् निकट वर्तता है। आहाहा! जिसे अल्प काल में निकटपने—नजदीकपने मोक्ष वर्तता है, ऐसे **अति आसन्न भव्य जीवों को ऐसे निज परमात्मा के अतिरिक्त (दूसरा) कुछ उपादेय नहीं है।** समझ में आया? आहाहा! बहुत सरस बात! बहुत सरस!

कितना त्याग वर्ता दृष्टि में, इसकी तो खबर नहीं होती। समझ में आया? इसकी कीमत नहीं और कीमत यह बाह्य त्याग किया, यह छोड़ा, यह रखा। जिसमें मिथ्यात्व का पोषण है। विकल्प का कर्ता हो और बाह्य त्याग मैंने किया, ऐसा अभिमान है उसे। वह तो मिथ्यात्व है। उसमें पूरे आत्मा का त्याग वर्तता है। पण्डितजी! बराबर है यह? आहाहा!

कहते हैं, अहो! आसन्न—नजदीक, अति नजदीक है जिसे। आत्मा का भव्य (पना) पकने पर मोक्षदशा—भव्य जीव का पाक, केवलज्ञानादि का पाक—जिसे अति नजदीक में है। ऐसे भव्य जीवों को तो एक यह निजपरमात्मा (आदरणीय है), परपरमात्मा भी नहीं, अरिहन्त-सिद्ध भी आदरणीय है नहीं। आहाहा! अपनी एक समय की पर्याय आदरणीय नहीं, फिर परमात्मा तो कहीं पर में रह गये। आहाहा! समझ में आया? समवसरण और समवसरण में विराजमान तीर्थंकर और अनन्त केवलज्ञानी और... कहते हैं, वह कोई जीव को आदरणीय नहीं। सम्यग्दृष्टि जीव को अल्प काल में केवलज्ञान होने की तैयारी है। आहाहा! समझ में आया? उसे तो एक निज परमात्मा... अपना कारणपरमात्मा (शब्द) प्रयोग किया, वास्तविक आत्मा (शब्द) प्रयोग किया। समझ में आया? और ऐसा आत्मा आत्मा को—तीक्ष्ण बुद्धिवाले को वह ग्रहण करनेयोग्य है, ऐसे आत्मा को वास्तव में उपादेय (जो) आत्मा है, वह यह आत्मा। त्रिकाली ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, वही वास्तविक आत्मा, कारणपरमात्मा, कारण जीव है। इसके अतिरिक्त...

इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र भी आदरणीय नहीं, उससे—निमित्त से (होता) भक्ति का रागभाव भी आदरणीय नहीं, परन्तु निज (शुद्ध) पर्याय है, वह भी आदरणीय नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अति आसन्न भव्य जीवों को ऐसे निज परमात्मा के अतिरिक्त....' सहजानन्द नित्य प्रभु, इसके अतिरिक्त **(दूसरा)...** अर्थात् कि निमित्त, राग और पर्याय **(दूसरा) कुछ उपादेय नहीं है।** दूसरा कुछ अंगीकार करनेयोग्य, आदर करनेयोग्य नहीं है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो यही कहा है न! वहाँ भी यही कहा है। उसकी यह बात है। दूसरी बात कहाँ है? यहाँ तो मोक्षमार्ग है, इसलिए कारणपरमात्मा में से मोक्षमार्ग प्रगट होता है, ऐसा सिद्ध करते हैं। पर्याय का कहना है परन्तु वह पर्याय द्रव्य में से आती है, इसलिए द्रव्य का ही कारणपना है और उस द्रव्य को ही आदरनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अब ३८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं।

(मालिनी)

जयति समयसारः सर्व-तत्त्वैक-सारः,
सकल-विलय-दूरः प्रास्त-दुर्वार-मारः।
दुरित-तरु-कुठारः शुद्ध-बोधावतारः,
सुखजलनिधिपूरः क्लेशवाराशिपारः॥५४॥

'क्लेशवाराशिपारः' आहाहा! **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है...** देखो! संवरतत्त्व, निर्जरातत्त्व, मोक्षतत्त्व, आस्रवतत्त्व, बन्धतत्त्व, अजीवतत्त्व—इनमें तो एक सार, त्रिकाली द्रव्य, वह एक सार है। आहाहा! समझ में आया? **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है...** अर्थात् कि अजीवतत्त्व, संवर-निर्जरा-मोक्षतत्त्व वह तत्त्व है एक समय की पर्याय... संवर-निर्जरा-मोक्ष हो गया न पर्याय? उन तत्त्व में भी त्रिकाली तत्त्व, वह एक सार है। बाकी

इसके अतिरिक्त सब असार है, ऐसा इसका अर्थ है। आहाहा! साधारण व्यक्ति को नया सुने उसे ऐसा लगे, यह क्या कहते हैं धर्म का रूप ऐसा? ऐसा धर्म होगा? एकदम-एकदम ऐसा होता हो, ऐसा हो। शास्त्र के जानपने की बातें करे, व्रत, तप की बातें करे, तो लोगों को ऐसा होता है कि आहा! बहुत अच्छी धर्म की बात करते हैं। धूल भी धर्म की बात नहीं, सुन न! तुझे खबर नहीं। शोभालालजी!

मुमुक्षु : बात कहाँ है और बात कहाँ की करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ की बात करे। कुछ खबर नहीं। समझ में आया? अन्धा अन्ध पलाय। अन्धा दिखलानेवाला और अन्धा चलनेवाला। 'अन्धा अन्ध पलाय' शब्द है।

अहो! **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है...** नौ तत्त्व में एक कारणपरमात्मा, वह सार तत्त्व है। **जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है...** विकल्प, निमित्त और एक समय की पर्याय, वह सब नाश होनेयोग्य है। आहाहा! कैसी शैली रखते हैं! **जो समस्त नष्ट होनेयोग्य....** राग, पुण्य, दया, दान, यह तो नष्ट होनेयोग्य विकृतभाव है, परन्तु एक समय की (शुद्ध) अवस्था भी नष्ट होनेयोग्य है। व्यय होने को, सिद्ध की अवस्था भी व्यय होने के योग्य है। उत्पाद-व्ययरूप है न वह? व्यय होने के योग्य है न? ध्रुव तो त्रिकाली है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों... समस्त नष्ट होनेयोग्य भाव... भाव शब्द से नष्ट होनेयोग्य पर्याय, नष्ट होनेयोग्य राग। बदलनेयोग्य तेरा निमित्त आदि, उसे तो पर रखो, उससे तो दूर है। एक समय की पर्याय से ध्रुव, वह दूर है। ऐई! समझ में आया? भगवान ध्रुव तत्त्व जो अचल, अवलम्बन योग्य जो तत्त्व है, वह पर्याय से दूर है। असंख्य प्रदेश में (होने) पर भी दूर है, दूर है। आहाहा! अपने आ गया न अलिंगग्रहण में, नहीं? पर्याय, द्रव्य को स्पर्शती नहीं; द्रव्य, पर्याय को छूता नहीं और पर्याय, द्रव्य को छूती नहीं। आहाहा! अलिंगग्रहण में सब बहुत आया था। एक व्यक्ति कहता था बेचारा, हों! अलिंगग्रहण बहुत सरस अधिकार चला है। सब थे न मौके से, और वह आ गया उसमें। वह लेने का नहीं था। वह लिया।

अहो! भगवान आत्मा जो कुछ समस्त नष्ट होनेयोग्य भाव... यह शरीर, वाणी,

मन, वह तो एक ओर रह गया, हों! और दया, दान के विकल्प व्रत, तप का राग, वह तो विकल्प है, वह भी नाश होनेयोग्य है। यह आस्रवतत्त्व, यह भावबन्ध तत्त्व, अजीवतत्त्व है। परन्तु अन्दर में नाश होनेयोग्य संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय... आहाहा! वह नष्ट होनेयोग्य है, बदलनेयोग्य है, उससे भगवान ध्रुव तत्त्व तो इस पर्याय से दूर है। ऐसा सुना जाये नहीं, हों!

मुमुक्षु : इस काल में सुना जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सम्प्रदाय की (बात है)। ऐई! कानजीस्वामी ने तो सब ऐसे उड़ाया। भाई! सुन न, तुझे खबर नहीं। वाडा में धर्म कहीं नहीं है। वह वाड़ा बाँधकर बैठे, उसमें कहीं धर्म नहीं है। 'वाडा बाँधी ने बैठा रे अपना पंथ करवाने।' अपना पंथ—सम्प्रदाय रखने बैठे हैं बेचारे। तत्त्व क्या है, इसकी खबर नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : समझने जैसी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है, भाई! अपनी वाड़ा की पद्धति और परम्परा की रीति कैसे टिकी रहे, इसके लिये मिथ्या प्रयास करते हैं।

मुमुक्षु : बड़ा छेद पड़ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक शैली देखो न! पद्मप्रभमलधारिदेव की! एक तो यह कहा कि सर्व तत्त्व में एक सार है, दूसरा सार नहीं। (दूसरा), समस्त नष्ट होनेयोग्य भाव—पर्याय से दूर है। भगवान आत्मा, एक समय की अवस्था बदलती है, उससे दूर तत्त्व है। आहाहा! सिद्ध की पर्याय एक समय की बदलनेवाली है, उससे ध्रुव है, वह दूर है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।

जिसने दुर्वार काम को नष्ट किया है,... अर्थात्? कि जिसमें काम है नहीं, ऐसा इसका अर्थ। नष्ट किया है, ऐसी भाषा है। जिसमें काम-भोग की वासना नहीं, इसलिए

नष्ट किया है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? **जिसने दुर्वार...** (अर्थात्) निवारण नहीं किया जा सके, ऐसा जो विकल्प, भोग की वासना का भाव, कहते हैं कि जिसने नष्ट किया, अर्थात् कि जिसमें नहीं, ऐसा। उसकी व्याख्या ऐसी है। समझ में आया? नष्ट किया है अर्थात् नाश करता है, ऐसा भी नहीं और नष्ट किया है, ऐसा भी नहीं। नष्ट किया है, इसका अर्थ कि उसमें नहीं है, उसका अभाव वर्तता है, इसका नाम नष्ट किया है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

जो **जो पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है...** अर्थात् कि जिसमें पाप नहीं, ऐसा इसका अर्थ है। वह पुण्य कहा, पुण्य का फल कामादि इच्छा। यहाँ **पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार...** इस पाप शब्द से पुण्य और पाप दोनों पाप हैं। बहुत जगह आता है, नहीं? अघ... अघ। अघ और सुख और दु:ख सब पाप है। शुभ और अशुभभाव दोनों पाप है। समझ में आया? आहाहा! दया, दान और व्रत का विकल्प है, वह पाप है, राग जो पुण्य है, वह पाप है। शोभालालजी! संसार में भटकावे, उस भाव को पुण्य कैसे कहा जाये? उसे सुशील कैसे कहा जाये? वह तो कुशील है। आहाहा! समझ में आया? पण्डितजी! बहुत माल है। ... लालजी गये? गये होंगे।

क्या कहा है? कि पुण्य-पापरूपी ऐसे वृक्ष हैं न? उसे तो उगने देता नहीं। मूल तो ऐसा कहते हैं (कि) उसमें है नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा अमृत का सागर प्रभु ध्रुव, वह पापरूपी वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है अर्थात् पापवृक्ष की उत्पत्ति जिसमें नहीं है। अथवा उस पारिणामिकभाव का आश्रय करने से पाप और पुण्य का नाश हो जाता है। समझ में आया?

जो शुद्ध ज्ञान का अवतार है... वह तो शुद्ध ज्ञान का जन्म लिया है उसने— आत्मा ने। अकेला शुद्ध ज्ञान ही अवतरित हुआ है। है त्रिकाली, ऐसा। पर्याय की बात नहीं यह, हों! शुद्ध ज्ञान का जिसका जन्म है अर्थात् 'है'। शुद्ध ज्ञान का ही जिसका अवतार है। अकेला शुद्ध ध्रुव चैतन्य, उस ज्ञान का ही उसका रूप है, वही उसका अवतार है। समझ में आया? वे उलझन में आये कि ऐसे अर्थ किये? चार भाव अगोचर है, अगम्य है। लोग कहे, ऐसा (अर्थ)? परन्तु सुन न! किस अपेक्षा से कहते हैं, यह

समझ तो सही! चार भाव उसमें नहीं है, इसलिए उनके आश्रय से ज्ञान नहीं होता, ऐसा कहते हैं।

शुद्ध ज्ञान का अवतार है... भगवान आत्मा वस्तु, एक समय की पर्याय के अतिरिक्त शुद्ध ज्ञान का अवतार है। यहाँ केवलज्ञान की बात नहीं। केवलज्ञान तो एक समय की पर्याय है, वह पर्याय ध्रुव में नहीं। ऐसा शुद्ध ज्ञान का अवतार है ध्रुव। समझ में आये ऐसा है, हों! ऐसा है ऊँचा और अच्छा, परन्तु न समझ में आये, ऐसी बात नहीं। यह तो बहुत सादी है। नय का अधिकार तो जरा लम्बा करना पड़े, (इसलिए) कठिन पड़े। आहाहा! तथापि बाद में लेंगे। सब हल्का होगा तब। कहो, समझ में आया? कहीं छोड़ नहीं देना है। पूरा करना है। ४७ नय। आहाहा!

शुद्ध ज्ञानस्वरूप है, ऐसा कहते हैं। जन्मा, ऐसा नहीं कहते? कि यह मनुष्य जन्मा। अर्थात् जन्मा अर्थात् है। यह मनुष्य हुआ, नहीं था और हुआ, ऐसा। है, इसी प्रकार यह शुद्ध ज्ञान ही है, ऐसा। शुद्ध ज्ञान ही जिसका जन्म अर्थात् अवतार है, ज्ञान ही जिसका स्वरूप है। उसमें ज्ञान की पाँच पर्यायें आदि उसमें है नहीं। आहाहा! इसलिए शुद्ध ज्ञान कहा है। और केवलज्ञान भी सद्भूत व्यवहारनय का विषय है। वह भी इसमें नहीं। निश्चय तत्त्व भगवान आत्मा तो शुद्ध ज्ञान का स्वरूप है पूरा। आहाहा! सूक्ष्म बात है, कान्तिभाई! वहाँ मुम्बई में ऐसी न चली हो। मुम्बई में थे न वहाँ। कान्तिभाई आये थे। शान्तिभाई के समधी नहीं? शान्तिलाल खुशाल। अपने गये थे न! तुम गये थे न? उस मन्दिर के साथ। वे लेने आये थे। सुमनभाई के वहाँ लेने आये थे न? सुमनभाई के वहाँ लेने आये थे। कहो, समझ में आया? इसने कभी ऐसा सुना न हो। यह क्या? ऐई! प्राणभाई!

जो सुखसागर का पूर है... आहाहा! यह सुखसागर का समुद्र है। पूर बहता है अन्दर।

मुमुक्षु : ज्ञान और सुख दो लिये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो लिये हैं। ज्ञान और सुख दो ही वस्तु है न! समझ में आया? फिर नास्ति से लेंगे तीसरा। अस्ति से यह लिया।

भगवान आत्मा सुखसागर का पूर है, ध्रुव। **और जो क्लेशोदधि का किनारा है...** क्लेश का समुद्र, उसका उसमें अभाव है, किनारा है अर्थात् (अभाव है)। क्लेश का समुद्र पूरा, विकल्प की आकुलता, उसमें है ही नहीं। क्लेशोदधि का किनारा है अर्थात् उसमें है ही नहीं, ऐसा। यहाँ नहीं। बाहर गया बाहर। **वह समयसार (शुद्ध आत्मा) जयवन्त वर्तता है।** ऐसा ध्रुव भगवान ऐसा का ऐसा जयवन्त त्रिकाल वर्तता है। यह समकिती को शरण और आदरनेयोग्य है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

- वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा, सौ इन्द्रों की उपस्थिति में समवसरण में लाखों-करोड़ों देवों की हाजिरी में ऐसा फरमाते थे कि 'तू परमात्मा है, ऐसा निर्णय कर', भगवान! आप परमात्मा हो, इतना तो हमें निर्णय करने दो!—कि यह निर्णय कब होगा?—कि जब तू परमात्मा है, ऐसा अनुभव होगा, तब यह परमात्मा है—ऐसा व्यवहार तुझे निर्णीत होगा। निश्चय का निर्णय हुए बिना व्यवहार निश्चित होगा नहीं। (1)
- अहो! सभी जीव वीतरागमूर्ति हैं। जैसे हैं, वैसे होओ। दूसरे को मारना, यह तो कहीं रह गया; दूसरे का तिरस्कार करना, यह भी कहीं रह गया, परन्तु सभी जीव सुखी होओ; हमारी निन्दा करके भी सुखी होओ, हम जैसे हैं, वैसा जानकर भी सुखी होओ; चाहे जैसे भी सुखी होओ!... प्रभु का प्रेम तो ला भाई! तुझे प्रभु होना है। (2)

— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, दृष्टि के निधान

श्रावण कृष्ण १५, गुरुवार, दिनांक - ११-०९-१९६९
गाथा-३९, श्लोक-५५ प्रवचन-३

यह नियमसार। मोक्ष का मार्ग, उसका अधिकार है। उसमें यह शुद्धभाव अधिकार है। शुद्धभाव अर्थात् इस जीव का त्रिकाली ध्रुवस्वभाव, उसे यहाँ शुद्धभाव कहा गया है। इस शुद्धभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और धर्म की दशा प्रगट होती है। इस बात का वर्णन है। मोक्षमार्ग है न? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वही मोक्षमार्ग है और वह निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान अर्थात् सच्चा दर्शन, ज्ञान और चारित्र, त्रिकाली ध्रुव अखण्ड अभेद निर्विकल्पतत्त्व को अवलम्बन करने से, उसका आश्रय करने से यह दशा प्रगट होती है। यह बात ३८ में थोड़ी कही, विशेष ३९ में कहते हैं।

णो खलु सहावठाणा णो माणवमाणभावठाणा वा।
णो हरिसभावठाणा णो जीवस्साहरिस्सठाणा वा॥३९॥

मानापमान, स्वभाव के नहिं स्थान होते जीव के।
होते न हर्षस्थान भी, नहिं स्थान और अहर्ष के॥३९॥

टीका - यह निर्विकल्प तत्त्व के स्वरूप का कथन है। आत्मा निर्विकल्प अभेद है, जिसमें राग-द्वेष तो नहीं, परन्तु एक समय की पर्याय जो मोक्षमार्ग की दशा, वह भी जिसमें नहीं।

मुमुक्षु : कोई पर्याय नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई पर्याय (उसमें सब) आयी। मोक्षमार्ग की पर्याय नहीं, फिर कौन सी पर्याय गिनना? जिसका अधिकार है यहाँ। नियमसार। '**णियमेण य जं कज्जं**' नियम से जो '**जं कज्जं**' निश्चय से जो करनेयोग्य है। निश्चय से करनेयोग्य कार्य हो तो आत्मा के लिये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, यह करनेयोग्य है। यह तीनों ध्रुव चैतन्य निर्विकल्प परमात्मास्वरूप के लक्ष्य से, उसके ध्येय से, उसके अनुभव से वह प्रगट होता है। आज (लेख) आया है, बहुत बड़ा, वह शुभभाव का...

शुभभाव से निर्जरा न हो तो, देखो! करणलब्धि सब शुभभाव है और शुभभाव... और जहाँ-तहाँ जयधवल का (उद्धरण) डालते हैं। शुभ और शुद्ध बिना निर्जरा नहीं, इसलिए शुभ से निर्जरा है, ऐसा लिखते हैं जैनगजट में। ऐसा नहीं है। वह तो व्यवहार से कथन किया तीन करण। बाकी तो शुद्ध ध्रुव में अन्तर्दृष्टि देने से ही सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। यह तो जो करण परिणाम हैं, उनका भी लक्ष्य छूटकर... उसे खबर कहाँ है कि यह करण परिणाम है? यह बात....

भगवान निर्विकल्प अभेद निष्क्रिय, परिणाम की पर्याय से रहित... परिणामरूपी पर्याय है, उससे रहित। ऐसे तत्त्व को जो पर्याय अवलम्बती है, उसके अन्दर पसरती है, ऐसी पर्याय में द्रव्य का आधार—ध्रुव का आधार है। और ध्रुव के आधार बिना सम्यग्दर्शन का अंश या सम्यग्ज्ञान का अंश या चारित्र प्रगट नहीं होता। समझ में आया? तो कहते हैं कि **यह निर्विकल्प तत्त्व के स्वरूप का कथन है।** भगवान! टीका है न इसमें? '**निर्विकल्पतत्त्वस्वरूपाख्यानमेतत्।**' निर्विकल्प कहो या अभेद कहो या शुद्धभाव ध्रुव कहो। आहाहा! महाध्रुव सागर चैतन्य ध्रुव नित्यानन्द नित्य ऐसा जो भगवान जीवास्तिकाय... ऐसा शब्द प्रयोग किया है न! जीवास्तिकाय। अकेला जीव, ऐसा नहीं, परन्तु अस्तिकाय। क्योंकि है, वह असंख्यप्रदेशी है। समझ में आया? ऐसा नित्य ध्रुव असंख्यप्रदेशी एकरूप वस्तु, उसे यहाँ निर्विकल्प तत्त्व कहा गया है।

ऐसे निर्विकल्प तत्त्व के अन्दर, कहते हैं कि **त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है...** कैसा है भगवान आत्मा? **त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है...** तीनों काल जिसमें उपाधि रागादि की है नहीं। समझ में आया? **त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है ऐसे शुद्ध जीवास्तिकाय को...** ऐसे जीव को, ऐसा शब्द प्रयोग किया है, मूल पाठ में। टीकाकार ने स्पष्ट किया कि ऐसा जीवास्तिकाय। ध्रुव अस्तिरूप है, वह असंख्यप्रदेशी है, ऐसा ध्रुव है, वह जीव। उस जीव को **वास्तव में विभावस्वभावस्थान नहीं है;...** पाठ में है '**णो खलु सहावठाणा**'। यह स्वभाव (अर्थात्) यहाँ विभावस्वभाव लेना है। समझ में आया? जितने विभावस्वभाव के स्थान अध्यवसाय के, पुण्य-पाप के विकल्प, दया, दान आदि के भाव, वे विभावस्वभावस्थान हैं, जीवास्तिकाय प्रभु ध्रुव में वे नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान निश्चय आत्मा... कल आया था, वास्तव में आत्मा वस्तु जो ध्रुव नित्यदल, चैतन्यदल ऐसा जो जीवास्तिकाय, उसमें विभाव के प्रकार शुभ-अशुभ विकल्पों के प्रकार, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी ध्रुवस्वभाव में नहीं है। समझ में आया ? **ऐसे शुद्ध जीवास्तिकाय को वास्तव में विभावस्वभावस्थान...** अर्थात् विकारी भाव, असंख्य प्रकार के शुभ और अशुभ ऐसे प्रकार। स्थान अर्थात् प्रकार, भेद। अन्दर वस्तु में नहीं है। समझ में आया ? ऐसा चैतन्यरत्नाकर समुद्र ध्रुव, उसमें ऐसे असंख्य प्रकार के विकारी शुभाशुभभाव (नहीं हैं)। उन्हें यहाँ स्वभाव कहा, विभावरूप स्वभाव, ऐसा। विभावरूप स्वभाव।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी पर्याय में है न ? परन्तु वे विभावरूप स्वभाव हैं। स्वभावरूप स्वभाव में वे नहीं। समझ में आया ? इसलिए जिसे धर्म प्रगट करना हो, उसे उन विभावस्वभाव पर लक्ष्य न देकर, त्रिकाली ध्रुव नित्यस्वरूप अन्तर्मुख ऐसा जो चैतन्य गोला नित्य ध्रुव, उसका लक्ष्य करके सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। कहो, सेठी !

मुमुक्षु : जीवास्तिकाय में तो प्रदेश....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रदेश लेना। अस्तिकाय है न ? अस्ति—है, काय—समूह। गुण का समूह हुआ न ! यहाँ वह काम नहीं है। अस्ति लेना है। यहाँ तो अस्ति और काय लेना है। यहाँ काय (अर्थात्) असंख्य प्रदेश का समूह, वह काय लेना। तो असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण हैं (उनका) एकरूप द्रव्य है। आहाहा ! समझ में आया ?

यह तो भगवान आत्मा परमात्म ध्रुव सत्त्व कैसा है ? तेरा आत्मा ध्रुव चिदानन्द प्रभु, जिसमें असंख्य प्रकार के शुभ-अशुभ विकल्पों का अभाव है। अर्थात् करे, अज्ञानभाव से हो, परन्तु इसके स्वरूप में है नहीं। आहा ! टालने का नहीं रहा, ऐसा कहते हैं मूल तो। स्वभाव में नहीं अर्थात् ? शुद्ध ध्रुव स्वभाव की अन्तर्दृष्टि करने से, अन्तर एकाग्र होने से वे उत्पन्न नहीं होते, (उन्हें) टालता है, ऐसा कहा जाता है। परन्तु उसमें है नहीं तो उत्पन्न कहाँ से हो ? समझ में आया ? जिसकी खान में ही वह भाव नहीं। स्वर्ण की खान में लोहा होगा ? उसमें से तो सोना निकलेगा। उसी प्रकार भगवान

आत्मा चिद्घन, सुख का सागर एकरूप प्रभु, उसमें ऐसे विकाररूप दुःखभाव... फिर हर्ष के स्थान कहेंगे, सुख और दुःख बाद में कहेंगे, पहले यह भाव नहीं, इसलिए इनके अन्तर्भेद करेंगे कि यह हर्ष और सुख, हर्ष और अहर्ष ऐसे जो भाव उसमें है नहीं, ऐसा। आहाहा! समझ में आया? जहाँ निधान चैतन्य है, वहाँ नजर डालनी है, उसके अन्दर ये भाव नहीं हैं।

(शुद्ध जीवास्तिकाय को)... इतनी बात करके अब इसे दुःख में डालते हैं। **प्रशस्त और अप्रशस्त समस्त मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से...** यह प्रशस्त शुभराग जिसे कहते हैं न? और अप्रशस्त अशुभराग और मोह का अभाव होने से। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का दल, वज्र अनन्त आनन्द का वज्र बिम्ब दल भगवान आत्मा है, उसे यहाँ निर्विकल्प तत्त्व अथवा सच्चा आत्मा कहा जाता है। आहाहा! ऐसे आत्मा में शुभ और अशुभ समस्त मोह-राग-द्वेष का अभाव है। लो, इसमें तो प्रशस्त मोह-अमोह, राग-द्वेष प्रशस्त-अप्रशस्त सब आया। ऐई! वैसे द्वेष को अप्रशस्त गिना नहीं ऐसे दूसरे में—पंचास्तिकाय में। पंचास्तिकाय में नहीं गिना, आत्मानुशासन में गिना है। समझ में आया?

एक साधु हो और कोई सिंह मारता हो, तो साधु की रक्षा करने का भाव है, उसमें सिंह को मारता है। मारने का भाव नहीं, उसमें से साधु को बचाने का भाव है। है तो मारने का भाव, है तो प्रशस्त द्वेष। वह पुण्यबन्ध का कारण प्रशस्त द्वेष है। उसे मारने का भाव नहीं परन्तु यह मुनि को ऐसा करता है, उसमें बचाने जाता है, उसे प्रशस्त द्वेष आता है। वह सिंह को मारे, ऐसा भाव... क्रिया तो जड़ की है... वह भी चिल्लाहट मचाते हैं। आहाहा! लो, यह पर को मारने की क्रिया जड़ की है, उसे आत्मा नहीं कर सकता। अर्थात् पर की हिंसा नहीं कर सकता। परन्तु किसने की? सुन न! आहाहा! पर को क्या करे? वह तो क्रिया उस क्षण में जो होनेवाली हो, वहाँ उसे प्रशस्त द्वेष आया कि इसे मारूँ। मारने के लिये हेतु नहीं है, उनको (-मुनि को) बचाने का हेतु है। यदि सिंह चला जाये तो मारने जाता है पीछे?

यहाँ मुनि ध्यान में बैठे हैं, आनन्द में। उसमें वह सिंह चला जाये तो (उसके)

पीछे मारने जाता है ? मात्र इसे यह है, इसलिए ऐसा भाव (आया है)। पुत्र को कोई मारे तो भाव आता है या नहीं ? वह तो अशुभभाव है। आहाहा! ऐई! पुत्र को कोई मारता हो और बचाने का भाव आवे, वह तो अशुभ है। यह तो मुनि हैं, अन्दर आनन्दकन्द में झूलते हैं। आनन्द की बहती नदी में रेलमछेल में अन्दर में होते हैं। वहाँ कोई सिंह आवे, उसे मारे तो सिंह भी मर जाये और सिंह इसे मारे तो एक समय में दोनों मर जाये। परन्तु उस सिंह के परिणाम पाप के हैं, इसके परिणाम पुण्य के हैं। समझ में आया ? इसलिए वहाँ उसे प्रशस्त द्वेष गिनने में आया है। पंचास्तिकाय में राग को प्रशस्त और द्वेष को अप्रशस्त कहा है।

यह यहाँ स्पष्टीकरण किया है कि प्रशस्त अर्थात् शुभ और अप्रशस्त अर्थात् अशुभ। समस्त मोह। प्रशस्त मोह मुनि आदि और धर्मादि की रक्षा के लिये होता हुआ, इसी प्रकार प्रशस्त राग वह भी मुनि आदि धर्म की रक्षा के लिये होता है। प्रशस्त द्वेष, वह भी मुनि आदि की इसमें (-रक्षा में) होता और अप्रशस्त—कुटुम्ब की रक्षा के लिये, पुत्रादि की रक्षा के लिये होता मोह और वह राग-द्वेष, वह सब अपशस्त है। कहो, समझ में आया ?

यह **प्रशस्त या अप्रशस्त समस्त मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से मान-अपमान के हेतुभूत कर्मोदय के स्थान नहीं हैं;...** कहो, समझ में आया ? **मान-अपमान के हेतुभूत कर्मोदय के स्थान नहीं हैं;...** इसे। मान-अपमान कैसा वहाँ ? अकेला ज्ञानस्वरूप भगवान, उसमें मान-अपमान के विकल्प—उससे तो पहले इनकार किया। निर्विकल्प वस्तु अभेद चिदानन्द है। उसमें दूसरे को समाधान करूँ तो मेरा मान रहे और नहीं तो मेरा अपमान करते हैं, ऐसे मान-अपमान के स्थान भगवान आत्मा में नहीं हैं। समझ में आया ?

कहते हैं, **(शुद्ध जीवास्तिकाय को)...** अब इसका स्पष्टीकरण करते हैं। **शुभपरिणति का अभाव होने से...** पहले मान-अपमान की व्याख्या की। पहली विभाव की करके, पश्चात् मान-अपमान की (व्याख्या) की। अब हर्ष की। भगवान आत्मा को **शुभपरिणति का अभाव होने से...** आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा ऐसा जो शुभभाव, हों! शुभपरिणति, ऐसा लिया है। वह आत्मा में नहीं है।

मुमुक्षु : प्रशस्त मोहनीय अर्थात् चारित्र मोहनीय... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आ गया। मोह (अर्थात्) सावधानी है न पर में जरा! देव-गुरु-शास्त्र (का प्रशस्त), सामने स्त्री-कुटुम्ब का अप्रशस्त। समझ में आया?

(शुद्ध जीवास्तिकाय को)... भगवान चिद्घन आत्मा, ऐसा परमात्मा स्वयं निज स्वरूप से अस्तिमान विराजमान है, उसके अन्दर **शुभपरिणति का अभाव होने से...** लो! वे कहते हैं कि पर की दया का भाव, वह जीव का स्वभाव है। यह शोर मचाते हैं न बहुत? ऐई! पण्डितजी! वे कहते हैं या नहीं? जीवदया, वह तो जीव का स्वभाव है।

मुमुक्षु : धर्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, यह और धर्म है, धर्म है; इसलिए स्वभाव है। अरे! भाई! यह जीवदया कौन सी? राग के अभावस्वभावस्वरूप अन्तर में राग की-विकल्प की उत्पत्ति नहीं होना, ऐसा जो निर्विकल्प तत्त्व भगवान है, उसके आश्रय से वीतरागी परिणति खड़ी हो, उसे दया और आत्मा की अहिंसा कहने में आती है, क्योंकि उसमें नहीं, वह कहाँ से आयेगी? शुभपरिणति वस्तु में नहीं। वस्तु तो शुद्ध वीतरागमूर्ति है। आहाहा! 'जिन सो ही है आत्मा...' वीतराग अकषायस्वरूप ऐसा आत्मस्वभाव, उसमें कहते हैं कि पाँच महाव्रत के परिणाम आदि, बारह व्रत के विकल्प आदि शुभ परिणति वस्तु में नहीं है। समझ में आया? यदि हो तो उसका अभाव करके वीतराग परिणति कहाँ से प्रगट हो? समझ में आया?

शुभपरिणति... परिणति अर्थात्? परिणति। परिणति अर्थात् उसकी अवस्था। शुभराग की अवस्था का अभाव होने से उसे **शुभकर्म नहीं है...** क्योंकि शुभपरिणति नहीं है, इसलिए शुभकर्म नहीं है, ऐसा कहते हैं। और **शुभकर्म का अभाव होने से संसारसुख नहीं है,...** उसे अनुकूल सामग्री मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा! संसारसुख ही नहीं उसमें। अनुकूल सामग्री नहीं। यह चक्रवर्ती का राज मिले, पैसा आदि, वह वस्तु में है नहीं और उसके कारण फिर कल्पना हो कि 'यह मुझे ठीक है'—ऐसी सुखबुद्धि भी वस्तु में नहीं है। समझ में आया? यह तो भगवान निजानन्द मूर्ति है। अपने निज आनन्द से भरा हुआ भरपूर... भरपूर...। ऐसी शुभ परिणति के विकल्परहित ऐसा

निर्विकल्प तत्त्व ध्रुव, उसे यहाँ शुद्धभाव कहा जाता है और शुद्धभाव, वह जीवास्तिकाय है। पुण्यपरिणाम, वह जीवास्तिकाय नहीं—ऐसा कहते हैं। महाव्रत के परिणाम, वे जीवास्तिकाय नहीं। आहाहा! समझ में आया? उसे संसारसुख ही नहीं।

अरे! संसारसुखरहित आत्मा! वह (सुख) तो इसकी कल्पना है, हों! इन विषय में, इज्जत में, कीर्ति में हर्षित हो जाता है न? ऐसा कहते हैं। हर्षित हो जाता है न? हर्ष के स्थान नहीं न? ऐसा कहना है न मूल तो? ऐसे हर्षित हो जाता है। आहाहा! कुछ इसे चतुर कहे, पैसावाला कहे, इज्जतवाला कहे, अरे! जिसे आज्ञाकारी कुटुम्ब है, सब प्रकार से बाह्य सामग्री से सुखी है। उसमें इसे हर्ष होता है न, हर्ष? कहते हैं कि वे हर्ष स्थान ही स्वरूप में नहीं न! ऐई! प्राणभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : .... खोटा है वह बतावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह है ही नहीं इसमें। हर्ष आवे ऐसे शेयर बाजार में जहाँ दो लाख पैदा हो। और जहाँ कुछ जाये थोड़ा एक दिन या दो दिन...

मुमुक्षु : दवा देनी पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : दवा देनी पड़े। शोक करे। यह सब सेठिया सब पैसे के बड़े पत्थर के स्वामी। कहते हैं कि उसमें हर्ष होता है, वह हर्ष स्वरूप में नहीं और तू कहाँ से लाया यह? ऐसा कहते हैं। आहाहा! ओहोहो! समझ में आया?

भक्ति करते-करते भी हर्ष हो जाये न, हर्ष? वह हर्षस्थान भी तुझमें नहीं है, भाई! वह तो विकल्प उठा है। समझ में आया? उससे तो शून्य है और आनन्द तथा ज्ञान से परिपूर्ण भरा हुआ है। ऐसे भगवान पर अन्तर्मुख दृष्टि कर न, ऐसा कहते हैं, यह कहते हैं। ऐसा जो भगवान आत्मा जिसमें संसार सुख और हर्ष के स्थान नहीं, वहाँ नजर कर न! यह हर्ष के स्थान में नजर करने से यह मेरे और मुझे ठीक पड़ते हैं, वहाँ तो मिथ्यात्वभाव खड़ा होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा विराजमान चैतन्य सच्चिदानन्द प्रभु में अनुकूलता के प्रसंग में हर्ष का उद्‌भवित होना, वह वस्तु में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? कहो, क्या है भीखाभाई! अच्छा लड़का हो, हीराभाई जैसा...

मुमुक्षु : मेरा कहाँ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हीराभाई जैसा लड़का... ऐसे भाई! भाई! बापूजी! बापूजी! कितना करे, लो। बापूजी को ठीक नहीं। आहाहा! कहते हैं, अरे! प्रभु! तेरी प्रभुता में, हर्ष उत्पन्न हो, वह प्रभुता में नहीं है। आहाहा! स्वरूपचन्दभाई! अच्छा लड़का हो कलेजे के कोर जैसा। नहीं कहते लोग? देखकर कलेजा स्थिर होता है, लो! क्यों सुमनभाई जैसे हों आठ-आठ हजार मासिक वेतन, लो! और आकर पैर दबावे। उसके वहाँ दूसरे दबाये। यहाँ लावे बापूजी थोड़ी देर... पैर जड़ के परन्तु इसे ऐसा लगे कि... आहाहा! समझ में आया?

शंकराचार्य थे। शंकराचार्य हुए न? अन्यमत में। दृष्टि मिथ्यात्व वेदान्त की। फिर एक बार वह बड़ा बादशाह बाजीराव पेशवा उनके पास गया। उसके गुरु थे, इसलिए पैर धोता है। बाजीराव पेशवा स्वयं पैर धोता है। बैठे थे न, पैर (धोता है)। इसलिए बाजीराव को लगा कि आहा! ऐसा मैं बड़ा बादशाह, शंकराचार्य के पैर धोऊँ, अभी इन्हें कितना सुख है! ये कितने सुखी कहलाये! तो शंकराचार्य कहते हैं, बाजीराव! तू पैर धोवे, इसलिए हमको ठीक पड़ता है, हर्ष है—ऐसा है? बापू! जब हमको शास्त्र की युक्तियों में क्या समाधान है, उसकी समझ न हो और शिष्य सब उसका हल करने बैठे हों और उस शास्त्र के हार्द का हल हृदय में आवे, उस समय जो हमको सुख होता है, वह तेरे इसमें धूल भी नहीं, सुन न! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाहर की बात। परन्तु यह तो वह स्थिति उसके बदले यह कल्पना अलग प्रकार की है, ऐसा कहना है। यद्यपि शास्त्र का हल होने से कल्पना में ठीक हो, वह कल्पना भी हर्ष राग है। परन्तु यह तो उसकी अपेक्षा से... उसकी दृष्टि की बात है न। यह तत्त्व की कहाँ बात है? ऐसा एक राजा बाजीराव पेशवा। खम्मा अन्नदाता। जिसे हजारों ऐसे करोड़पति (कहते हों), खम्मा अन्नदाता। वह पैर धोता है एक बाबा के। शंकराचार्य ऐसे बाबा त्यागी थे न, ब्रह्मचारी थे, बालब्रह्मचारी। पैर धोता है। आहाहा! उनकी पदवी कितनी ऊँची कि जिसके बाजीराव पैर धोवे! शोभालालजी!

वह तो सुखी कहलाये, हों! बाजीराव! यह सुख नहीं, भाई! यह तो उसकी अपेक्षा से...

शास्त्र की सूक्ष्मता का हल हो, शास्त्र की युक्ति में इतने न्याय गम्भीर गहरे भरे हों, उस जाति के वेदान्त के, उसका हल न सूझता हो और जब शिष्यों की टोली इकट्ठी होकर सब उसका मन्थन करते हों कि इसका कैसे अर्थ बैठना चाहिए? ऐसा अर्थ जहाँ यथार्थ बैठे आगे-पीछे के न्याय से विरुद्ध नहीं ऐसा, उस समय हमको जो सुखीपना दिखता है, वह तेरे सुख में धूल भी नहीं। काम नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि उस समय भी कल्पना होती है, वह भी आत्मा का सुख नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? आहाहा! विषय के सुख की तो क्या बात करना? परन्तु शास्त्र के अवलम्बन के प्रसंग में किसी समय हर्ष आ जाये, कहते हैं कि वह भी तेरी वस्तु में नहीं, भगवान! आहाहा! ऐसा चिदानन्द बादशाह स्वयं, अरे! कहाँ भूलकर भ्रमता है? और कहाँ अपनी जाति है, वहाँ यह सम्हाल में आता नहीं? ऐसा कहते हैं। अमरचन्दभाई! आहाहा! समझ में आया?

'भटकत द्वार द्वार लोकन के कुकर आशा धारी।' कुत्ते की भाँति टुकड़े के लिये जहाँ-तहाँ भटकता है, इसी प्रकार यह अज्ञानी जहाँ-तहाँ मुझे कोई बड़ा कहे, अच्छा कहे, अभिनन्दन दे। कहते हैं, भाई! ऐसा तेरा भाव वह वस्तु में नहीं। कहाँ लेने जाता है तू? कहाँ जाता है? आहाहा! यह संसारसुख आत्मा में नहीं। आहाहा! संसारसुख अर्थात् कि कल्पना का सुख या दु:ख। वह तो जहर है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसमें यह हर्ष के स्थानरूप सुख नहीं। नया खड़ा करता है पर्यायबुद्धि से, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अंशबुद्धि से नया खड़ा करता है, वह घर में नहीं है। आहाहा! मूल तो ऐसा कहते हैं।

संसारसुख का अभाव होने से हर्षस्थान नहीं हैं;... ऐसा कहना है। भिन्न-भिन्न हर्ष आता है न? बहुत प्रकार के—असंख्य प्रकार के हर्ष होते हैं। साधारण कोई शब्द सुनकर, किसी स्त्री की वाणी सुनकर, पुत्र का शरीर देखकर, किसी लक्ष्मी की आमदनी का भाव (हुआ कि) ऐसे आये, ऐसा हुआ, ऐसा सुनकर कोई अशुभ हर्ष आदि प्रकार होता है, वे सब नये हैं, बापू! तेरे स्वरूप में नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया? उससे

तो उदास तेरा भिन्न स्वरूप है। समझ में आया? जिस स्वरूप में यह नहीं, वहाँ दृष्टि दे, उस निधान को निरख तो समकित हो, ऐसा है। अभी तो सम्यग्दर्शन वहाँ से होता है। समझ में आया?

और (शुद्ध जीवास्तिकाय को) अशुभपरिणति का अभाव होने से... लो! हिंसा, झूठ, चोरी, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, ऐसी अशुभपर्याय—अशुभपरिणति भगवान आत्मा के निज स्वरूप में नहीं है। आहाहा! पर्यायबुद्धि से खड़ी करे, वह द्रव्यस्वभाव में नहीं, ऐसा कहते हैं। वस्तु में नहीं। ऐसा निष्क्रिय भगवान चिदानन्द परमपारिणामिकस्वभाव, जिसे यहाँ शुद्धभाव कहा, उसकी नजर करने से, उसकी दृष्टि करने से निहाल हो, ऐसी दशा प्रगट होती है। समझ में आया? कहो, मूलचन्दभाई! गजब बातें ऐसी।

अशुभपरिणति का अभाव होने से अशुभकर्म नहीं है,... अशुभभाव नहीं तो फिर कर्म नहीं, ऐसा कहते हैं। और कर्म नहीं तो कर्म का अभाव होने से उसे दुःख नहीं। जैसे संसारसुख नहीं, वैसे प्रतिकूलता (आने पर) अन्दर ऐसा हीन पड़ जाये, दुःख होता है। आहाहा! तेल बहाया है, कहे, अभी तो चैन नहीं भाई! यह कुछ घर में मर जाये या महत्ता जाये या छोटे का नाम रहता न हो, ऐसे में अन्दर चैन न आवे, लो! एक व्यक्ति कहता था कि (जिस) साधु ने दीक्षा दी तो उसका शिष्य नहीं ठहराया। शिष्य ठहराया दूसरे का।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! कलेजा जलता है, ऐसे धग... धग... धग... धग... होता है। अरे! क्या है परन्तु यह सब? समझ में आया? राणपुर की बात है। तुम आये थे न? जयचन्दभाई के... उनके... एक थे उनका नाम नहीं दिया। मैंने कहा, इनका दो अब बड़े का। रखो न सबको। जले अन्दर से। धग... धग... सुलगते हैं। यहाँ बाहर दीक्षा का महोत्सव होता है। अरे! मुफ्त की होली सुलगती है। मेरा शिष्य नहीं किया, लो! मेरा नाम शिष्य को नहीं दिया, कहो।

कहते हैं, भगवान! यह दुःखीरूपी दशा—यह खेदरूपी दशा तेरे स्वरूप में नहीं

है, हों! ऐसा भगवान चैतन्यबिम्ब, जिसकी वज्र की पाळा में पड़ा है अन्दर, उसे यह दुःख-बुख है नहीं। स्त्री विधवा हो तब नहीं कहते? कि दुःखी हुई, दुखियारी हुई, दुखियारी हुई। दुखियारी, यह स्त्री दुखिया है। लो! दुखिया है, यह कहाँ से लाया? ऐसा **दुःख का अभाव होने से अहर्षस्थान नहीं है।** हर्ष का अभाव ऐसा जो दुःख, ऐसा जो शोक उसमें है नहीं। आहाहा!

जिसकी नजर करने से जिसमें शुद्धता झरे और अशुद्धता उत्पन्न न हो, ऐसा भगवान चिदानन्द तू विराजमान है, भाई! समझ में आया? आहाहा! इसका कलश है, यह श्लोक (गाथा) का।

(शार्दूलविक्रीडित)

प्रीत्यप्रीतिविमुक्तशाश्वतपदे निःशेषतोऽन्तर्मुख-
निर्भेदोदितशर्मनिर्मितवियद्बिम्बाकृतावात्मनि।
चैतन्यामृत-पूर-पूर्ण-वपुषे प्रेक्षावतां गोचरे,
बुद्धिं किं न करोषि वाञ्छसि सुखं त्वं सन्सृतेर्दुःकृतेः ॥५५॥

दिवाकर है यह। **श्लोकार्थ :—जो प्रीति-अप्रीति रहित शाश्वतपद है;....** भगवान (आत्मा) तो प्रीति-अप्रीति रहित है। हर्ष-शोक को प्रीति-अप्रीति में डाल दिया। समझ में आया? मान-अपमान भी उसमें आ जाते हैं। अरे! मान किसका और अपमान किसका? भगवान (आत्मा) में अन्दर मान मिले और अन्दर अपमान मिले, ऐसा कहाँ है, भाई! समझ में आया? अकेले अमृतसागर के अन्दर, अमृत जहाँ छलाछल (भरा है) भगवान आत्मा में, अमृतस्वरूप भगवान पूरा पड़ा है, उसमें **प्रीति-अप्रीति रहित शाश्वतपद है;....** लो, यहाँ शाश्वत् लिया। जिसे यहाँ शुद्धभाव कहा, उसे ध्रुवभाव कहा, उसे नित्य कहा, उसे यहाँ शाश्वत् कहा। समझ में आया?

जो सर्वथा अन्तर्मुख और प्रगट प्रकाशमान ऐसे सुख का बना हुआ,... कैसा है वह भगवान आत्मा? सर्वथा अन्तर्मुख। अन्तर्मुख वस्तु है, अन्तर्मुख वस्तु है, वह बहिर्मुखता में आती नहीं। समझ में आया? कहते हैं, जो सर्वथा अन्तर्मुख है। भाई! कथंचित् रखो, नहीं तो अनेकान्त नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया? निःशेष का

शब्द है न यह? नि:शेष। नि:शेष अर्थात् सर्वथा। नि:शेष का अर्थ। आहाहा! नि:शेष शब्द का अर्थ सर्वथा किया है।

भगवान आत्मा, वह तेरे गीत यहाँ गाये जाते हैं, सुन तो सही! वह विवाह में गीत गाते हैं तो प्रसन्न-प्रसन्न होता है। विवाह करने जाये और वह रिश्तेदार गाली दे तो प्रसन्न होता है। ऐई! प्राणभाई! ऐसा हमारे काठियावाड़ में चलता है। तुम्हारे और हो वह ठीक, नहीं? वर की माँ तो मोचीडा को गयी थी और वहाँ से यह जूते मिले, ऐसी बातें करे। ऐसा गाते थे। अब गया होगा। परन्तु वह सुनकर प्रसन्न होता है। यह तो सबने देखा हुआ है न हमारे। एक विवाह में देखा। रायचन्दभाई का विवाह था न, गढडावाले नहीं? रायचन्द ताराचन्द। गांडाभाई के दामाद। बहुत वर्ष की बात है। उनके विवाह में यह बोलती थी महिलायें। कहा, क्या बोलती हो यह? समझ में आया? वह जूते अच्छे पहने हो न? जोड़ा समझे? जूते-जूतियाँ। जूते पहने वर। यह वर का जूता कहाँ से (आया)? तो कहे, इसकी माँ मोची के (यहाँ) गयी थी, वहाँ से जूते मिले हैं। ऐई! नवनीतभाई! ऐसे गाने गाते थे, हों! ५०-६० वर्ष पहले की बात है। अब तो ऐसा चले नहीं।

इसके अतिरिक्त एक बहुत कठोर गाना था। हम राणपुर उपाश्रय में थे न! सामने थे एक केवजीभाई वसाणी। उनका विवाह होता था। कोई हीरा के थे। हीराभाई है न। हीरालाल नहीं? हीरालाल। साथ-साथ में मकान सामने। ऐसी गालियाँ बोले लड़कियाँ। यह प्रसन्न हो। आहाहा! भाई! तुझे यह गालियाँ! चाहे जो गाली दे, परन्तु तेरी लड़की को लेकर जानेवाला हूँ, ऐसा। उसके हर्ष के यह... अरे! मूढ़ क्या है परन्तु तुझे यह?

यहाँ कहते हैं कि अरे! तेरे गीत गाये जाते हैं कि यह तू सच्चा कितना है? समझ में आया? आहाहा! शुद्ध परिणति से विवाह करना हो और प्रगट करना हो तो भगवान ऐसा है, ऐसी नजर करनी पड़ेगी। समझ में आया? भगवान आत्मा चिदानन्द, कहते हैं कि सर्वथा अन्तर्मुख है वह तो। वस्तु अन्तर्मुख है। आहाहा! जिसमें रागादि तो नहीं, परन्तु पर्याय जिसमें नहीं, ऐसा अन्तर्मुख ध्रुव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

पर्याय है न! धर्म की पर्याय, हों! वीतरागी पर्याय। कहते हैं, अन्तर्मुख में वह

नहीं। आहाहा! अन्तर्मुख स्वरूप ही अकेला ध्रुव सत् शाश्वत् ऐसा प्रगट प्रकाशमान है। वापस वस्तु प्रगट है। पर्याय की अपेक्षा से उसे अव्यक्त कहा। पर्याय—अवस्था व्यक्त है प्रगट। परन्तु यह वस्तुरूप से प्रगट ही है। ढँका हुआ है यह कहीं? आवरण में है? वस्तु है। आहाहा! ज्ञान की ज्योति जलहल ज्योति अरूपी भगवान प्रगट प्रकाशमान है। कहो, रमणीकभाई! दुनिया में तो ऐसी बात सुनना मुश्किल पड़े। इतना बड़ा क्या? यह रंक है न। अरे! रंक, वह पर्याय में माना है। है नहीं। तू तो तीन लोक का नाथ, तीन काल और तीन लोक तेरी पर्याय में समाहित हो जायें, ऐसा बड़ा तू है। आहाहा!

गुण और द्रव्य की तो क्या बात करना, परन्तु एक समय की पर्याय जिसे यहाँ बहिर्मुख कहते हैं और अन्तर्मुख वस्तु शाश्वत् है। आहाहा! समझ में आया? केवलज्ञान की पर्याय भी व्यवहार है, उसमें लोकालोक ज्ञात होता है। अन्तर्मुख तत्त्व में वह भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा प्रगट प्रकाशमान अन्तर दीपक चैतन्य प्रभु विराजता है न, प्रभु! उसमें नजर करनेयोग्य है, वहाँ दृष्टि देनेयोग्य है, वहाँ स्थिर होनेयोग्य है। आहाहा! अन्यत्र नजर करनेयोग्य नहीं। अन्यत्र देखना नहीं, अन्यत्र जाना नहीं, अन्यत्र रहनेयोग्य नहीं। आहाहा! समझ में आया?

प्रकाशमान ऐसे सुख का बना हुआ,... वापस प्रगट प्रकाशमान ऐसे सुख का बना हुआ। समझ में आया? आहाहा! **'विमुक्तशाश्वतपदे निःशेषतोऽन्तर्मुख निर्भेदोदितशर्म...'** महा आनन्द का सागर प्रगट वस्तु है, अस्ति महासत्ता प्रभु है, उस आत्मा को यहाँ ध्रुव और शुद्धभाव कहा जाता है। ऐसे भगवान पर नजर क्यों नहीं करता? जहाँ महासागर भरा है, वहाँ नजर क्यों नहीं करता? और जिसमें कुछ नहीं, उसमें नजर करके पड़ा है पर्यायबुद्धि से, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

सुख का बना हुआ,... बना होगा कभी? यह आनन्द का रूप ही इसका है। सुखसागर आहाहा! लबालब-ठसाठस जिसमें सुख भरा है। अनन्त-अनन्त आनन्द निकाले तो भी आनन्द कम हो, ऐसा नहीं। आहाहा! कोठी में तो दाने डाले हों, ५० मण-१०० मण। निकाले तो कम हो जाये। प्रतिदिन इतने खर्च में आवे पकाने में, उतने कम हो जायें बाहर में। यहाँ तो कहते हैं, कम नहीं होता। आहाहा! इतने सब जीव हैं

कि सिद्ध चाहे जितने हों तो भी जीव कम नहीं होते; इसी प्रकार आत्मा में चाहे जितना आनन्द निकाल (प्रगट कर) तो आनन्द भी कम नहीं हो। आहाहा! ऐसा सुखसागर भगवान ध्रुव परमात्मा स्वयं है, उसकी दृष्टि करने से आत्मा अन्तरात्मा होता है, और उसकी दृष्टि भूलकर, विकल्प और एक अंश को माने तो वह तो बहिरात्मा होता है। समझ में आया? यह अन्तर की गति और दृष्टि के विषय की बात है।

जो नभमण्डल समान आकृतिवाला है;... कैसा है भगवान? आकाशमण्डल जैसे अकृत्रिम है। आकाश किसी से किया हुआ है? नभमण्डल पूरा, आकाश, हों! सर्वव्यापक आकाश है न? यह आकाश जो कहलाता है, वह आकाश... देखो, यह खुल्ला आकाश है, वह आकाश नहीं। यह तो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श की आकृति है। आज आकाश खुल्ला दिखता है, आज आकाश काला भँवरे के रंग जैसा दिखता है। परन्तु वह तो रंग है, वह आकाश नहीं। आकाश मण्डल अर्थात् पूरा—सर्वव्यापक चौदह ब्रह्माण्ड और अलोक। उसे कौन करे? भगवान नभमण्डल समान किसी से किया हुआ नहीं। जैसे आकाश को किसी ने बनाया नहीं। कौन बनावे? आकाश पदार्थ सर्वव्यापक है। लोक और अलोक में व्यापक है। उसे कौन बनावे? है, बस! स्वयंसिद्ध आकाश है। ऐसे **नभमण्डल समान...** अकृत है—किसी से किया हुआ नहीं, उसी प्रकार आत्मा को किसी ने बनाया नहीं। आत्मा अन्तर्मुख प्रगट अतीन्द्रिय सुख का पिण्ड है। वह सब स्पष्टीकरण किया। योगफल किया। आत्मा अन्तर्मुख प्रगट अतीन्द्रिय सुख का पिण्ड... सुख से बना हुआ पिण्ड है। आहाहा! समझ में आया? स्वयंसिद्ध शाश्वत् है। यह पहले में आ गया। स्वयंसिद्ध और शाश्वत् वस्तु है, है... है... है। जिसकी आदि नहीं, जिसका अभाव वर्तमान में नहीं, जिसका भविष्य में नाश नहीं—ऐसा पदार्थ—ऐसा तत्त्व अनादि-अनन्त तत्त्व जो भगवान, उसे (लक्ष्य में ले)।

उसमें **चैतन्यामृत के पूर से भरा हुआ जिसका स्वरूप है;...** श्लोक तो देखो! भरा घर है, नहीं कहते लोग? इसका भरा घर है, ऐसा कहते हैं। मर जाये, तब ऐसा कहते हैं न कि अरे! भरा घर छोड़कर कैसे निकले? महिलायें रोये। भरे घर में से निकले। किसे निकलना था इसे? है वहाँ है वह तो। भरे घर में भी नहीं था और शरीर

में भी नहीं था और राग में भी वह नहीं था। आहाहा! भगवान आत्मा... जिसकी नजर करने से निहाल हो, ऐसा आत्मा है। कहते हैं कि **जिसका चैतन्यामृत के पूर से भरा हुआ...** पानी के प्रवाह का पूर चला आता है। देखो न, अभी तो पानी कितना आता है। देखो न! इन सबको अटकाया न आज। नहीं आये मुम्बईवाले। उस ओर बहुत बरसात है। नर्मदा, तापी। क्या कहलाता है अंकलेश्वर में वहाँ कहीं है न? रोके वहाँ।

मुमुक्षु : वड़ोदरा विश्वामित्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : विश्वामित्र। सर्वत्र पानी की बरसात बहुत। यहाँ तीन में सात इंच आयी। बिना भविष्यवाणी के। अब फिर आज भविष्यवाणी डाली है कि ऐसा होगा। यह थी तब भविष्यवाणी कहाँ गई तेरी? यहाँ तो तीन दिन में सात इंच। तब तो भविष्यवाणी नहीं थी। अब बड़ा तूफान होनेवाला है, बहुत बरसात होनेवाली है।

यहाँ कहते हैं, आहाहा! महाप्रवाह से भरपूर भगवान है। **चैतन्यामृत के पूर से भरा हुआ जिसका स्वरूप है;...** ओहोहो! अमृतचन्द्राचार्य की शैली से की है। चैतन्यरूपी अमृत जिसका पूर, उससे भरा हुआ स्वरूप है। चैतन्य का पूर अन्दर भरा है पूरा। समझ में आया? पानी का बड़ा प्रवाह आवे। यह देखो न नर्मदा का कितना पूर आता है! दल चला आता है! तापी में कितने? ९९ फीट ऊँचा। १०२-३ फीट ऊँचा। वह तो सब अमुक माप में ऊँचा। यह तो स्वभाव का पूर जिसका माप ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? चैतन्य अमृत का पूर, चैतन्य अमृत का सागर। पूर है, वह तो पूर बहता है। धोध... धोध... धोध... पड़ा है अन्दर। आहाहा! शब्द कम पड़ते हैं, कहते हैं यहाँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा जाता है न थोड़ा-थोड़ा।

भगवान आत्मा जिसमें हर्ष, शोक आदि उदयभाव के स्थान नहीं। यह तो नास्ति से लिया। अब अस्ति से लेते हैं। तब है कैसा? यह नहीं... यह नहीं... नेति... नेति... करते हैं। वेदान्त में आवे नेति। परन्तु नेति है कैसा? उसकी व्याख्या नहीं होती। समझ में आया? उसकी व्याख्या यहाँ होती है।

कहते हैं, श्रीमद् में आता है न? नहीं? बाकी अनुभव रहे, ऐसी आती है न कुछ

भाषा, नहीं ? 'अबाध्य अनुभव जो रहे, वह है जीवस्वरूप।' ऐसा आता है। यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं। है कैसा ? कि उन सबको कम करते हुए रहे अनुभवस्वरूप, वह आत्मा। 'अबाध्य अनुभव जो रहे, वह है जीवस्वरूप।' इसके पहले पद क्या है ?

मुमुक्षु : जो दृष्टा है दृष्टि का....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, 'जो दृष्टा है दृष्टि का, जो देखत है रूप। जो दृष्टा है दृष्टि का...' दृष्टि का भी दृष्टा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! 'जो दृष्टा है दृष्टि का अरु जो देखत है रूप, अबाध्य...' कम करते... करते... करते... करते... सब निकल जाये, तब रहे कैसा ? अबाध्य, जिसे अब कम (रद्द) नहीं किया जा सकता। है उसे कम किस प्रकार करना ? राग नहीं, पुण्य नहीं, शरीर नहीं, कर्म नहीं, एक समय की पर्याय नहीं उसमें। आहाहा! समझ में आया ? 'अबाध्य अनुभव जो रहे...' उसे निकालने से जो वस्तु का अनुभव रहे। 'वह है जीवस्वरूप...' भगवान आत्मा का ऐसा स्वरूप।

कहते हैं, **चैतन्यामृत के पूर से भरा हुआ जिसका स्वरूप है;...** आहाहा! **जो विचारवन्त चतुर पुरुषों को गोचर है—**आहाहा! वह विचिक्षण ऐसे ज्ञानी, ऐसे समकिती को गम्य है, कहते हैं। अज्ञानी को वह गम्य नहीं हो सकता। आहाहा! देखो, आया यहाँ। उसमें कहा था न ? चार भावों को अगोचर है। वह तो चार भाव के आश्रय से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। यहाँ कहा, देखो! **विचारवन्त...** अर्थात् ज्ञानी, सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी, विचिक्षण को, ऐसे चतुर पुरुषों को... उन्हें चतुर पुरुष कहा है कि जो आत्मा को परखकर पकड़ते हैं, उन्हें गोचर अर्थात् गम्य है। इस ज्ञान की दशा में, निर्मलदशा में उसकी गम्यता है। राग से, पुण्य से, व्यवहार से उसकी गम्यता, उसकी प्राप्ति नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? आज तुमको क्यों देरी हुई, सेठ को ? तुम्हारे सेठ मुम्बई से एक दिन में आये। कहो, समझ में आया ? यह सबके साथ हो। कौन जाने... वह तो एक दिन में आ जाये। यह संसार ऐसा है...। भगवान ऐसा नहीं। संसार विचित्र जाल... आहाहा!

प्रभु! कहते हैं कि **विचारवन्त चतुर पुरुषों को...** जिसने स्वभाव सन्मुख होकर विचार किया है, ऐसे चतुर पुरुषों को गम्य है। आहाहा! अरे! **ऐसे आत्मा में तू रुचि क्यों नहीं करता...** देखो! यह लिया। भगवान! ऐसा आत्मा तू स्वयं है न! तुझे ऐसे

आत्मा की रुचि क्यों नहीं होती? देखो! यह आश्चर्य किया है। अरे! **ऐसे आत्मा में तू रुचि क्यों नहीं करता...** ऐसा नहीं कि इसे कर्म अवरोधक है और काल बाधक है, इसलिए रुचि नहीं करता। तू रुचि नहीं करता तो नहीं होती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तू स्वयं महाप्रभु ध्रुव है न! आहाहा! ऐसे भगवान की रुचि... अरे! ऐसे आत्मा में तू रुचि क्यों नहीं करता? अरे! क्यों तुझे यह माल पोषाता नहीं? ऐसा माल लेना तुझे क्यों पोषाता नहीं? ऐसा कहते हैं। ऐई! प्राणभाई! यहाँ लाये, देखा! अरे! ऐसा प्रभु है न, भाई! तुझे ख्याल में नहीं आता? क्योंकि तू रुचि करता नहीं, ऐसा कहते हैं।

और दुष्कृतरूप संसार के सुख की वांछा क्यों करता है। आहाहा! अरे! खोटे सुख की कल्पना में क्यों पड़ा है बाहर की? भूंडा सुख। भूंडा समझे न? खोटा। भूंडा कहते हैं हमारी काठियावाड़ी भाषा में। आहाहा! ऐसा प्रभु विराजता है और तू उसकी रुचि, उसकी दृष्टि, उसके सामने क्यों नहीं देखता? और यह दुष्कृत संसार कल्पना के सुख का जाल बाँधा है। अरे! ऐसे सुख को क्यों चाहता है? आहाहा! मुझे स्वर्ग मिले, मुझे पैसा मिले, मेरी कोई महिमा करे, मुझे कोई बड़ा कहे। अरे! यह संसार के सुख... ? भाई! तुझे यह वाँछा क्यों होती है? समझ में आया? घर में भरे बर्तन छोड़कर जूठन चाटता है? ऐसा कहते हैं। कहते हैं, नहीं? घर में अच्छी, सज्जन स्त्री हो, उसे छोड़कर व्यभिचारी कहीं गोता खाता हो तो लोग कहे, भाई! घर में भरा बर्तन पड़ा है, उसे छोड़कर कहाँ जाता है? उसी प्रकार यह भरा भगवान है न अन्दर तेरे पास, कहते हैं। कहा था न ऊपर?

चैतन्यामृत के पूर से भरा हुआ जिसका स्वरूप है;... समझ में आया? अरे! उसे छोड़कर यह दुष्कृत संसार... पुण्य-पाप के भाव और उसके फल, उसके सुख को क्यों चाहता है? तुझे क्या हुआ है? भाई! आहाहा! ऐसा पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि आश्चर्य करके कहते हैं। अरे! तू ऐसा भगवान है न, भाई! तुझे क्यों रुचि नहीं होती? और ऐसे भगवान के अतिरिक्त ऐसे सुख की कल्पना क्यों करता है? ऐसा कहकर आश्चर्य किया है। इसलिए आत्मा ऐसा है, उसे समझकर रुचि और दृष्टि करना, इसका नाम धर्म और सम्यग्दर्शन है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल १, शुक्रवार, दिनांक - १२-०९-१९६९
गाथा-४०, श्लोक-५५ प्रवचन-४

यह नियमसार शास्त्र चलता है, इसका शुद्धभाव अधिकार। शुद्धभाव अर्थात् क्या? कि आत्मा का जो त्रिकाली... सेठी कहते हैं, कारणपरमात्मा और परमपारिणामिक क्या है? इसका स्पष्टीकरण तो चलता है। शुद्धभाव अर्थात् आत्मा का एक समय में त्रिकाली ध्रुव नित्य स्वभाव, जिसमें कर्म, शरीर नहीं; जिसमें पुण्य-पाप के विकल्प भी नहीं और जिसमें वर्तमान अवस्था—पर्याय जो है, वह पर्याय भी जिसमें नहीं, ऐसे त्रिकाली नित्यानन्द ध्रुवस्वभाव को यहाँ कारणपरमात्मारूप से (कहते हैं)। क्योंकि कार्य जो होता है—सिद्धदशा का कार्य, वह कारण त्रिकाली ज्ञानानन्दस्वभाव में से कार्य होता है। समझ में आया? त्रिकाली चिदानन्द ध्रुवस्वरूप, जिसे यहाँ शुद्धभाव कहा, उसे ही कारणपरमात्मा कहते हैं और उसे ही परमपारिणामिकस्वभावभाव कहते हैं। समझ में आया? जिसे सामान्य स्वभाव कहो। एकरूप रहनेवाला कायम का तत्त्व, उसे यहाँ शुद्धभाव कहते हैं। शरीर, वाणी, मन तो पर है, वे कहीं आत्मा में नहीं और दया, दान, व्रत, भक्ति या काम, क्रोध के जो विकल्प उठते हैं, वह तो उपाधि, मैल है। यह कहेंगे अभी। उपाधि, मैल है, वह कहीं आत्मा में नहीं है।

जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो—धर्म की पहली दशा प्रगट करनी हो—उसे ऐसा आत्मा जो त्रिकाली ध्रुव; जिसमें मलिन परिणाम तो नहीं, परन्तु जिसकी वर्तमान अवस्था में जो कुछ निर्मल अवस्था अस्तित्व गुणादि की होती है, वह निर्मल अवस्था भी जिस त्रिकाली में नहीं। समझ में आया? उसे कारणपरमात्मा कहो, उस ध्रुवस्वभाव को कारणजीव कहो, उस ध्रुव परमस्वभावभाव को पारिणामिक परमभाव कहो, उसे पर से भिन्न अत्यन्त अबद्धस्पृष्ट ऐसा भाव कहो, उसे एकरूप ज्ञायकभाव त्रिकाली, ऐसा कहो, उसे कोई पर्याय की अपेक्षा नहीं, ऐसा निरपेक्ष शुद्धभाव कहो—यह सब एकार्थ है। सेठ! समझ में आया?

मुमुक्षु : निर्मल परिणाम.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्मल परिणाम वस्तु में नहीं। वस्तु तो पर्यायरहित है। मोक्ष की पर्याय भी जिसमें नहीं और मोक्षमार्ग की पर्याय जो है मोक्षमार्ग की... यह मोक्षमार्ग का अधिकार है, यह नियमसार। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो वीतरागी मोक्षमार्ग की पर्याय—अवस्था, वह भी ध्रुव में नहीं।

मुमुक्षु : आपने फरमाया, कारण में से कार्य होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भेद की दृष्टि से ऐसा कहा जाता है। भेद की दृष्टि से तो ऐसा ही है। समझ में आया? परन्तु वास्तविक तो ध्रुव, वह ध्रुव है और पर्याय प्रगट होती है, वह स्वतन्त्र पर्याय प्रगट होती है। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी है कि भेद से जब उसे जानना हो, तब वह पर्याय आती है अन्दर से। और जो पर्याय हुई, वह वापस जाती है अन्दर। वस्तु ऐसी है। देवीलालजी! परन्तु उसकी एकरूपता—सदृश्यता के ध्रुव को यदि लक्ष्य में ले तो उसमें एक समय की पर्याय का आना-जाना, ऐसा उसमें है नहीं। यह तो वह अंश है, इसलिए यह तो भेददृष्टि हो गयी। समझ में आया? सूक्ष्म तत्त्व है।

सम्यग्दर्शन का विषय, ध्येय कि जिसमें से आत्मकल्याण की दशा प्रगट हो, ऐसा जो विषय द्रव्य। द्रव्यार्थिकनय का द्रव्य कहो तो वह। जो नय एक अंश को—त्रिकाली ध्रुव को स्वीकार करे। समझ में आया? जिसने नजर—श्रद्धा को अन्दर में पसरने से, फैलाने से पूरी वस्तु जहाँ पर्याय में कब्जे में आ जाती है। समझ में आया? ऐसा जो त्रिकाली कारणप्रभु, जिसमें कारणरूप शक्ति पूर्ण पड़ी है ध्रुवरूप से, उसे कारणप्रभु कहा जाता है। एक समय की पर्याय बिना के तत्त्व को। केवलज्ञान की जो एक समय की पर्याय है, वह भी वस्तु में नहीं—ध्रुव में नहीं। सेठ! जरा सूक्ष्म है।

मुमुक्षु : बहुत सूक्ष्म।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत सूक्ष्म। मैं सूक्ष्म कहूँ, इसका अर्थ कि ध्यान रखने जैसा है, ऐसा। आहाहा! समझ में आया?

जिसमें एकरूप सत्‌रूप सदृश्यरूप अकेला आनन्द और शान्ति एकरूप पड़ी है, ऐसे आत्मतत्त्व को यहाँ निश्चय आत्मा कहो। निश्चय आत्मा (अर्थात्) वास्तविक आत्मा। पर्यायवाला आत्मा, वह व्यवहार आत्मा है। समझ में आया? एक समय की केवलज्ञानादि पर्याय, वह व्यवहार आत्मा है। शोभालालजी! यह सूक्ष्म है।

मुमुक्षु : सूक्ष्म समझना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझना है? हाँ, ठीक। आहाहा! सेठ को अभी बहुत वह किया हो न थोड़ा-थोड़ा समझने में जरा (देरी लगे)। आहाहा!

कहते हैं, यह 'शुद्धभाव' शब्द है न ऊपर? ऊपर है न ऊपर? शुद्धभाव। नियमसार। इस ओर नियमसार तथा इस ओर शुद्धभाव अधिकार है। समझ में आया? इस ओर ८० है। इस ओर ४० है गाथा। तुम्हारे ८०-४० चलना है न कल? ऐई! चिमनभाई! ऐई! वजुभाई! देखो यहाँ। पृष्ठ ८० है और गाथा ४० है। समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान आत्मा आठ कर्मरहित है। यहाँ यह गाथा आयी है सहज। देखो! (पृष्ठ) ८० है न? और ४० गाथा है। भगवान आत्मा... आठ कर्म की प्रकृति, स्थिति, रस और प्रदेश। कर्म जो जड़ है, उस जड़ के आठ भेद हैं। समझ में आया? और जिसके अन्दर... यहाँ तो कहेंगे, प्रकृति में स्व आकार कहेंगे। भिन्न चीज़ कहते हैं। प्रकृति, वह उसका परमाणु—कर्म का स्वभाव है, उसका वह स्व-आकार है, स्वभाव है उसका, ऐसा। प्रकृति अर्थात् भाव; भाव अर्थात् स्व-आकार। आहाहा! समझ में आया? और यह कर्म की प्रकृति में जो स्थिति पड़ती है ७० और ४० कोड़ाकोड़ी इत्यादि-इत्यादि, वह सब जड़ में है। वह जड़ की स्थिति, जड़ के प्रदेश संख्या से अनन्त, जड़ में पड़ा हुआ रस-अनुभाग और उसका प्रकृति स्वभाव-आकार। चारों जड़ के हैं, वे आत्मा में नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यह तो लोग कहे, कर्म हमको हैरान करते हैं। जैन में तो कर्म नुकसान करे। जगत को ईश्वर भटकावे, तब इसको कर्म भटकावे। ऐई! परन्तु कर्म वस्तु में ही नहीं, फिर भटकावे कहाँ से तुझे? ऐसा कहते हैं। यह तो कर्म के चतुष्टय जो हैं, यह द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव... परमाणु, उनकी स्थिति, उसका भाव। समझ में आया? उसका क्षेत्र

जो है इतना—ये चारों उसमें है। कर्म के कर्म में है, आत्मा में नहीं। यहाँ तो एक समय की पर्याय बिना का पहले सिद्ध किया और अब सब प्रकार से भिन्न-भिन्न प्रकार से सिद्ध करते हैं।

चैतन्य महाप्रभु... एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में महा चैतन्यप्रभु पूर्ण स्वरूप है। पर्याय है केवलज्ञान की, ऐसी-ऐसी तो अनन्त-अनन्त पर्याय का समूह एक ज्ञानगुण है। समझ में आया? सदृश्यरूप से गुण। आनन्द जो प्रगट होता है पर्याय में, एक समय का आनन्द... केवली का अनन्त आनन्द, वह भी त्रिकाली आनन्द की अपेक्षा से तो अनन्तवें भाग का आनन्द है। समझ में आया? आत्मबल जो है अन्दर वीर्य, जो पूर्ण वीर्य—बल प्रगट होता है, पर्याय में—अवस्था में, वह तो अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ का पिण्ड है, उसके अनन्तवें अनन्तवें भाग का वीर्य प्रगट होता है। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? आहाहा! और साधक का जो पुरुषार्थ है, वह तो बहुत अनन्तवें-अनन्तवें भाग में है। भगवान तो अकेला पुरुषार्थ का पिण्ड है। समझ में आया? अकेले वीर्य की कातली, ध्रुव आत्मबल। समझ में आया? ऐसा जो ज्ञान, ऐसा दर्शन, आनन्द, वीर्य आदि चतुष्टय प्रगटता है न, और उसके कारणरूप जो मोक्ष का मार्ग है, वह तो ध्रुव के स्वभाव में कहीं अनन्तवें-अनन्तवें भाग है। अमरचन्दभाई!

यह तो भगवान के घर की बातें हैं, भाई! ऐसा जो भगवान आत्मा, जिसे अनन्त वीर्य एक समय में प्रगट हुआ, उससे भी अपरिमित अनन्त वीर्य का पिण्ड प्रभु ध्रुवस्वरूप नित्य स्वभाव, कायमी स्वभाव, असली स्वभाव, कारणस्वभाव, कारणजीव, परमपारिणामिकस्वभाव, शुद्धभाव, नित्यभाव, सदृश्यभाव, सामान्यभाव, एकरूप भाव है। सेठी! यह सब विशेषण चलते हैं यहाँ। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जो भगवान शुद्धभाव स्वभाव का जो पिण्ड है, एकरूप सदृश्य रहता है, ऐसा शुद्धभाव, उसमें उसकी वर्तमान होती पर्याय भी जिसमें नहीं। समझ में आया? यह पहले आ गया है, पहली गाथा में। संवर, निर्जरा, मोक्ष और जीव की एक समय की पर्याय, यह ऐसा जो ध्रुव आत्मा, उसकी एक समय की दशा, वह व्यवहारजीव है। संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय एक समय की, वह भी वस्तु के मूल तत्त्व में—आत्मद्रव्य में नहीं। तो फिर

आस्रव और बन्ध... पुण्य-पाप के शुभ विकल्प वह आस्रव, शुभ और अशुभ, वह आस्रव और अटकती दशा, ऐसा भावबन्ध, वह वस्तु में नहीं, वह उससे दूर है। अरे! समझ में आया?

भगवान आत्मा की केवलज्ञानादि की पर्याय से भी दूर वर्तता है आत्मा। पण्डितजी! समझ में आया या नहीं? यह तो सादी भाषा है। पहले से 'नहीं समझ में आता' ऐसा करके... 'नहीं समझ में आता' ऐसा करके हो जाता है। यह तो सादी शास्त्रभाषा है। समझ में आया? वस्तु जो वस्तु ध्रुव नित्य द्रव्यस्वभाव, कायमी तत्त्व का स्वभाव, भले ऊँचे नीचे—क्षेत्र में कहीं हो, उसे ऊँचा-नीचा क्षेत्र लागू नहीं पड़ता। आहाहा! ऐसा एक-एक भगवान आत्मा जिसे एक समय का काल लागू नहीं पड़ता, एक समय की अवस्था का। त्रिकाल कहना, यह भी एक अपेक्षित बात है। वस्तु है, बस ऐसी की ऐसी। समझ में आया? ऐसी वस्तु पर दृष्टि करना, उसे भगवान सम्यग्दर्शन कहते हैं। कहो, मूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : करे तो बने। नहीं करता, भान नहीं होता, ऐसे का ऐसा करता नहीं। वह भटकता है, उन बीड़ी और तम्बाकू में, देखो न! समझ में आया? यह तो दृष्टान्त। सब ऐसा ही करते हैं न! यह डॉक्टर-बॉक्टर। वकील भी करे। लो! आहाहा!

अरे! भगवान! तेरा तल इतना बड़ा है, ऐसा कहते हैं। तल समझते हो? पाताल कुँए का पेटा कहा जाता है न पेटा। पाताल का पेटा, पाताल का पेटा। पाताली कुँआ होता है न? पानी कम होता ही नहीं, कम होता ही नहीं। ऐसा भगवान पाताल कुँआ है। आहाहा! '**श्रुतपरिचित अनुभूता**' दूसरी बात तूने सुनी है, कहते हैं। परन्तु ऐसा स्वभाव है, यह बात तूने रुचिपूर्वक कभी सुनी नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? बाकी यह सब तुम्हारे पैसे, शरीर और धूलधाणी और स्त्री, पुत्र वे तो कहीं उनमें रहे। वे उनके होकर रहे हैं, तेरे होकर रहे नहीं। बराबर होगा? उनके होकर रहे हैं। यहाँ तो कहते हैं कि एक समय की पर्याय भी उसकी होकर रही है, द्रव्य की होकर रही नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो परमेश्वर का पेट (अभिप्राय) खोल जाता है। समझ में आया?

कहते हैं कि ऐसा शुद्धभाव, उसका यह अधिकार चलता है। यह ४०वीं गाथा है, देखो!

णो ठिदिबंधट्ठाणा पयडिट्ठाणा पदेसठाणा वा।
णो अणुभागट्ठाणा जीवस्स ण उदयठाणा वा॥४०॥

नहिं प्रकृति स्थान-प्रदेश स्थान न और स्थिति-बन्धस्थान नहिं।
नहिं जीव के अनुभागस्थान तथा उदय के स्थान नहिं॥४०॥

टीका : यहाँ (इस गाथा में) प्रकृतिबन्ध,... कर्म के स्वभाव का आकार ऐसा जो बन्ध। **स्थितिबन्ध,...** कर्म की अवधि का काल का जो बन्ध। कर्म में, हों! '**अनुभागबन्ध...** रसशक्ति का बन्ध और प्रदेश की संख्या का बन्ध पुद्गलकर्म में। यह कर्म... कर्म की चिल्लाहट करते हैं न लोग? अरे! कर्म ने हैरान किया, कर्म ने भटकाया, चार गति में कर्म ले जाता है—ऐसा है नहीं। तुझमें नहीं, तुझे क्या ले जाये? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह **उदय के स्थानों का समूह...** देखो! इन सबका समूह लिया है न? स्थान कहा है न, अर्थात् समूह। **जीव को नहीं...** तब किसे होता है यह? कर्म किसे होते हैं? जीव को नहीं होते, तब लकड़ी को होते हैं? आहाहा! भाई! यह कर्म, कर्म होकर रहे हैं, यह जीव की कोई पर्याय होकर रहे नहीं। जीव का द्रव्य जो है वस्तु और उसकी शक्तियाँ—गुण है, उसरूप तो कर्म होकर रहे नहीं, परन्तु तेरी पर्याय होकर भी वे रहे नहीं। आहाहा! समझ में आया? तेरी पर्याय होकर रहा हुआ जो भाव हो, उससे भी ध्रुवस्वभाव शुद्ध तो भिन्न दूर वर्तता है। तो फिर कर्म से तो अत्यन्त दूर वर्तता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, देखो! **सदा निरुपराग जिसका स्वरूप है...** सेठी! अब तुम्हारा आया, देखो! परमपारिणामिकभाव। कारण आत्मा कहो, परमपारिणामिकभाव कहो, उसे शुद्धभाव कहो, उसे पर्याय की क्रिया बिना का ध्रुवस्वभाव कहो—यह सब एक ही है। ऐसा जो भगवान आत्मा, वह सदा तीनों काल। उसमें त्रिकाल शब्द लिया था—त्रिकाल निरुपाधि। तो इसमें सदा (शब्द) लिया। भगवान अन्दर विराजमान प्रभु ध्रुव, जिसमें नजर डालने से कल्याण हो, जिसके ऊपर नजर पड़ने से मोक्षमार्ग की दशा प्रगट

हो, नजर डालने से प्रगट हो। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जो भगवान महाप्रभु, शुद्ध ध्रुव। **सदा निरुपराग जिसका स्वरूप है...** त्रिकाल सदा उसका निरुपराग... निरुपराग—उपराग बिना का। निरुप शब्द पड़ा है न? उपराग बिना का।

उपराग=... अब उपराग की व्याख्या। **किसी पदार्थ में...** आत्मा त्रिकाली ध्रुव, वह निरुपराग है। उसमें उपराग नहीं। उपराग अर्थात् क्या? **किसी पदार्थ में, अन्य उपाधि की समीपता के निमित्त से...** अन्य उपाधि की नजदीकता के कारण **होनेवाला उपाधि के अनुरूप विकारीभाव;...** उस उपाधि को अनुरूप। उपाधि निमित्त। कर्म, समझ में आया? वह निमित्त है। उसके अनुरूप... निमित्त है, वह अनुकूल है। जड़ कर्म है, जड़ है, वह निमित्त अनुकूल है और उसके अनुरूप... उसके अनुरूप आत्मा की होती विकारी अवस्था, उसे यहाँ उपराग कहा जाता है। समझ में आया?

देखो! उपराग शब्द पड़ा है न? उपराग। **किसी पदार्थ में, अन्य उपाधि की समीपता के...** समीप। उस 'उप' का अर्थ समीप। भाई! आहाहा! उप अर्थात् समीप। उसके **निमित्त से होनेवाला उपाधि के अनुरूप...** यह कर्म निमित्त है, उसके अनुरूप। कर्म निमित्त है, वह अनुकूल... अनुकूल। अनुकूल और अनुरूप। समझ में आया? निमित्त को अनुकूल कहा जाता है और नैमित्तिकदशा को अनुरूप कहा जाता है।

कहते हैं, **अन्य उपाधि की....** अन्य उपाधि होती है न? अपनी उपाधि होती है? ऐसा कहते हैं। अन्य उपाधि जो कर्म की है, उसके समीपपने के निमित्त से होता उपाधि के अनुरूप। जो उपाधि कर्म है, उसके अनुरूप। अर्थात् क्या? कि विकारीभाव। यह मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग—ऐसा जो भाव, वह राग है अथवा उपाधि है अथवा मैल है। उस मैल बिना का आत्मा है। समझ में आया? आहाहा! निरुपराग सदा जिसका स्वरूप है। भगवान (आत्मा) तो निर्मलानन्द प्रभु चैतन्य रत्नाकर ध्रुव भगवान, परमस्वभाव से विराजमान है, जिसकी पर्याय को भी जहाँ अपरमभाव कहा, उसके समीप में उपाधिभाव को तो क्या कहना? कहते हैं। वह उसमें नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : यह बात किसकी चलती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी बात चलती है यह ? यह सम्यग्दर्शन का विषय ध्रुव चैतन्य किसे कहा जाता है, उसकी बात चलती है। नियमसार है न ? नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग। सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह नियम और सार अर्थात् विकार और व्यवहार बिना का भाव, उसे नियमसार—मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। वह मोक्ष का मार्ग प्रगट होने में कौन कारण है ? कि ध्रुव। डॉक्टर ! यह थोड़ा सूक्ष्म है। समझ में आया इसमें ? उस मशीन-बशीन में पूरे दिन रच-पच जाये न, इसलिए यह क्या होगा अभी ? आहाहा !

भगवान की महा-मशीन ऐसी है अन्दर, कहते हैं कि जिसकी सदृश्यता की, एकता की ध्रुवता में जिसे वर्तमान एक समय की पर्याय का भी जिसे स्पर्श नहीं। आहाहा ! ऐसा कहकर ऐसा जो ध्रुवतत्त्व है, उसमें दृष्टि रखकर, अन्तर्मुख होकर अन्तर्मुख स्वभाव में... अन्तर्मुख स्वभाव है ध्रुव शुद्धभाव, उसे अन्तर्मुख परिणति से दृष्टि में लेकर अनुभव करना, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया ? कठिन बात, भाई !

कहते हैं, ऐसा भगवान आत्मा जिसमें मैल तो अंश भी नहीं। समझ में आया ? यह बड़े कर्म के थोक पड़े हैं, बाँधे हैं। परन्तु तुझमें नहीं, सुन न ! आहाहा ! तेरी दृष्टि से तुझे गहल-पागल बनाया है कि मैं इस वाला हूँ, ऐसा हूँ, इस वाला हूँ, कर्मवाला हूँ, मैलवाला हूँ—ऐसी दृष्टि को पागलदृष्टि, मिथ्यादृष्टि कहते हैं। बसन्तभाई ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा वस्तु है न ? तो उसका स्वभाव है न ? वह वस्तु और वस्तु का स्वभाव नित्य एकरूप रहता है। उसे ही वास्तविक आत्मा और कारणपरमात्मा कहा जाता है। वह आत्मा वास्तविक है। आहाहा ! ऐसे वास्तविक आत्मा के अन्दर में जिसका सदा निरुपरागस्वरूप है... उसका तो सदा उपाधि बिना का स्वरूप है। आहाहा ! उपाधि के समीप में होता मैल, उससे रहित स्वरूप है। आहाहा !

ऐसे निरंजन... निरंजन अर्थात् निर्-अंजन अर्थात् निर्दोष। अंजन बिना का। अंजन-आंजण आँख में नहीं आँजते ?

मुमुक्षु : लड़कों आँजते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़के और बड़े भी आँजते हैं अभी, काला टीका करने को।

वह सुरमा आँजते हैं। लो, यह ठीक कहते हैं। उसको आँजे वह। बड़ा सुरमा आँजे ऐसे। लेते हैं सली? और ऐसे करके घुमावे सवेरे। धूल भी नहीं, सुन न अब।

अन्दर भगवान चिदानन्द प्रभु ऐसा विराजमान अनादि-अनन्त शाश्वत् तत्त्व है। अपना निज, हों! वह निरंजन है—उसे अंजन है नहीं। निरुपराग—रागरहित कहा है, फिर निरंजन कहा अर्थात् कि अंजनरहित निर्दोष, ऐसा। अस्ति से कहा, निर्दोष भगवान आत्मा। वह निर्दोष स्वभाव का पूरा सागर है। ऐसे कैसे जँचे? यहाँ बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं। एक चपटी तम्बाकू हो वहाँ, आहाहा! तृप्त... तृप्त... और चाय-बाय पीकर आवे पाव सेर, डेढ़ पाव सेर का उकाला, तब सुनने में मस्तिष्क ठीक रहे और चाय, उकाला बिना सुनने बैठे तो मस्तिष्क ठीक रहे नहीं। डेढ़ पाव सेर की उकाले से तेरा मस्तिष्क ठीक रहे? ऐसी यह भ्रमणा! उकाला है न, वह क्या है? चाय... चाय... गर्म-गर्म उकालते हैं। दूसरा क्या है, धूल है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तेजी धूल भी नहीं आती। किसे तेजी दे? आहाहा! एक को वहाँ मरने की तैयारी हो, चाय डालने जाये तो यहाँ श्वास अटक जाये एकदम। वह जहाँ डालने जाये वहाँ रग में अन्दर न उतरे, वहाँ पकड़ में आ जाये। फू... जाओ दूसरे स्थान में चाय पीते। समझ में आया? यह चाय तो धूल है चाय। मिट्टी के रजकणों की दशा है। इसके कारण आत्मा को मजा आवे। इसे ऐसा आत्मा है, यह कैसे जँचे? समझ में आया? महेन्द्रभाई! लो, इन्होंने पूछा है बुजुर्ग ने कि परमपारिणामिकभाव और कारणपरमात्मा को जरा स्पष्ट करना। आहाहा!

कहते हैं कि जो स्वरूप है, उसकी तो इशारे की बातें आती हैं यह तो। उसकी व्याख्या सर्वज्ञ भी पूर्ण रीति से वाणी में नहीं ला सकते। आहाहा! समझ में आया?

जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में,
कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब।
उस स्वरूप को अन्य वाणी तो क्या कहे?
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब।

अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब।
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?

लोगस्स में नहीं आता? 'सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु' आता है? बलुभाई! लोगस्स... लोगस्स। लोगस्स आता है। इसमें भी आता है, परन्तु यह लोगों को खबर नहीं। लोगस्स में ऐसा आता है। 'सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु'। हे भगवान! मुझे सिद्धि दिखाओ। आहाहा! दिसंतु अर्थात् दिखाओ। 'सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु'। मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिए। हे प्रभु! आपकी सिद्धदशा मुझे दिखाओ।

मुमुक्षु : दिखाओ, आपका काम यह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह केवलज्ञान होने पर सिद्धदशा प्रगट दिखाई देती है। मति-श्रुत में परोक्ष रीति से होती है, केवलज्ञान में प्रत्यक्ष सिद्ध (होता है)। वह माँगता है, मुझे सिद्धा दिखाओ। प्रभु! तुम्हारा पद है न दिखाने का? वह तो पद कब देखे? कि केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रगट करे तब। केवलज्ञान, केवलदर्शन कब होता है? कि मोक्ष का मार्ग प्रगट करे तब। मोक्षमार्ग प्रगट कब होता है? कि ध्रुव का अवलम्बन करे तब।

मुमुक्षु : ध्रुव का अवलम्बन कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पूछा, ध्रुव का अवलम्बन कब? कि पुरुषार्थ करे तब। कहो, समझ में आया? बाहर का झुकाव बदलकर अन्तर के झुकाव में करे, तब। वळण समझ में आया? झुकाव। बाहर का झुकाव है, उसे अन्दर का झुकाव करे। आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, भाई! ऐसा मार्ग सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकता। समझ में आया? प्रभु स्वयं सर्वज्ञस्वभावी ध्रुव है न, ऐसा कहते हैं यहाँ तो।

पूर्ण स्वभाव है, इसका अर्थ क्या? सर्वज्ञ की एक समय की पर्याय तो कहीं रह गयी। ऐसे-ऐसे सर्वज्ञ का सर्वज्ञ... ज्ञ... ज्ञ... ज्ञ... ज्ञ... ज्ञ... उपयोग, त्रिकाली उपयोग, त्रिकाली ध्रुव उपयोग। यह नियमसार में ही आता है न पहला? त्रिकाल ध्रुव उपयोग। '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।**' जिसका ज्ञान और दर्शन का भाव—उपयोग त्रिकाल भगवान आत्मा का है, वह ध्रुव है। समझ में आया? ऐसे आत्मा

में सदा **सदा निरुपराग जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन (निर्दोष)....** अब आया। सेठी! **निज परमात्मतत्त्व को...** यह निज परमात्मतत्त्व कहो या कारणपरमात्मा कहो या परमपारिणामिक (कहो)। परमपारिणामिक अर्थात्? किसी निमित्त के सद्भाव की और अभाव की जिसे अपेक्षा नहीं। समझ में आया? ऐसा एकरूप त्रिकाली भगवान निज परमात्मतत्त्व। देखो! दूसरे भगवान एक ओर रहे। यहाँ तो निज परमात्मतत्त्व... परम तत्त्व भगवान आत्मा कायम रहनेवाला ध्रुव शुद्ध... शुद्ध... शुद्धभाव अर्थात् ध्रुव।

ऐसे निज परमात्मतत्त्व को वास्तव में द्रव्यकर्म के जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के स्थान नहीं हैं। जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति और उत्कृष्ट ७० कोड़ाकोड़ी की इत्यादि-इत्यादि जिसकी जो हो उसकी। और मध्यम उसके सब भाग। ऐसे जघन्य अर्थात् हीन दशा अल्प स्थिति हो कर्म में। और मध्यम, उत्कृष्ट स्थिति, उसके बन्ध के प्रकार के स्थानों का समूह भगवान में है ही नहीं। आहाहा! एक कहे, आहा! ७० कोड़ाकोड़ी की स्थिति कर्म की! समझ में आया? मिथ्यात्व की ७० कोड़ाकोड़ी की स्थिति। एक समय में, हों! कर्म में। अर्थात्? कि ७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम। एक सागर के असंख्य भाग में... एक सागर (के असंख्य भाग में) दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम जाते हैं और एक पल्योपम के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। ऐसा एक सागर, दो सागर, हजार-लाख सागर नहीं, करोड़ सागर नहीं, कोड़ाकोड़ी सागर। इतने भी नहीं, ७० कोड़ाकोड़ी सागर। चिल्लाहट मचा जाये न! एक वृद्धा कहती है कि अररर! ऐसे सागर! अरे! परन्तु तू अनादि-अनन्त है, उसमें तुझे ७० कोड़ाकोड़ी की गिनती कहाँ था? सुन न! समझ में आया? आहाहा! इतना बड़ा! परन्तु तू कहता है कि इतना बड़ा, उससे भी तू अनादि-अनन्त बड़ा, उसके बिना का है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह तो माल का मार्ग है अभी तो। गाथा ऐसी आयी है न यह सब। नियमसार लिया शुद्धभाव। सवेरे भी आस्रव का अधिकार (चलता) है।

यही कहते हैं कि **निज परमात्मतत्त्व...** अपना परमस्वरूप तत्त्व... परम-आत्म है न? परम-आत्म अर्थात् परमस्वरूप। परमात्मतत्त्व, परमस्वरूपतत्त्व, कायमीतत्त्व, असलीतत्त्व, शुद्धभावतत्त्व, उसे वास्तव में ऐसे द्रव्यकर्म के स्थान नहीं हैं। उसके

प्रकार-स्थिति के नहीं हैं। भगवान स्थितिरहित अनादि-अनन्त है, उसमें यह कहाँ से आया? परन्तु ऐसा स्वरूप मेरा है, ऐसा इसे दृष्टि के अन्दर में माहात्म्य नहीं आता। माहात्म्य ले जाता है दूसरे। समझ में आया? या कोई दया, दान के परिणाम और या शुभभाव, वह माहात्म्य ले जाता है। यह हो तो होता है। वह माहात्म्य ले जाता है मिथ्यादृष्टि को। समझ में आया? ऐसा मेरा नाथ प्रभु, सनाथ का नाथ। आता है न, अनाथ का सनाथ? बहुत शब्द कलश में तो आते हैं। समझ में आया?

ऐसा प्रभु पूर्णानन्द से विराजमान ऐसा मेरा निज आत्मा, उसमें यह वस्तु है नहीं। मुझमें नहीं तो अब मुझे फिक्र क्या? ऐसा भाई ने कहा है न? भाई ने कहा है, नहीं? नियमसार, पद्मप्रभमलधारिदेव ने। एक जगह आता है कलश में। आता है। मुझमें नहीं है। मुझमें विभाव नहीं तो अब मुझे चिन्ता किसकी? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कर्म के समीप में उत्पन्न होता भाव, उससे भी जहाँ रहित हूँ, वहाँ मुझे यह है इसकी चिन्ता... यह है और मुझे टालना है, इसकी चिन्ता है नहीं। आहाहा! मूलचन्दभाई! यह तो अजर-अमर की बातें हैं। आहाहा!

यह वहाँ आया था अपने। विचारवान चतुर पुरुषों को गम्य है। कलश में आया था ऊपर। ऐसा आत्मा परन्तु सम्यग्दर्शन को गम्य है, सम्यग्ज्ञान में ज्ञात हो—ऐसा है। समझ में आया? सम्यग्ज्ञानी उसे जान सकते हैं। ऐसा भगवान (आत्मा) उसमें यह कर्म की स्थिति नहीं।

ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्मों में के उस-उस कर्म के योग्य... उस-उस कर्म के योग्य **ऐसा जो पुद्गलद्रव्य का स्व-आकार,...** स्वभाव अर्थात् आकार। प्रकृतिबन्ध। प्रकृति है न? उसे यहाँ स्व-आकार कहा है। विशिष्ट अलग ही भाषा प्रयोग की है। उसका स्वस्वभाव उसका प्रकृति का स्वभाव। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि उस-उस प्रकृति का उसका आकार, उसका स्वभाव, उसका भाव। **उस-उस कर्म के योग्य ऐसा जो पुद्गलद्रव्य का स्व-आकार, वह प्रकृतिबन्ध है; उसके स्थान...** उसके जितने प्रकार हैं, उतने भगवान **(निरंजन निज परमात्मतत्त्व को) नहीं हैं।** ऊपर के साथ मिलान किया। निरंजन निज परमात्मा भगवान आत्मा में वे प्रकृति के आकार और

स्वभाव नहीं हैं। इस कर्म का ऐसा स्वभाव है और ज्ञानावरणीय का स्वभाव ज्ञान को रोके, धूल को रोके और इसे रोके। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि यह प्रकृति का स्वभाव जड़ में है, यह आत्मा में है नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! उसके स्थान नहीं।

अब प्रदेशबन्ध कहते हैं। **अशुद्ध अन्तःतत्त्व के....** क्या कहते हैं? कि पर्याय में मलिनता, वह अशुद्ध अन्तःतत्त्व। अन्तःतत्त्व है वह तो शुद्ध है। परन्तु अशुद्ध अर्थात् पर्याय में अशुद्धता, मलिनता वह। **और कर्मपुद्‌गल के प्रदेशों का परस्पर प्रवेश...** शुद्ध में तो प्रवेश निमित्तपना भी है नहीं। अशुद्धपने के परिणाम और कर्म के प्रदेश—इन दोनों को निमित्त-नैमित्तिक (सम्बन्ध) है। उन्हें प्रदेशों का परस्पर प्रवेश... भगवान आत्मा है वहाँ अशुद्धता की पर्याय होने पर उसके रजकण आवे दो-पाँच। इन दो का प्रवेश हुआ उसमें। **कर्मपुद्‌गल के प्रदेशों का...** अशुद्ध अन्तःतत्त्व के भीतर... अशुद्ध अन्तःतत्त्व आता है। दूसरी जगह है। २०५ पृष्ठ पर है। है २०५ पृष्ठ पर। वहाँ **अशुद्ध अन्तःतत्त्व और कर्म पुद्‌गल का भेद भेदाभ्यास के बल से करता है,...** है, १०६ गाथा। २०५ पृष्ठ। है न? यह तो निश्चयप्रत्याख्यान का अधिकार है न! सच्चा प्रत्याख्यान किसे होता है? कि **अशुद्ध अन्तःतत्त्व और कर्म पुद्‌गल का भेद भेदाभ्यास के बल से...** उसे प्रत्याख्यान प्रगट होता है। उससे भिन्न पड़कर स्थिर हो, उसे प्रत्याख्यान होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : २०५ पृष्ठ। १०६ गाथा। २०५ पृष्ठ कहा, फिर कोई प्रश्न रहता नहीं। समझ में आया? वहाँ यह है, अशुद्ध अन्तःतत्त्व और पुद्‌गल—दो का... देखो! यहाँ अशुद्ध अन्तःतत्त्व और पुद्‌गलों का प्रवेश इकट्ठा किया। वहाँ अशुद्ध अन्तःतत्त्व और पुद्‌गल—इनका भेद करके अन्दर में स्वभाव में जाये और स्थिर हो, उसे प्रत्याख्यान प्रगट होता है। वह प्रत्याख्यान ऐसे हाथ जोड़कर यह किया, इसलिए (कुछ) प्रत्याख्यान नहीं होते। बलुभाई! वर्षीतप किया था न बलुभाई ने? कहो, समझ में आया?

अशुद्ध अन्तःतत्त्व... अर्थात् दो बातें लीं। एक अन्तःतत्त्व तो शुद्ध त्रिकाली है, परन्तु उसकी पर्याय में अशुद्धता और कर्म पुद्‌गल, (ऐसे) दो का प्रवेश—दो को सम्बन्ध

होता है, ऐसा कहते हैं। वस्तु को सम्बन्ध नहीं होता। अशुद्ध—मलिन भाव और कर्मप्रदेश—इन दो को निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है। इसलिए इन्हें प्रवेश कहा अन्दर। अशुद्ध पर्याय में... अन्दर अशुद्ध पुद्गल प्रवेश करता है अर्थात् (एक) क्षेत्रावगाह में ऐसे अन्दर जाता है। समझ में आया? ऐसा जो भाव वह कर्मपुद्गल के प्रवेश, वह प्रदेशबन्ध के उसके जितने प्रकार, वे निरंजन निज परमात्मा को नहीं हैं। वे अनन्त प्रदेश और एक-एक प्रकृति के अनन्त (प्रकार) ओर ऐसे अनन्त स्कन्ध और उन सब प्रदेश की संख्या का माप जड़ में रहा, आत्मा में है नहीं। अब आत्मा असंख्यप्रदेशी, वह अनन्त प्रदेशी का एक स्कन्ध, ऐसे-ऐसे अनन्त स्कन्ध। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, ऐसे भगवान निज परमात्मतत्त्व, शुद्ध आनन्दकन्द का कारणतत्त्व। वह कारणतत्त्व स्वयं, ऐसा। उसे (कर्म के) प्रदेश के प्रकारों के स्थान नहीं हैं। समझ में आया?

शुभाशुभकर्म की निर्जरा के समय... अब अनुभाग लेते हैं, अनुभाग। वह शुभाशुभकर्म जब खिरता है न, उस काल में सुख-दुःख फल देने की शक्ति है न कर्म में? ऐसा जो अनुभाग—पाक—विपाक... कर्म का विपाक—कर्म का अनुभाग भगवान आत्मा में नहीं है। समझ में आया? आहाहा! भाई! कर्मविपाक आता है कठोर, अनुभाग आवे न... प्रकृति तो सामान्य स्वभाव है, यह विशेष है अनुभाग। फल देने में यह मूल है, कहते हैं। परन्तु वह वस्तु में—आत्मा में नहीं तो किसे फल देगा? कहते हैं। यहाँ कहते हैं। शोभालालजी! यह तो धर्मकथा आत्मा की है, इसलिए यह कथा तो अलौकिक अगम्य वस्तु है। ज्ञानगम्य हो, परन्तु साधारण विकल्प से, वह गम्य नहीं है।

ऐसा जो भगवान आत्मा उसे, कहते हैं कि सुख-दुःखरूप फल देने की शक्ति का अनुभाग आत्मा में है ही नहीं। इसका **भी अवकाश नहीं...** ऐसी भाषा ली है। अवकाश... वहाँ स्थान को अवकाश नहीं, कहते हैं। भगवान चिद्घन पड़ा है। नकोर निबड अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप आत्मा। आहाहा! कहते हैं कि ऐसे अनुभाग के प्रकार (जो) शुद्धभाव में नहीं, उसकी दृष्टि करना, उसे पकड़ना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? इसका नाम मोक्षमार्ग का वर्णन है न यह? गजब!

और... अब अन्तिम मुद्दा यह आता है न? **द्रव्यकर्म तथा भावकर्म के उदय के**

स्थानों का... यह जड़ के उदय के असंख्य प्रकार या अनन्त प्रकार और भावकर्म के असंख्य प्रकार। पुण्य-पाप के हैं न विकल्प? ऐसे **उदय के स्थानों का भी अवकाश...** भगवान ध्रुव आत्मा में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा निज परमात्मतत्त्व ध्रुव शुद्धभाव तत्त्व, कारणपरमात्मा को दृष्टि में लेना और उसमें दृष्टि को पसारना, इसका नाम मोक्षमार्ग है। समझ में आया? कठिन भाई यह! कहाँ रखना दृष्टि? कहते हैं कि ऐसे ध्रुव पर रखना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ध्रुव पर दृष्टि रखने से दृष्टि स्थिर होगी। अध्रुव पर दृष्टि रखने से दृष्टि स्थिर कहाँ रहेगी? आहाहा! समझ में आया? द्रव्यकर्म और भावकर्म के... ओहोहो! उदय के समूह-स्थान-प्रकार भी निरंजन निज परमात्मतत्त्व में नहीं है।

इस प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ११वें श्लोक द्वारा) कहा है कि— लो, ११वाँ श्लोक है यह। १४वीं गाथा का है न? १४वीं गाथा का। अब तो यह दूसरे भी बातें करने लगे इसमें से निकालकर। अमर भारती में है, भाई! स्थानकवासी में। तुम्हारे कब यह था? अबद्धस्पृष्ट। यह अबद्धस्पृष्ट आया है आज। आत्मा अबद्धस्पृष्ट है, फलाना.. फलाना.. समझे न? ऐसी ज्ञान की क्रिया। वह भी तुम्हारे थी कब यह? तुम्हारे तो यह अपवास करना, व्रत पालना, यह करना, वह करना... अबद्धस्पृष्ट ऐसा आत्मा है। लिखता है कोई है, गिरधर कोई है।

(मालिनी)

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी,
स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्,
जगदपगत-मोहीभूय सम्यक्स्वभावम्॥

अरे! जगत के प्राणी! **जगत मोहरहित...** जगत अर्थात्? जगत में रहनेवाले आत्माओ, ऐसा। कहते हैं न कि यह मुम्बई आया। कहा न? मुम्बई आता होगा? यह तो मुम्बई आया अभी कहा न? बस आयी न, बस? कहे, मुम्बई आ गयी। बलुभाई! वह मुम्बई नहीं, परन्तु मुम्बई के रहनेवाले हैं। उसके वासी—बसावट करनेवाले लोग,

ऐसा। इसी प्रकार जगत नहीं, परन्तु जगत में बसावट करनेवाले जीव। हे जगत के जीवो! देखो! आचार्य सम्बोधन करके (कहते हैं)। हे जगत के जीवो! **मोहरहित होकर...** क्षणिक भ्रमणा छोड़कर... कहीं मुझे ठीक है, पर्याय में ठीक है, राग में ठीक है, निमित्त में ठीक है—ऐसी उत्कण्ठित—उत्साहित दशा दृष्टि, वह मोह है। ऐसा मोहरहित होकर... कैसा होना? और ऐसा कहते हैं। ऐसा कर न यह? मोहसहित है, उसे मोहरहित होकर दृष्टि कर आत्मा में, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

हे जगत! **मोहरहित होकर सर्व ओर से प्रकाशमान...** अकेला चैतन्य भगवान प्रकाश... प्रकाश... ज्ञान के प्रकाश के नूर का पूर। समझ में आया? **सर्व ओर से प्रकाशमान...** ऐसा। **ऐसे उस सम्यक् स्वभाव का ही अनुभवन करो...** एक त्रिकाली ज्ञायकभाव का अनुभव करो। अनुभव, वह पर्याय है और त्रिकाल स्वभाव, वह त्रिकाली ध्रुव है। समझ में आया? कठिन काम! यहाँ तो कहे, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह समकित; नौ तत्त्व की श्रद्धा, वह समकित। समकित तो बहुत सस्ता और सरल। कितने ही ऐसा कहते थे कि इन सोनगढ़वालों ने समकित को बहुत महँगा कर दिया। सोनगढ़ में (और दूसरे में) अन्तर कहाँ? यह तो वस्तु का स्वभाव है। समझ में आया?

भगवान आत्मा त्रिकाली नित्यानन्द प्रभु ऐसा जो सम्यक् स्वभाव, उसे ही अनुभव करो। आहाहा! जिसमें कर्म के रस, स्थिति, प्रदेश आदि नहीं और जिसमें पूरा अखण्ड आनन्द आदि स्वभाव है, उसे अनुभव करो। आहाहा! वह अनुभव करनेयोग्य है। उसे अनुभव करना, वह धर्म है। ऐसे त्रिकाली स्वभाव को अनुभव करना, वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया?

अनुभव चिन्तामणि रत्न, अनुभव है रसकूप,
अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।

आहाहा! भगवान ध्रुवस्वभाव के किनारे जा न, कहते हैं। इस बाहर में वर्तता है न राग में। वह तेरा प्रेम बाहर में लुटता है, वह प्रेम अन्दर में डाल न! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वतन्त्र है ही। स्वयं है ही। सहज तो वही है। यह तो कृत्रिम...

विकल्प आदि ये तो कृत्रिम विकार है। समझ में आया?

अरे! **ऐसे उस सम्यक् स्वभाव का 'ही' अनुभवन...** समझ में आया? **जिसमें यह बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव उत्पन्न होकर स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी,...** देखो! राग-द्वेष की पर्याय एक समय की ऊपर तैरती होने पर भी। अरे! निर्मल पर्याय भी ऊपर रहने पर भी अन्दर प्रवेश नहीं पाती। समझ में आया? पाँच बोल है न अबद्धस्पृष्ट आदि के। १४वीं गाथा में, १५ वीं गाथा में। वे भाव **स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी,...** प्रगट ऊपर रहते हैं। भगवान अन्तर ध्रुव में वे प्रवेश नहीं करते। **ऊपर तैरते होने पर भी, वास्तव में स्थिति को प्राप्त नहीं होते।** प्रतिष्ठा नहीं पाते, ऐसा। समझ में आया? है न यह? **'यत्र प्रतिष्ठाम्'** ऐसे प्रतिष्ठा नहीं पाते, उन्हें आधार नहीं मिलता। ऊपर-ऊपर (रहते हैं)। वस्तु ध्रुव-ध्रुव नित्यानन्द ऊपर पर्याय और राग तैरते हैं, अन्दर में जाते नहीं। ऐसे भगवान आत्मा का अनुभव करना, उसे अनुसरकर निर्मल दशा का परिणमन करना, इसका नाम मोक्ष का मार्ग और धर्म है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

- मार धड़ाक पहले से! तू पामर है या प्रभु है! तुझे क्या स्वीकार करना है! पामरता स्वीकार करने से पामरता कभी नहीं जायेगी। प्रभुपना स्वीकार करने से पामरता खड़ी नहीं रहेगी! भगवान आत्मा—मैं स्वयं, द्रव्य से परमेश्वर स्वरूप ही हूँ—ऐसा जहाँ परमेश्वरस्वरूप का विश्वास आया तो तू वीतराग हुए बिना रहेगा ही नहीं। (3)
- अहो! मैं ही तीर्थंकर हूँ, मैं ही जिनवर हूँ, मुझमें ही जिनवर होने के बीज पड़े हैं। परमात्मा का इतना उल्लास... कि मानो परमात्मा से मिलने जाता हो! परमात्मा बुलाते हों कि आओ... आओ... चैतन्यधाम में आओ! चैतन्य का इतना आह्लाद और प्रह्लाद हो! चैतन्य में मात्र आह्लाद ही भरा है, उसकी महिमा, माहात्म्य, उल्लास, उमंग, असंख्य प्रदेश में आना चाहिए। (4)

— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, दृष्टि के निधान

भाद्र शुक्ल २, शनिवार, दिनांक - १३-०९-१९६९
गाथा-४१, श्लोक-५६, ५७ प्रवचन-५

यह नियमसार शास्त्र चलता है, इसका शुद्धभाव अधिकार। नियमसार अर्थात् आत्मा की दशा में मोक्षमार्ग प्रगट होना, उसे नियमसार कहते हैं (कि जो) नियम से जो कर्तव्य है। जो आत्मा त्रिकाली शुद्धभाव... यह शुद्धभाव अधिकार चलता है न? त्रिकाली शुद्धभाव, ध्रुवभाव, उसका अवलम्बन करने से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा प्रगट हो, उसे नियमसार अथवा मोक्षमार्ग कहते हैं। समझ में आया? यह मोक्षमार्ग किसमें से—किसके ध्येय से प्रगट होता है, यह अधिकार चलता है। समझ में आया?

देखो! यह गाथा आयी है। ५६ कलश। ५५ गया। ५६ कलश है इसका—४०वीं गाथा का।

(अनुष्टुभ्)

नित्यशुद्धचिदानन्दसम्पदामाकरं परम्।
विपदामिदमेवोच्चैरपदं चेतये पदम्॥५६॥

क्या कहते हैं? जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना है, उसका ध्येय क्या? कि **जो नित्य शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है...** आत्मा है ध्रुव। समझ में आया? जो सम्यग्दर्शन प्रगट करना है, वह सम्यग्दर्शन कोई निमित्त में से नहीं आता। तथा कोई दया, दान के विकल्प—राग है, उसमें से नहीं होता तथा एक समय की वर्तमान प्रगट अवस्था में से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया?

जो ध्रुव चिदानन्दस्वरूप नित्य शुद्ध—सदा का शुद्ध भगवान ध्रुव, शुद्धभाव, परमपारिणामिकस्वभाव, कारण आत्मा अथवा कारणपरमात्मा, ध्रुव कारणजीव। वह जीव कैसा है? नित्य शुद्ध है। एक समय की वर्तमान हालत बिना का। पुण्य-पाप बिना का तो है, कर्मादि परपदार्थ के अभावस्वभावस्वरूप है। अभावस्वभावस्वरूप है, परन्तु एक समय की जो प्रगट अवस्था उत्पाद-व्यय की, उस अवस्था से भी दूर रहा हुआ

तत्त्व है। समझ में आया? अर्थात् कि वह अवस्था में आता नहीं, तथा वह अवस्था उसके ध्रुव में एकमेक प्रविष्ट नहीं होती।

ऐसा **जो नित्य शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की...** जिसमें ज्ञान और आनन्द की सम्पदा है, उसकी वह **उत्कृष्ट खान है...** लो, यह पैसे की खान आयी। सेठ! यह सम्पदा की खान। चैतन्य आनन्द, ऐसा है न? देखो! चिदानन्द। चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द अर्थात् सुख। ऐसा नित्य भगवान ध्रुव, सामान्य एकरूप, अवस्था—वर्तमान पर्याय से खाली, परन्तु अपने आनन्द और ज्ञान की सम्पदा से भरपूर। समझ में आया? ऐसी चिदानन्दरूपी सम्पदा, सम्पाद—लक्ष्मी, उसकी उत्कृष्ट खान है। खान है ऐसा कहते हैं, खान। खान को खोदते हुए चाहे जितना निकालो तो भी कम नहीं होता। बाहर का तो समाप्त हो जाता है, परन्तु यह समाप्त नहीं होता। आहाहा! भगवान ज्ञान और आनन्द जिसका नित्य शुद्ध कायमी चिदानन्दस्वभाव है। वह चिदानन्द की—ज्ञान और आनन्द की—उत्कृष्ट ध्रुवस्वरूप यह शुद्धभाव खान है। समझ में आया?

और... इसके सामने गुलाँट खाता है अब। जो सम्पदा का स्थान है, तब **विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है... 'उच्चैरपदं'** रागादि की आकुलता की आपदा अर्थात् विपदा का उसमें बिल्कुल अभाव है। विपदा का अपद है। अत्यन्तरूप से अपद है, ऐसा शब्द प्रयोग किया है। भगवान आत्मा शुद्ध नित्यानन्द प्रभु जो शाश्वत् है, वह अपने आनन्द और ज्ञान की सम्पदाओं से उत्कृष्ट भरपूर खान है कि जिसमें नजर डालने से शान्ति, सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि अवस्था प्रगट होती है। भारी कठिन, बात! कहो, रतिभाई! लो, यह सम्पदा की बात आती है यह। जगत की सम्पदा, वह आपदा का निमित्त है। यह पैसा और धूल जो यह कहलाते हैं वह। शोभालालजी! यह सब पैसेवाले कहलाते हैं या नहीं? वह आपदा की सखी है। है न? योगसार में। योगसार में से निकाला था। लक्ष्मी, वह विपदाओं की सखी है—सहेली है। नवनीतभाई! देखो न, सिद्ध होता है न कि परवस्तु है, उसका जहाँ लक्ष्य होता है, तो राग और आकुलता ही उत्पन्न होती है। इसलिए लक्ष्मी तो विपदा की सखी है, सखी है—सहेली है। समझ में आया?

भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञान की सम्पदा की उत्कृष्ट खान है। ऐसा जो

नित्य प्रभु... कहो, मास्टर! यहाँ तो पर्याय नहीं, अब ऐसा चलता है। दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प, वे तो उसमें नहीं, वह चीज तो दूर रह गयी। परन्तु उसकी जो निर्मल परिणति—वर्तमान पर्याय—एक समय की अवस्था से भी भिन्न तत्त्व, ध्रुव तत्त्व है। वह ध्रुव तत्त्व सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है और विपदाओं का अत्यन्त अपद है, अर्थात् विपदा के लिये वहाँ जरा भी स्थान नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

नित्यानन्द भगवान सच्चिदानन्द प्रभु अपना निज स्वरूप है, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान का तो उत्कृष्ट निधान—खान है और उसमें विपदा का बिल्कुल स्थान नहीं। विपदाओं का अत्यन्त **'उच्चै'** कहा है न? आहाहा! समझ में आया? कहो, नटुभाई! समझ में आता है या नहीं यह? क्या है यह वह भी कठिन! ऐसा आत्मा कहीं हाथ नहीं आया अनादि से। अरे! भाई! वह तो अनादि का है। तुझे हाथ नहीं आवे... बिल्ली के बच्चे को सात-सात दिन में उनकी माँ फिराती है। फिर आँख उघड़ती है, तब दिखता है कि ओहोहो! यह पृथ्वी कब की है, यह देखता है वह? तेरी आँखें नहीं थीं तो भी वह तो है। वह कहीं नयी नहीं है। इसी प्रकार तुझे नजर में न आवे, इससे वस्तु का अभाव हो जाये, ऐसा नहीं है। नित्यानन्द प्रभु है, वह तो। आहाहा! इसने अनन्त काल में पुण्य-पाप की क्रियायें अनन्त बार कीं, परन्तु वह वस्तु पुण्य, पाप और एक समय की अवस्था बिना का नित्यानन्द सम्पदाओं का घर और आपदाओं का अस्थान है। उसके तत्त्व पर इसने कभी नजर नहीं की। समझ में आया?

कहते हैं कि वह तो **विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है...** आहाहा! नरक के स्थान में रव रव नरक में जाये (तो) अकेली आपदा पर्याय में उत्पन्न होती है। समझ में आया? यह निजानन्द पद में यदि जाये, तो विपदा और आपदा जहाँ जरा भी नहीं, ऐसी सम्पदा का स्थान भगवान (आत्मा) है, वहाँ नजर कर न! उसमें नजर पहुँचा न, ऐसा आत्मतत्त्व, उसके अन्तर में स्वसन्मुख होकर विश्वास कर न! तुझे पूरा आत्मा नजर में, श्रद्धा में, प्रतीति में आवे, तब उसे सम्यग्दर्शन और धर्म हुआ, ऐसा कहने में आता है। कहो, समझ में आया? मूलचन्दभाई! विपिन को कहते थे सवेरे। क्या कुछ कहते थे न? कायापलट हो गयी धर्म की। कायापलट। सवेरे कहते थे। पुण्य से, क्रिया से धर्म

मानते थे। यह तो कायापलट... काया क्या कहते हैं ? कायाकल्प कहते हैं न ? ८० वर्ष का हो, ९० वर्ष का हो। ऐसा सब... कायाकल्प करे। सब बदल डाले। कुछ कहते हैं। ... घूमना यह तो... घूमे नहीं और मर जाये उसमें करने जाये वहाँ।

यह तो पूरा भगवान आत्मा जो कुछ पुण्य और पाप के परिणाम में अटका हुआ और वह मेरी चीज़ है, ऐसा जाना, वह तो विपरीत आत्मा का रूप हो गया। वह तो कायापलट गुलाँट खाता है। व्यवहार के वर्तन का जो विकल्प है, पंच महाव्रत व्रतादि का, वह भी जिसमें नहीं। वह विकल्प है, वह भी आपदा का स्थान है। समझ में आया ? ऐसा निजानन्द भगवान जिसमें विपदा को स्थान नहीं।

ऐसे इस पद को... पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं। आचार्य नहीं। यह ठीका करनेवाले। **इसी पद को मैं अनुभव करता हूँ।** अपनी बात भी साथ में (करते हैं)। आहाहा! अब इनकी टीका को पास नहीं करते कितने ही, क्योंकि उन्हें बैठती नहीं। निरपेक्ष तत्त्व को बताती है। कारणपरमात्मा भगवान त्रिकाली शुद्ध ध्रुव नित्यानन्द उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्। उस उत्पाद-व्यय की वर्तमान अवस्थारहित तत्त्व, ऐसे ध्रुव को सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिये राग और विकल्प की अपेक्षा बिना वह प्रगट होता है, उसे सम्यग्दर्शन में अपेक्षा ध्रुव की रहती है। समझ में आया ? अभी तो चौथा गुणस्थान सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली सीढ़ी। आहाहा! वहाँ तो धर्म धर्म हो गया जगत में, अभी यह भान बिना। समझ में आया ?

कहते हैं कि **इसी पद को...** ऐसा जो शुद्ध चैतन्य है, ध्रुव है, उसे मैं अनुभव करता हूँ। अनुभव करता हूँ, यह पर्याय है। बात कहते हैं कि इसी पद को मैं अनुभव करता हूँ। क्या कहते हैं, समझ में आया ? पद तो ध्रुव है। ध्रुव का वेदन नहीं होता, अनुभव नहीं होता, परन्तु अनादि के पुण्य और पाप के विकल्प का वेदन जो दुःखरूप था, उसके बदले इस ध्रुव पर नजर जाने से उसे ध्रुव का वेदन है, ऐसा कहने में आता है। उस राग का वेदन टलकर, भगवान ध्रुव चिदानन्द का सागर, उस पर नजर पड़ने से जो परिणति खड़ी हुई, यह कहते हैं कि अनुभव तो पर्याय का होता है। समझ में आया ? परन्तु ध्रुव के लक्ष्य से प्रगट हुई, इसलिए उसे मैं अनुभव करता हूँ, (ऐसा कहते हैं)। आहाहा!

जिसके आत्मा के आनन्द के अनुभव के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन, जिसके शरीर अन्नरहित। समझ में आया? अन्नरहित पोषण जिन्हें वैक्रियिकशरीर है इन्द्राणियों को और इन्द्रों को। यह तो धान का ढोकला है। धान ठीक (मिले) तो शरीर व्यवस्थित रहे। नहीं तो ऐं... ऐं... हो जाये। जवानी हो तो भी दो, पाँच, दस (दिन) जहाँ.... क्या कहलाता है? टाईफाइड होता है न? ...एक सप्ताह, दो सप्ताह, फिर मिटा या नहीं? तीन जाते हैं, तीन मिटा नहीं, चार जाते हैं। करते-करते चार और पाँच सप्ताह। पच्चीस वर्ष का जवान हो वह ऐं... ऐं... (करता हो)। यह तो वैक्रियिकशरीर इन्द्र और इन्द्राणियों को। समझ में आया? तथापि वह सुख नहीं है, वहाँ उसमें बाहर में। समझ में आया? यह पद... सुख नहीं उस पद में। यह निजानन्द पद भगवान आत्मा, उसे अनुभव करता हूँ, कहते हैं। वह अनुभव जो है इन्द्राणी आदि का, वह तो राग का अनुभव है और कोई पंच महाव्रत के परिणाम आदि हों और उन्हें वेदन करे, वह भी आकुलता—कषाय का वेदन है, कषाय का अनुभव है, वह आत्मा का नहीं। आत्मा का अनुभव... चिदानन्द प्रभु ध्रुवस्वरूप है, उसमें नजर डालकर जो पर्याय प्रगट होती है अथवा परिणमती है, उसमें मैं यह ध्रुव के लक्ष्य से वेदन करता हूँ अर्थात् ध्रुव को यह... पाठ ऐसा है न? **इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ।** पद तो ध्रुव कहा पहले नित्य और शुद्ध ध्रुव। समझ में आया?

ध्रुव का वेदन नहीं होता, परन्तु उस ध्रुव की ओर के झुकाववाला वेदन, वह ध्रुव का है, ऐसा यहाँ कहा है। आहाहा! जिसमें अमृतरस झरता है, वह अमृत का सागर कहा न ऊपर? सुख-आनन्द। आनन्द का सागर भगवान आत्मा की दृष्टि करने से अमृत झरता है। वे अमृत के घूंट झरते हैं, कहते हैं। तृषा लगी हो और पीते हैं न पेय? मौसम्बी या आईसक्रीम या कुछ कहते हैं न सब? लड़के बहुत चूसते हैं ऐसे। आहाहा! यह तो अब भगवान आत्मा को चूसो, यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? चूसना समझते हो न? चूसना, क्या कहते हैं हिन्दी में? चूसना कहते हैं? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि मैं आत्मा को चूसता हूँ। आहाहा! उसमें अमृत भरा है न! उसे मैं स्वस्वभावसन्मुख होकर अनुभव करता हूँ। वह मेरा धर्म है, वह मेरी दशा है, उसे

अनुभव करता हूँ, यह नियमसार है, यह मोक्ष का मार्ग है। सेठ! यह सब पैसे-पैसे तुम्हारे हैं, उसमें कुछ धर्म नहीं, उससे धर्म नहीं होता, ऐसा कहते हैं। इसलिए रखना, ऐसा ? .... अर्थात् क्या कहा ? रखता है कौन और देता है कौन ? उसके कारण से आते और उसके कारण से जाते हैं। बीच में ममता करे कि मैंने ऐसा ध्यान रखा, इसलिए आये और मैंने ऐसे राग मन्द किया, इसलिए पैसे गये, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

देखो न! संक्षेप में एक सम्पदा का स्थान (और) अपदा-विपदा का अस्थान। अपद अर्थात् अस्थान। वहाँ विपदा खोजने से मिले, ऐसा नहीं है, ऐसा वह भगवान आत्मा ध्रुव स्थान है। अरे! वहाँ क्यों रुचि नहीं करता ? आया था या नहीं ? आया था कल। समझ में आया ? उसमें कल आया था, ५५ कलश में। ५५ में। अरे! ऐसे आत्मा की रुचि नहीं करता, भगवान! तुझे पोषाये ऐसा माल आत्मा में है न! देखो! ४० गाथा के ऊपर है। **ऐसे आत्मा की रुचि क्यों नहीं करता ?** यह ५६ हुआ। कलश ५६।

५७ (कलश)।

(वसंततिलका)

यः सर्व-कर्म-विष-भूरुह-सम्भवानि,
मुक्त्वा फलानि निजरूपविलक्षणानि।
भूङ्क्तेऽधुना सहज-चिन्मय-मात्म-तत्त्वं,
प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति सन्शयः कः ॥५७॥

अरे! **श्लोकार्थः—(अशुभ तथा शुभ) सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से...** यह पुण्य और पाप विष के वृक्ष हैं। सर्व कर्म कहा है, इसलिए फिर कहीं पुण्य बाकी नहीं रखा जाता बाहर। यह तो आ गया पुण्य-पाप में। सर्व कर्म का निषेध है, फिर उसमें पुण्य और पाप में अन्तर क्या रहा तब ? आहाहा! भेद (करना वह) उन्माद है, गहलताई है, भगवान! पागल हुआ है कि पुण्य के परिणाम शुभ ठीक और पाप के अठीक। उन्माद, गहलता, मिथ्यात्व का जोर है। कहो, पोपटभाई! आहाहा! यह पैसे की धारा होती हों, बारह महीने में पाँच-पाँच लाख पैदा करे, दस-दस लाख पैदा करे। आँखें फट जाये।

यह कहते हैं, धूल भी नहीं वहाँ, सुन न! ऐई! चिमनभाई! प्रतिकूलता आवे तब ऐं... ऐं... हो जाता है। आहाहा! इस प्रतिकूलता में द्वेष हो, वह दु:ख है और अनुकूलता के समय हर्ष हो, वह भी आकुलता की अग्नि सुलगती है। समझ में आया?

भगवान! **सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से उत्पन्न होनेवाले,...** जहर के वृक्ष... कर्म जहर का वृक्ष और पुण्य-पाप भी जहर का ही वृक्ष है, कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा अमृतस्वरूप है, तब पुण्य और पाप दोनों जहर है। अरे! यह तो पुण्य के परमाणु पके हों न, उसका कुछ फल आवे न, तो प्रसन्न-प्रसन्न (हो जाता है), आहाहा! अभी हमारे बादशाही है। रतिभाई! आहाहा! उसमें दो-दो अरब रुपये, ढाई-ढाई अरब रुपये जहाँ सुने बनिया, मेरे घर में। बड़ा दु:खी है।

मुमुक्षु : पैसे के प्रमाण में दु:ख है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे के प्रमाण में दु:ख किसने कहा? उसकी ओर के झुकाव में आकुलता के कारण से दु:ख है। कहो, समझ में आया?

सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से उत्पन्न होनेवाले,... अरे! यह तो ठीक परन्तु **निजरूप से विलक्षण ऐसे फलों को छोड़कर...** भगवान तो आनन्दस्वरूप है न, प्रभु! उसका निजफल तो आनन्द और शान्ति है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र होने से वह निज के अन्तर में तो आनन्द है। चारित्र, वह आनन्द है; सम्यग्दर्शन, आनन्द है; ज्ञान, वह आनन्द है। लोग कहते हैं कि चारित्र पालकर तो देखो। (चारित्र अर्थात्) यह वह बाहर की क्रिया। अब सुन न! आहाहा! समझ में आया? ऐसी क्रिया भी की थी पहले। यह न करे, ऐसी क्रिया थी कठोर। १५-१५ वर्ष पानी की बूँद न मिले प्रतिदिन। समझ में आया? एक पानी की बूँद में निगोद के असंख्य जीव। भिक्षा के लिये—आहार के लिये जायें, ख्याल आवे कि यह पानी तो हमारे लिये बनाया (प्रासुक किया) है। ... दे। पूरे दिन पानी बिना चलावें। छाछ और रोटी। परन्तु उसमें क्या है अब उस क्रिया में? धूल में भी नहीं। समझ में आया? ऐसे तो १५-१५ वर्ष बिताये। (संवत्) १९७० से १९८५। ऐई! बलुभाई! तब तो बलुभाई के सम्प्रदाय में थे न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नारणसेठ थे। सेठ थे। वह तो ... आटकोट में उनके पिता सेठ, नारणसेठ थे। देखा हो नारणसेठ को। पहले आये थे न जब, तब थे वृद्ध। आहाहा!

कहते हैं, बापू! उस क्रिया में क्या है? पानी का एक बिन्दु ओस का पड़ता हो, ख्याल में आवे ऐसे। भिक्षा के लिये नहीं निकलते थे। पण्डितजी! पानी की बूँद ऐसी मच्छ जैसी लगे न कुछ। मच्छर जैसा समझते हो? मच्छर जैसा ऐसे लगे न ऐसे देखें कहीं ऐसा, तो भिक्षा के लिये नहीं निकलें। एक-एक दिन, दो-दो दिन तक ऐसे पानी बिना के, आहार बिना के चलाये हैं। समझ में आया? परन्तु उससे क्या, वह वस्तु है? वह वस्तु है? वह तो राग की मन्दता हो इस प्रकार... हो। यहाँ तो वर्षा की छींटे गिरती हों तो भी आहार लेने और भिक्षा के लिये निकले। जिसमें छह काय की हिंसा है। एक पानी की बूँद में असंख्य जीव हैं, अनन्त निगोद के जीव हैं। सच्चा साधु हो, वह एक बिन्दु भी ऐसे झरता दिखाई दे कहीं मच्छर जैसा, (तो) भिक्षा के लिये नहीं निकलें। समझ में आया? ऐसी अन्तर समता और आनन्द की लहर में जिसे बाहर की प्रतिकूलता का दुःख नहीं लगता। आहाहा! कहो, समझ में आया?

कहते हैं, अरे! भगवान आत्मा, यह तेरे घर में अमृत की नारियली। श्रीमद् कहते हैं एक पत्र में, लोगों ने तो शक्कर के नारियल की महिमा की है। शक्कर का नारियल। यहाँ तो अमृत की सचोड़ी नारियली है। नारियली समझते हो न? श्रीफल। अमृत के श्रीफल पकें, ऐसा भगवान आत्मा। उसे खबर कहाँ है? समझ में आया? यह शरीर की जवानी पासडा जैसा लगे, रोग न हुआ हो, न हुआ हो, होता न हो, होने की भविष्यवाणी न हो। ऐसा निरोग शरीर पुष्ट शरीर हो और उसे ऐसा लगे कि आहाहा! क्या करें मानो? विषय सेवन कर क्या करें? अरे! भगवान! यह तो जहर है, बापू! भाई! तेरा अमृत आत्मा वहाँ लुटता है। समझ में आया? अमृतस्वरूप भगवान उसमें—लूट में आता है। तुझे ऐसा लगता है कि यह तो मजा—सुख है। आहाहा! मिथ्याबुद्धि पर में सुख मानकर मजारूप से मानता है, वह आत्मा के स्वभाव से विलक्षण ऐसे फल को वेदता है।

यहाँ कहते हैं कि उसे छोड़कर... ओहो! शुभ-अशुभ, हर्ष और शोक, ऐसे भाव जो कर्म का फल (है, उसे) छोड़कर... **जो जीव अभी...** भाषा है न? प्रवचनसार की

है न भाई अन्तिम? अन्तिम। ऐसी शैली ली है। भाई! आज ही कर। प्रवचनसार में आता है अन्त में। अभी ही कर, भाई! काल दूसरा... वायदा करेगा तो व्यर्थ चला जायेगा। अभी नहीं... अभी नहीं... बापू! अभी नहीं, अभी ही। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि **इसी समय सहजचैतन्यमय आत्मतत्त्व को भोगता है,...** आहाहा! सहज स्वाभाविक चैतन्यमय आत्मा। भाषा देखो! आत्मा, वह द्रव्य—तत्त्व है, उसका चैतन्यमय स्वरूप है। अकेला ज्ञानमय, ज्ञान का सूर्य, अरूपी ज्ञान का महा तेजस्वी प्रकाशित जलहलता चैतन्यसूर्य आत्मा है। समझ में आया? कहते हैं, अरे! **इसी समय... 'अधुना' 'अधुना'** है न? **'अधुना'** है, भाई! अनन्त काल से ऐसे दुःख भोगे हैं। **'अधुना'** —अब तो **सहजचैतन्यमय आत्मतत्त्व को भोगता है,...** आनन्दसागर पर नजर पड़ने से आनन्द का अनुभव होता है, वह आत्मतत्त्व को भोगता है, ऐसा कहने में आता है। आत्मतत्त्व को भोगता है। अज्ञानी पुण्य और पाप, राग और आकुलता को भोगता है और 'उसमें मजा है' ऐसा मिथ्याभ्रम में भ्रमणा में चढ़ा हुआ अज्ञानी मानता है। धर्मी जीव ऐसे निज आनन्द के फल से विपरीत पुण्य और पाप के भावों को छोड़कर अभी सहज चैतन्य ऐसा तत्त्व, उसे अनुभव करता है। ऊपर 'अनुभव करता है' उसे अनुभव करता हूँ, ऐसा कहा। यहाँ भोगता है, ऐसा कहा।

वह जीव... क्या कहते हैं अब? जो कुछ शुभ-अशुभ परिणाम जहर के परिणाम अथवा कर्म जहर, उसका फल अनुकूल-प्रतिकूल, उसकी ओर का होता हर्ष और शोक, ऐसा जहर, उसे छोड़कर चैतन्यमय आत्मा भगवान वस्तु को जो अनुभव करता है, भोगता है, **अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करता है...** देखो! यह भोगता है, वह मोक्ष का मार्ग है। ध्रुवस्वरूप को निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान से आनन्द को वेदना, आनन्द को अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। समझ में आया? आनन्द का वेदन, इसका नाम भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन अर्थात् बराबर उसे देखा और माना; सम्यग्ज्ञान (अर्थात्) उसे देखा और जाना; सम्यक्चारित्र अर्थात् स्वरूप में रमणता—वह जीव को आत्मतत्त्व का भोगना है। यह भोगता है, वह अल्प काल में केवलज्ञान को पाता है, ऐसा कहते हैं। बीच में व्यवहार पंच महाव्रत आदि के विकल्प आते हैं, वह भोगनेयोग्य

नहीं और उनसे मुक्ति होती नहीं। कहो, शोभालालजी! वे संगमरमर के पत्थर, बीड़ियों के पैसे। ऐई! चिमनभाई! उसे क्या? उसे लोहे का है। आहाहा!

देखो! '**अचिरात्**'। ऐसा भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकार के फल को अथवा उसके वेदन को छोड़कर, भगवान आत्मा चिदानन्द ध्रुव के आनन्द को वेदता हुआ अल्प काल में केवलज्ञान को अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करता है। मुक्ति का यह उपाय है, ऐसा कहते हैं। आत्मा को अनुभव करना, यह मुक्ति का उपाय है। वीरचन्दभाई! आहाहा! यह एक ही उपाय है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एकान्त हो जाता है। तो सम्यक् एकान्त ही है। बात सच्ची। वे कहें, एकान्त हो जाता है, एकान्त। चिल्लाहट मचाये इसके लिए चिल्लाहट मचाये।

मुमुक्षु : अनुभव मार्ग मोक्ष का।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'अनुभव चिन्तामणि अनुभव है रसकूप।' छोटे लड़के थे न खेलते थे? खबर है? मामा का घर कितना? कि दीपक जले उतना। ऐसा कहते थे। खबर है? लड़के खेलते, तब हमारे यहाँ स्कूल में किसान के थे न! रस का कूप, ऐसा कुछ बोलते सही, भूल गये। ऐ बलुभाई! छोटे लड़के खेलते हैं न? ऐसा कुछ बोलते। मैं भूल गया। रस का कूंपा... ऐसा बोलते थे। चला तो आता है खेल में भी ऐसा, हों! वह रस का कूप तो आत्मा। कूंपो अर्थात् समझे? शीशा। यह शीशा होता है न काँच का। रस का कूंपा कुँआ है। आनन्द का कुँआ है, अन्दर डोल डालकर निकालना हो, उतना निकाल। उसमें एकाग्र हो, उतना निकले, उतना निकाल। समझ में आया? धर्मी जीव का धर्म, आत्मा की दृष्टि करके अनुभव करना, वह धर्मी का धर्म है। समझ में आया? कठिन काम, भाई!

'अचिरात्' अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करता है... क्रमबद्ध कहाँ गया तब अब? यह तो कहते हैं, अल्प काल में प्राप्त करता है। वह क्रम में ऐसा है कि आत्मा अनुभव करता है, उसे अब अल्प काल में ही केवलज्ञान होता है। ऐसा ही भगवान ने देखा और ऐसा ही क्रम में भाव है। '**अचिरात्**' का अर्थ ऐसा करे। देखो! '**अचिरात्**' कहा है

इसमें। एकदम थोड़े काल में मोक्ष जाये। तुम कहते हो कि काल में-काल में ही मोक्ष जाये। जिस समय में मोक्ष जाने का हो, उस काल में जाये। कालनय आता है न? कालनय और अकालनय—दो हैं। प्रवचनसार में अन्तिम नय आते हैं न? ४७। ४७ समझे? ४७। कालनय से मोक्ष जाये, अकाल में मोक्ष जाये, ऐसा है। अरे! सुन न!

अकाल में का अर्थ कि उस समय में दूसरे पुरुषार्थ आदि हैं, उसे अकाल कहा है और जिस समय में हुआ है, उसे काल कहा है। बाकी काल में ही मोक्ष जाये। समझ में आया? जो भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप है, उसकी अन्तर्दृष्टि करके, एकाग्र होकर आत्मा को वेदे अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्रगट करे, वह आत्मा को वेदे, उसे अनुभव करे, उसे थोड़े से काल में केवलज्ञान लेने का क्रम है। उसे लम्बा काल नहीं होता। एक या दो भव में उसकी केवलज्ञानदशा मुक्ति प्रगट होती है। किसी को उस भव में होती है काल हो तो। अभी केवलज्ञान का काल नहीं है। उसे अल्प काल में, मुक्तस्वरूप भगवान को पकड़ने से तो पर्याय में मुक्ति अल्प काल में ही होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम को पकड़ने से वह भावबन्ध है, भावबन्ध है। भावबन्ध में मोक्ष का कारण कहाँ से आवे? आहाहा!

इसमें क्या संशय है? देखो, आचार्य-मुनि कहते हैं। ऐसा स्वरूप जो वेदे, उसे अल्प काल में ही मुक्ति है। संशय क्या? समझ में आया? यह अनुभव केवलज्ञान को बुलाता है, ऐसा आता है धवल में। बुलाता है, आओ... आओ... आओ... आहाहा! ऐई! मनुष्य! यहाँ आओ। ऐसा कहते हैं न लोग? ऐई! लड़के! यहाँ आओ। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि मति-श्रुतज्ञान आत्मा का अनुभव केवलज्ञान को बुलाता है, ऐई! केवलज्ञान लाओ नजदीक में। आहाहा! कहो, रतिभाई! देखो! यह धर्मी के मीठे बोल अन्दर का, हों!

शुभ-अशुभ परिणाम को भिन्न रखकर अपने आत्मा के स्वभाव में अभेदपना जो स्वभाव का है, उसमें अभेद होकर अनुभव करना, उसे अभेदपना केवलज्ञान अल्प काल में प्रगट होगा ही। संशय क्या? भगवान ने कब देखा होगा? भगवान ने कितने भव देखे होंगे? अरे! कितने-फितने (कहाँ) भगवान ने देखे? यह तूने किया तो

भगवान ने देखा कि तुझे अल्प काल में केवलज्ञान होगा, ऐसा भगवान ने देखा है, ले। समझ में आया? इसमें सन्देह क्या? संशय को स्थान क्या? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तैयार ही है। केवलज्ञान पड़ा है अन्दर में, उसकी तो प्रतीति की है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर में आ रहा है। एक बार यह बात चलती थी न, भाई! बहुत वर्ष की बात है। (संवत्) १९८५। लोग बहुत... बोटाद में तो बहुत लोग भरते हैं। व्याख्यान भी लोगों को कानजीस्वामी वाँचने बैठे हैं, कानजीमुनि बैठे हैं। ढ़ेरों लोग। ८५ के (वर्ष)। चालीस वर्ष पहले की बात है। लोग तो चींटियों की तरह उमड़ते थे। ऐसी बात चलती थी। पाँचवाँ अध्ययन चलता था लोकसार। समयसार का चारित्र का अधिकार था। उसमें ऐसा अधिकार आते-आते... लोग ऐसा बोले कि ओहोहो! महाराज को फिरते केवलज्ञान फिरता है। तब, हों! ४० वर्ष पहले सम्प्रदाय में थे तब।

मुमुक्षु : अब तो बहुत नजदीक आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब तो अल्प काल है, अब लम्बा काल है ही नहीं। समझ में आया? यह तो ७२ में कहा था, विवाद आया तब। भगवान ने देखे, उतने भव होंगे, उसके बिना अपने पुरुषार्थ क्या करें? भगवान ने तुम्हारे देखे होंगे, हमारे भव-बव नहीं। ऐई! ७२ के फाल्गुन शुक्ल १३। भव-बव हमारे नहीं। भगवान ने देखे नहीं हमारे भव। देखे कहाँ से? यहाँ भव कहाँ थे? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कहते हैं कि अरे! इसमें क्या संशय? आहाहा! देखो तो सही। लो, यह गाथा पूरी हुई। कितनी हुई यह? यह ४० हुई। तुम्हारे ८० और ४० का था न यह। आया था न ८० और ४०, देखो। पृष्ठ ८० था और गाथा ४० थी।

अब ४१वीं शुरु हुई। यह पाँच भाव की बात करते हैं। अन्दर पारिणामिकभाव भी लेंगे।

णो खइयभावठाणा णो खयउवसमसहावठाणा वा।
ओदइयभावठाणा णो उवसमणे सहावठाणा वा॥४१॥

गाथा में चार है, टीका में पाँच लेंगे। वे चार समझाने हैं तो पाँचवाँ भी समझाना पड़े न! समझ में आया? उसमें आता है स्तवन में। 'मोटाने उत्संग...' खोळो... खोळो... खोळो समझते हो? उत्संग अर्थात् खोळो। ... माँ के गोद में बैठा हो, उसे भय क्या? भय होगा? गोद में बैठा हो, माँ की गोद में बैठा हो। ऐसा कहते हैं कि हे नाथ! 'मोटाने उछरंग, बैठाने शी चिन्ता, तेम... सेवक थया निश्चिंता।' आहाहा! यह कहते हैं, देखो! 'मोटाने उछरंग बैठाने शी चिन्ता, तुम प्रभु परम प्रसाद सेवक थया निश्चिंता।' आहाहा!

भगवान का जहाँ अनुभव हुआ और दृष्टि जमी, कहते हैं कि अब क्या चिन्ता? बैठे, बड़े की गोद में बैठे हैं यहाँ तो। आहाहा! भगवान के घर में बैठे हैं। जिसमें मोक्ष पके, ऐसे भगवान के घर में हैं, बाहर में हैं नहीं। ऐसा कहते हैं, समझ में आया? ऐसे प्रभु... आता है। करण कषाय भक्ति कषाय... बाहर से बात है। श्रीमद् ने लिखा है। रतिभाई! श्रीमद् में आता है न?

अशेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे।
इससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे॥

ऐसे अन्तर होने पर देखते देखते हैं।

अशेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे।
इससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे॥

अपने देश में पूर्णता को प्राप्त करूँगा। देखो! कितना निःसंशयभाव! यहाँ कहते हैं, संशय कैसा?

(संवत्) १९७७ के वर्ष में प्रश्न उठा था, हों! कि ऐसा छद्मस्थ कह सकता है? पंचम काल के मति-श्रुतज्ञानी ऐसी बात (करे)? ऐसा प्रश्न देवीदासभाई ने किया। ऐई! तुम्हारे घेवरिया ने। हरखचन्दभाई थे, हरखचन्द सेठ। वे थे और ... भवानी। कच्छ। कच्छी नहीं थे? भवानी, तीन थे। वहाँ आये थे। ७७ के वर्ष में, ऐसा कैसे?

ऐसा कैसे अर्थात् क्या? मति-श्रुतज्ञान की ताकत की तुमको खबर है? मति-श्रुतज्ञान... भगवती (सूत्र) में ऐसा कहते हैं कि मति-श्रुतज्ञान की निर्मलता सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को जाने। तब तो अभी समयसार हाथ नहीं आया था। समझ में आया? ७७ की बात है। संवत् १९७७। मति-श्रुतज्ञान का जोर... भगवती में ऐसा कहा है, कहा, इतना है कि सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव जाने। भले परोक्ष है परन्तु परोक्ष प्रमाण है या नहीं? या अप्रमाण है? समझ में आया? परन्तु ऐसी आत्मा की मति-श्रुत में सामर्थ्य है, वह बैठती नहीं तो इसे आत्मा की सामर्थ्य कैसे बैठे? आहाहा! पर्याय की अभी इतनी सामर्थ्य! आहाहा! उसे तो ऐसा रंक मानकर बैठा है न, मानो भिखारी। ऐई, नेमिदासभाई!

तीन लोक का नाथ, तेरी पर्याय की जेब में तीन लोक और लोकालोक समा गये हैं, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा, कहते हैं कि जहाँ दृष्टि में लिया और वेदन हुआ, बस! उसे तो अल्प काल में केवलज्ञान (होनेवाला है)। इसमें संशय क्या? कहते हैं, समझ में आया?

इस ४१ गाथा में, चार भाव परमस्वभाव में नहीं है, ऐसा बतलाना है।

नहिं स्थान क्षायिकभाव के, क्षायोपशमिक तथा नहीं।
नहिं स्थान उपशमभाव के, होते उदय के स्थान नहिं॥४१॥

टीकाः—चार विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा पंचम भाव के स्वरूप का यह कथन है। क्योंकि मूल तो शुद्धभाव अधिकार चलता है न? ऐसा कहते हैं। शुद्धभाव कहो या पंचमभाव कहो या पारिणामिकभाव कहो, ध्रुवभाव कहो, नित्यभाव कहो, सामान्यभाव कहो, सहजात्मस्वरूप का भाव कहो। समझ में आया? कहते हैं कि **चार विभावस्वभाव...** भाषा देखो! आत्मा की पर्याय में ये रागादि भाव उदय हो, वह तो विभावस्वभाव है ही, परन्तु उपशम सम्यग्दर्शन, उपशमचारित्र हो, वह विभावस्वभाव है। क्योंकि उसमें निमित्त के अभाव की अपेक्षा आती है।

क्षयोपशमभाव जो ज्ञान का—स्वसंवेदन का ज्ञान का, वह भी विभावस्वभाव है। क्योंकि वह एक समय की पर्याय कर्म के अभाव से उत्पन्न होती है, इतनी अपेक्षा, इसलिए उसे विभावस्वभाव कहा है। अरे! क्षायिकभाव—केवलज्ञान और केवलदर्शन।

आहाहा! समझ में आया? केवलज्ञान और केवलदर्शन मुक्तिस्वरूप पर्याय, कहते हैं कि वह क्षायिकभाव एक समय की पर्याय है। उसे हम यहाँ विभावस्वभाव कहते हैं। आहाहा! अभी तो महाव्रत के परिणाम को विभाव मानने में इसे पसीना उतर जाता है। समझ में आया? उसे यहाँ तो कहते हैं कि क्षायिकभाव विभावस्वभाव है। सुन!

जो एक समय की पर्याय की दशा का वर्णन है... पंचास्तिकाय में आता है न? कर्म बिना चार भाव नहीं होते, ऐसा आता है। वह निमित्त है न निमित्त? उदय में कर्म का निमित्त है। है स्वयं से उदय, हों! और क्षायिक, उपशम, क्षयोपशम भी कर्म के अभाव की अपेक्षावाली पर्याय है। निरपेक्ष त्रिकाली परमभाव में वह नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : बात नयी लगती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लगती है? लगत है? सुनी नहीं न कभी। नयी लगती है इसे। देखो, क्या कहते हैं?

चार विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा... स्वरूप तो चार का कहना है भाव में, परन्तु उसके **द्वारा पंचम भाव के स्वरूप का यह कथन है।** आहाहा! यह लिखा है अभी का है? यह सोनगढ़ का है? यह नहीं समझते, वाँचना नहीं आता, समझना नहीं आता और जहाँ मूल बात आवे, ऐ... सोनगढ़वालों की बात है। आहाहा!

कहते हैं, टीका है न देखो! **'चतुर्णां विभावस्वभावानां स्वरूपकथनद्वारेण पंचमभावस्वरूपाख्यानमेतत्।'** आहाहा! ४१ वीं गाथा में पद्मप्रभमलधारिदेव महासन्त मुनि हैं, उनके मुख में से आगम झरता है, उसमें अन्दर है लेख। यह परमागम झरता है। आहाहा! देखो! यह मुनि को भी मानते नहीं अभी कितने ही। इस टीका को... टीका को... है न, सुना है तुमने? वे रतनचन्दजी मुखत्यार हैं। क्योंकि यह समझने जाये तो उनका एक भी रहता नहीं। इसलिए इसकी टीका भी रद्द। आचार्यों का चाहिए।

मुमुक्षु : मुनि का नहीं चलता?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि कहते हैं कि पंच महाव्रत विकल्प है और अन्दर में

निर्विकारी परिणति है। ऊपर कहा न? मैं इस पद को अनुभव करता हूँ। मुनि की दशा के योग्य अनुभव है। आगमचक्षु हैं सिद्धान्त, महापरमेश्वर पद है वह। समझ में आया? आगे तो कहा है इसमें। अरे! ऐसे मुनि में और केवलज्ञानी में अन्तर मानते हैं, (तो) हम जड़ हैं, ऐसा लिखा है। एक कलश है न? कितना कलश है? ऐई! कहीं लिखा होगा न। यह तो वापस फेरफार हो जाये न? यह—शास्त्र-पुस्तक दूसरी है। परमावश्यक? यह आया, लो, यह आया। २९६ पृष्ठ पर है। २९६ पृष्ठ है, नियमसार। देखो! इसका पहला २५३ कलश है।

सर्वज्ञ-वीतराग में और इन स्ववश योगी में कभी भी कुछ भी भेद नहीं है... है? प्राणभाई! सूझता है काँच में या नहीं बराबर? तुमको कहता हूँ। है।

(अनुष्टुभ्)

सर्वज्ञवीतरागस्य स्ववशस्यास्य योगिनः।
न कामपि भिदां क्वापि तां विद्मो हा जडा वयम्॥२५३॥

अहो! मुनि, जिनकी दशा तीन कषाय के अभाव की वर्तती है। अहो! मुनि! लोग कहते हैं कि मुनि की निन्दा करते हैं। अरे! भगवान! मुनि की निन्दा होती है? बापू! भाई! तुझे खबर नहीं। समझ में आया? मुनि तो परमेश्वर हैं, बापू! परन्तु मुनि हो वह न? मुनि न हो, उसे मुनि कहना और उसके लिये कहना कि अरे! यह हमको मानते नहीं।

कहते हैं, **सर्वज्ञ वीतराग में और स्ववश योगी...** मुनि, हों! मुनि की बात है। चौथे, पाँचवें की यहाँ नहीं। इन **स्ववश योगी में कभी भी कुछ भी भेद नहीं है...** समझ में आया? **तथापि...** क्या कहते हैं? **अरे रे! हम जड़ हैं...** अपने को मिलाकर बात डाली। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। उसकी दशा में भले पुण्य और पाप के विकल्प-रागादि हों, वह तो विपरीत जहर जैसे भाव हैं। अन्तर का उसका कायमी असली स्वरूप भगवान ध्रुव आत्मा, उसमें तो अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है। उसे कभी खबर नहीं, उसे कभी विश्वास नहीं। अनादि का मूढ़ हुआ जीव, उसे अपनी जाति में कितनी चीज़ है, इसकी खबर नहीं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि अरे! सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा और सन्त... ऐसे सन्त, हों! जिन्होंने आत्मा के आनन्द का खजाना खोला है, पुण्य-पाप के विकल्प राग है, वह मेरे ऐसी एकत्वबुद्धि में जिसने खजाने को ताला लगाया है। समझ में आया? भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप सत्-शाश्वत् (ज्ञान और) आनन्द का कन्द भगवान, उसमें यह विकल्प पुण्य-पाप के, शुभ-अशुभराग आदि के, उन्हें मेरा स्वभाव और यह दोनों एक हैं, ऐसी जो मान्यता, उसने वहाँ मिथ्यात्व का ताला लगाया है अन्दर। चैतन्य को खोलने के खजाने की इसे—अज्ञानी को खबर नहीं। मूलचन्दभाई! आहाहा!

जिसने भगवान आत्मा अन्दर महा चिदानन्दमूर्ति, उसे खोलकर, राग के साथ एकताबुद्धि छोड़कर, स्वभाव के साथ एकत्व करके खोले—उसने खजाना प्रगट किया है। ऐसे जो सन्त, मुनि और सर्वज्ञ वीतराग में, अरेरे! जड़ है (कि जो) भिन्नता मानता है, कहते हैं। है इसमें? आहाहा! राग और पुण्य-पाप के भाव, वे तो पराधीन दुःखी प्राणी पामर हैं। समझ में आया? शरीर मेरा, पैसा मेरा, धूल मेरी, पर में सुख है—यह मान्यता तो इसकी पराधीनता की, भ्रमणा की, अज्ञानी की मान्यता है। वह प्राणी पामर है। चाहे तो राजा हो या चाहे तो देव हो। अरबोंपति हो, परन्तु वह भिखारी और पामर है। उसे अपनी निजसम्पदा की खबर नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा... कहते हैं कि सन्त.... ऐसे सन्त, हों! योगी। ऐसे सन्त कहे, ऐसे। स्ववश—अन्दर आनन्द में वश हो गये। आहाहा! यह पुण्य-पाप के राग के आधीन नहीं होते। पर में सुख है, ऐसी बुद्धि की तो अब वहाँ गन्ध नहीं रही। ऐसे धर्मात्मा-सन्तों में और वीतरागी केवलज्ञानी में अन्तर मानता है, (वह) जड़ है, कहते हैं। जड़ हो? तुझे भान नहीं? चैतन्य जगमगा उठा है अन्दर से। ज्ञानानन्द का सागर भगवान उछलकर अपनी वर्तमान दशा में वीतरागता जिसे परिणमती है, ऐसे सन्त और वीतराग भगवान—उसमें तुझे क्या अन्तर लगता है? ऐई! आहाहा!

कहते हैं कि ऐसा आत्मा, उसमें चार विभावस्वभाव नहीं है। आहाहा! भारी कठिन बात! शरीर-बरीर तो नहीं। यह तो मिट्टी, जड़ है, धूल है। यह तो अजीवतत्त्व है। परमाणु से बना हुआ पिण्ड फू... होकर राख में उड़ जायेगा। इतनी राख भी नहीं

होगी। हवा आवे तो उड़ जाये। वह तो जड़ है, वह कहाँ आत्मा था? सुन न! परन्तु अन्दर में पुण्य और पाप के, दया, दान, व्रत के और काम, क्रोध के, भोग के आदि के परिणाम होते हैं, वे भी विकार और मैल और जहर है। आहाहा! उससे भिन्न भगवान है, उसमें चार पर्यायें नहीं, ऐसा कहते हैं। राग भी नहीं और क्षायिकभाव भी नहीं। ऐसा कहकर परमस्वभावभाव, परमस्वभावी वस्तु चैतन्यदल सत् नित्य ध्रुव की दृष्टि कराने को, ऐसा आत्मा है—यह वर्णन करके इसे सम्यग्दर्शन कराने का हेतु है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

- अरे भाई! तेरे जैसा कोई धनाढ्य नहीं! तेरे अन्तर में परमात्मा विराजता है, इससे विशेष धनाढ्यपना क्या हो सकता है? ऐसा परमात्मपना सुनने पर उसे अन्दर से उल्लास उछलना चाहिए। उसकी लगन लगना चाहिए। उसके लिये पागल हो जाना चाहिए। ऐसे परमात्मस्वरूप की धुन लगना चाहिए। सच्ची धुन लगे तो जो स्वरूप है, वह प्रकट हुए बिना कैसे रहे? अवश्य प्रकट हो ही। (5)
- हे भव्य! तू शरीर को न देख! राग को न देख! एक समय की पर्याय को न देख! तेरे पास पूर्णानन्द प्रभु स्थित है, उसे देख। अरे भगवान! तू पूर्णानन्दस्वरूप समीप में ही स्थित है, वह दूर कैसे रह सकता है?—ऐसे दिगम्बर सन्तों की वाणी मार-फाड़ करती—झपकारा करती आती है कि तेरे समीप में पूर्णानन्द प्रभु स्थित है, उसे तू आज ही देख! आज ही स्वीकार कर और हाँ पाड़! हाँ पाड़ने से हालत हो जाये, ऐसा तू पूर्णानन्द का नाथ है। (6)

— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, दृष्टि के निधान

भाद्र शुक्ल ३, रविवार, दिनांक - १४-०९-१९६९
गाथा-४१, प्रवचन-६

नियमसार, शुद्धभाव अधिकार, ४१वीं गाथा की टीका। जरा यह अधिकार अपूर्व है। यहाँ कहते हैं कि **चार विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा पंचम भाव के स्वरूप का यह कथन है।** कहो, सेठी! पारिणामिकभाव का कथन है। सेठी का प्रश्न था न? पारिणामिकभाव अर्थात्? यह नीचे कहेंगे। अन्दर में स्पष्टीकरण देंगे। समझ में आया? पारिणामिकभाव का परिणामी... भाषा है न? **परिणाम से जो भाव हो, वह पारिणामिकभाव है।** यह आयेगा। यह तो पारिणामिक अर्थात् क्या? पहले पेरेग्राफ का अन्तिम शब्द है। है सेठी? पहले पेरेग्राफ की चौथी लाईन का अन्तिम। **परिणाम से जो भाव हो, वह पारिणामिकभाव है।** इस गाथा में। है? हाथ आया?

परिणाम से जो भाव... परिणाम अर्थात्? सहज स्वभाव, पारिणामिकस्वभाव। जिसे किसी कर्म के निमित्त के सद्भाव की या असद्भाव की अपेक्षा नहीं। सहजस्वरूप नित्यानन्द ध्रुव चैतन्य भगवान, शाश्वत् असली स्वभाव, उसे परिणाम से भाव हो, वह पारिणामिकभाव कहा जाता है। उस भाव की दृष्टि करने से, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र... यह मोक्षमार्ग है न? मोक्ष का मार्ग नियमसार है। यह मोक्ष का मार्ग, परमस्वभाव एकरूप परिणाम से सहजस्वभावरूप भाव, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होते हैं। समझ में आया?

इसलिए कहते हैं, **चार विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा पंचम भाव के स्वरूप का यह कथन है।**

अब, **कर्मों के क्षय से जो भाव हो,...** भाव अर्थात् पर्याय—अवस्था। जिसमें... नीचे अर्थ है, देखो। कर्म के क्षय में। **कर्मों के क्षय में; कर्मक्षय के सद्भाव में।** सद्भाव अर्थात् अस्ति में। **(व्यवहार से कर्मक्षय की अपेक्षा, जीव के जिस (पर्याय) भाव में आये, वह क्षायिकभाव है।)** क्या कहते हैं? आत्मा में क्षायिकभाव एक समय की पर्याय है। वह प्रगट हो, तब उसे व्यवहार से कर्म निमित्त जो है, उसके क्षय की अपेक्षा

जिसमें निमित्तरूप से, उसे क्षायिकभाव की पर्याय—भाव—अवस्था कहा जाता है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म बातें हैं।

यह है सही, ऐसा बतलाना है। यह है। जिसमें कर्म के अभाव की... क्षय अर्थात् अभाव की, जिसमें निमित्त के अभाव की अपेक्षा आती है, ऐसी एक पर्याय आत्मा में (होती है)। क्षायिकभाव के केवलज्ञान, केवलदर्शन भेद आयेंगे। यह एक समय की क्षायिक शुद्ध पूर्ण पर्याय है। वह भी यहाँ आवरणसंयुक्त कही गयी है। समझ में आया? उसमें और उसमें है, देखो! पीछे है। ये चार भाव आवरणसंयुक्त है... आवरणसंयुक्त है। ८५ पृष्ठ पर है। आवरणसंयुक्त अर्थात् कि जिसमें कर्म के—निमित्त के क्षय की अपेक्षा है, इस अपेक्षा से उसे आवरणवाला कहा जाता है। सूक्ष्म बात है। कही थी न?

वस्तु भगवान आत्मा परमस्वभाव, जिसका अतीन्द्रिय आनन्द परमभावस्वभाव ऐसा अनादि-अनन्त आत्मा का स्वभाव है, वह नित्य स्वभाव है, वह नित्य है, उसे यहाँ शुद्धभाव कहा जाता है। उस शुद्धभाव में, वर्तमान पर्याय में—अवस्था में... जिस अवस्था में कर्म के अभाव की—क्षय की—नाश की व्यवहाररूप से निमित्तरूप से अपेक्षा आवे, उस पर्याय को यहाँ क्षायिकभाव कहते हैं और इसलिए उसे आवरणवाला, ऐसा कहते हैं। उस निमित्त की अपेक्षा आयी न? ऐसा। आवरण था, उसका अभाव हुआ, परन्तु आवरण का अभाव हुआ, इतनी अपेक्षा केवलज्ञान की पर्याय में, केवलदर्शन की पर्याय में इतनी अपेक्षा आती है, इसलिए वह भाव आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

कर्मों के क्षय से जो (पर्याय) भाव हो,... भाव अर्थात् पर्याय—अवस्था। द्रव्य को भी भाव कहा जाता है, गुण को भी भाव कहा जाता है और वर्तमान पर्याय को भी भाव कहा जाता है। जहाँ जिसे लागू पड़े, वहाँ उसे समझना। यहाँ भाव पर्याय की अपेक्षा से है। भगवान आत्मा परमस्वभावी भगवान की दशा अर्थात् हालत में केवलज्ञानावरणीय प्रकृति का अभाव.... अभाव है। इतनी सद्भावता उसकी आयी, ऐसी जो केवलज्ञान की पर्याय, वह क्षायिकभाव से है, परन्तु वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। छद्मस्थ को तो है नहीं, तथापि केवलज्ञान की क्षायिक पर्याय, वह भी जीव को... वह एक समय की दशा है।

केवलज्ञान भी आत्मा में एक समय ही रहता है। समझ में आया? दूसरे समय में केवलज्ञान दूसरा, तीसरे समय में तीसरा। क्योंकि वह पर्याय है और पर्याय है इसलिए एक समय में तो क्षय—नाश हुए बिना नहीं रहती। भले वैसा का वैसा केवलज्ञान दूसरे समय में हो, तथापि उसकी स्थिति तो एक समय की ही है। सेकेण्ड के असंख्य भाग—एक समय इसकी स्थिति है; इसलिए वह आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! और त्रिकाल जिसकी स्थिति है, (ऐसा) नित्यानन्द ध्रुव वज्रबिम्ब, जो ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुण—शक्ति का ध्रुव तत्त्व, ऐसा जो त्रिकाली स्वभावभाव, वह आश्रय करनेयोग्य, नजर करनेयोग्य, अवलम्बन करनेयोग्य... समझ में आया? वह परमस्वभावभाव है। उसकी अपेक्षा से क्षायिकभाव भी अपरमभाव कहा जाता है। वह परमभाव नहीं। बलुभाई! सूक्ष्म है यह। ऐसे का ऐसा पकड़ में आये, ऐसा नहीं है। यह नियमसार आया है।

मुमुक्षु : पकड़ में आये ऐसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : पकड़ में आये ऐसा ही होता है यह। परन्तु अब इसे मस्तिष्क में काम आना चाहिए न?

यह आत्मा... शुद्धभाव अधिकार है। शुद्धभाव पर्याय की यहाँ बात नहीं। यह ऊपर है न शुद्धभाव अधिकार? शुद्धभाव त्रिकाल ध्रुव, उसका ही अधिकार, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के लिये उसका ही आश्रय और अधिकार है। दूसरे का अधिकार नहीं। नटुभाई! समझ में आया? आहाहा! जिसे मोक्षमार्ग प्रगट करना है, जिसे अनन्त काल में नहीं हुई आत्मज्ञान कला मोक्ष के कारणरूप प्रगट करनी है, उसे तो त्रिकाली ध्रुव शुद्ध स्वभाव का ही आश्रय लेना पड़ेगा। उसके बिना वह पर्याय प्रगट नहीं होगी। कहो, मूलचन्दभाई! यहाँ तो अभी कहीं का कहीं चलता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, यह करो... यह करो... यह करो। यह तो उदयभाव में आ गया। यहाँ तो क्षायिकभाव की पर्याय आश्रय करनेयोग्य नहीं, तो फिर उदयभाव की राग की क्रिया, वह तो आलम्बन करनेयोग्य है ही नहीं। वह तो विभाव और विकार है। समझ में आया? वह क्षायिकभाव है।

कर्मों के क्षयोपशम से जो (पर्याय) भाव हो, वह क्षायोपशमिकभाव है। अब इससे कम विकास। यह पूर्ण विकास है—क्षायिकभाव आत्मा की पर्याय में—अवस्था

में पूर्ण विकास है। परन्तु है वह एक समय की अवस्था। इसलिए जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो, उसे तो त्रिकाली परमस्वभाव का ही अवलम्बन और आश्रय करना चाहिए। आहाहा! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न! आयेगा, देखो!

अब क्षयोपशम से जो भाव हो अर्थात् जो आत्मा की ज्ञान, दर्शन, वीर्य की, श्रद्धा की अवस्था के विकास में जिसे कर्म के निमित्त का आंशिक क्षयोपशम हो, ऐसी जिसमें अपेक्षा हो, उस दशा को क्षयोपशमदशा कहते हैं। वह क्षयोपशमदशा की पर्याय भी धर्मी के लिये आश्रय करनेयोग्य नहीं है। समझ में आया? धर्मी जीव को—जिसे धर्म करना है और धर्म नहीं, वहाँ पर्याय में धर्म (रूप) परिणमन करना है, ऐसे धर्मी जीव को—तो यह त्रिकाली परमस्वभाव, ध्रुवस्वभाव का आश्रय लेने से ही धर्म की दशा प्रगट होती है। यह क्षयोपशमभाव हुआ।

कर्मों के उदय से जो भाव हो, वह औदयिकभाव है। राग, द्वेष, गति। इसका स्पष्टीकरण आयेगा। दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वह उदयभाव है। क्योंकि कर्म के उदय की जिसमें निमित्तता है। उदय होता है स्वयं से, परन्तु जिसमें कर्म के पाक के निमित्तता की अपेक्षा है, ऐसा जो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, मिथ्यात्व, राग, द्वेष—इन सब भाव को उदयभाव की विकारी अवस्था / पर्याय (कहा जाता है)। ऐसा पहले सिद्ध करते हैं कि यह है। वह है, परन्तु धर्मी जीव को धर्म करने के लिये वह उदयभाव आश्रय करनेयोग्य नहीं। वह शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह शुरुआत में....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुरुआत में ही परमपारिणामिकभाव का आश्रय पहले नम्बर में और पहले शुरुआत में (होता है), यहाँ ऐसा कहते हैं। समझ में आया? महाप्रभु चैतन्य ध्रुव है, नित्य है, अविनाशी है। 'आत्मा द्रव्य से नित्य है', आता है न? 'पर्याये पलटाय।' शरीरादि की दूसरी बात तो उसके घर में रही। स्वयं भगवान आत्मा द्रव्य से

अर्थात् वस्तु से—तत्त्व से अनादि-अनन्त नित्य है। अवस्था बदलती है—पर्याय बदलती है। उसकी पर्याय में भी जो पुण्य का, दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव (हो), उसे यहाँ उदयभाव, निमित्त की अपेक्षा से उसे उदयभाव कहा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : व्रत और महाव्रत किसमें आते होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : महाव्रत-बहाव्रत किसमें आते होंगे? कहा न इसमें। उदयभाव में। समझ में आया? देवीलालजी! महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण भाव किसमें आते होंगे? छह आवश्यक करे, लोंच करे, एक बार आहार करे, खड़े-खड़े आहार करे—ऐसे अट्ठाईस मूलगुण नहीं आते मुनि को? कहते हैं कि वह तो विकल्प है, भाई! वह राग है। वह राग मूल तो एक पर्याय में है, ऐसा व्यवहार से बताया है। मूलगुण तो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द का कन्द, वह आत्मा मूलगुण है। समझ में आया? वह तो असद्भूत-व्यवहारनय का विषय कहकर उस भूमिका में ऐसे ही प्रकार के विकल्प की मर्यादा होती है, ऐसा बतलाने को उसे असद्भूतव्यवहारनय से उसे मूलगुण कहा है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय असद्भूत?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग है न।

मुमुक्षु : .... मूलगुण?

पूज्य गुरुदेवश्री : मूलगुण तो त्रिकाली ध्रुव ज्ञानानन्द, वह मूलगुण है। सद्भूतव्यवहारनय से अन्दर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र या केवलज्ञान हो, वह मूलगुण है, सद्भूतव्यवहार से। असद्भूत से (शुभ) राग (मूलगुण है) और परम निश्चय में भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द की खान ध्रुव जो है, वह मूल है, उसे मूलगुण कहा जाता है। स्वरूपचन्दभाई! ऐसा तो कहीं सुना नहीं हो उसमें—वाड़ा में भी, कितने वर्ष गये। हैरान कर दिया लोगों को बेचारों को। उसे सत्य सुनने को भी मिलता नहीं, वह कब समझे? कब विचार करे? कब रुचि करे और कब स्वभाव सन्मुख ढले?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा करो, यह करो... यह करो... अन्दर। यह किया ऐसी

क्रियायें तो ओहोहो! बढ़ गया। मिथ्यात्व में बढ़ा है। समझ में आया? आहाहा!

तीन लोक का नाथ वज्रबिम्ब ध्रुव चैतन्यप्रभु, जिसमें तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसी अनन्त पर्याय के थोक पड़े हैं उसमें। ध्रुवरूप से, नित्यरूप से, सदृश्यरूप से, सामान्यरूप से ऐसा परमस्वभावभाव, उसे पारिणामिकभाव कहा जाता है। समझ में आया?

कर्मों के उपशम से जो भाव हो, वह औपशमिकभाव है। कर्म के दबने से, जैसे पानी में मैल नीचे बैठ जाये, उसी प्रकार कर्म बैठ जाये, और ऐसी पर्याय जिसमें हो, उसमें कर्म के उपशम की अपेक्षा आती है, उस पर्याय को उपशमभाव (कहते हैं)।

सकल कर्मोपाधि से विमुक्त,... अब आया। सेठी! **सकल कर्मोपाधि से विमुक्त,...** यह भी एक निमित्त की अपेक्षा की। **सकल कर्मोपाधि से विमुक्त, ऐसा परिणाम से जो भाव हो,...** अर्थात् कि कर्म उपाधि शब्द से? कर्म की अस्ति भी नहीं और कर्म की नास्ति, वह भी एक उपाधि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ कहते हैं न! कहते हैं, जाने नहीं देते।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु ध्रुव चैतन्य नित्य वस्तु है... नित्य वस्तु है... सत् नित्य वस्तु है। उस चीज़ को कर्म के निमित्त की अस्ति की उपाधि है परन्तु उसके अभाव की भी एक उपाधि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अभावरूप उपाधि भी जिसमें नहीं, ऐसा कहते हैं। नवनीतभाई! जिसमें कर्म का अभाव आवे, वह भी एक पर्याय हुई, तब अभाव हुआ। वस्तु में तो कर्म के सद्भाव और अभाव की अपेक्षा है ही नहीं। अभाव कहाँ करना था? किसका? अभाव किसका होना? वह तो वस्तु है। समझ में आया?

भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप... पूर्ण इदं ध्रुव। कहते हैं कि ऐसा जो भाव—ऐसा जो स्वभाव जिसे यहाँ शुद्धभाव कहा, उसे कर्म का उदय निमित्त है, इसलिए यहाँ भाव हुआ... हो भले स्वयं से। और उसका अभाव हुआ, इसलिए भाव हुआ, वह तो क्षायिक, उपशम में जाता है। कर्म का अभाव हुआ और यहाँ पुरुषार्थ है उस प्रकार का,

तब उसे क्षयोपशम, उपशम और क्षायिक इस दशा में जाता है, यह बात। परन्तु यह आत्मा का त्रिकाली भाव स्वभाव है, उसमें तो कर्म का अभाव, इतनी एक उपाधि भी उसे लागे नहीं पड़ती। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसमें है ही नहीं। कर्म का निमित्तपना भी नहीं और निमित्त का अभाव... वह तो पर्याय में निमित्त का अभाव लागू पड़ता है। वस्तु को लागू नहीं पड़ता। आहाहा! पण्डितजी! यह तो अलौकिक बात है। आहाहा!

ऐसा भगवान ज्ञान, दर्शन, आनन्द से ध्रुवरूप... ध्रुव... ध्रुव अर्थात् नित्य शक्ति का पिण्ड जो है, उसे तो ज्ञानावरणीयकर्म का अभाव हुआ, ऐसा कहना, वह भी एक उपाधि है। ऐसी उपाधि जो वस्तु में है नहीं। आहाहा! एकान्त निरपेक्ष। अभी तो बाहर में शोर मचाते हैं। ऐसा करना, यह किया, यह करे तो होगा। अरे! भाई! यहाँ तो प्रभु विराजता है न, महाप्रभु। एक समय की क्षायिक पर्याय भी व्यवहार आत्मा है। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय, केवलदर्शन की पर्याय, केवली भगवान की निर्मल पूर्ण पर्याय, वह भी व्यवहार आत्मा है; निश्चय में वह है नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो अलौकिक मार्ग की पद्धति है। समझ में आया? ध्रुव भगवान आत्मा जिसे, कहते हैं कि कर्म के अभाव की भी अपेक्षा पर्याय में लागू पड़ती है; द्रव्य को लागू नहीं पड़ती।

क्या कहा? **सकल कर्मोपाधि से विमुक्त,...** अर्थात्? कि कर्म का निमित्तपना है, वह उपाधि है और निमित्त का अभाव होना, वह भी एक .... अपेक्षा से उपाधि है। वस्तु जो त्रिकाल ज्ञायकभाव परम कारणप्रभु, जिसमें अनन्त-अनन्त सिद्ध की पर्यायें पड़ी हैं, ऐसा ध्रुव स्वभाव, उसे कर्म के अभाव की भी जहाँ अपेक्षा नहीं। कि भाई! कर्म का अभाव हो और यहाँ पर्याय में पुरुषार्थ से क्षायिकभाव हो, ऐसी अपेक्षा त्रिकालीभाव में है नहीं। धन्नालालजी! कठिन मार्ग, भाई! आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा। परन्तु लोग कहीं गोते खाते हैं, मिलता नहीं, मिलता नहीं। कहीं न कहीं उल्टा मिलता है।

सकल कर्मों की... आठों कर्मों के अभाव की भी जिसमें अपेक्षा नहीं, ऐसा

कहते हैं। क्योंकि वह तो वस्तु है वह है। उसमें अभाव और सद्भाव की अपेक्षा तो पर्याय में लागू पड़ती है। समझ में आया? आहाहा! अरे! जिसके ज्ञान में भी क्या चीज़ है और किस प्रकार से है? यह समझ में भी न आवे, तो वह स्वभाव-सन्मुख ढले किस प्रकार? उसके स्वभाव का उसे माहात्म्य किस प्रकार आवे? समझ में आया? शास्त्र पढ़-पढ़कर रटे। रटकर इसका ऐसा होता है और इसका ऐसा होता है। भाई! तुझे तेरा भगवान पूर्ण प्रभु... द्रव्यार्थिकनय अर्थात् द्रव्य जिसका विषय है, ऐसा द्रव्यार्थिकनय, उसका जो ध्येय, विषय ध्रुव, कहते हैं कि उसे तो कर्म का अभाव निमित्तरूप से हो, व्यवहाररूप से... कर्म का अभाव तो परद्रव्य है न? अर्थात् परद्रव्य है, इसलिए व्यवहार से उसका अभाव। निश्चय में तो अन्दर में अशुद्धपने का पर्याय का अभाव होकर शुद्धपना प्रगट होता है पर्याय में, वह स्वयं के कारण से। उसमें कर्म के अभाव का निमित्तपना आता है। कहते हैं कि उस वस्तु के स्वभाव में अभाव और सद्भाव की अपेक्षा नहीं है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म बात। ऐसे बड़े दिनों में ऐसी बात! बड़े दिन में अच्छी न आवे तो कब आवे? तब आवे, मुश्किल से इकट्ठे हों। भाई! तुझे करना यह पड़ेगा। यह किये बिना कहीं सुख और धर्म का मार्ग नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी बात चलती है न! चलती है अभी। यह पूरी गाथा ही ऐसी है। सब गाथायें ऐसी हैं।

सकल कर्म... वह चार बात करके चार भाव की। क्षायिक, क्षयोपशम, उदय और उपशम। ... फिर लिया। यह सकल कर्म की अपेक्षा, अर्थात् कर्म है, उसकी तो बात नहीं। परन्तु कर्म का अभाव, ऐसा व्यवहार से लागू पड़े जिसे अपेक्षा। व्यवहार से। निश्चय से तो अपनी निर्मल पर्याय प्रगट होती है, तब वहाँ कर्म का अभाव कर्म में उसके कारण से होता है। परन्तु वह तो वर्तमान पर्याय—अवस्था को वह व्यवहार लागू पड़ता है। समझ में आया? भगवान शुद्ध ध्रुव चैतन्य परमस्वभाव भगवान, जिसे कारणजीव कहते हैं, कारणजीव, कारणपरमात्मा। परमपारिणामिकभाव। यह शुद्धभाव

अधिकार है वह। उस शुद्धभाव को कर्म के अभाव की भी अपेक्षा नहीं। वह तो ऐसा का ऐसा पड़ा है, प्रगटरूप चैतन्य आनन्दकन्द त्रिकाल पड़ा है। आहाहा! कहो, माणेकलालभाई! पर्याय... पर्याय कहाँ गयी?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहा? यह क्या कहते हैं? पारिणामिकभावों में पारिणामिकभाव वह अस्ति बात आयी। क्या आयी यह? वह तो अपेक्षा की। वह तो समझाते हैं कि जिसमें निमित्त का अभाव भी नहीं, ऐसा त्रिकाली अस्ति तत्त्व। यह तो बात करते हैं। क्या कहते हैं यह? ध्यान कहाँ रखते हैं? **परिणाम से जो भाव हो, वह पारिणामिकभाव है।** ऐसा आया या नहीं? यह अस्ति आयी। सहजपने का भाव, जिसमें कर्म के अभाव की अपेक्षा नहीं, ऐसा सहजपने का भाव, उसे पारिणामिकभाव, ध्रुवभाव, नित्य के नित्यानन्द प्रभु को शुद्धभाव कहा जाता है। और उसका आश्रय ले तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। छोटे में छोटी धर्मदशा भी उसके आश्रय से होती है, मध्यमदशा भी उसके आश्रय से होती है, उत्कृष्टदशा भी उसके आश्रय से होती है, एक होय तीन काल में... यह मार्ग है। दुनिया माने, न माने और दूसरे तर्क और कुतर्क करके कहे, परन्तु उससे मार्ग कहीं दूसरा हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

सकल कर्मोपाधि से विमुक्त,... ऐसा कहा न यहाँ तो? अब अस्तिरूप से क्या? **परिणाम से जो भाव हो, वह पारिणामिकभाव है।** ऐसा वापस। परिणामिक नहीं, पारिणामिकभाव... पारिणामिकभाव है। **इन पाँच भावों में, औपशमिकभाव के दो भेद हैं,...** यह तो संख्या बताते हैं। **क्षायिकभाव के नौ भेद हैं, क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद हैं, औदयिकभाव के इक्कीस भेद हैं, पारिणामिकभाव के तीन भेद हैं।**

अब, औपशमिकभाव के दो भेद इस प्रकार हैं—उपशमसम्यक्त्व, और उपशमचारित्र। उपशम सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से वह... समझ में आया? ग्यारहवें में कहा अब। उपशमसमकित की पर्याय चौथे से ग्यारहवें तक होती है और उपशम चारित्र, वह ग्यारहवें में होता है। गुणस्थान समझ में आता है? ... न? पहला—अपूर्व उपशम समकित, वह चौथे गुणस्थान में द्रव्य के आश्रय से, द्रव्य में दृष्टि जाने से उपशम

समकित, पानी में जैसे मैल जाये नहीं, परन्तु मैल बैठ जाये, उसी प्रकार कर्म दब गये हों, अपने पुरुषार्थ के कारण अन्दर में उपशमभाव प्रगट हुआ है, उसमें कर्म दबते हैं, ऐसी एक निमित्त की अपेक्षा है। ऐसा उपशम समकित और उपशम चारित्र, वह ग्यारहवें गुणस्थान में होता है, वह पर्याय है। ऐसे उपशम समकित का और उपशम चारित्र का भी धर्मी जीव को आश्रय और अवलम्बन नहीं होता।

अब उसमें यहाँ भगवान की मूर्ति और मन्दिर का अवलम्बन उत्थापित करना, भारी कठिन पड़े जगत को। ऐई! समझ में आया? वह तो स्वरूप में स्थिर नहीं हो सके, तब कोई शुभभाव होता है, तब उसमें वे निमित्त कहलाते हैं, करता है तब। ऐसे एक निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का व्यवहार है। और एक चर्चा आयी, भाई! कि निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध जो है, वह व्यवहार ही है, यह बात खोटी है। वह बड़ा लेख आया है। गजब परन्तु... कर्म का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, यह तो निश्चय है, ऐसा (वे) कहते हैं। ऐसे दो प्रकार किये। एक आया है। समझ में आया? अरे! भगवान! एक और दूसरे—दो का सम्बन्ध हुआ, यह व्यवहार हो गया।

यहाँ तो एक समय की पर्याय को व्यवहार कहते हैं, सुन न अब! आहाहा! समझ में आया? मूल तो उसे यह स्थापित करना है कि निमित्त सम्बन्ध निश्चय है, इसलिए कर्म का उदय हो तो विकार होता है, ऐसा। विपरीतता घुस गयी है न! यह कहलाता तो है। भाई! यह तो (संवत्) १९७१ के वर्ष से सभा में कहते थे। सभा में, हों! तब तो आठम और पाखी के प्रौषध हों तो एक घण्टे दोपहर में... प्रोषध किये हों न! लाठी की बात है, लाठी। लाठी में चातुर्मास था या नहीं? लाठीवाले हैं या नहीं कोई? इसे कहाँ भान होता है वहाँ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा उसने कब (सुना था)? ५४ वर्ष हुए उसे तो। ७१ के वर्ष। ५४ वर्ष हुए। तब दोपहर के अष्टमी को कोई आवे न हरगोविन्दभाई और यह कानजीभाई... यह वीरचन्द कानजी। कलकत्ता में है न? वे सब प्रोषध करते। जाधवजीभाई! वीरचन्दभाई नहीं? उनके पिता थे, उनके पिता थे। वे आवें, प्रोषध करें।

यह तुम्हारे देसाई। ऐई! जेठा देसाई। तुम्हारे पिता से बड़े थे या छोटे? बड़े वे, उनके काका के पुत्र जेठाभाई और वे सब प्रोषध करते आठम के, पूनम, आठम और अमावस करे वे लोग। चौदश नहीं। स्थानकवासी थे न। फिर सवेरे व्याख्यान हीराजी महाराज (देते थे)। थे न हमारे गुरु। दोपहर में एक घण्टे (मैं वाँचन करता), उसमें रखते थे यह बात। ७१ की बात है।

आत्मा में विकार होता है, उसमें कर्म हो तो होता है, यह बात है नहीं। अपने कारण से... ऐसा पाठ है वहाँ। भले उन्हें अर्थ नहीं आता था। परन्तु मैंने किया था, उसके ऊपर से स्वीकार किया था, उन लोगों ने... ऐसा पाठ है। ... विद्यमान है। छतो, समझ में आया? अब अस्तिवाला है। ... विद्यमान है, अस्ति अर्थात् है। ... अर्थात् पुरुषार्थ की पर्याय में, पुरुषार्थ के कारण से विकार हो, ऐसा विद्यमानपना उसमें है, ऐसा पाठ है। समझ में आया? और आत्मा को यह उपशम समकित आदि हो, वह कर्म उपशम हो तो (होता है), ऐसा नहीं है। वह भी अस्ति उत्पन्न.... अस्ति है, मौजूदगीवाला पुरुषार्थ है। जो पुरुषार्थ द्रव्य की गति करे तो उसे उपशम समकित होता है। उसमें ऐसा कर्म हो और अमुक हो तो उपशम समकित होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! चिल्लाहट मचाये। समझ में आया? ... कहते हैं न! उसमें इतना सब सुना और पढ़ा न हो। समझे न? इसलिए बेचारे... यहाँ तो पहले भगवती वाँचन किया। श्वेताम्बर में भगवतीसूत्र है। १६ हजार श्लोक हैं और सवा लाख (श्लोक प्रमाण) संस्कृत की टीका है। सोलह हजार श्लोक की ऊँचे में ऊँची वह बड़ी पुस्तक। और वह जब पढ़े तब रुपया-रुपया रखावे, स्वर्ण मोहर रखावे। श्वेताम्बर में स्वर्ण मोहर रखे ....साथिया कर दे। ऐसी भगवती(सूत्र) की महिमा उन लोगों को है। यह तो १७ बार भगवती(सूत्र) का वाँचन किया था। १० और ७, परन्तु उसमें कुछ माल नहीं मिलता।

यह समयसार जहाँ हाथ में आया... आहाहा! अशरीरी की बात है, कहा, इसमें। समझ में आया? दामोदर सेठ को कहा था। ... नहीं कहा? ... नहीं कहा? तब तो उसमें थे न हम। यह चीज़—समयसार है, वह अशरीरी सिद्ध करने की बात है, कहा यह। समझ में आया? यह (संवत्) १९७८ की बात है। २२ और २५ = ४७ वर्ष हुए।

पहले जब वाँचन किया (तब कहा) कि यह अशरीरी की चीज़ है, शरीररहित होना हो और सिद्धपद होना हो तो यह मार्ग है। समझ में आया? कहो, पन्नालालजी! कितने वर्ष हुए? ४७ वर्ष। ४७ कहते हैं न तुम्हारे? ४ और ७।

कहते हैं कि यह उपशम सम्यग्दर्शन त्रिकाली द्रव्य के लक्ष्य से, आश्रय से पुरुषार्थ से होता है। वह देव-गुरु के लक्ष्य से और कषाय की मन्दता के लक्ष्य से उपशम समकित नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार उपशम चारित्र।

पश्चात् **क्षायिकभाव के नौ भेद इस प्रकार हैं—क्षायिकसम्यक्त्व,...** हैं उस ओर? यह क्षायिक समकित पर्याय पुरुषार्थ से होती है, परन्तु यह क्षायिक समकित ध्रुव चैतन्य भगवान के अवलम्बन से होता है। लोग ऐसा कहते हैं न कि भाई! क्षायिक समकित तो केवली दुगे... भाई! जहाँ सर्वज्ञ विराजते हो या तीर्थंकर हों, उनके समीप में क्षायिक समकित होता है। भोगीभाई! बात सच्ची। परन्तु उस समीप में व्यवहार से कब कहलाये? कि क्षायिक समकित... द्रव्य का आश्रय करने से क्षयोपशम है (और) द्रव्य में एकाकार विशेष हो, तब क्षायिक समकित होता है। समझ में आया? शास्त्र के कथन ऐसे गोम्मटसार में हैं। केवली दुगे।

देखो! अपने इसमें भी है (उपादान-निमित्त संवाद) देखो भाई! क्षायिक समकित तो... निमित्तवाला प्रश्न करता है कि क्षायिक समकित... केवलज्ञानी, श्रुतकेवली या तीर्थंकर विराजते हों, उनके समीप में क्षायिक समकित होता है। देखो! यह निमित्त की बलवत्ता। हमारे भाई इनकार करते हैं। नहीं, यह बलवत्ता नहीं। यह तो निमित्त वहाँ कैसा था, उसका ज्ञान कराया है। उस क्षण में भी... क्षायिक समकित श्रेणिक राजा को हुआ। श्रेणिक राजा को भगवान के समीप में समवसरण में क्षायिक समकित हुआ। परन्तु वह क्षायिक समकित पर्याय है। वह हुआ तो हुआ अब। वह पर्याय सिद्ध तक ऐसी की ऐसी रहनेवाली है। श्रेणिक राजा अभी नरक में हैं। समझ में आया? हो। नरक में है, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! वह आत्मा तो अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में है। निर्मल पर्याय में है, राग में भी नहीं। आहाहा! श्रेणिक राजा को हजारों रानियाँ

थीं। बड़ा कुटुम्ब, करोड़ों-अरबों के बड़े बँगला—महल थे। उनके दिखाव में भी बड़ा राजदरबार दिखता है। समझ में आया ?... समझ में आया ? देखो! बात तो ऐसी आती है, परन्तु उसे समझ में नहीं आये इसलिए यह बोलते थे। समझ में नहीं आये तो क्या करे ? आहाहा!

कहते हैं, श्रेणिक राजा को क्षायिक समकित हुआ, भगवान के समीप में हुआ... क्या हुआ ? आत्मा के समीप में हुआ है। वह भगवान आत्मा है, उसके समीप में हुआ है। समझ में आया ? क्षयोपशम में अमुक अपेक्षा था द्रव्य की, वह विशेष अपेक्षा हुई तो क्षायिक समकित हुआ। समझ में आया ? और तीर्थंकरगोत्र बाँधा है। श्रेणिक राजा रानी आदि छोड़ नहीं सके थे, आसक्ति थी, अव्रती थे, अविरति सम्यग्दृष्टि थे। समझ में आया ? विशाल करोड़ों-अरबों के महल में उनकी साहेबी। समझ में आया ? लोग तो कहे, लो ऐसा! एक बार हमारे कनुभाई कहते थे। कनुभाई भायाणी। बहुत वर्ष पहले की बात है। (संवत्) १९९४। इस मकान में थे। ८६ में उनका जन्म है न ? तो आठ वर्ष की उम्र थी।

मुझे कहे कि महाराज! तुम ऐसा कहते हो। तीन-तीन रेशमी रजाई में सोवे और वह धर्मी और हम साधारण गद्दे बिछाकर सोवें तो हम अज्ञानी! गजब बात! ऐई! कान्तिभाई! तुम्हारे भाई हैं न कनुभाई ? कन्हैयालाल। वे ९४ में बोले थे। ... मकान हुआ था न तब। उसका ८६ में जन्म, आठ वर्ष हुए। आठ वर्ष की उम्र में कहा था। आप कहते हो कि धर्मी गद्दों में सोता हो, बँगले में सोता हो, उसके कोमल गद्दे और हम यहाँ साधारण में सोते हैं, साधारण खाते हैं तो (भी) हम धर्मी नहीं ? भाई! वह तो पुण्य के उदय के कारण सामग्री हो, परन्तु धर्मी उसमें नहीं है। पुण्य के उदय के प्रकार हैं, वे तो बाहर के हैं। यह तो सामग्री के ढ़ेर हों। तीर्थंकर को केवलज्ञान होता है तो सामग्री कितनी ? इन्द्र को न हो उतनी।

उन लोगों में आता है श्वेताम्बर में। तुम्हारे भगवान ऐसे कि जब अधूरे थे, तब तो अकेले वन में रहते थे। और अब पूर्ण हुए तो अब विशाल समवसरण में बैठे। ये तुम्हारे कैसे भगवान ? ऐसा आता है स्वरूपचन्दभाई! श्वेताम्बर में ऐसा आता है। वह

आर्धकुमार है। सूयगडांग के दूसरे अधिकार में। आर्धकुमार को चर्चा चलती है अन्यमती के साथ। यह महावीर अकेले थे, ध्यान में रहते थे, तब वन में रहते थे और कहे, हम धर्म करते हैं। अब कहते हैं कि हमको तो धर्म का फल केवलज्ञान हो गया। अब यह मांडी इसमें समवसरण की रचना सब, इन्द्र और उनकी सामग्री। इन्द्रों को न हो, उसमें बैठे। रत्नजड़ित गढ़, उनमें बैठे। यह कैसे तेरे महावीर? कहे। अरे! सुन न अब! आहाहा! समझ में आया?

ये तो केवलज्ञानी परमात्मा पूर्ण दशा प्राप्त है। परन्तु तीर्थंकरप्रकृति जो पूर्व में बाँधी थी, उसका पाक ही तेरहवें (गुणस्थान में) आता है। उस समय सामग्री समवसरण और यह। उसकी ऋद्धि अपने साधारण वर्णन की है। अपने भाई ने बनायी है न पण्डितजी ने? तथापि क्या कहे? नजर से देखे उसे खबर पड़े। यह लिखे लिखाये से कहीं उसका माप नहीं आता। वह समवसरण, वह धर्मसभा। चौदह ब्रह्माण्ड के अन्दर ऐसी शोभा कहीं नहीं होती। परन्तु उन्हें क्या है? वे तो केवली हैं। वे तो जैसे जगत के दूसरे पदार्थ, जैसे नरक के स्थान को ज्ञान में देखते हैं, वैसे समवसरण को ज्ञान में इकट्ठा एकसाथ सब जानते हैं। उन्हें जानने के अतिरिक्त है (क्या)? और पूर्व का पुण्य हो तो सामग्री होती है। समझ में आया? धर्मी भिखारी ही हो, ऐसा है कहीं?

वह तो छह खण्ड के बादशाह भरत चक्रवर्ती धर्मी—समकिती थे। छियानवें हजार तो जिन्हें रानियाँ पद्मिनी (जैसी) हों! यह धान के ढोकला वाली नहीं। धान थी तो धान खाया। परन्तु महा उत्तम पुण्यवाले। पद्मिनी जैसी। जिनके वस्त्र में, भ्रमर आवे (ऐसी) गन्ध हो, ऐसा तो शरीर। इसे तो खड़ा रहे तो पसीना गन्ध मारे। समझ में आया? ऐसी छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में बैठा? (—कि) नहीं। परन्तु यह दिखता है न? परन्तु तेरी नजर में। आहाहा! वह तो आत्मा के अन्तर स्वभाव में बैठा है, भाई! तुझे खबर नहीं। अन्तर के मार्ग की श्रेणी की धारा क्या है और कहाँ है—उसकी तुझे खबर नहीं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि वह क्षायिक समकित... यह क्षायिक के भेद चलते हैं। यह पर्याय है और यह आत्मा के समीप से—ध्रुव के समीप से होती है। तब व्यवहार भले

हो। समझ में आया? परन्तु वह बाहर है। (उससे) होवे तब तो सबको होना चाहिए। समझ में आया? अपने उपादान में डाला है यह। वह कहता है कि देखो! क्षायिक समकित समवसरण में अथवा केवली के समीप में होता है। तब उत्तर दिया कि केवली के समीप में तो (बहुत से) क्षायोपशमिक बैठे हैं, (क्षायिक) क्यों नहीं होता, उनसे होवे तो? समझ में आया? अरे! लोगों को भी खबर नहीं होती और कुछ का कुछ हाँकते हैं। और हमको शास्त्र की जानकारी है। भाई! ऐसा नहीं है। वहाँ तो क्षायोपशमिक वाले धर्मी जीव करोड़ों, अरबों बैठे हैं समवसरण में। और क्षायिक होता है, वह सबको नहीं होता। बस! जो कोई द्रव्य के समीप में जाकर निर्मलता प्रगट करे, उसे होता है। बाकी निमित्त हो तो होता है, ऐसा वहाँ रहा नहीं। समझ में आया? कहो, भीखाभाई!

यथाख्यातचारित्र... यथाख्यातचारित्र क्षायिकभाव है। कहते हैं कि वह पर्याय है। वह परम पारिणामिकभाव का आश्रय लेनेवाले को उस यथाख्यातचारित्र का आश्रय नहीं है। बारहवें गुणस्थान में यथाख्यात प्रगटे। ध्यान रखो। तो भी उसे द्रव्य-ध्रुव का आश्रय है। ध्रुव के आश्रय के बाद बारहवाँ उल्लंघकर केवलज्ञान होता है। समझ में आया? तेरहवें से पहले बारहवें गुणस्थान में यथाख्यातचारित्रदशा पर्याय में प्रगट होती है। तथापि उसे जीव को उस यथाख्यात पर्याय का वहाँ आश्रय नहीं है। ध्रुव भगवान आत्मा में उपयोग लगाया है न? उसके आश्रय से केवलज्ञान होता है। समझ में आया? आहाहा! अरे! ऐसा मार्ग वीतराग का, जिसे सुनने को मिलता नहीं, उसे सुने बिना समझ में तो कब आवे? उल्टे रास्ते ले जाये लोगों को कहे, तुमको ऐसा हुआ। अरे! भगवान! ऐसा समय चला जाता है। आहाहा! अमूल्य चिन्तामणि का समय-समय का वक्त... यह ऐसा समय फिर से आना मुश्किल है, बापू! आहाहा! कहते हैं कि यथाख्यातचारित्र, वह क्षायिक पर्याय है, वह कहीं पारिणामिकभाव नहीं, इसलिए वह भी आत्मा को आश्रय करनेयोग्य नहीं। क्योंकि यथाख्यात और क्षायिक समकित में भी कर्म के अभाव की अपेक्षा आती है।

केवलज्ञान और केवलदर्शन... आहाहा! केवलज्ञान और केवलदर्शन क्षायिकभाव की पर्याय है। वह गुण नहीं, वह ध्रुव नहीं, वह नित्य नहीं। आहाहा! शरीर अनित्य...

यह अनित्य... यह अनित्य... ऐसा करते-करते कहे, पर्याय अनित्य है। ले! जेठाभाई! आहाहा! कहते हैं, केवलज्ञान और केवलदर्शन, यह क्षायिकभाव की अवस्था है, वह भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! अपने को—आश्रय करना हो उसे तो होता नहीं। परन्तु दूसरे का केवलज्ञान, यह केवलज्ञान है, ऐसा लक्ष्य करे (तो) विकल्प उठता है। समझ में आया? परमात्मा अरिहन्त, सर्वज्ञ, केवलज्ञानीरूप से महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं। उनका लक्ष्य करने जाये परद्रव्य का तो विकल्प उठता है। उनके लक्ष्य से कहीं समकित नहीं होता। समझ में आया? आहाहा!

तथा अन्तरायकर्म के क्षयजनित दान,... अन्दर, उस स्वरूप का दान पूर्ण प्रगट हुआ। अपने स्वरूप का दान पूर्ण प्रगट हुआ क्षायिकभाव से। दान वहाँ पैसा-बैसा देने की बात नहीं, हों! स्वरूप का दान, पूर्णानन्द प्रभु अन्तर स्वरूप का आश्रय करके पर्याय में अनन्त निर्मलता की पर्याय का दान जीव ने स्वयं आप प्राप्त किया। परन्तु वह पर्याय है, कहते हैं। क्षायिकभाव की पर्याय है। उसे तो कर्म के अभाव की व्यवहार से अपेक्षा आती है, इसलिए वह परमपारिणामिकभाव नहीं और परमपारिणामिकभाव के अतिरिक्त (कुछ) आश्रय और अवलम्बन करनेयोग्य नहीं। आहाहा! गुरु के भक्त होते हैं न! ये पूछते थे कि महाराज! ऐसा कहते हैं न! हम ऐसा कहते हैं। ...भाई! श्रीमद् में आता है न भक्ति। भक्ति करो गुरु की और उसका अवलम्बन करो, तुम्हारा कल्याण होगा। यहाँ इनकार करते हैं, सुन न! आहाहा! उसे यदि ऐसा कहे कि भक्ति से धर्म नहीं होता। हाय...हाय..! यह तो एकान्त है। यह तो भक्ति उड़ाई। मूलचन्दभाई! भगवान! उड़ाई कब? सुन तो सही! भगवान तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव समवसरण में विराजमान हों और उनकी भी भक्ति करे मणिरत्न के दीपक से। वज्र के... समझ में आया? थालियाँ, हीरा की थालियाँ, मणिरत्न के दीपक और कल्पवृक्ष के फूल। जय प्रभु... जय प्रभु... भाई! यह शुभ विकल्प है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिले, ऐसा नहीं? बहिनों-बहिनों को जँचता है या नहीं अब यह? वहाँ सामने है। कहते हैं न। सुना है। अपने को कुछ खबर नहीं। वहाँ महिलाओं

में सामने है जरा। ऐसा कोई कहता था। अपने को कुछ खबर नहीं। कोई कहे तो सुना हो। इस बात को समझे बिना सब धूलधाणी है। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! नियमसार... नियमसार... 'सहेजे समुद्र उल्लस्यो जेमां रतन तणाया जाय, भाग्यवान कर वावरे ऐनी मोतीये मुठीयुं भराय।' समझ में आया? 'सहेजे समुद्र उल्लस्यो ऐमां रतन तणाया जाय, हीणभागी कर वावरे ऐने शंखले मुठीयुं भराय।' उसे शंख हाथ में आवे। समझ में आया? आहाहा! जिसके महाभाग्य हैं उसे, कहते हैं कि यह बात कान में पड़े। समझ में आया? आहाहा!

देखो! इस बार अधिकार यही आया। प्रवचनसार पूरा हो गया न! वह नय का अधिकार सूक्ष्म पड़ा। लेना है क्या? यह आया है हाथ। आवे न ... वर्ष का चौमासा है। समझ में आया? भाई! तेरी नजरें वहाँ डालनेयोग्य है, वह चीज़ तो ध्रुव चिदानन्द है। आहाहा! अन्तर्मुख, पर्याय को अन्तर्मुख झुकाने से तो अन्तर्मुख जो अन्तर वस्तु है, वह ध्येय में आती है। समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान को अन्तराय के क्षय से उत्पन्न हुआ दान, वह क्षायिकदान है। अपना दान अपने को देते हैं। परन्तु वह पर्याय है क्षायिकभाव की। वह भी त्रिकाली भाव नहीं, पारिणामिकस्वभावभाव वह नहीं। **लाभ...** यह भगवान को लाभ मिला अपने स्वरूप की पूर्ण प्राप्ति का। यह लाभ, हों! यह लाभ सवाया तुम्हारे बनिया लिखते हैं न उसमें? बहियों के ऊपर। भाई! लाभ सवाया। धूल में भी लाभ नहीं सुन न! वहाँ कहाँ लाभ था?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे कहाँ गये मलूकचन्दभाई! गये हैं? वहाँ कानाकलाब गये होंगे? ठीक। समझ में आया?

भगवान को लाभ मिला, कहते हैं। किसका? पूर्ण निर्मल शुद्ध पर्याय का। वह लाभ मिला, वह भी कहीं आश्रय करनेयोग्य नहीं है। वह त्रिकाली पारिणामिकस्वभाव नहीं। ऐसी पर्याय का महा कन्द पड़ा है भगवान। सुखकन्द। आता है न उसमें, नहीं? 'कबहु न निजघर आये...' आता है न वह? 'परघर भ्रमत नाम अनेक धराये।' सुखकन्द

प्रभु आत्मा। शकरकन्द होता है न, शकरकन्द? यह शकरकन्द को क्या कहते हैं तुम्हारे? शकरकन्द नहीं कहते? शकरकन्द। कहीं उसमें रेशा नहीं, रेशा नहीं, ताना नहीं, दाना नहीं, कुछ नहीं। शकरकन्द लाल होता है न? और उसे बाफकर शक्कर में खाये न कुछ अवरोध नहीं। बिना दाँत के वृद्ध व्यक्ति, बिल्कुल दाँत न हो, उसे भी (दो तो खा जाये)। शकरकन्द। इसी प्रकार आत्मा आनन्द का कन्द शकरकन्द है। जिसमें कोई विकल्प नहीं, राग नहीं, कुछ भेद नहीं, अकेली अभेद चीज़ है। आहाहा! ऐसी बात गजब।

ऐसा अपना भगवान स्वरूप का लाभ है, वह भी एक क्षायिकभाव की दशा है। वह भी आवरणसहित कहने में आती है। क्योंकि उसमें कर्मक्षयजनित हुआ न? कर्म के क्षय के निमित्तपने का व्यवहार आया। यहाँ पुरुषार्थ किया है, परन्तु वहाँ वह व्यवहार आया न? इसलिए उस लाभ को भी आवरणवाली दशा कहा जाता है।

यह **भोग...** आत्मा के आनन्द का भोग। आत्मा के आनन्द का भोग, वह भी क्षायिक पर्याय है, पर्याय है। राग का भोग, पर का भोग, उसकी तो बात है नहीं। परन्तु अतीन्द्रिय आनन्द का भोग। एक बार भोगा जाये, वह भोग। और **उपभोग...** बारम्बार आनन्द की पर्याय का भोग, वह उपभोग। वह भी पर्याय है। क्षायिक... कर्म के क्षयजनित शब्द प्रयोग किया है न? जनित का अर्थ निमित्त है। यहाँ **उपभोग...** एकबार भोगा जाये, उसे भोग कहते हैं और बारम्बार भोगा जाये, उसे उपभोग। आता है न? यह दाल, भात, रोटी एक बार भोगी जाती है और गहने, मकान आदि बारम्बार भोगे जाते हैं, उसे उपभोग कहा जाता है। इसी प्रकार यहाँ आत्मा में आनन्द की दशा का उपभोग बारम्बार हो, ऐसा केवली को है, परन्तु वह सब क्षायिकभाव और एक समय की पर्याय है। समझ में आया?

और **वीर्य...** प्रभु को अनन्त वीर्य प्रगट हुआ। क्षायिकभाव से प्रगट हुआ। अन्तराय का नाश होकर अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... बल (प्रगट हुआ)। परन्तु वह त्रिकाली बल का पूरा पिण्ड, उसके हिसाब से तो यह तो अंशमात्र है। आहाहा! भगवान में जो वीर्य—बल पड़ा है अन्तर ध्रुव में, उसके बल के समक्ष तो यह

वीर्य अनन्तवें भाग, अनन्ता-अनन्त में भाग की यह पर्याय है। वह पर्याय भी आश्रय करनेयोग्य नहीं अथवा वह पर्याय भी परमपारिणामिकभाव में नहीं और वह परमपारिणामिकभाव उस रूप आता नहीं। सेठी! लो, यह नौ बोल हुए क्षायिक के। पर्यायरूप से है। द्रव्यरूप... ? द्रव्यरूप नहीं, ध्रुवरूप नहीं, परमस्वभावभावरूप नहीं; इसलिए वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। इसलिए उसे आवरणवाला कहा जाता है। नौ बोल को आवरणवाले कहा जाता है। आहाहा! गजब बात! यह केवलज्ञान को आवरणवाला (कहा)। वह आवरण था और इससे अभाव की, व्यवहार से अभाव की अपेक्षा आयी न? समझ में आया? पण्डितजी! ऐसा मार्ग है। आहाहा!

अब, **क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद इस प्रकार हैं—मतिज्ञान,...** लो! मतिज्ञान है न, मोक्ष के मार्ग का कारण मतिज्ञान। मतिज्ञान, जिससे आत्मा ज्ञात हो कि यह आत्मा है। **श्रुतज्ञान...** वह भी पर्याय है। जिसमें कर्म के निमित्त का क्षयोपशम (अर्थात्) आंशिक अभाव का उसमें निमित्तपना आता है। इसलिए वह क्षयोपशमभाव भी त्रिकाली पारिणामिकस्वभाव में है नहीं। आहाहा! उस केवलज्ञान को ध्रुवस्वभाव स्पर्श नहीं करता, ऐसा कहते हैं। केवलज्ञान की एक समय की पर्याय से भी द्रव्य तो दूर वर्तता है। ध्रुव... ध्रुव... आहाहा! कहो, मास्टर! मगनलाल मास्टर कहाँ गये? देखो तो सही! केवलज्ञान की एक समय की पर्याय, उससे ध्रुवपना दूर वर्तता है, उसमें आता नहीं। आहाहा! यह अन्योन्य अभाव। यह अतात्विकभाव इस प्रकार का। अतद्भाव। इस प्रकार का अन्योन्य, हों! वह पुद्गल की पर्याय का अन्योन्य, वह नहीं। पर्याय में द्रव्य का अभाव, द्रव्य में पर्याय का अभाव—अतद्भाव। यह तो अलिंगग्रहण में अपने आया था। समझ में आया? पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! अड़ती नहीं, समझे? छूती नहीं है। केवलज्ञान की पर्याय द्रव्य को छूती नहीं और द्रव्य ध्रुव है, वह पर्याय को छूता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह... यह अठारह बोल में मति-श्रुत आदि....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ४, सोमवार, दिनांक - १५-०९-१९६९
गाथा-४१, प्रवचन-७

यह नियमसार अधिकार है। नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग, आनन्द की पूर्ण प्राप्ति का उपाय। उसमें यह अधिकार शुद्धभाव अधिकार है। शुद्धभाव अर्थात् त्रिकाली नित्यानन्दस्वरूप, ध्रुवस्वरूप, उसे यहाँ शुद्धभाव कहा जाता है। तो कहते हैं कि शुद्धभाव, वह ध्रुव है उसमें, यह चलता अधिकार है, ऐसी पर्यायें उसमें नहीं। क्या कहते हैं? देखो, यहाँ तक आया है अपने।

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान... ऐसे चार (ज्ञान की पर्याय)। ज्ञानगुण त्रिकाली है, उसकी चार अवस्था है। क्षयोपशम, क्षयोपशम है। पृष्ठ ८४। **क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद इस प्रकार हैं...** नहीं? पृष्ठ ८४ है न? गाथा ४२। ४१ है न गाथा? क्या कहते हैं? देखो! कि आत्मा जो ध्रुव चैतन्य एकरूप कायमी असली स्वभाव, उसकी दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होता है और सम्यग्दर्शन के काल में साथ में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान होता है। वह मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सम्यक् होने पर भी वह पर्याय ध्रुव में नहीं है।

मुमुक्षु : आयी कहाँ से?

पूज्य गुरुदेवश्री : आयी ध्रुव में से, ऐसा कहा जाता है, वरना तो पर्याय प्रगट हुई स्वतन्त्र, ऐसा भी है। समझ में आया?

ध्रुव चिदानन्द आत्मा, धर्म करनेवाले को दृष्टि वहाँ ध्रुव में स्थापित करनी है। ध्रुव चीज़ में दृष्टि को स्थापित किये बिना ध्रुवपने का आश्रय नहीं होता और कभी उसे धर्म की दशा प्रगट नहीं होती। इससे यहाँ वर्णन करते हैं कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान (रूप) जो सम्यग्ज्ञान है, वह आत्मा की पर्याय है, पर्याय है। वह पर्याय, त्रिकाली पारिणामिकस्वभावभाव में उसका अभाव है। समझ में आया? इसलिए वह मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि दशा है, वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। शोभालालजी! समझ में आया? क्या कहा सेठ? श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान (कि) जो सम्यग्ज्ञान, आत्मा की निर्मल

पर्याय है, वह भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। क्योंकि एक समय की पर्याय है, उसका आश्रय करने जाये तो उसमें से कहीं नयी पर्याय नहीं आती। वह तो विकल्प उठता है। समझ में आया? वह उसमें नहीं।

मनःपर्ययज्ञान... जो मुनि को होता है। सामनेवाले के मन की भूत, भविष्य की बात कितनी ही जाने, वह पर्याय है, वह अवस्था का अंश (प्रकार) है। उतना आत्मा नहीं। आत्मा ध्रुव चैतन्य है। यह पर्याय है, वह तो व्यवहारनय का आत्मा है, असत्यार्थ आत्मा है, वह त्रिकाली स्वरूप नहीं है। आहाहा! समझ में आया? नित्यानन्द भगवान ध्रुव अनादि-अनन्त नित्यानन्द का कन्द प्रभु का आश्रय करने से, उसका अवलम्बन करने से, उसमें दृष्टि पसारने से सम्यग्दर्शन होता है या उसका आश्रय करने से सम्यग्ज्ञान होता है या सम्यक्चारित्र भी ध्रुव का अवलम्बन लेने से चारित्र की पर्याय वीतरागी होती है, तथापि वह पर्याय आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म। लोगों को तत्त्व की बात सुनने को मिलती नहीं, इसलिए यह क्या कहते हैं? ऐसा उन्हें हो जाता है।

भाई! तू त्रिकाल चिदानन्द कन्द है न! अनन्त सिद्ध समान तेरा स्वभाव एक समय में है। ऐसा जो चैतन्य नित्यानन्द प्रभु, ऐसा परमपारिणामिकभाव, ऐसा कारणरूप स्वभाव, उसमें दृष्टि देने से, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन आदि यह मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट होती है। प्रगट पर्याय हो, वह भी आश्रय करनेयोग्य नहीं है।

मुमुक्षु : .... अपने आप होती रहेगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : होती रहेगी, यह और दूसरी बात है। सेठ! बाहर में वह बीड़ियों में गप्प मारे, ऐसा यहाँ चले, ऐसा नहीं है। कहना तो चाहिए न बराबर, ऐई! अपने आप उत्पन्न हो, यह प्रश्न अभी है नहीं।

यहाँ तो एक समय की जो अवस्था है, वह अंश है, वह त्रिकाली नहीं। और त्रिकाली द्रव्य की दृष्टि दिये बिना पूर्ण आत्मा दृष्टि में पर्याय में प्रतीति में नहीं आता। समझ में आया? वास्तव में तो यह पर्याय का कर्ता पर्याय है। ध्रुव जो है, वह पर्याय का कर्ता नहीं। कहो, भीखाभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार से भेद का कथन है। द्रव्य द्रव्यरूप है... यह व्याख्यान आया है, नहीं? ज्ञानचक्षु पुस्तक आयी है न? ३२० गाथा का अर्थ आया है बाहर। आया है, शोभालालजी! गुजराती। यह हमारे सेठ भी प्रसन्न होते हैं। बहुत अच्छी बात है, कहते हैं। गुजराती है, गुजराती।

मुमुक्षु : खोलकर बताया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब खोलकर बताया है? परन्तु पढ़ा है तुमने? यह बात है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय (कि) जो सम्यग्ज्ञान की दशा है, परन्तु दशा है न? वह कहीं ध्रुव तत्त्व नहीं। आहाहा! एक समय की अवस्था है और एक समय की अवस्था, वह कहीं पूर्ण तत्त्व नहीं। इसलिए पूर्ण तत्त्व जो ध्रुव है, उसमें श्रद्धा को पसारने से जो ज्ञान की दशा होती है, वह भी अवस्था है। अवस्था की दृष्टि करना, वह पर्यायदृष्टि है। समझ में आया? द्रव्यदृष्टि करना, वह यथार्थ दृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? यह वस्तु स्वयं भगवान चिदानन्द की मूर्ति है, उसमें यह चार आश्रय करनेयोग्य नहीं।

इसी प्रकार **कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और विभंगज्ञान,...** यह तो मिथ्याज्ञान है, तथापि यह पर्याय है, वह भी आत्मा का त्रिकाली स्वरूप नहीं। **ऐसे भेदों के कारण अज्ञान तीन; चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन,...** ऐसे तीन भेद से पर्याय दर्शन की है। आँख से देखने में आवे, उसके पहले जो दर्शन हो, उसके बाद जो ज्ञान हो, उसके पहले का जो भाव है, वह चक्षुदर्शन इसकी पर्याय कही जाती है, तथापि वह पर्याय त्रिकाली स्वरूप में नहीं है। समझ में आया?

इसी प्रकार अचक्षु। यह आँख के अतिरिक्त चार इन्द्रियों से ज्ञान होने से पहले... इन्द्रिय से ज्ञान होने से पहले जो उपयोग हो, वह अचक्षुदर्शन पर्याय है। परन्तु अचक्षु दर्शन वह एक समय की अवस्था है। भगवान तो अपरिणामी परमस्वभावरूप ध्रुव है।

उस ध्रुव में वह पर्याय है ही नहीं। आहाहा! भारी, भाई! सेठी! यह पारिणामिकभाव की बात चलती है।

अवधिदर्शन... नहीं। अवधिदर्शन तो एक समय की पर्याय है—अवस्था है। भगवान आत्मा पूरा पर्यायवान अर्थात् द्रव्यस्वभाव है। वह द्रव्यस्वभाव जो ध्रुव चिदानन्द आनन्दकन्द जो नित्यानन्द, उसमें लक्ष्य करने से जो श्रद्धा, ज्ञान हो, वह धर्म है। परन्तु वह धर्म की पर्याय भी त्रिकाली ध्रुव में नहीं है। आहाहा! कठिन काम, भाई! ऐसा वीतरागमार्ग, इसे खबर नहीं। सुना नहीं, सुनने में आता नहीं। बाहर में सिरपच्ची की माथाकूट में मरता है। समझ में आया? कहते हैं, उसमें दर्शन (पर्याय) नहीं।

काललब्धि... क्षयोपशमलब्धि। यह समकित पाने से पहले ऐसी लब्धियाँ होती हैं न? काललब्धि है न? इसका अर्थ क्षयोपशमलब्धि है। **करणलब्धि...** लो, वे कहते हैं न करणलब्धि द्वारा आत्मा प्राप्त होता है। वह पर्याय है, कहते हैं। पर्याय, वह द्रव्य में—ध्रुव में नहीं। ध्रुव है, वह अंश त्रिकाली अखण्डानन्द परमानन्द का पिण्ड कन्द सुखकन्द है। आहाहा! अब यह बात कैसे बैठे? लगे कि ऐसा आत्मा। कहीं नजर से दिखता नहीं बाहर में। बाहर में देखे तो यह देखे शरीर, वाणी। अन्दर में देखे तो राग और द्वेष और पुण्य-पाप। बहुत तो प्रगट अवस्था पर उसका लक्ष्य जाता है। अप्रगट ऐसा भगवान चिदानन्द ध्रुव तत्त्व है, उसे यहाँ भगवान शुद्धभाव कहते हैं और उस शुद्धभाव का आश्रय करके धर्म होता है। बाकी पर्याय का आश्रय करके भी धर्म नहीं होता। स्वरूपचन्दभाई! ऐसा है। आहाहा! यहाँ तो अभी दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम करे, यह उससे धर्म में मदद मिले। अरे! तू कहाँ अटका? भाई! तुझे खबर नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि यह **काललब्धि,...** अर्थात् क्षयोपशमलब्धि, **करणलब्धि, उपदेशलब्धि,...** अर्थात् देशनालब्धि। देशना मिले न, ज्ञानी की, सम्यक्त्व प्राप्त करने से पहले। और **उपशमलब्धि...** अर्थात् विशुद्धिलब्धि। **और प्रायोग्यतालब्धि...** अर्थात् कर्म की घटी हुई स्थिति ऐसा प्रायोग्यलब्धिकाल। **ऐसे भेदों के कारण लब्धि पाँच; वेदक-सम्यक्त्व;...** अर्थात् क्षयोपशम समकित। और **वेदकचारित्र...** अर्थात् क्षयोपशम चारित्र

और संयमासंयमपरिणति... यह श्रावक की संयमासंयम पर्यायदशा, वह भी ध्रुवस्वरूप में नहीं।

मुमुक्षु : यह पाँच लब्धियाँ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका कुछ नहीं। वह तो चाहे जो। यह तो ऐसा.... यह बाद में ऐसे शब्द आते हैं। है न? ३१३ पृष्ठ पर है। ३१३ पृष्ठ पर यह लिया। भाई! ऐसे-ऐसे जीव हैं, तू किसके साथ वाद-विवाद करेगा? अनेक प्रकार की पर्याय की प्राप्तिवाले जीव कोई क्षयोपशम... समझ में आया? किसके साथ वाद-विवाद करेगा? स्वसमय के साथ भी तू सिद्धान्त का वाद करना नहीं, परसमय के साथ तू वाद-विवाद करना नहीं, बापू! जगत की पर्याय की अनेक विचित्रता है। उसे बैठी हो, उसमें से उसे हटना नहीं सुहाता। किसी के साथ वाद-विवाद करना नहीं।

जैसे कोई गुप्त निधान करोड़ों-अरबों रुपये का रत्न मिल जाये, उसे अकेला चुपचाप खाता है। वह कुछ ढोल नहीं पीटता कि मुझे पाँच करोड़ मिले... पाँच करोड़ मिले। ढोल समझते हो? क्या कहते हैं? ढोल। वह गाँव में ढोल पीटते हैं? कि मुझे दस करोड़ रुपयों का एक निधान निकला है। उसे गुप्त रहकर भोगता है।

मुमुक्षु : वह तो कोई दूसरे से बात की जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे से बात करे तो (कहे) लाओ। गोत्रवाला हो, कुटुम्बी हो, फौजदार हो, सब ... वह कहे, हमारे में से निकला है, हमारी जमीन में से निकला है। वह जमीन हमारी है। वह कहे, हमारी जमीन थी। वह हमारा मकान था पूर्व में पचास-सौ वर्ष पहले। हमारे बाप-दादा की थी, इसलिए तुमको विक्रय किया था, परन्तु कहीं वे पैसे नहीं विक्रय किये थे। लाओ हमारा माल। ऐई! यह तो एक बात है। निकलती है, ऐसी निधि उस प्रकार की। उस निधि-निधान को देखकर गाँव में आवाज न करे, उसकी पुकार न करे कि हमको मिला है रे, हमको पाँच करोड़ का निधान मिला। किसलिए? एक ओर बैठकर खा न।

इसी प्रकार कहते हैं कि जिसे ज्ञाननिधि प्राप्त होती है, आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प राग बिना का और एक समय की पर्याय बिना का ध्रुव, ऐसे सम्यग्दर्शन में वह

आत्मा प्राप्त होता है, वह निधि को अकेला भोगता है। बाहर में कहीं प्रसार करता नहीं कि हमको ऐसा हुआ है, हमको सम्यक्त्व हुआ है, हमको ज्ञान हुआ है। उसे रख न तेरे पास अब, बाहर का क्या काम है तुझे? समझ में आया? अज्ञानी तो मानो बाहर में बताऊँ दूसरे को, तो दूसरे मुझे माने कि यह धर्म प्राप्त है और ऐसा है तथा वैसा है। अब सुन न! हैरान करेंगे। उनका संग करना, राजा का, बड़ों का संग करना, उसमें राग होता है। समझ में आया? और ऐसे प्रश्न-उत्तर करे कि जिसका समाधान करने को रुकना पड़े, छोड़ न अब यह! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह वस्तु...

कहते हैं कि ऐसे क्षयोपशमभाव आदि उसमें नहीं है। पर्यायरूप से है, ऐसा वापस सिद्ध किया है। पर्यायरूप है, ध्रुव में वह नहीं। समझ में आया? इस प्रकार **औदयिकभाव के इक्कीस भेद इस प्रकार हैं—नरकगति,...** यह नरक की गति, वह वस्तु में नहीं है। आहाहा! **तिर्यंचगति...** निगोद की गति आदि से लेकर पशु। **मनुष्यगति और देवगति, ऐसे भेदों के कारण गति चार;...** वह भी आत्मा के ध्रुवस्वभाव में नहीं है। और गति का आश्रय करनेयोग्य नहीं कि मनुष्यपना मिला, इसलिए उसके कारण हमको धर्म होता है।

मुमुक्षु : संज्ञीपना मिला हो तो होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ ऐसा है नहीं। यहाँ तो गति का चलता है न? मनुष्यगति मिली, इसलिए धर्म होता है, देवगति मिली न, उसके कारण फिर अपने को धर्म होता है। देवगति हो तो भगवान के पास जाया जाता है। धूल भी नहीं जाये। सुन न! वहाँ भगवान के पास जाये, वह तो बाहर की बात है। इस भगवान के पास गये बिना धर्म हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

सच्चिदानन्द पूर्णानन्द सत् शाश्वत् आत्मा, ध्रुव परमस्वभाव, कारणप्रभु, कारणजीव और शुद्धभाव उसे कहते हैं। उस पर दृष्टि देने से... वह निष्क्रिय आत्मा है। आहाहा! जिसमें गति आदि की क्रिया नहीं। दया, दान के विकल्प की क्रिया भी उसमें नहीं। ऐसा निष्क्रिय ध्रुव भगवान, उसे अन्दर दृष्टि देने से उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है, तथापि हुई पर्याय भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! जगत से बहुत अन्तर (है) न! वाडा में—

सम्प्रदाय में यह बात सुनने को मिलती नहीं। आहाहा! बेचारे को ऐसा समय ऐसा मनुष्यदेह... अरे! पर्यायदृष्टि छोड़ और द्रव्यदृष्टि कर, ऐसी बात है यह तो। आहाहा! चार गति (हुई)।

यह क्रोध, मान, माया, लोभ चार कषाय। उसमें शुभ और अशुभ दोनों भाव आ गये। यह शुभ और अशुभ, पुण्य और पाप के भाव वे चार कषाय में आ जाते हैं। दया, दान, व्रत के परिणाम भी कषाय में आते हैं। वह राग है। हिंसा, झूठ, चोरी के परिणाम भी अशुभभावरूपी कषाय है। वे चार कषायें हैं। आत्मा में—ध्रुव में नहीं। समझ में आया? वह जिसमें नहीं उसमें उसका आश्रय लेनेयोग्य है। समझ में आया? चार कषायें।

स्त्रीलिंग, पुलिंग और नपुंसकलिंग,... वे नहीं। यह भावलिंग की बात है, हों! स्त्री के विषय की वासना, पुरुष की वासना, यह तीन लिंग—भावलिंग उदयभाव है। विकार की वासना स्त्री को उत्पन्न हो, पुरुष को हो, नपुंसक / पावैया को (हो), वह विकृत अवस्था ध्रुव भगवान आत्मा में नहीं है। समझ में आया? ऐसी निर्लेप चैतन्य दीवार ध्रुव पड़ी है। ऐसी निर्लेप दीवार द्रव्यस्वभाव का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है, बाकी दूसरा कोई उपाय है नहीं। समझ में आया?

सामान्यसंग्रहनय की अपेक्षा से मिथ्यादर्शन एक,... है। सामान्यरूप से। वैसे इसके प्रकार असंख्य हैं। मिथ्यादर्शन एक है। वे आत्मा के स्वभाव में नहीं। ध्रुवस्वभाव जिसमें से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, वह धर्म की पहली दशा। आहाहा! सम्यग्दर्शन, वह धर्म की पहली दशा, पहला सोपान है। इसके बिना धर्म नहीं होता। वह सम्यग्दर्शन भी ध्रुवस्वभाव की दृष्टि करने से सम्यक्त्व होता है। समझ में आया? कितने ही शोर मचाते हैं न कि यह भगवान के दर्शन से समकित होता है, प्रतिमा के दर्शन से होता है। बापू! वह तो शुभभाव होता है। वह तो जैसे नामस्मरण होता है, वैसे स्थापना का, पूजा आदि का भाव (होता है), परन्तु वह सब शुभविकल्प राग है। वह राग धर्म नहीं है और राग के आश्रय से धर्म नहीं होता। समझ में आया? कठिन बात, भाई! अब ऐसे बड़े-बड़े पाँच लाख के मन्दिर बनाना... आगम मन्दिर। और कहना कि उसके आश्रय से धर्म नहीं। ऐई! मूलचन्दभाई! यह नवनीतभाई रहे, लो न, सेठिया कहलाये न प्रमुख।

लो! फूलचन्दजी के गुणगान आये हैं कि आगम तो गुरु कहलाता है, आगम तो देव कहलाता है। इसलिए आगम का बराबर रक्षण करना। ऐई! इन्हें पढ़ाया है या नहीं? इन्हें बनाना है न वजुभाई को। पाँच लाख से ऊपर अक्षर। अब वे अक्षर उत्कीर्ण करना और वह सब.... कहते हैं कि वह तो चीज़ जब बनने की होती है न, तब वह परमाणु से बनती है। ऐई! शोभालालजी! और उसमें जीव का शुभभाव निमित्त होता है, परन्तु वह शुभभाव भी पुण्य है। (परन्तु) पुण्य है, इसलिए पुण्य (भाव) न आवे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? बहुतों के ऐसे लेख आते हैं। एक आज आया है। यह वे वासुदावाले। ऐई! वासुदा है न तुम्हारे? क्या गाँव वह? वासुदा। वृद्ध है, वृद्ध। ८० वर्ष के रतिलाल कैसे? ८० वर्ष की उम्र के हैं। रतिलाल या ऐसा नाम है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वे रतिचन्द। उनका पत्र है, लो। रतिचन्द रामलाल। गंजवासोदा। उन्हें ऐसा कि मोक्ष तो... वे लोग मूर्ति नहीं मानते न? इसलिए यह लोग मूर्ति मानते हैं और मूर्ति की पूजा, वह करनेयोग्य नहीं, ऐसा करके तू भावमोक्ष को उत्थापित करता है। परन्तु सुन तो सही। यह भगवान का नामस्मरण करना, वह तो विकल्प-राग है, वह कहीं धर्म नहीं, परन्तु आये बिना रहता नहीं। ऐसी वस्तु की स्थिति है। बड़ा लम्बा पत्र है। पहले एक बार आया था। मानो कि यह मूर्ति मानते हैं न, इन लोगों को मूर्ति की आवश्यकता नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य ने तो अध्यात्म की बात की है। अरे! भगवान! तुझे खबर नहीं, भाई! यह जैसे नामस्मरण भगवान का, परमेष्ठी का नाम... णमो सिद्धाणं, लो यह भी विकल्प-राग है। इसी प्रकार भगवान की मूर्ति की स्थापना और पूजा आदि का भी शुभराग होता है, तब कोई कहे, वह तो शुभराग है, इसलिए नहीं करना। परन्तु नहीं करने की कहाँ बात है? आये बिना रहता नहीं। णमो अरिहंताणं। ऐसा करते हैं या नहीं? चाहे जैसा हो तो। गणधर चार ज्ञान के धनी। लो! शास्त्र रचे तो णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं... णमो लोए सव्व अरिहंताणं। तीन काल के लोक में विराजते अरिहंतों को मेरा नमस्कार। लो, वह तो विकल्प है। आता है, उसे पुण्य कहने में आता है, धर्म नहीं। तब कहते हैं कि धर्म नहीं, इसलिए करना नहीं।

करना नहीं अर्थात् क्या परन्तु? आहाहा! इसलिए अपने को धर्म करना। समझ में आया? परन्तु भाई! वह धर्म करनेवाले की दृष्टि तो आत्मा के ऊपर होती है। और आत्मा के आश्रय से धर्म होता है, बाकी किसी के आश्रय से धर्म नहीं होता। परन्तु धर्म में जब तक वीतरागता न आवे, तब तक भगवान का नामस्मरण, ऐसी स्थापना और पूजा का भाव भी आये बिना रहता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न। उस पाप से बचने के लिये ऐसा भाव होता है, परन्तु धर्मी उसे पुण्यबन्ध का कारण जानता है, उसे धर्म नहीं जानता। इसलिए कोई कहे कि कर दो निषेध। निषेध करो। परन्तु निषेध करना अर्थात् क्या? वीतरागभावरूप से परिणम जाये तो उसे फिर शुभभाव नहीं होता। समझ में आया? और शुभभाव आया, इसलिए उसकी दृष्टि शुभ के ऊपर है, ऐसा भी अर्थ नहीं है। आहाहा! गजब बातें, भाई! स्याद्वाद का सही... णमो अरिहंताणं। अन्दर से लो। णमो सिद्धाणं। इस शास्त्र को सुनना, वह शुभराग है, लो। वाणी पर है, जड़ है, पर है। उसे सुनने का भाव वह शुभ विकल्प है। तब कहे, यह तो पुण्य विकल्प है न? करना नहीं। करना नहीं, (ऐसा नहीं), परन्तु आये बिना रहता नहीं, सुन न! समझ में आया? तथापि उसे धर्मी धर्म नहीं मानता। आहाहा!

काम ऐसा है, वीतराग के तत्त्व की समझण करना। किसी ने कुछ खींचा और किसी ने कुछ खींचा। किसी एक व्यक्ति ने और प्रतिमा उत्थापित की, तब दूसरा कहे, प्रतिमा से ही धर्म होता है, मोक्ष होता है। धूल भी नहीं होता, सुन न! यहाँ तो साक्षात् समवसरण में त्रिलोकनाथ विराजते हों, उसका जो पूजा का भाव आवे, वह भी एक शुभभाव है, धर्म नहीं, संवर-निर्जरा नहीं। ऐई! आहाहा!

धर्म तो... भगवान! इस विकल्प का आश्रय तो नहीं, परन्तु जो राग आया, वह एक समय की पर्याय है, उसका ज्ञान होता है। वह ज्ञान हो, उसका भी आश्रय नहीं। त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप भगवान है, उसका अन्तर आश्रय करे, तब सम्यग्दर्शन होता है, उसके आश्रय से सम्यग्ज्ञान होता है। शास्त्र पढ़-पढ़कर पढ़े तो उसके आश्रय से ज्ञान

नहीं होता, ऐसा कहते हैं। ज्ञान अन्दर में से आना चाहिए। ध्रुव चिदानन्द की खान है। आया था न अपने ? आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ सनाथ है। उसकी दृष्टि होने से जो ज्ञान होता है, उसे ज्ञान कहा जाता है, तथापि वह ज्ञान पर्याय है, वह ध्रुव में नहीं है। इसलिए पर्याय का आश्रय, अवलम्बन करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! कठिन काम, भाई! आवे और आश्रय करनेयोग्य नहीं। नवनीतभाई!

कहते हैं कि मिथ्यादर्शन, वह भी जीव में नहीं। **अज्ञान एक और असंयमता एक,...** अज्ञान आता है न, बारहवें गुणस्थान तक ? जीव में है नहीं। अज्ञान अर्थात् ? बारहवें गुणस्थान तक अभी केवलज्ञान का अभाव है, तब तक (अज्ञान है)। मिथ्याज्ञान, ऐसा नहीं परन्तु अज्ञान। मिथ्याज्ञान तो उनमें—तीन में गया। यह अज्ञान भी वस्तु के ध्रुवस्वरूप में नहीं है। **असंयमता,...** असंयमपना—अचारित्रपना, वह पर्याय में है, वस्तु में नहीं। जहाँ ध्रुव है, वहाँ दृष्टि देनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया ?

असिद्धत्व एक... लो, यह असिद्धपना। चौदहवें गुणस्थान तक असिद्धपना कहा जाता है। वह भी द्रव्य में—ध्रुव में नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? और छह लेश्या। **शुक्ललेश्या, पद्मलेश्या, पीतलेश्या,....** ये तीन शुभलेश्या, शुभभाव है। वे पुण्य के भाव हैं तीन। शुक्ललेश्या, पद्मलेश्या, पीतलेश्या, ये तीन शुभभाव हैं। दया, दान, व्रत के शुभभाव हैं। वे भी द्रव्य में नहीं हैं। और **कापोतलेश्या, नीललेश्या और कृष्णलेश्या,...** ये तीन पाप परिणाम के भाव हैं, वे भी वस्तु—द्रव्य में महाप्रभु विराजता है चैतन्य भगवान नित्यानन्द अक्रिय, निष्क्रियबिम्ब, उसमें यह छह लेश्यायें नहीं हैं। बलुभाई! यह बहुत विचारने, समझने जैसा है। थोड़ा बहुत ऊपर-ऊपर से समझकर बैठ जाये, उसमें कुछ मिलान नहीं खाता, ऐसा कहते हैं। परन्तु धन्धा करना दस-दस लाख का ... अमुक... उसमें कितना समय जाये। उसमें यह थोड़ा-बहुत समझ ले, इसलिए हो जायेगा, ऐसा नहीं होता।

पारिणामिकभाव के तीन भेद इस प्रकार हैं.... अब पारिणामिकभाव के तीन भेद। सेठी! सेठी! एक **जीवत्वपारिणामिकभाव...** यह जीव का त्रिकाली पारिणामिकभाव। एक भव्यत्वपारिणामिक (अर्थात्) भव्य जीव की भव्य पर्याय। और **अभव्यत्व-**

पारिणामिकभाव। यह जीवत्वपारिणामिकभाव भव्यों को तथा अभव्यों को समान होता है... जीवत्व परिणाम तो भव्य-अभव्य दोनों को होता है। जीवत्वस्वभाव, त्रिकाली जीवत्वस्वभाव, जीवत्वशक्तिवाला पूरा तत्त्व ध्रुव। समझ में आया? वह तो भव्य, अभव्य—दोनों को होता है।

भव्यत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को ही होता है;... उन तीन का स्पष्टीकरण करते हैं। जीवत्वपारिणामिकभाव भव्य, अभव्य दोनों को होता है। भव्य, अभव्य पर्याय, परन्तु उनके परिणाम जो त्रिकाली जीवत्वभाव, वह तो दोनों को होते हैं। ध्रुव पारिणामिकस्वभाव अभव्य को भी होता है और भव्य को भी होता है। लो! परन्तु भव्य को आश्रय करके प्रगट हो सकता है, अभव्य को आश्रय का व्यवहार नहीं हो सकता। उसकी योग्यता में वह नहीं है।

ऐसा दृष्टान्त दिया है। मेरुपर्वत के नीचे सोना है। सोना... सोना... वह कहीं किसी को काम नहीं आता। इसी प्रकार अभव्य को परमपारिणामिकस्वभाव है, परन्तु उसका आश्रय लेकर पर्याय प्रगट हो, ऐसी उसकी योग्यता नहीं है। समझ में आया? महानिधान है अभव्य को भी। 'सर्व जीव है ज्ञानमय' अथवा 'सर्व जीव है सिद्धसम।' योगसार में आता है। सर्व जीव है ज्ञानमय। अभव्य भी ज्ञान का पिण्ड ही है। वस्तु तो ज्ञान का पिण्ड है। परन्तु पर्याय में वह अन्तर का आश्रय ले, ऐसी उसमें योग्यता नहीं है। समझ में आया? कठिन बात, भाई!

देखो न! जीवत्वपारिणामिकभाव (अर्थात्) त्रिकाली जीवपना, आनन्द, ज्ञान, शान्ति आदि जो उसका जीव का जीवपना, आत्मा का आत्मपना त्रिकाली, ऐसा ध्रुवस्वभाव परमपारिणामिकभाव भव्यों को तथा अभव्यों को दोनों को होता है। **भव्यत्वपारिणामिक-भाव, भव्यों को ही होता है;...** यह दो बात करके। **अभव्यत्वपारिणामिकभाव, अभव्यों को ही होता है। इस प्रकार पाँच भावों का कथन किया।**

पाँच भावों में... अब क्षायिकभाव पहला है, उसकी पर्याय की बात करते हैं। **क्षायिकभाव, कार्यसमयसारस्वरूप है।** यह केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक समकित, इसमें सुख आ गया। और दान, लाभ, और भोग, उपभोग—ऐसी पर्याय सर्वज्ञ परमेश्वर

को प्रगट होती है, उन्हें कार्यसमयसार कहते हैं। पर्याय—प्रगट दशा को कार्यसमयसार कहते हैं। त्रिकाली भगवान को कारणसमयसार कहते हैं। मोक्षमार्ग को भी कारणसमयसार (कहते हैं, परन्तु) वह पर्यायरूप से। परन्तु त्रिकाली ध्रुव जो है, वह कारणसमयसार है। ध्रुव चिदानन्द शुद्ध आत्मा की दृष्टि करने से—उस कारण की दृष्टि करने से—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शुक्लध्यान, केवलज्ञान होता है। समझ में आया? साधारण मस्तिष्कवाले को तो (ऐसा होता है कि) यह सब क्या कहते हैं? जैन में जन्मे, उसे खबर नहीं होती। वाडा में ५०-५०, ६०-६० वर्ष बिताये तो भी उसे ऐसा लगे कि यह क्या कहते हैं?

वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव की वाणी में ऐसा तत्त्व आया है कि यह क्षायिकदशा जो है.... ऊपर नौ बोल कहे न? वह कार्यसमयसार **त्रिलोक में प्रक्षोभ के हेतुभूत तीर्थंकरत्व द्वारा प्राप्त होनेवाले सकल-विमल केवलज्ञान से युक्त तीर्थनाथ को (तथा उपलक्षण से सामान्य केवली को) अथवा सिद्धभगवान को (क्षायिक भाव) होता है।** क्षायिक पर्याय किसे होती है? कि वह तीर्थंकर को होती है, केवल (ज्ञान होने पर) या केवली को होती है और या सिद्ध को। तो वह पर्याय भी एक समय की दशा है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, कैसा भाव है? यहाँ तीर्थंकर को पहले लिया है मुख्य तो। केवलज्ञान, केवलदर्शन, यह तीन लोक के प्रक्षोभ के हेतु... खलबलाहट। तीर्थंकर के जन्मकल्याणक प्रसंग में तीन लोक में आनन्दमय खलबलाहट होती है। भगवान जहाँ जन्मे, वहाँ नारकी के जीव को भी जरा साता होती है। आनन्द अर्थात् यह, हों! अतीन्द्रिय आनन्द की बात नहीं है। एक तीर्थंकर जन्मे और अतीन्द्रिय आनन्द दूसरे को हो, तब तो अतीन्द्रिय आनन्द हो वह मोक्ष गये बिना रहता नहीं। समझ में आया?

भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव इतनी पुण्य प्रकृति लेकर आये हैं कि जिनके जन्म काल में चौदह ब्रह्माण्ड में जरा साता हो जाती है।—ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। खलबलाहट (का अर्थ) किया है न? जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष इस प्रसंग में तीन लोक में आनन्दमय खलबलाहट होती है। अहो! देवों को ऐसा लगता है कि कौन जन्मा? कौन जन्मा? अवधिज्ञान लगाने पर (खबर पड़ती है

कि) ओहो! तीर्थंकरदेव का भरत में, महाविदेह में या ऐरावत में जन्म हुआ। स्वयं नीचे उतर जाते हैं। जहाँ देखे। आसन के ऊपर बैठे हों, महा असंख्य देव के स्वामी हैं। उनकी पुण्य की प्रकृति क्या कहना? उनकी पवित्रता तो समकित दृष्टि है वे तो। सौधर्म इन्द्र और ईशान इन्द्रादि। परन्तु उनकी पुण्य प्रकृति ऐसी होती है कि हजारों सूर्य के—चन्द्रमा के प्रकाश जैसा तो उनका शरीर होता है। समझ में आया? वे एकदम ऐसी खलबलाहट (होने पर), क्या हुआ? उपयोग लगाते हैं, ओहो! तीर्थंकर का भरतक्षेत्र में अवतार हुआ है। नीचे उतर जाते हैं, सात कदम भरकर वन्दन करते हैं।

कहते हैं कि परन्तु ऐसा क्षायिकभाव... आहाहा! वह त्रिकाली वस्तु का स्वरूप नहीं। पर्याय है। समझ में आया? आहाहा! जगत नाशवान, दुनिया नाशवान, यह केवलज्ञान की पर्याय नाशवान। अविनाशी तो भगवान ध्रुवतत्त्व, वह अविनाशी है। आहाहा! समझ में आया?

सकल-विमल केवलज्ञान से युक्त तीर्थनाथ को अथवा सिद्धभगवान को होता है। औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिकभाव, संसारियों को ही होते हैं; मुक्त जीवों को नहीं।—सिद्ध को (नहीं)। यह उदयभाव, क्षयोपशमभाव संसारी को होते हैं। समझ में आया? केवलज्ञानी हो तीर्थंकर, वहाँ भी उन्हें अभी केवलज्ञान में जरा उदयभाव होता है, (परन्तु) उन्हें क्षयोपशमभाव नहीं होता।

अब कहते हैं, **पूर्वोक्त चार भाव आवरणसंयुक्त होने से मुक्ति का कारण नहीं हैं।** आहाहा! यह गति—मुक्ति का कारण नहीं। शुक्ललेश्या, शुभभाव, दया-दान का (भाव), वह मुक्ति का कारण नहीं। यह उपशमसमकित और उपशमचारित्र, वह मुक्ति का कारण नहीं। आहाहा! क्षायिक समकित और क्षायिक केवलज्ञान, वह मुक्ति का कारण नहीं। क्यों?—कि चारों ही भाव आवरणसंयुक्त होने से... देखो! इसका अर्थ न समझ में आये तो गड़बड़ करे। लो, यह तो चार भाव को आवरणवाला कहा। सुन न! किस अपेक्षा से कहा है यह? वह तो पर्याय है। पर्याय है, इसलिए कर्म के निमित्त के सद्भाव का उसमें अभाव है, इतनी अपेक्षा आती है, इसलिए उसे आवरणवाला कहा है। त्रिकाली भगवान ध्रुव तत्त्व, वह निरावरण परमस्वभाव है। चैतन्यसूर्य भगवान ध्रुव

अन्दर है, वही निरावरण है। आहाहा! समझ में आया? वे कहते हैं कि टीका करके तो समूलगूं... क्या कहते हैं? क्लिष्ट किया। अरे! तुझे समझना नहीं आता। सुन न!

श्लोक भी क्या कहते हैं यहाँ? '**णो खइयभावठाणा**' कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं कि आत्मा में क्षायिकभाव नहीं। उसका स्पष्टीकरण वहाँ किया है। समझ में आया? आहाहा! क्षायिकभाव भी एक समय की पर्याय है, नाशवान है, नयी उत्पन्न होती है, पुरानी जाती है, नयी उत्पन्न होती है, पुरानी जाती है। आहाहा! भगवान (आत्मा) अविनाशी है अन्दर। समझ में आया?

कहते हैं, इन पाँच भाव में चार भाव तो आवरणसंयुक्त है। इसका अर्थ समझ में आता है इसमें? आवरण अर्थात् उसे आवरण था और उसका अभाव हुआ, इसलिए उसे इस अपेक्षा से आवरणसंयुक्त कहा जाता है। त्रिकाली द्रव्य को आवरण भी नहीं और आवरण का अभाव होना, ऐसा उसमें नहीं। आहाहा! यह तो अलौकिक बात है, सेठ! आहाहा! पूर्वोक्त के... पूर्व में कहे, ऐसा हुआ न? चार भाव अर्थात् चार पर्यायें। चार प्रकार की यह पर्याय जितनी की। ९, १८, २१ और ३ (जो) भेद किये वह मुक्ति का कारण नहीं। आहाहा! यह क्षायिक समकित मुक्ति का कारण नहीं। क्योंकि एक समय की पर्याय है वह तो। त्रिकाल भगवान कैसा... अब आया, देखो!

त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है... भगवान ध्रुव चैतन्य प्रभु, ध्रुव वज्रबिम्ब चैतन्य है त्रिकाली वस्तु स्वयं आत्मा, वह त्रिकाल निरुपाधि जिसका स्वरूप है। तीनों काल जिसे निमित्त और निमित्त के अभाव का उसमें स्वरूप है नहीं। निरुपाधिस्वरूप है। भगवान आत्मा परमस्वभावभाव, परमस्वभावभाव, परमपारिणामिक कारणरूप भगवान वह तो तीन काल में निरुपाधिस्वरूप है। ऐसा तू है। समझ में आया? निगोद का आत्मा भी ध्रुव है, वह (भी) त्रिकाल निरुपाधि ही है। अभव्य का आत्मा ध्रुव जो है, वह भी त्रिकाल निरुपाधिस्वरूप ही है।

त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन... जिसे अंजन अर्थात् मैल नहीं। **निज परम पंचम भाव...** यह निज पंचम परमभाव (अर्थात्) अपना परम पंचमभाव। भगवान का भगवान के पास रहा। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र से भी कहते हैं कि

सम्यग्दर्शन नहीं होता। कथन आवे व्यवहार के, हों! सातवें नरक में वेदना से समकित होता है, भगवान के दर्शन से होता है। वह सब होता है, तब निमित्त कौन था, इसका ज्ञान कराया है। बाकी सम्यग्दर्शन होता है, वह तो आत्मा ध्रुव की अन्तर्दृष्टि करे तो ही होता है। समझ में आया? भगवान के बहुत दर्शन करे, प्रतिमा की बहुत पूजा करे और बहुत भक्ति करे पूरे दिन, (तो) सम्यग्दर्शन होता है? नहीं। समझ में आया? गजब बात, भाई! एक तो पूजा और भक्ति कहना और फिर कहे उससे धर्म नहीं होता और मुक्ति नहीं होती। सेठ! भाई! यह तो शुभभाव होता है, परन्तु वह वस्तु में तो है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि **निज परम पंचमभाव...** अपना परम पंचमभाव। क्योंकि उस पर्याय को भी क्षायिकभाव की अपेक्षा से पारिणामिकभाव की पर्याय कहा जाता है। परन्तु यह तो निज परम पंचमभाव। अपना नित्य स्वभाव कायम वस्तु है न? है, है और है। है... है... है... है... है... है... है... तीनों काल में है। ऐसा 'है', ऐसा ध्रुवतत्त्व अनन्त गुण के पिण्डरूप स्वभाव तत्त्व, वह निज परम पंचमभाव है। लो, सेठी! आहाहा! उसे अन्तर्मुख होकर नजर में किये बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया?

यहाँ तो इन केवलज्ञानादि को बहिर्तत्त्व कहा है, भाई! यह पहली गाथा (३८गाथा) में आ गया है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक समकित और निर्मल वीतरागचारित्र, यह भी बहिर्तत्त्व है, अन्त:तत्त्व नहीं। पहली गाथा में आ गया है। आहाहा! ३८ गाथा में पहली शुरुआत की तब। वह बहिर्तत्त्व है। पर्यायरूप भाव, वह बहिर्तत्त्व है। परमपारिणामिकभाव, वह अन्त:तत्त्व है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : बहुत अच्छी बात आयी, दशलक्षणीपर्व का....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आज है न दशलक्षणी पर्व का पहला दिन है यह। उत्तमक्षमा का सागर तो पड़ा हुआ ही है इसमें। क्षमा करना पर्याय में, वह तो पर्याय व्यवहार है। उत्तमक्षमादि दस प्रकार की जो चारित्र पर्याय (होती है), वीतरागी हों! यह पर्याय है, वह तो। और उसे तो यहाँ आवरणसंयुक्त कहा है। आहाहा! आवरणसंयुक्त अर्थात् कि इसमें कर्म का निमित्त था चारित्र में, उसका अभाव हुआ न? इतनी अपेक्षा

आयी न उसे ? त्रिकाली ध्रुवस्वरूप को आवरण तीनों काल में नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन निज परम पंचम भाव की भावना से... भाषा अब आयी। ऐसा जो ध्रुवस्वरूप है, उसकी एकाग्रता से... भावना शब्द से (आशय यह कि) उसकी एकाग्रता से। लो, वे कहते हैं, भावना अर्थात् कल्पना। नहीं आता ? श्रावक को सामायिक में भी शुद्ध उपयोगरूपी भावना आ जाती है। ऐसा पाठ है। तो उसका अर्थ वे कहते हैं कि भावना अर्थात् कि शुद्ध उपयोग की भावना करता है। वर्तमान शुद्ध उपयोग नहीं। अरे! श्रावक को पंचम गुणस्थान होता है, उसे शुद्ध उपयोग आ जाता है। शुद्ध उपयोग आवे, उसे भावना कहा है। नहीं ? उसमें—किसमें कहा है ? प्रवचनसार। प्रवचनसार न ? कितनी गाथा ली ? जयसेनाचार्य में आता है न ? कितने में आता है ? खबर नहीं ?

मुमुक्षु : तीसरे अधिकार में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीसरे में आता है परन्तु कितनी गाथा में आता है ? कितनी में ? लिख लिया है या नहीं कहीं इसमें ? ४७-४८ कुछ है। यह ४७-४८ इतने में है। यह ४७-४८ इतने में। ४७ है, देखो, चिह्न किया है। देखो, यहाँ तो डबल चिह्न किया है। **'प्रचुरेण शुभोपयोगेन वर्तन्ते ते यद्यपि क्वापि काले शुद्धोपयोगभावनां कुर्वन्ति'** यह। **'शुद्धोपयोगभावनां कुर्वन्ति'** पंचम गुणस्थानवाला सामायिक में होता है। सच्ची सामायिक, हों! यह सामायिक तो विकल्प है, यह कहीं सामायिक-फामायिक नहीं है। देखो, कहते हैं। **'शुद्धोपयोगभावनां कुर्वन्ति' 'शुभोपयोगिनामपि क्वापि काले शुद्धोपयोगभावना दृश्यते, शुद्धोपयोगिनामपि क्वापि काले शुभोपयोगभावना दृश्यते, श्रावकाणामपि सामायिकादिकाले शुद्धभावना दृश्यते...'** श्रावक, समकिती, आत्मज्ञानी, आत्मदर्शी जब सामायिक अर्थात् समता के आनन्द में स्थित होता है, तब उसे शुद्ध भावना अर्थात् शुद्ध उपयोग होता है। शुद्ध उपयोग। आहाहा! समझ में आया ? उसे सामायिक कहते हैं। यहाँ बैठे, अभी मिथ्यादृष्टि राग से धर्म माने और फिर णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... करे। हो गयी सामायिक, लो। पण्डितजी! बाबूलालजी!

अभी तो पुण्य को धर्म माने, देह की क्रिया मुझसे होती है, व्यवहार से निश्चय होता है—ऐसी तो श्रद्धा जिसे पड़ी है मिथ्यात्व की और वह सामायिक करने बैठे। अन्दर स्थिरता तो है नहीं। क्योंकि सम्यग्दर्शन बिना अन्दर की एकाग्रता नहीं आती। णमो अरिहंताणं, पाँच परमेष्ठी गिनकर, णमो अरिहंताणं। उठो, हो गयी सामायिक जाओ। हो गयी एक घण्टे में। वह सामायिक नहीं है।

भगवान सामायिक उसे कहते हैं, परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव यह कहते हैं कि '**श्रावकाणामपि**' श्रावक जो गृहस्थाश्रम में हो, समकिती हो, पंचम गुणस्थानवाला धर्मी हो, उसे भी '**सामायिकादिकाले**' सामायिक आदि अर्थात् सामायिक के अतिरिक्त भी किसी समय शुद्ध उपयोग आ जाता है। ऐसे बैठा हो विचार में, ऐसे करते-करते ध्यान में आ जाता है। शुद्धोपयोग—शुभ से रहित शुद्धोपयोग हो जाता है। २४८ गाथा। २४८ प्रवचनसार। उसकी जयसेनाचार्य की टीका। बाहर में सब बात आ गयी है। तब सामने सामनेवालों ने तर्क किया कि नहीं; यह तो भावना कही है। धूल भी भावना नहीं। अभी सम्यग्दर्शन का भान नहीं वहाँ भावना कहाँ से लाया?

यहाँ तो '**श्रावकाणामपि सामायिकादिकाले**' आदि अर्थात् सामायिक में, कोई प्रोषध में आनन्द में बैठा हो, कोई विचार में बैठने पर अन्दर ध्यान में आ गया हो। समझ में आया? वह वस्त्रसहित हो। आहाहा! श्रावक है न? वस्त्रसहित बैठा हो विचार में अन्दर (और) शुद्धोपयोग हो जाये। यह तो कहते हैं, मुनि को शुद्धोपयोग होवे नहीं अभी तो। मुनि को आठवें में शुद्ध उपयोग होता है। आठवें में शुद्ध होता है। अरे! भगवान! क्या करता है तू? खबर नहीं होती और मोक्ष के मार्ग की बातें करे।

कहते हैं। '**तेषां कथं विशेषो भेदो ज्ञायत**' ऐसा। तो फिर श्रावक को भी शुद्धोपयोग हो जाये और मुनि को तो ऐसा शुभभाव भी आता है। तथापि मुनि को शुद्धोपयोगी कहो और श्रावक को शुभ उपयोगी कहो, उसका कारण क्या? यह तो मुख्यपने का कथन है।'**परिहारमाह-युक्तमुक्तं भवता, परं किंतु ये प्रचुरेण शुभोपयोगेन वर्तन्ते**' समकिती श्रावक है, धर्मी है और बहुत शुभभाव है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा, नामस्मरण, वाँचन ऐसा भाव... '**प्रचुरेण शुभोपयोगेन वर्तन्ते ते यद्यपि क्वापि**

काले शुद्धोपयोगभावनां कुर्वन्ति तथापि शुभोपयोगिन एव भण्यन्ते' तो भी उसे शुभोपयोगी कहा जाता है। पंचम गुणस्थानवाले सम्यग्दृष्टि को पाँचवें गुणस्थान में उसे बहुत शुभभाव देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा, नामस्मरण, वाँचन, श्रवण, सुनना, ऐसा शुभभाव बहुत होता है। शुद्ध उपयोग किसी समय होता है, इसलिए उसे शुभोपयोगी कहा जाता है। समझ में आया?

कहते हैं, '**येऽपि शुद्धोपयोगिनस्ते यद्यपि क्वापि काले शुभोपयोगेन वर्तन्ते**' मुनियों को शुद्धोपयोग ही होता है। शुद्धोपयोग, वही वास्तविक मुनिपना है। मुनि तो शुद्ध उपयोग को अंगीकार करते हैं। मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आ गया है पहले अधिकार में। मुनि शुद्धोपयोगरूपी मुनिपना अंगीकार करे। अट्ठाईस मूल उसमें नहीं कहा। प्रवचनसार में है, उसमें पहले अधिकार में है न। शुद्धोपयोग को अंगीकार करते हैं, वीतरागी पर्याय को अंगीकार करते हैं, समभाव को अंगीकार करते हैं। परन्तु उन्हें किसी समय पंच महाव्रत के विकल्प आदि शुभ भी आता है। इसलिए मुख्यरूप से उन्हें—मुनि को शुद्धोपयोगी कहा है। पाँचवेंवाले को शुभ बहुत बार आता है और शुद्ध किसी समय आता है, इसलिए उसे शुभोपयोगी कहा है। ऐसा। मुख्यपने की अपेक्षा से। समझ में आया?

वापस दृष्टान्त दिया है न, '**बहुपदस्य प्रधानत्वादाम्रवननिम्बवनवदिति।**' यह दृष्टान्त दिया है। बहुत आम हों और थोड़े दूसरे वृक्ष हो तो आम का वन कहलाता है। आम का वन कहलाता है न? लाख, दो लाख आम हो और पाँच-पच्चीस दूसरे वृक्ष हो तो कहलाये क्या? आम का वन। नीम का वन। अब नीम के वन में आम भी होते हैं कितने ही। बहुत आम है और नीम भी बहुत है। आम का वन कहलाता है। इसी प्रकार मुनि को शुद्धोपयोग वास्तविक तो उपयोग वह है उनका, परन्तु किसी समय शुभ आता है, इसलिए शुद्ध उपयोग की प्रधानता से उन्हें शुद्धोपयोगी कहते हैं। श्रावक को शुद्धोपयोग किसी समय आता है। और शुभोपयोग बहुत बार होता है, इसलिए उसे मुख्यरूप से शुभोपयोगी कहा जाता है। आहाहा! मूलचन्दभाई! समझ में आया?

कहते हैं, अरे! अपने यहाँ आया **ऐसे निरंजन निज परम पंचम भाव की भावना**

से.... उस उदय की भावना-एकाग्रता नहीं, क्षायिक समकित पर्याय हुई, उसमें एकाग्रता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! एकाग्रता ध्रुव में है। समझ में आया? सम्प्रदाय में तो अभी क्या वाँचन हो? ढालसागर और रामरास को वाँचे। आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा से संवत्सरी तक दोपहर में ढालसागर आती है न? श्रीकृष्ण अधिकार, रामसागर। वह तो महातूफान की बातें उसमें होती हैं।

यहाँ तो कहते हैं, शान्त... शान्त... भगवान प्रभु, तेरा स्वरूप तो अकेला अविकारी अकषायरस परमस्वभाव तत्त्व है, वह तू और उसमें एकाग्र होना, उसका नाम धर्म। प्रगट हुई धर्म की पर्याय में भी एकाग्र नहीं होना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब, नाथ! अभी तो इसे पकड़ने में देरी लगे। अलौकिक बात है। कैसी? गहरी। अलौकिक बात है। यह तो लोकोत्तर मार्ग है न? यह कहाँ लौकिक मार्ग है? दुनिया के यज्ञ करना, अमुक करना, व्रत करना, भक्ति करना, मन्दिर बना देना पाँच, पच्चीस, हजार, दो हजार। उसमें धूल भी धर्म नहीं, सुन न! समझ में आया?

कहते हैं, अरे! **त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन निज परम पंचम भाव (पारिणामिकभाव की) भावना से....** भाषा देखो! परम पंचमभाव की भावना से **पंचम गति में मुमुक्षु जाते हैं,...** व्यवहार मोक्षमार्ग है या नहीं? आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं बापू! चैतन्यबिम्ब, वज्रबिम्ब है, उसकी भावना अर्थात् इसमें एकाग्रता होने से केवलज्ञान को प्रगट करता है। पहली एकाग्रता होने से सम्यग्दर्शन होता है, विशेष एकाग्रता करने से चारित्र होता है, विशेष एकाग्रता करने से शुक्लध्यान होता है, विशेष एकाग्रता करने से केवलज्ञान होता है। शुरुआत से लेकर पूर्ण दशा ध्रुवस्वभाव की एकाग्रता से होती है। आहाहा! शोभालालजी! आहाहा!

मार्ग तो ऐसा है, भगवान! परन्तु इसे सुनने को मिलता नहीं। कहीं का कहीं बेचारा भटके, जीवन चला जाता है। आग्रह से माने अपनी कल्पना से। सत्य वस्तु का ख्याल भी नहीं कि चीज़ क्या और कहाँ मुझे देखना? वस्तु क्या और कहाँ मुझे देखना कि जिसमें स्थिरता से मुक्ति हो—यह तो खबर ही नहीं होती। भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... माला लेकर बैठे। माला—मणका तो जड़ है। तुझमें

उपयोग जाये तो शुभराग विकल्प है। समझ में आया? वह धर्म-बर्म नहीं। यह अपवास करके बैठे पच्चीस, पचास, सौ.... कोई व्यक्ति कुछ कहता था न, ६० अपवास किये हैं। एक बार आठ-दस करे। उसमें धर्म कहाँ था धूल में? उप तो, आत्मा ध्रुवस्वरूप में उप अर्थात् समीप भाव में जाये, उसे उपवास कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

अरे! **निज परम पंचम भाव की भावना से....** यह पंचम भाव ध्रुव है और भावना, वह पर्याय है। पंचम भाव ध्रुव है और उसमें एकाग्रता वह पर्याय है। ऐसी पंचम गति, वह भी पर्याय है। वह पर्याय है न? सिद्ध (दशा) पर्याय है। **पंचम गति में मुमुक्षु (वर्तमान काल में) जाते हैं, (भविष्य काल में) जायेंगे और (भूतकाल में) जाते थे।** विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

- भाई! तू विश्वास ला!—कि मेरे स्वभाव के आनन्द के समक्ष समस्त प्रतिकूलता और दुनिया विस्मृत हो जाये, ऐसी अद्भुत वस्तु मैं हूँ। मैं वर्तमान में परमात्मा ही हूँ, मुझे और परमात्मा को कुछ अन्तर नहीं है—ऐसा विश्वास आने पर अन्तर छूट जायेगा और पर्याय में परमात्मा प्रगट हो जायेगा। (7)
- शास्त्रों के शब्द बिना हृदय उकेल हो जाना चाहिए। उठाव मूल में से आना चाहिए। कोई कम समझता हो, उसका कुछ नहीं... अन्य सर्व विकल्प छूट जाये और अद्धर से आत्मा सम्बन्धी ही विचार चला करे और लगे ही रहें। पूरी सत्ता का ज्ञान में घोलन चलता है, प्रयोग तो इसे ही करना पड़ता है... विश्वास आना चाहिए। दूसरी-दूसरी चिन्ताएँ हों तो यह कहाँ से चले?... इसका अभ्यास बारम्बार चाहिए। (8)

— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, दृष्टि के निधान

भाद्र शुक्ल ६, मंगलवार, दिनांक - १७-०९-१९६९
गाथा-४१, श्लोक-५८, ५९, प्रवचन-८

दसलक्षणी पर्व का तीसरा दिन है, आर्जव धर्म, आर्जव।

मुमुक्षु : प्रतिदिन एक-एक धर्म...

पूज्य गुरुदेवश्री : एक-एक का तो यहाँ कथन करना है। करने का तो एक साथ धर्म का होता है। आत्मा का सम्यग्दर्शन प्रगट करके चारित्र का आराधन तो प्रतिदिन करना। वह तो कथन दस प्रकार क्रमसर आता है। कहो, सेठी! एक-एक करना न एक दिन में? ऐसा कहते हैं। करने का प्रश्न कहाँ है? यहाँ तो आत्मा अनादि (का है)। दस दिन पर्यूषण का है। दसलक्षणी पर्व कहा जाता है। बारह महीने में तीन बार आता है। माघ में, चैत्र में और भाद्र में। यह विशेष, भाद्रपद में विशेष (होता है)।

आत्मा... मोक्ष का कारण वास्तव में तो चारित्र है और चारित्र लेने से पहले उसको सम्यग्दर्शन और ज्ञान तो प्रगट होना चाहिए। सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुए बिना चारित्र होता नहीं। चारित्र बिना दस प्रकार का आराधन वास्तव में होता नहीं। तो यहाँ तीसरा दिन आर्जव का है। सरलपना ... ... क्या कहते हैं? मन में जो बात होवे, उसी को वचन से प्रगट करना। मन में कुछ हो और वचन में कुछ कहना, वह तो माया है। नहीं कि मन में कुछ दूसरा हो और वचन में दूसरा बोले। इसको आचार्य आर्जव धर्म कहते हैं। मीठी-मीठी बात लगाकर दूसरे को ठगना, इसको अधर्म कहते हैं, अनार्जव धर्म। आर्जव से विरुद्ध।

इनमें आर्जव धर्म से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यहाँ यह लिया है। आर्जव धर्म से... निश्चय आर्जव धर्म जो है सरलता, वह तो मुक्ति का कारण है। परन्तु बीच में जो विकल्प उठते हैं, उससे पुण्यबन्ध हो जाये तो स्वर्ग का कारण होता है। पाठ में ऐसा लिया है। अधर्म नरक में ले जाता है। .... आर्जव शुभभाववाला हो तो उससे स्वर्ग जाता है और उससे विरुद्ध हो तो नरक जाता है। समझ में आया? इसलिए आर्जव धर्म का पालन करनेवाले भव्य जीवों को किसी के साथ माया से बर्ताव नहीं करना चाहिए।

आचार्य कहते हैं कि यदि एक बार भी किसी के साथ मायाचारी की जाये तो यह मायाचारी बड़ी कठिनता से सम्मुच्य किये हुए अहिंसा, सत्य (आदि) मुनियों के गुणों को फीका बना देती है। इसका विश्वास भी नहीं कर सके। यह तो मायाचारी है। वे गुण आदरणीय नहीं रहते हैं। मायारूपी मकान में नाना प्रकार के क्रोधादि शत्रु छुपे हुए हैं। मायाचारी को क्रोध भी होता है, मान भी होता है, लोभ भी होता है—ऐसा कहते हैं। इस मायाचार से उत्पन्न हुए पाप से जीव अनेक प्रकार के दुर्गति मार्ग में भ्रमण करता फिरता है। इसलिए धर्मात्मा को माया अपने पास भी नहीं भटकने देना चाहिए।

आर्यपना सरलता, हृदय की सरलता। चार के प्रकार के नामकर्म बँधते हैं न? उसमें वह आता है। अवक्र मन, अवक्र वचन, अवक्र काया... चार बोल आते हैं या नहीं? चार प्रकार से नामकर्म बँधते हैं न? अविसंवाद और किसी को ठगना नहीं, चार, बस। समझ में आया? सरलपने का मन, सरलपने की वाणी, सरलपने का भाव हो ऐसा और किसी से झगड़ा आदि न करना, ऐसा शुभभाव हो तो स्वर्ग में जाये और शुभ से भिन्न अपने आनन्दस्वरूप की सरलता की परिणति हो तो साथ में फिर मुक्ति भी होती है। लो, यह दो गाथा हुई।

अब चलता अधिकार। नियमसार, ४१वीं गाथा चलती है। यहाँ आया, देखो अन्तिम में। टीका... टीका। **पूर्वोक्त चार भाव आवरणसंयुक्त होने से मुक्ति का कारण नहीं है।** है? चार भाव आवरणसहित हैं। क्या अर्थ किया है, खबर है? कल ही किया था। ठीक किया, पोपटभाई को पकड़ा अभी। लो, यह खबर नहीं, कहते हैं। क्या कहते हैं? आत्मा में जो पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम होता है, वह उदयभाव है, वह पर्याय है उदय की। और जो सम्यग्दर्शन और चारित्र होता है, वह उपशमभाव है, वह भी एक पर्याय है आत्मा की निर्मल उपशम पर्याय है। और एक क्षयोपशम पर्याय होती है ज्ञान की, दर्शन की, वीर्य की, श्रद्धा आदि की पर्याय क्षयोपशम अवस्था होती है और एक क्षायिक अवस्था होती है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक समकित आदि। तो वह चारों भाव आवरणसंयुक्त होने से...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किस अपेक्षा से आवरणसंयुक्त कहा ? कि राग, द्वेष, दया, दान भाव तो आवरणवाले हैं, स्वयं दु:खरूप और विकार है। परन्तु उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक जो निर्मल पर्याय है, उसमें कर्म के निमित्त की अभाव की अपेक्षा लेकर उसको आवरणवाला कहा गया है। समझ में आया ? कल कहा था। पाँच भाव में चार भाव तो आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! इसलिए आवरणसंयुक्त कहा है। समझ में आया ? आत्मा की पर्याय में दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव—उदयभाव (होता है), वह आश्रय करनेयोग्य नहीं, धर्म का कारण नहीं। और जो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक वीतरागीपर्याय प्रगट हुई हो, क्षायिक समकित, वह भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। यह कल चला था। समझ में आया ? पण्डितजी! बाबूलालजी! देखो! आज तो हिन्दी लिया। कल (गुजराती में) चला था।

चार पूर्व नाम ऊपर कहे। प्रत्येक का विस्तार किया है। उपशम के कितने भेद हैं ? समझ में आया ? आत्मा परमस्वाभाविक भावरूप त्रिकाली परमपारिणामिकभावस्वरूप नित्य है। वस्तु आत्मा की पर्याय में जो उत्पाद-व्यय होता है राग का या क्षायिक समकित का या क्षयोपशमसमकित का या क्षयोपशमज्ञान का या क्षयोपशमचारित्र का, वह जो आत्मा में पर्याय उत्पन्न होती है, उत्पाद-व्ययवाली है। तो उत्पाद-व्ययवाली है तो वह व्यवहार है। वह व्यवहार है। तो वह व्यवहार आदरणीय नहीं है। सेठ! आहाहा! समझ में आया ?

पाँच भाव में एक परमपारिणामिक त्रिकाली ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव सहजानन्दस्वभाव का सागर पूर्णस्वरूप ध्रुव, कूटस्थ, निष्क्रिय, जिसमें राग की क्रिया तो नहीं, परन्तु मोक्ष की और मोक्ष के मार्ग की क्रिया भी जिसमें नहीं। ऐसा जो ध्रुव आत्मा परमस्वभावभाव, वह आश्रय करनेयोग्य है। धर्मी को वह भाव आश्रय करनेयोग्य है। आश्रय करनेयोग्य है ध्रुव।

मुमुक्षु : शुभ-अशुभ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है नहीं। आश्रय करते हैं, शुभ का आश्रय करे, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? शुभ का आश्रय करे तो मिथ्यादृष्टि है और शुद्ध प्रगटा हुआ, उसका

आश्रय करने जाये तो विकल्प उठते हैं। तो पुण्यबन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : शिष्यों का भला करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : भला-बला कुछ है नहीं। भला एक आत्मस्वभाव त्रिकाली। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

नियमसार का अधिकार है। नियमसार का अर्थ मोक्ष का मार्ग। निश्चय सम्यग्दश्रन, निश्चय सम्यग्ज्ञान, निश्चय चारित्र वह पर्याय है। वह मोक्षमार्ग की पर्याय है। वह संवर, निर्जरा की विकाररहित वीतरागीपर्याय है। वह भी यहाँ कहते हैं कि आश्रय करनेयोग्य नहीं है। डॉक्टर! सुना भी नहीं हो, क्या होगा? जय नारायण! भगवान की करो भक्ति, करो इससे। धूल भी नहीं होगा, सुन न अब! लाख, करोड़ भक्ति कर, वह तो राग है। राग का आश्रय तो नहीं, परन्तु सम्यग्दृष्टि को तो पूर्ण परमस्वभाव ध्रुव नित्यानन्द का आश्रय है। क्योंकि उसका आश्रय करने से निर्मल वीतरागी पर्याय नयी प्रगट होती है। समझ में आया?

पूर्वोक्त चार भाव... भाव शब्द से पर्याय। विकारी पर्याय, उपशम पर्याय, क्षयोपशम पर्याय या क्षायिक पर्याय। चार भाव अर्थात् चार पर्याय **आवरणसंयुक्त होने से...** क्योंकि उसमें कर्म के अभाव की निमित्तता आती है। तो इस अपेक्षा से उसको आवरणसहित कहा गया है। वह **मुक्ति का कारण नहीं है।** आहाहा! कहो, देव-गुरु-शास्त्र का निमित्त मुक्ति का कारण नहीं। उसका प्रेम लगा राग, वह मुक्ति का कारण नहीं। परन्तु उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक धर्म की दशा प्रगट हुई हो, वह भी मुक्ति का कारण नहीं है। समझ में आया? वीतरागस्वभाव, भाई! अलौकिक है। लोगों को मिला नहीं। बाहर की सिरपच्ची में जिन्दगी निकालते हैं। शोभालालजी! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी आयेगा न! आया नहीं। अभी आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय नहीं। वह तो त्रिकाली गुण है। वह अभी आयेगा न?

कल कहा था। चार पर्याय, भाव अर्थात् पर्याय, वह आवरणसंयुक्त है। क्योंकि उसमें कर्म के निमित्त की, राग, दया, दान, भक्ति में निमित्त की अपेक्षा है और उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक में निमित्त के अभाव की अपेक्षा है। अपेक्षित भाव है तो चार को आवरणसंयुक्त कह दिया है। आहाहा! समझ में आया? अलौकिक मार्ग है भाई! दुनिया को सुनने को नहीं मिलता, इसलिए एकान्त है रे एकान्त है। .... अरे! भगवान! सुन तो सही, प्रभु! तीन लोक का नाथ चिदानन्द, अनन्त सिद्ध जिसके पेट में—गर्भ में स्थित हैं, ऐसा परमात्मा तू है, तेरा स्वरूप ध्रुव है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान है, वह भी सापेक्ष है, ज्ञानावरणीय का निमित्तरूप अभाव हुआ तो वह भी आवरणसहित कहने में आया है। केवलज्ञान की पर्याय भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निरपेक्ष किस अपेक्षा से? स्वभाव की अपेक्षा से प्रगट हुआ है, उस अपेक्षा से निरपेक्ष और निमित्त की अपेक्षा से लो तो वह सापेक्ष है। केवलज्ञान निरपेक्ष, ऐसा कहा है न? १४वीं गाथा। वह तो निरपेक्ष का अर्थ, जिसको आवरण का वर्तमान निमित्त का बिल्कुल अंश रहा नहीं। इस अपेक्षा से निरपेक्ष, परन्तु निमित्त का अभाव हुआ, इस अपेक्षा से सापेक्ष है। आहाहा! ऐसी कठिन बात। पोपटभाई! यह सब ध्यान रखना पड़ेगा। यह पूछा, वह आया नहीं कल दोपहर का। पैसे का कितना याद रहता है वहाँ अन्दर? थाणा में इतने डाले हैं और उसमें यह डाले हैं और अहमदाबाद में यह डाले हैं। ऐई! चिमनभाई! यह तुम्हारे समधी को... आहाहा!

भगवान! यह देह, वाणी, मन की क्रिया तो पर जड़ है, उसके साथ तो आत्मा को कुछ सम्बन्ध नहीं है। अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम उठते हैं, वह राग, शुभराग। वह भी आश्रय करनेयोग्य नहीं और धर्म नहीं है। अब जो आत्मा अन्दर ध्रुव चिदानन्द भगवान परमस्वभावभाव नित्यानन्द, निष्क्रिय (है, वह) वर्तमान पर्याय से दूर है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। चाहे तो क्षायिक समकित की पर्याय हो या क्षायिक चारित्र की पर्याय हो, एक समय की पर्याय से ध्रुवतत्त्व दूर है। क्योंकि एक पर्याय में ध्रुवतत्त्व आता नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! सेठ! यह समझना पड़ेगा, हों! यह अद्धर से अद्धर नहीं चलेगा। आहाहा! पर शरीर, वाणी, कर्म से तो दूर भगवान। दया, दान, व्रत के परिणाम से दूर प्रभु, परन्तु उसकी उत्पाद-व्यय की धर्म की वीतरागी पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय, क्षायिक समकित की पर्याय, एक समय की अवस्था से प्रभु दूर है। ध्रुवतत्त्व भगवान पर्याय में आता नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तादात्म्यसम्बन्ध नहीं। नित्य के साथ तादात्म्यसम्बन्ध हो तो पर्याय नित्य हो जाये अथवा द्रव्य क्षणिक हो जाये। क्या कहते हैं? सुनो। यह भाई ने प्रश्न रखा इस प्रकार से। एक समय की पर्याय के साथ त्रिकाली ध्रुव यदि तादात्म्य हो। तो या पर्याय नित्य हो जाये, या नित्य क्षणिक हो जाये। ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! अलख के घर पहिचानना, वह अलौकिक बात है, भाई! वह साधारण की बात नहीं है। आहाहा! अलख को कैसे पहिचानना? भजन आता है। 'फकीरे काढ्यो फतवो...' यह फतवा निकालते हैं कि व्यवहार बिना नहीं होता, अमुक बिना नहीं होता। फतवा सब फकीर के जैसा है। ऐई! भगवान! फतवा समझते हो? फतवा को क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : .... उसका नाम फतवा।

पूज्य गुरुदेवश्री : फतवा। हाँ, वह खोटा... खोटा। फतवा का अर्थ खोटा। आहाहा! देखो तो सही क्या (कहते हैं)?

भगवान आत्मा की पर्याय में—अवस्था में वह चार प्रकार की अवस्था होती है। एक समय की अवस्था। चाहे तो राग हो, चाहे तो क्षायिक समकित हो, चाहे तो केवलज्ञान हो। एक समय की अवस्था है। तो एक समय की पर्याय उसको आश्रय करनेयोग्य नहीं, इस अपेक्षा से... उसको निर्मल पर्याय में निमित्त कर्म का अभाव

देखकर अपेक्षा आयी, तो कहते हैं कि चारों पर्याय आवरणवाली है। निरावरण प्रभु ध्रुव त्रिकाली निरावरण वस्तु है। समझ में आया? आहाहा!

पूर्वोक्त चार... पर्याय। भाव अर्थात् पर्याय अर्थात् अवस्था। पर्यायदृष्टिवन्त को, कहते हैं कि पर्याय के ऊपर जिसका लक्ष्य है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसको उपशम और क्षयोपशम और क्षायिक समकित होता नहीं। आहाहा! कहते हैं कि यह चार होने से आवरणसहित अर्थात् निमित्त की अपेक्षावाले और अभाववाले **मुक्ति का कारण नहीं है।** अब मुक्ति का कारण कौन है?

त्रिकाल निरुपाधि जिसका स्वरूप है... त्रिकाल भगवान ध्रुव चैतन्यबिम्ब, अविनाशी है। पर्याय तो विनाशीक है। चाहे तो केवलज्ञान की पर्याय हो, चाहे तो क्षायिक समकित की पर्याय हो, वह विनाशीक है। एक समय की पर्याय विनाशीक है। आहाहा! **त्रिकाल निरुपाधि जिसका स्वरूप है...** तीनों काल ध्रुव भगवान जिसमें कोई आवरण नहीं, कोई अपेक्षा नहीं—ऐसा जो ध्रुव, जिसका स्वरूप है। **ऐसे निरंजन...** जिसमें अंजन नहीं, मैल नहीं। **निज परम पंचम भाव...** देखो! निज परम पंचम भाव। वह चार भी भाव है, परन्तु यह तो त्रिकाली ध्रुव निज परम पंचम भाव—पारिणामिकभाव। **(पारिणामिकभाव की) भावना से...** ऐसे पंचम भाव की भावना से। भावना शब्द से ध्रुवस्वभाव में एकाग्रता से। पर्याय तो वापस उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक आयी। परन्तु ध्रुव में एकाग्रता है, पर्याय में एकाग्रता नहीं। आहाहा! समझ में आया? बाहर का जहाँ सँभालने जाये, वहाँ अन्दर का खो जाता है, बाहर का जहाँ याद करने को जाये तो अन्दर का खो जाता है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... ऐसे-ऐसे रखूँ, पर्याय ऐसी रखूँ, पर्याय से सुधारूँ। बाहर का ऐसा सुधारूँ, वह दृष्टि मिथ्यात्व है। पर्याय की सम्हाल करने को गया, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? ... दासजी! यह तो अलौकिक बात है। ऐसी बात तो किसी समय निकले तो सुनने में आवे। हर बार (नहीं आती)। पाठ शास्त्र सामने हो तो कहने में आवे।

भगवान आत्मा... आत्मा जिसको निश्चय आत्मा कहते हैं, निश्चय आत्मा। वह तो पर्याय से भिन्न जो ध्रुव है, वह नित्य आत्मा है। पर्याय का आत्मा को तो व्यवहार आत्मा कहते हैं। वह तो व्यवहार अभूतार्थ है। वह व्यवहार (आत्मा) सत्य आत्मा नहीं है। आहाहा! कठिन बात, भाई! अमरचन्दभाई! भगवान! कहते हैं, पर्यायमात्र व्यवहार का विषय है; द्रव्य, वह निश्चय का विषय है। आहाहा! पर्याय में रहकर यह ध्रुव है, ऐसा भी माने तो पर्याय ने ध्रुव को दूर रखा है। परन्तु पर्याय ध्रुव में प्रविष्ट होने से (— झुकने से), अन्दर में प्रविष्ट होने से ध्रुव में एकाकार होती है, उसको पंचमभाव की भावना कहा जाता है। आहाहा! प्रसन्नकुमारजी! उसको रस है या नहीं? उसको रस है। कल प्रश्न करते थे। समझ में आया?

अरे! भगवान! कहते हैं, तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, वह सन्त कहते हैं। यह शास्त्र मैंने भाषा द्वारा बात आ गयी। ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... पर्याय द्रव्य में जाये, एकाकार हो। यह पर्याय यहाँ ले जाये, वह बात भी झूठी है। सूक्ष्म बात है, भाई! वह तो ध्रुव पर दृष्टि गयी, तब वह पर्याय अन्दर में प्रविष्ट हुई, ऐसा कहने में आता है। सूक्ष्म बात है, भाई! चलती पर्याय के साथ... वर्तमान चलती उस पर्याय को अन्दर झुकाऊँ, वह भी पर्यायदृष्टि हो गयी। कैसे झुके? वह पर्याय चलती है, वह तो है। अब जब दूसरे समय में अन्दर में झुकाता है, वह तो पर्याय है ही नहीं। पण्डितजी! यहाँ तो अलौकिक बात है। आहाहा!

राग की तो बात ही नहीं। दया, दान, विकल्प से, भक्ति से लाभ हो, वह बात तो तीन काल में है नहीं। परन्तु एक चलती पर्याय को, इस पर्याय को अन्तर में झुकाऊँ। कहाँ झुकाये? वह तो उत्पन्न हुई है और जो पर्याय उत्पन्न नहीं हुई है, उसको झुकाऊँ, यह क्या है? इसका अर्थ यह है कि ध्रुवस्वरूप भगवान आत्मा में दृष्टि गयी, वह पर्याय नयी उत्पन्न हुई और द्रव्य को अवलम्बन किया। समझ में आया? ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है। न समझ में आये, ऐसा नहीं है। सादी भाषा में भाव आते हैं। कठिन बातें नहीं हैं। आहाहा! क्या गम्भीर तत्त्व!

कहते हैं कि **त्रिकाल निरुपाधि जिसका स्वरूप है....** जिसका त्रिकाल निरुपाधिस्वरूप भगवान ध्रुव। **ऐसे निरंजन निज परम पंचमभाव...** भगवान का पंचम भाव भगवान के पास रहा। सिद्ध के द्रव्य का पंचम भाव सिद्ध के पास रहा। हमारे क्या काम का है? यहाँ तो कहते हैं कि हमारी पर्याय भी हमारे काम की नहीं। आहाहा! क्योंकि पर्याय में से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। नयी उत्पन्न पर्याय—वीतरागी पर्याय की खान तो ध्रुव है। तो ध्रुव भगवान की भावना, पंचम भाव की भावना... है न! पण्डितजी! है ने, देखो! परमपारिणामिकस्वभाव ध्रुव चैतन्यद्रव्य, ध्रुव पंचम पारिणामिकभाव की भावना से—उसकी एकाग्रता से... उसकी एकाग्रता से पंचम गति में—मोक्षगति में मुमुक्षु जाते हैं। **(वर्तमान काल में) जाते हैं...** समझ में आया? आहाहा! कहो, भीखाभाई! हीराभाई रखे हैं या नहीं साथ में? कहो, आहाहा!

भगवान आत्मा त्रिकाली ध्रुवबिम्ब। काँच होता है न? दर्पण... दर्पण। दर्पण का दृष्टान्त आता है। भाई ने तो बहुत दिया है निहालभाई ने। यह दर्पण है न दर्पण? अरीसा को क्या कहते हैं? शीशा-दल। तो ऊपर की पर्याय में सब अवस्था होती है। उस पर्याय के अतिरिक्त का सारा दल है, उसमें तो वह पर्याय है ही नहीं। दर्पण का दल है, जो ध्रुव दल है, उसमें तो वर्तमान पर्याय दर्पण की अन्दर नहीं है। जो दर्पण में लाल, पीला, आदि दिखने में आता है, वह तो दर्पण की एक समय की पर्याय है। वह पर्याय दर्पण का जो दल है, पिण्ड है, कन्द है पूरा पूर्ण, उसमें पर्याय का अभाव है। सारा दर्पण एक पर्याय में आ नहीं जाता। आहाहा! सेठ! और दर्पण की एक समय की पर्याय उस दल में प्रवेश नहीं करती। दोनों भिन्न-भिन्न हैं। समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा ध्रुवदल, नित्यदल, सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण, वह एक समय की अवस्था में आता नहीं और एक समय की अवस्था ध्रुव में प्रविष्ट नहीं होती। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? कहो, पन्नालालजी! ऐसी बात है। यह हिन्दी में आयी। परन्तु हिन्दी में तो जो भाव हो, वह आते हैं, दूसरे कहाँ से आये?

शरीर, वाणी की क्रिया जड़ की जड़ में, मन की मन में, वाणी की वाणी में, जड़ की-शरीर की जड़ में और दया, दान, विकल्प उठते हैं, भक्ति आदि, वह राग आस्रवतत्त्व

में। और उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक तत्त्व उत्पन्न होता है, वह तो एक समय की पर्यय तत्त्व में; ध्रुव तत्त्व में वह है नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है या नहीं? निर्णय करो, निर्णय तो करो पहले। सामान्य जो ध्रुव है, वह एक समय में जो यह जाये तो एक समय की अवस्था जितना ध्रुव हो जाये। और एक समय की विशेष अवस्था है, विशेष अवस्था चाहे तो क्षायिक समकित हो, केवलज्ञान की हो, एक समय की अवस्था जो ध्रुव में—सामान्य में प्रविष्ट हो जाये, तो एक समय की अवस्था नित्य हो जाये। पर्याय तो अनित्य है। आहाहा! प्रेमचन्दभाई! सूक्ष्म बात है। कहो, सेठ! पूछेंगे तो आयेगा या नहीं? हँसते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रयत्न कहाँ इतना करते हैं, दरकार करते हैं अभी? इतनी अधिक दरकार नहीं है। आहाहा!

भगवान अन्दर चिद्घन है, ज्ञान का दल है, आनन्द का दल है, ध्रुव बिम्ब है, जिसमें अनन्त सिद्ध की पर्याय जिसके दल में अन्दर पड़ी है। ऐसा चिद्घन ध्रुव परमस्वभावभाव उसमें चार पर्याय नहीं है, वह भाव दूर है। आहाहा! ऐसी बात! सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त यह मार्ग दूसरी किसी जगह नहीं हो सकता। तीन काल, तीन लोक में। ओहोहो!

यहाँ तो कहते हैं कि पंचम भाव की भावना। ऐसा कहा न? पर्याय की भावना करे पर्याय में रहकर, तो भी वह तो पर्याय में खड़ा है। ध्रुव में खड़ा नहीं हुआ। तो पर्याय में दया, दान, व्रत आदि का पर्याय में लक्ष्य करे, और वहाँ रहे, वह तो पर्यायबुद्धि, वह तो अंशबुद्धि हुई। वह तो पर्याय में रमते हैं, मिथ्यात्व में रमते हैं। समझ में आया? यहाँ तो भगवान आत्मा निज परम पंचम भाव। भगवान आत्मा का निज अर्थात् अपना, परमभाव, पंचम भाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, स्वभावभाव, सदृश्यभाव, सामान्यभाव... समझ में आया? ऐसे दल की भावना से... यह भावना वीतरागीपर्याय है। सम्यग्दर्शन–

ज्ञान–चारित्र वह पंचम भाव की भावना है। यह नियमसार देखा है या नहीं? पढ़ा है या नहीं पण्डितजी!

मुमुक्षु : ....अभिप्राय में भूल हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ी नहीं, हो तो पूरी, न हो तो कुछ नहीं। समझ में आया? निर्णय करो पहले। पहले विकल्पसहित भी ऐसा निर्णय न हो, उसको निर्विकल्प दृष्टि कभी होती नहीं। समझ में आया? आहाहा! 'प्रभु तारी पासे रे प्रभु नथी वेगळो।' पर्याय में आवे नहीं ऐसा प्रभु तेरे पास पड़ा है न, भगवान! आहाहा! यह तो मोक्षमार्ग की पर्याय और मोक्ष की पर्याय से दूर है, अनमेल है। आहाहा! देखो से सही भेदज्ञान!

ऐसी भावना से... ऐसी पंचम भाव की भावना से... पंचम भाव त्रिकाली हुआ। भावना, वह वर्तमान पर्याय है। परन्त पंचम भाव की भावना से, ऐसे। ध्रुव की ओर दृष्टि करने से जो एकाग्र हुआ, उसका नाम भावना कहने में आता है। उस भावना में सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र तीनों आ जाते हैं। पाठ है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी ठिकाने नहीं पड़े, रात्रि में पूछना। कहो, समझ में आया? यह तो अलौकिक मार्ग है। यह ऐसे ही पकड़ में आवे, ऐसा नहीं है।

भगवान ध्रुवस्वरूप है, उसकी भावना... भाव की भावना... त्रिकाली ध्रुव की भावना... उसकी भावना। पर्याय की नहीं, राग की नहीं, निमित्त की नहीं, राग हो—शुभराग हो, थोड़ा है तो बढ़ो, वह तो दृष्टि पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : त्रिकाली ध्रुवस्वभाव की....

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाली ध्रुवस्वभाव की भावना—अन्तर में एकाग्रता, ध्रुव में एकाग्रता। वह एकाग्रता है तो पर्याय। परन्तु वह ध्रुव सम्बन्धी लीनता। पर्याय में पर्याय की लीनता नहीं। समझ में आया? आहाहा! अरे! मार्ग तो देखो! तीन लोक का नाथ पूर्णानन्द से भरा हुआ है प्रभु। कहते हैं कि उस पर नजर करके उसमें एकाग्र हो, वह भावना। उसको सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र ध्रुव के लक्ष्य से, आश्रय से हुई दशा, उसको

यहाँ भावना कहते हैं। यह भावना अर्थात् कल्पना, ऐसा नहीं। उसमें एकाग्रता–लीनता। ध्रुव में लीन। ध्रुवबिम्ब में दृष्टि का प्रसार, ध्रुव में दृष्टि का प्रसार, ध्रुव में दृष्टि का विस्तार, दृष्टि ने पूरे ध्रुव को कब्जे में कर लिया है। ऐई! धर्मचन्दजी!

ऐसी **ऐसी भावना से पंचम गति में...** देखो! पंचम भाव की भावना से पंचम गति में **मुमुक्षु (वर्तमान काल में) जाते हैं,...** अर्थात् सम्यग्दर्शन–ज्ञान भी ध्रुव पारिणामिकभाव के आश्रय से वर्तमान सम्यग्दर्शन होता है, सम्यग्ज्ञान होता है, सम्यक्चारित्र होता है, आगे बढ़कर शुक्लध्यान भी ध्रुव के आश्रय से होता है, आगे बढ़कर केवलज्ञान भी ध्रुव के आश्रय से होता है और पूर्ण सिद्धदशा भी ध्रुव के आश्रय से होती है।

मुमुक्षु : ....ध्रुव का आश्रय करने से ही होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, यही बात है। समझ में आया?

पंचम भाव की... **परम पंचम भाव...** क्योंकि पर्याय को भी पारिणामिकभाव की पर्याय कहने में आता है। वह दया, दान, व्रत, काम, क्रोध का परिणाम है, वह कर्म के निमित्त की अपेक्षा से उदय, परन्तु पारिणामिकभाव की अपेक्षा से पारिणामिकभाव की पर्याय। वैसे उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक भी परमपारिणामिकभाव की अपेक्षा से पारिणामिक पर्याय, उस पर्याय से भिन्न त्रिकाली परमपारिणामिक। समझ में आया? कहा न? डॉक्टर! ... क्या कहा? अभी क्या कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहा ही नहीं। ख्याल में लिया नहीं।

आत्मा में जो पुण्य–पाप का भाव होता है, वह निमित्त की अपेक्षा से उदय कहो, परन्तु पारिणामिकभाव परमभाव है, वह पर्यायरूप परिणमता है तो उसको भी पारिणामिकभाव की पर्याय (कहने में आता है)। परमपारिणामिक भिन्न। वह कुछ नहीं अभी। ऐसा कहकर स्पष्टीकरण कराते हैं। वह तो पारिणामिक रागादि विकल्प जो दया, दान, काम, क्रोध का मिथ्यात्वपरिणाम है, वह भी पारिणामिकभाव की पर्याय है। पर्याय। परमपारिणामिक है, वह ध्रुव। आहाहा! वह कहा था। आपका ध्यान नहीं था। समझ में आया?

बापू! मार्ग कोई ऐसा अलौकिक है कि लोगों को ऐसे ही अपनी कल्पना से पढ़े, अपनी कल्पना से बिठाये और कल्पना से वीतरागमार्ग को उल्टा माने और हम वीतरागमार्ग कहते हैं, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो कहते हैं... परम पंचम भाव क्यों कहा? परम पंचम भाव। परम पंचम भाव ध्रुव है और उसकी पर्याय राग, दया, दान, काम, क्रोध की पर्याय, वह भी पारिणामिकभाव की एक समय की पर्याय है। उसको पारिणामिकभाव कहते हैं। परमपारिणामिक नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पारिणामिक है, कहते हैं। और यहाँ तो उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक चारों पर्याय को अन्तर की अपेक्षा से, निज की ओर की अपेक्षा से उसको चारों को पारिणामिक की पर्याय कहते हैं। कर्म की अपेक्षा से उसको उदय क्षयोपशम, क्षायिक, उपशम कहते हैं। परन्तु वह पारिणामिकभाव की जो पर्याय है, वह पारिणामिकभाव पर्याय, परन्तु ध्रुव है, वह पंचम पारिणामिक त्रिकाल भाव है। आहाहा! सेठ! सेठ ऐसे मान हो जाये, वहाँ बैठे हों तो मानो ऐसा लगे चतुर बड़ा दुकान पर।

मुमुक्षु : कुछ याद नहीं रहता।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें याद कहाँ रखने का है? यह तो तत्त्व की बात है सीधी। आहाहा!

त्रिकाली भगवान जो ध्रुव है, वह परमपारिणामिकभाव है और उसकी पर्याय चार है, वह पारिणामिकभाव की पर्याय-अंश है। परिणाम वह अंश है, परन्तु वह परमपारिणामिक नहीं। समझ में आया? परमपारिणामिक ध्रुव भगवान आत्मा नित्यानन्द पर्याय से भिन्न, उसकी भावना से..., उदय की, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की एकाग्रता से नहीं। वह ध्रुव की एकाग्रता से पंचम गति में मुमुक्षु—धर्मात्मा मोक्ष जाते हैं। समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दर्शन की पर्याय, वह भी पंचम भाव की एकाग्रता से होती है। आहाहा! यह तो वह कहते हैं, तीन करण से शुद्धभाव से होती है। तीन करण लिये ही नहीं हैं, सुन न! बहुत विवाद करे विद्वान बड़े। बापू! उसको विद्वान नहीं कहते। यहाँ कहेंगे।

अभी आयेगा। आहाहा! भगवान आत्मा मैं जो हूँ, वह तो पर्याय से भिन्न हूँ। मुझमें पर्याय परिणमन करो, परन्तु मैं परिणमन की पर्याय में आता नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो, वह तो पर्याय का धर्म है परिणमन करना। मेरा धर्म नहीं। आहाहा!

पंचम गति में मुमुक्षु (वर्तमान काल में) जाते हैं,... एक ही मार्ग है, ऐसा कहते हैं। तीन काल में एक ही मार्ग है। पंचम काल के लिये कोई दूसरा मार्ग है और महाविदेह का दूसरा मार्ग है और भरत का दूसरा मार्ग है—ऐसा नहीं है। भूतकाल का दूसरा मार्ग और भविष्य काल का दूसरा मार्ग, कठिन पंचम काल में दूसरा मार्ग। (ऐसा नहीं है)।

मुमुक्षु : आज कल तो लोग....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए तो स्पष्टीकरण करते हैं। आहाहा!

भाई! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निर्मल पर्याय, जो यह नियमसार है, निश्चय मोक्षमार्ग, हों! व्यवहारमोक्षमार्ग, वह मार्ग है ही नहीं। विकल्प, वह मोक्षमार्ग है ही नहीं। निश्चय मोक्षमार्ग की जो निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की वीतरागी पर्याय, वह पंचम भाव ध्रुव के आश्रय से उसमें एकाग्रता से उत्पन्न होती है, और उस पंचम भाव के आश्रय से ही आत्मा को केवलज्ञान और मुक्ति होती है।

(भविष्य काल में) जायेंगे... भविष्य अनन्त काल है, उसमें भी ध्रुवस्वभाव की एकाग्रता से मोक्ष जायेंगे। कोई दूसरा मार्ग वीतराग में है नहीं। **और (भूतकाल में) जाते थे।** जाते थे। भूतकाल में भी ध्रुव पंचमभाव की एकाग्रता से मोक्ष भूतकाल में अनन्त गये, वर्तमान में जाते हैं और भविष्य में जायेंगे। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' यह परमार्थ का एक पंथ है। महासिद्धान्त की (बात) है।

(अब, ४१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं :-) वह तो टीका थी, अब श्लोक है।

(आर्या)

अंचितपंचमगतये पंचमभावं स्मरन्ति विद्वान्सः।
संचितपंचाचाराः किंचनाभावप्रपंचपरिहीणाः ॥५८॥

श्लोकार्थ - (ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्यरूप) पाँच आचारों से... पाँच आचार... आचार / पर्याय। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र, तप और वीर्य— पाँचों वीतरागी पर्याय, वीतरागीदशा, निर्विकल्पदशा। इन **पाँच आचारों से युक्त...** सहित। **और किंचित् भी परिग्रह प्रपंच से सर्वथा रहित...** मुनि कहते हैं न? मुनि की बात मुख्य लेते हैं न? **किंचित् भी परिग्रह प्रपंच से सर्वथा रहित...** मुनि को तो एक वस्त्र का टुकड़ा भी परिग्रह नहीं होता। वस्त्र का एक टुकड़ा हो और मुनिपना माने, वह मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : व्यवहार पंचाचार....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार पंचाचार भी नहीं, वह तो विकल्प है। यहाँ तो निश्चय पंचाचार की बात है। आहाहा! समझ में आया?

पाँच आचारों से युक्त किंचित् भी परिग्रह प्रपंच से सर्वथा रहित... इससे सहित और इससे रहित, ऐसे अस्ति-नास्ति की है। **ऐसे विद्वान...** ऐसे विद्वान... उसको विद्वान कहते हैं और उसको ज्ञानी कहते हैं। बाकी शास्त्र की पढ़ाई की हो और उल्टा करे, वह विद्वान है नहीं। है उसमें, देखो! **ऐसे विद्वान पूजनीय पंचमगति को प्राप्त करने के लिये...** पूजनीय पंचमगति-मुक्ति को प्राप्त करने के लिये **पंचम भाव का स्मरण करते हैं।** स्मरण अर्थात् पंचम भाव में एकाग्र होते हैं। स्मरण करते हैं अर्थात् ऐसे (विकल्प से) स्मरण नहीं। पंचम भाव को याद करके एकाग्र होते हैं। आहाहा! कठिन बातें, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के पुरुषार्थ की अन्तर विकाररहित—निर्विकार की रचना होना, वह वीर्याचार है। वीतरागी पर्याय की रचना होना, वह वीर्याचार का काम है। व्यवहार पंच विकल्प आदि हैं, व्यवहार, वह नहीं। वह बन्ध का कारण, वह आत्मा

के स्वभाव का कारण है ही नहीं। वह आगे कहेंगे।

विद्वान पूजनीय पंचम गति को प्राप्त करने के लिये पंचम भाव का... पंचम भाव अर्थात् पंचम त्रिकाली भाव का स्मरण अर्थात् एकाग्रता करते हैं तो उसको मुक्ति होती है। मुक्ति होती है। पंचम भाव की एकाग्रता से मुक्ति होती है। ऐसा कहा न। ध्यान रखो तो हाँ, ना का ख्याल रहे। यह तो अलौकिक बात है, भाई! यह तो केवलज्ञानी की सभा है। केवलज्ञानी की बात है यह सब। समझ में आया? आहाहा!

दूसरा श्लोक—

(मालिनी)

सुकृतमपि समस्तं भोगिनां भोगमूलं
त्यजतु परमतत्वाभ्यासनिष्णातचिततः।
उभयसमयसारं सारतत्वस्वरूपमं
भजतु भवविमुक्त्यै कोऽत्र दोषो मुनीशः ॥५९॥

श्लोकार्थ - समस्त सुकृत (शुभकर्म) भोगियों के भोग का मूल है;... आहाहा! व्यवहार समकित, व्यवहार चारित्र, व्यवहार ज्ञान—यह सब राग भोगियों के भोग का मूल है। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि को चलता है न? दूसरे को दिक्कत नहीं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! ज्ञानी-समकिती की बात चलती है। जो कुछ भी शुभभाव है, वह भोगियों के भोग का मूल है। आत्मा के भोग का वह मूल है नहीं। समझे? शुभभाव भोगियों के भोग का मूल है। धर्मी—अनुभव के भोगनेवाले को वह शुभभाव होता नहीं। है तो अपना है नहीं। उससे लाभ मानते नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! सोनगढ़ के नाम से फिर लोग कहे न, भाई! यह भगवान कहते हैं या सोनगढ़ कहता है? कौन कहता है? सुन तो सही! ऐई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो दूसरा अर्थ क्या है, उसमें निकाले न उल्टा। उल्टा निकाल सके न, कहाँ से निकाले?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भोगियों के भोग का मूल है। समस्त शुभ किसी भी प्रकार का हो, ऐसे। चाहे (कोई भी) प्रकार के महाव्रत के परिणाम हो, समझ में आया? अट्ठाईस मूलगुण का हो, षट् आवश्यक का हो, भगवान की भक्ति का हो, शास्त्र वाँचन का शुभभाव हो, भगवान के स्मरण का, नामस्मरण का भाव हो, वह सब भोगियों के भोग का मूल है। धर्मी का वह मूल है नहीं। आहाहा! कठिन काम, भाई!

मुमुक्षु : पंचम भाव की माला जपे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मैं पंचम भाव हूँ, पंचम भाव हूँ—ऐसा विकल्प करे तो कहाँ आया उसमें? वह तो विकल्प है। आहाहा! ध्रुव आत्मा है, शुद्ध है, अबद्ध है, निर्मल है, ध्रुव है—वह तो विकल्प है। भोगियों के भोग का मूल वह विकल्प है। आहाहा!

त्रिकाल ध्रुव भगवान आत्मा में दृष्टि लगाकर एकाकार होना, वह मोक्ष का मूल है। आहाहा! कठिन बातें, भाई! अशुभभाव में था तो वहाँ लगा था, चिपका था। शुभभाव में आया देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति में, वहाँ चिपट गया। वह तो एक ही दशा है। समझ में आया?

समस्त सुकृत... समस्त सुकृत... कोई भी शुभभाव, ऐसा। चाहे तो दया का, दान का, भक्ति का, पूजा का, नामस्मरण का, णमो अरिहंताणं, पंच परमेष्ठी की यादगीरी हो, ॐ... ॐ... ॐ... वह विकल्प है, वह भोगियों के भोग का मूल है। शोभालालजी! सच क्या? है उसको सच है क्या? है या नहीं उसमें? पुस्तक सामने रखा है, इसलिए तो रखा है।

मुमुक्षु : इसमें स्पष्ट लिखा है, निश्चय की बात है परन्तु व्यवहार की बात नहीं लिखी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार की बात अर्थात् व्यवहार अर्थात् झूठा। झूठ की बात यहाँ नहीं है। निश्चय अर्थात् यथार्थ सत्य। वह सत्य की बात है यह। असल में वही वस्तु की मान्यता और ज्ञान करनेयोग्य है। बाकी सक एक के बिना के शून्य हैं। चाहे

तो पाँच महाव्रत पाले, अट्ठाईस मूलगुण पाले, भगवान की भक्ति पूरे दिन णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... राम... राम... राम... राम... राम...राम में फिर मरा हो जाता है अन्दर। समझ में आया कुछ?

समस्त सुकृत (शुभकर्म) भोगियों के भोग का मूल है; परम तत्त्व के अभ्यास में निष्णात चित्तवाले मुनिश्वर... अर्थात् धर्मात्मा। परमतत्त्व भगवान आत्मा परमतत्त्व। पर्याय अपरमतत्त्व। ध्रुव तत्त्व पंचम भाव परमतत्त्व। त्रिकाली पंचम भाव, वह परमतत्त्व। संवर, निर्जरा, मोक्ष भी परमतत्त्व नहीं। वह अपरमतत्त्व (क्योंकि) पर्याय है। गुण और भाव एक ही है। द्रव्य और गुण दोनों एक अभेद है। गुण और द्रव्य, द्रव्य किसे कहना? गुणों के पिण्ड को द्रव्य कहना। गुण और द्रव्य भिन्न है न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक भेद... दूसरा भेद है कहाँ अन्दर? जो गुण का पिण्ड है, वह द्रव्य। द्रव्य का अर्थ क्या? द्रव्य कोई दूसरी चीज़ है? और कोई दूसरी चीज़ गुण है? अनन्त गुण का पिण्ड ध्रुव, उसे द्रव्य कहते हैं। एकरूप कहना, वह तो द्रव्य और अनन्तरूप गुण कहना हो तो गुण। परन्तु यह गुण है और यह गुणी, ऐसा भेद करे तो वह विकल्प है। उसके आश्रय से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। अभेद की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। बाकी कोई तीन काल-तीन लोक में दूसरा कोई उसका हेतु—कारण है नहीं। समझ में आया?

परम तत्त्व के अभ्यास में निष्णात चित्तवाले... विचिक्षण—निष्णात पूर्ण। नहीं कहते हैं कि इसमें निष्णांत है? इस बात में निष्णांत है। निपुण। निष्णात है, परिपूर्ण है। ऐसे भगवान आत्मा पंचम भाव को जानने में जो निष्णात है। **मुनिश्वर भय से मुक्त होने हेतु...** चार गति के भव से मुक्त होने हेतु... **उस समस्त शुभकर्म को छोड़ो...** पाठ में है या नहीं? '**त्यजतु**' '**भवविमुक्त्यै त्यजतु**' दृष्टि में से छोड़ा, ऐसे। छोड़ो अर्थात्? दृष्टि के विषय से छोड़ दो। पुण्य-पाप का—पुण्यादि का परिणाम दृष्टि का विषय नहीं। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता नहीं।

और सारतत्त्वस्वरूप ऐसे उभय समयसार को भजो। ओहोहो! त्रिकाली भगवान

आत्मा और उसके कारणरूप उसकी निर्मल पर्याय को भजो। उभय समयसार। उभय अर्थात् त्रिकाली ध्रुव समयसार। उसकी एकाग्रता होकर निर्मल वह कारणसमयसार और पूर्ण केवलज्ञान हो, वह कार्यसमयसार। ध्रुव है, वह परम कारणसमयसार। ऐसी कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : समयसार तीन। उसमें यहाँ दो कहे। त्रिकाली ध्रुव को समयसार कहा और मोक्ष पाने के कारणरूप जो आत्मा की नियमसमयसार वीतरागी पर्याय, वह पर्यायरूप कारणसमयसार। ध्रुव कारण त्रिकाली समयसार और कार्यरूप कार्यसमयसार सिद्ध पद। परन्तु यहाँ दो को भजो। ध्रुव और पर्याय को भजो ऐसे। भजो अर्थात् द्रव्य में एकाग्र हो, ऐसे। प्रगट होता है। परन्तु द्रव्य के आश्रय से—ध्रुव समयसार है, उसकी एकाग्रता होने से मोक्षमार्ग की पर्याय, वीतरागी पर्याय, वीतरागी समकित, वह कारणसमयसार। उसको भजो। **इसमें क्या दोष है?** कहो, ऐसा कहा देखो। **'कोऽत्र दोषो मुनीशः'**

अरे! यह छोड़ना, और इसमें भजना, इसमें क्या दोष है? ऐसा कहते हैं। शुभ परिणाम छोड़ दे? छोड़कर क्या करे? छोड़कर अन्दर में एकाग्र होना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया कुछ? भगवान के पास जाये तो भगवान ऐसा कहते हैं कि मेरे सामने देखना छोड़ दे, तेरे सन्मुख देख।

मुमुक्षु : वहाँ भी फटकार लगती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : .... फटकार लगती है। फटकार क्या? कि तुम मेरे सामने देखते हो? तेरे पास पूर्ण है, उसकी ओर देख। ध्रुव के ओर की दृष्टि देख। तुझे लाभ होगा, बाकी लाभ हमारे सन्मुख होने से लाभ होगा नहीं। आहाहा! यह तो वीतराग कहते हैं। दूसरे तो कहे, हमारा भजन करो, हमें आहार दो, पानी, लड्डू। आपका कल्याण हो जायेगा। ऐई! यहाँ तो कहते हैं कि भावलिंगी मुनि को आहार-पानी दे विकल्प, पुण्यबन्ध हो। संवर, निर्जरा जरा भी नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? श्वेताम्बर में वह तो लेख है भगवती (सूत्र) में। तथारूप साधु को निर्दोष आहार-पानी

दे तो परितसंसार करे। यह मूल पाठ है। मूल लिखावट ही सारी तत्त्व के विरुद्ध की है। पर क्या करे? तीन सूत्र उसमें बड़ा विवाद हुआ है।

एक सूत्र ऐसा है कि मुनि को निर्दोष पानी दे (उसमें) सदोष थोड़ा हो, तो बहुत निर्जरा और थोड़ा पाप। यह लिया। श्वेताम्बर ने ले लिया। करो साधु के लिये। अब इसमें थोड़ा पाप लगेगा, परन्तु निर्जरा ज्यादा है। धूल में भी नहीं है। तीन सूत्र है भगवती में। एक सूत्र तथारूप साधु को निर्दोष आहार-पानी दे, वह एकान्त से निर्जरा करे। किंचित् पाप... भगवतीसूत्र में है। और असंयमी को देने से एकान्त... तेरापंथी ने वह पकड़ा है। अरेरे!

यहाँ तो कहते हैं कि तथारूप (मुनि) तीर्थंकर तीन लोक के नाथ हों, गृहस्थाश्रम में हो पहले। उनको भिक्षा दे तो शुभराग होगा, संसार परित परद्रव्य के आश्रय से होगा नहीं। समझ में आया? आहाहा! लो, एक पेरेग्राफ रहेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

- अरे प्रभु! तू स्वभाव से परमेश्वर है। तेरी विरुद्ध की बातें आते करते शर्म आती है! अनादर नहीं आता! कहाँ तेरी शुद्धता और कहाँ यह विकारीभाव—मिथ्यात्व-संसार! अरे! कहाँ नीम के अवतार! निगोद में अवतार! अरे! तू भगवान स्वरूप! भगवान तू कहाँ गया! तेरा विरोध नहीं प्रभु! तुझसे विरुद्ध भाव का विरोध है। जिसकी माँ खानदानी पुत्री, जिसकी आँख ऊँची न हो, उसका पुत्र वेश्या में जाये—इसी प्रकार यह परिणति प्रभु की, जो अपने स्वरूप को छोड़कर विकार में जाये, प्रभु! शर्म आती है। (9)
- वास्तव में तो ऐसा अवसर मिला है, उसमें स्वयं अपना कर लेनेयोग्य है। दुनिया की आलोचना करने जायेगा तो अपना खोयेगा! स्वयं अपनी भूल टालनी है। वस्तुस्वरूप समझकर भूल टाले तो भगवान हो जाये! (10)

— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, दृष्टि के निधान

भाद्र शुक्ल ७, गुरुवार, दिनांक - १८-०९-१९६९
गाथा-४२, प्रवचन-९

शुद्धभाव अधिकार चलता है। नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग। यह मोक्ष का मार्ग पर्याय है। निश्चयसम्यग्दर्शन, ध्रुवस्वरूप की अन्तर रुचि का परिणमन, वह निश्चयसम्यग्दर्शन और ध्रुव का अन्तर में स्वसंवेदनज्ञान, अपना ज्ञान प्रत्यक्ष (होना), उसका नाम ज्ञान की पर्याय और ध्रुवस्वरूप में लीनता, उसका नाम चारित्र—यह तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग एक है। वह पर्याय ध्रुव के अवलम्बन से प्रगट होती है, ऐसा ध्रुवतत्त्व चैतन्य महातत्त्व ध्रुव अनादि-अनन्त अविनाशी... उसमें यहाँ ४२ गाथा में चलता है, देखो! उसमें समस्त संसार विकार का अभाव है। नित्य जो सम्यग्दर्शन का विषय—ध्येय, ऐसा निश्चय आत्मा—सच्चा आत्मा, उसमें विकार का अभाव है, वह यहाँ गाथा में बताते हैं। ४२।

चउगइभवसंभमणं जाइजरामरणरोगरोगा य।
कुलजोणिजीवमग्गणठाणा जीवस्स णो संति॥४२॥

जीव को नहीं, यहाँ तो द्रव्य में नहीं, उसे जीव कहा है। आहाहा! जीव को क्षायिकभाव नहीं। वह यह कुछ बात है! जीव को केवलज्ञान है नहीं, ऐसी बात कही न? '**जीवस्स णो संति**' भगवान ध्रुवस्वरूप अनादि-अनन्त सत्व तत्त्व पूरा—पूर्ण, उसमें तो केवलज्ञान की पर्याय भी नहीं, उसको जीव कहते हैं। समझ में आया? सच्चा आत्मा कहो, सच्चा जीव कहो या निश्चय तत्त्व आत्मा कहो। तो वह निश्चय आत्मा है, वही आत्मा है। जो पर्याय क्षायिक, क्षयोपशमज्ञान आदि है, वह पर्याय जीव में नहीं, जीव में है नहीं। '**जीवस्स णो संति**' '**जीवस्स णो संति**' ऐसा आता है या नहीं? समझ में आया? जीव इसको कहते हैं कि त्रिकाली नित्यानन्द, सहजानन्द मूर्ति ध्रुव को यहाँ आत्मा कहते हैं, उसको जीव कहते हैं। पर्याय को जीव कहते नहीं। पर्याय व्यवहार आत्मा है, वह झूठा आत्मा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों आत्मा मिलकर प्रमाण का विषय है, वह निश्चय का विषय नहीं। समझ में आया? निश्चय जो परमात्मा पूर्ण स्वरूप ध्रुव चैतन्य, उसमें तो यहाँ पर्याय का कोई अंश भी, सिद्ध की पर्याय भी द्रव्य में नहीं, उसको यहाँ जीव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, वे तो कहीं चले गये। वह जीव नहीं। यह तो उसकी पर्याय में निर्मलता, शुद्ध वीतरागता प्रगट हो, वह भी जीव नहीं।

जीव तो ध्रुव चिदानन्द प्रभु अनन्त आनन्द का कन्द जिसमें तो नकोर चीज़ भरी है, उसको यहाँ जीव कहते हैं। उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा कहा जाता है। बाकी पर्याय तो वह भी, पर्याय है वह स्वयं सत् है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पदार्थ द्रव्य है, वही यथार्थ पदार्थ है। प्रमाण का विषय बनाना हो तो प्रमाण भी द्रव्य को—निश्चय आत्मा को रखकर ही प्रमाण पर्याय का ज्ञान करता है। प्रमाण उसका निषेध नहीं करता। निश्चय जो अभेद आत्मा, वही निश्चय का आत्मा है, वह स्वीकार करके पर्याय का ज्ञान करते हैं, तो स्वीकार करके करते हैं, उसका नाम प्रमाण है। समझ में आया? नहीं तो दो नय का ज्ञान नहीं रहा। प्रमाण में दो नय का ज्ञान होता है न? दो नय का... निश्चय का विषय जो ध्रुव भगवान महाप्रभु, सच्चिदानन्द आत्मा त्रिकाली आनन्द का कन्द जिसमें पुरुषार्थ का पिण्ड पड़ा है, वही आत्मा है। समझ में आया? क्योंकि वह आत्मा त्रिकाली सत्त्व है, वही जीव का मूल तत्त्व है। आहाहा!

कहते हैं... नीचे हरिगीत। यह तो '**जीवस्स णो संति**' आया न? तो उसमें जीव नहीं, जीव नहीं। लोगों को कठिन लगे। पहले से आया है न यह तो। देखो न! देखो। वह तो ठीक है। '**णो खइयभावठाणा जीवस्स**' ऐसा लेना इसमें। '**णो खयउसमभावठाणा वा ओदइयभावठाणा णो उवसमणे सहावठाणा वा। जीवस्स**' ऐसा लेना ऊपर से। समझ में आया? क्योंकि पहले से शुरु किया है न वह? ४० में। '**जीवस्स ण उदयठाणा**' '**जीवस्स ण उदयठाणा**' देखो! '**जीवस्स ण उदयठाणा**' ऐसे लिया है या नहीं? यह तो

अलौकिक बात है। अनन्त काल में जो अपूर्व ध्रुवतत्त्व है, उसका अवलम्बन दृष्टि ने लिया नहीं। समझ में आया? उसको छोड़कर, सब ऐसा करना, ऐसा करना, शुभ करना, पुण्य करना, दया-दान करना, व्रत करना—यह सब मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, देखो! आया न यहाँ?

चतु-गति भ्रमण नहिं, जन्म-मृत्यु न, रोग, शोक, जरा नहीं।
कुल योनि नहिं, नहिं जीवस्थान, रु मार्गणा के स्थान नहिं ॥४२॥

मूल पाठ में '**जीवस्स णो संति**' ऐसा है। है। यह तो उसमें शब्द पड़ा है,... इसलिए डाला। उसमें जीव शब्द नहीं आया नीचे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आगे से चला आता है। मूल पाठ में तो आगे आया हो तो डाला है। यह तो हरिगीत में समाहित नहीं है इसलिए, बाकी पाठ में तो '**जीवस्स णो संति**' है। टीका।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें तो होगा ही न! यह तो हरिगीत में नहीं आया। उसमें हरिगीत हिन्दी में नहीं आया। हिन्दी में नहीं आया। तब कहा न, यहाँ तो हिन्दी चलती है न अभी।

टीका :- शुद्ध निश्चयनय से... भगवान आत्मा ध्रुव शुद्ध है, उसका विषय करनेवाली शुद्ध निश्चय अथवा वह ध्रुव ही शुद्ध निश्चयनय है। आहाहा! **शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध जीव को...** शुद्ध जीव को अर्थात् ध्रुवतत्त्व को, नित्यानन्द भगवान ध्रुव को **समस्त संसार विकारों का समुदाय नहीं है...** समस्त संसार विकार का समुदाय नहीं है, ऐसा यहाँ गाथा में कहा है। इस ओर। द्रव्यकर्म / जड़कर्म और भावकर्म—दया, दान, विकल्प, भक्ति, पूजा, राग इत्यादि का भाव **स्वीकार न होने से...** आत्मद्रव्य में उसका स्वीकार न होने से। आहाहा! अभी तो चिल्लाहट मचाये। अभी तो शुभभाव आत्मा को नहीं, यह नहीं बैठता, तो क्षायिकभाव आत्मा में नहीं है, वह तो कहाँ से बैठे? आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, जड़कर्म, भगवान ध्रुवतत्त्व में है ही नहीं। वह तो मुक्तस्वरूप,

अनादि-अनन्त मुक्तस्वरूप है। समझ में आया? कौन?—जो ध्रुव... ध्रुव... नित्यानन्द प्रभु... उत्पाद-व्यय की एक समय की पर्याय है, वह व्यवहार में जाती है और त्रिकाल ध्रुवतत्त्व को यहाँ आत्मा कहने में आया है। ऐसे आत्मा की अन्दर दृष्टि करना, ध्रुव को अवलम्बन लेकर दृष्टि का परिणमन करना, उसका नाम प्रथम श्रेणी का (धर्म)—सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

भावकर्म का स्वीकार न होने से... विकल्प हो, परन्तु द्रव्य में स्वीकार नहीं है। द्रव्य में स्वीकार नहीं का अर्थ द्रव्य में है ही नहीं न, यूं। आहाहा! वस्तु जो ध्रुव भगवान आत्मा, उसमें दया, दान, विकल्प, भक्ति आदि पूजा या काम, क्रोध या हिंसादि भाव द्रव्य में है ही नहीं न। **स्वीकार न होने से...** का अर्थ उसमें है ही नहीं न।

जीव को वह नहीं है, इस कारण से **नारकत्व, तिर्यंचत्व, मनुष्यत्व और देवत्वस्वरूप चार गतियों का परिभ्रमण नहीं है।** ध्रुवस्वरूप में परिभ्रमण है ही नहीं। वह तो परिभ्रमण की पर्याय में बन्ध है, पर्याय-अवस्था में रागादि का बन्ध और अवस्था में रागादि का अभाव होकर मुक्ति होती है, वह तो मुक्ति और बन्ध पर्याय में है। द्रव्य में-ध्रुव में मुक्ति और बन्ध है ही नहीं। आहाहा! त्रिकाल मुक्तस्वरूप त्रिकाल है। मुक्तस्वरूप आत्मा उसमें तो क्षायिक पर्याय भी है ही नहीं। जो मुक्ति की पर्याय जो क्षायिक पर्याय उसमें है नहीं। है नहीं का अर्थ? अभेद तत्त्व है, उसमें पर्याय प्रवेश नहीं करती। आहाहा!

और जिसने मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा दर्शन सम्यक् से पकड़ लिया, उसमें सारी मुक्ति की अनन्त पर्याय उसमें पड़ी है ध्रुवरूप, तो पकड़ लिया तो मुक्ति उसकी पर्याय में आ गयी, आ गयी और आ गयी। आहाहा! समझ में आया? सेठ! यह सूक्ष्म विषय है। समझना चाहिए। आहाहा! जीव को द्रव्यकर्म और भावकर्म भी जहाँ नहीं, तो द्रव्यकर्म का, भावकर्म के फलरूप चार गति उसमें है नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ध्रुव में भावकर्म का विकल्प ही नहीं है। तो भावकर्म और जड़ (कर्म), वह तो जड़ पर है। वह भावकर्म विकल्प है—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, हिंसा, झूठ, चोरी,

विषय-वासना। वह विकल्प ध्रुव में है नहीं। तो ध्रुव में है नहीं तो विकल्प नहीं तो विकल्प का फल चार गति आत्मा में है नहीं। ऐसी दृष्टि हुए बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। गति जो मनुष्य है, उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा है नहीं, ऐसा कहते हैं। क्योंकि वह अन्दर है ही नहीं। आहाहा!

नित्य-शुद्ध चिदानन्दरूप कारणपरमात्मस्वरूप जीव... उसको ही जीव कहते हैं। क्या? नित्य भगवान आत्मा, नित्य शुद्ध, शुद्ध केवल पवित्र का पिण्ड भगवान नित्य ध्रुव अभेद अखण्ड एक ऐसा चिदानन्दरूप ज्ञान, चिद् अर्थात् ज्ञान, आनन्दरूप, नित्य शुद्धरूप कारणपरमात्मस्वरूप। वह कारणपरमात्मस्वरूप, त्रिकाली भगवान कारणपरमात्मस्वरूप, जिसको यहाँ शुद्धभाव कहते हैं, उस कारणपरमात्मस्वरूप जीव को, ऐसे जीव को **द्रव्यकर्म तथा भावकर्म के ग्रहण को योग्य विभावपरिणति का अभाव होने से...** ध्रुव, विभाव परिणति को छूता ही नहीं। आहाहा! निरालम्ब भगवान ध्रुवतत्त्व, कहते हैं कि उसमें द्रव्यकर्म और भावकर्म के ग्रहण के योग्य विभाव परिणति— विकारी अवस्था का अभाव होने से **जन्म,...** जाति का अर्थ जन्म किया है। जन्म, भगवान आत्मा ध्रुव को जन्म नहीं, ध्रुव को जरा नहीं, ध्रुव को मरण नहीं, ध्रुव में रोग नहीं, ध्रुव में शोक नहीं। समझ में आया?

चतुर्गति (चार गति के) जीवों के कुल और योनि के भेद जीव में नहीं हैं... ऐसा ध्रुव भगवान... जीव का जो कुल कहने में आया है, वह साढ़े सत्तावन लाख करोड़ और योनि चौरासी लाख योनि, वह ध्रुवस्वरूप में है नहीं। पर्याय में है। पर्याय उसमें है नहीं। समझ में आया? **पृथ्वीकायिक जीवों के बाईस लाख करोड़ कुल हैं...** कुल। कुल समझते हो? गोबर होता है न गोबर? क्या कहते हैं? छाण... छाण। गोबर होता है न, उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के कीड़े उत्पन्न होते हैं, कीड़े। कीड़ा कहते हैं न? भिन्न-भिन्न प्रकार के कीड़े उत्पन्न होना, वह उसका कुल कहा जाता है। एक जाति का समान उत्पन्न हो शरीर, तो ऐसा-ऐसा पृथ्वीकाय में बाईस लाख करोड़ कुल है। परन्तु वह जीव—ध्रुव में है नहीं, वह पर्याय में है। पर्याय द्रव्य में है नहीं। आहाहा! बहुत कठिन बात है, भाई!

अपकायिक जीवों के सात लाख करोड़ कुल हैं... पानी—जल है न जल? जल की एक बिन्दु है, उसमें असंख्य जीव हैं अपकाय और निगोद अनन्त हैं। ऐसे **अपकाय जीवों के सात लाख करोड़ कुल हैं...** पानी का शरीर उत्पन्न होने की स्थिति के सात लाख जाति के भेद हैं। **तेजसकायिक...** अग्नि। वह अग्नि जरा है न, दियासलाई करते हैं न! अग्नि का जीव है। उसमें भी **तीन लाख करोड़ कुल है...** अग्नि का। **वायुकायिक जीवों के सात लाख करोड़ कुल हैं...** पवन। जीव की उत्पत्ति, उसमें कुल का शरीर हो। सात लाख (करोड़) कुल हैं। **वनस्पतिकायिक जीवों के अट्ठाईस लाख करोड़ कुल हैं...** निगोद और साधारण दोनों साथ में। **वनस्पतिकायिक जीवों के अट्ठाईस लाख करोड़ कुल हैं; द्वीन्द्रिय जीवों के सात लाख करोड़ कुल हैं; त्रीइन्द्रिय के आठ लाख करोड़ कुल हैं; चतुरिन्द्रिय जीवों के नौ लाख करोड़ कुल हैं; पंचेन्द्रिय जीवों में जलचर जीवों के साढ़े बारह लाख करोड़ कुल हैं;...** जलचर, जलचर। जल में मछली उत्पन्न होती है न? मच्छ। मच्छ। वह मच्छ की जाति की कुल की उत्पत्ति, हों! योनि नहीं।

खेचर जीवों के बारह लाख करोड़ कुल हैं... पक्षी। **चार पैरवाले जीवों के दस लाख करोड़ कुल हैं; सर्पादिक पेट से चलनेवाले जीवों के नौ लाख करोड़ कुल हैं; नारकों के पच्चीस लाख करोड़ कुल हैं; मनुष्यों के बारह लाख करोड़ कुल हैं और देवों के छब्बीस लाख करोड़ कुल हैं। कुल मिलाकर एक सौ साढ़े सत्तानवें लाख करोड़ (१९७५०००,०००,०००,००) कुल हैं।** उस जीव—ध्रुव में वह है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है सही, व्यवहाररूप से है। ऐसी बात है न! कोई अन्य ना कहते हैं, वह तो अन्य भी कहते हैं न, चौरासी लाख योनि। कहते तो हैं, परन्तु चौरासी लाख का स्वरूप क्या है, उसकी खबर नहीं। यह वस्तु है। भगवान ध्रुव चिदानन्द का उसमें स्पर्श नहीं। ऐसे एक सौ साढ़े सत्तानवें लाख करोड़, ऐसा कहा है।

पृथ्वीकायिक जीवों के सात लाख योनिमुख हैं;... पृथ्वी की उत्पत्ति का स्थान।

जैसे गोबर में एक जाति की योनि है, उसमें जो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एक प्रकार का है, उसको (एक) योनि (कहते हैं)। फेरफार जरा हो गया, उसकी दूसरी योनि। ऐसे-ऐसे गोबर में भिन्न-भिन्न उत्पत्ति स्थान है, उसको योनि कहते हैं। ऐसे पृथ्वीकाय उत्पत्ति के सात लाख उत्पन्न स्थान हैं। पृथ्वी जीव है, उसकी उत्पत्ति का पर्याय स्थान इतना है। ध्रुव में है नहीं। **अपकायिक जीवों के सात लाख योनिमुख है...** पानी-पानी। पानी का उत्पन्न होना। योनि उत्पन्न होना हो। कुल तो शरीर की जाति है। उत्पन्न होने की जाति में इतना भेद है। **तेजकायिक जीवों के सात लाख योनिमुख है; वायुकायिक जीवों के सात लाख योनिमुख हैं; नित्य निगोदी जीवों के सात लाख योनिमुख हैं;...** नित्य निगोद। कभी त्रस हुआ नहीं, ऐसे जीव अनन्त पड़े हैं। आहाहा! उसके भी सात लाख योनिमुख हैं।

चतुर्गति (चार गति में परिभ्रमण करनेवाले अर्थात् इत्तर) निगोदी जीवों के सात लाख योनिमुख हैं। नित्य में से निकलकर बाहर निगोद में आया है, उसकी भी इतनी योनि है। **वनस्पतिकायिक जीवों के दस लाख योनिमुख हैं...** निगोद साधारण। **द्विइन्द्रिय जीवों के दो लाख योनिमुख हैं; त्रीन्द्रिय जीवों के दो लाख योनिमुख हैं; चतुरिन्द्रिय जीवों के दो लाख योनिमुख हैं; देवों के चार लाख....** उत्पत्ति स्थान। वहाँ है न, शैय्या में उत्पत्ति स्थान में वर्णभेद है, उसको योनिभेद गिनने में आया है। **जीवों के चार लाख योनिमुख हैं; मनुष्यों के चौदह लाख योनिमुख हैं। (कुल मिलाकर ८४००००० योनिमुख हैं)।** उत्पत्ति के स्थान जीव के कहने में आते हैं, पर्याय की योग्यता से। ध्रुव में है नहीं। समझ में आया?

चौरासी लाख योनि में एक-एक योनि में अनन्त बार जन्म लिया है पर्यायदृष्टि से। पर्यायदृष्टि रखकर ऐसा अवतार लिया, राग की दृष्टि तो ठीक, पुण्यपरिणाम की दृष्टि कि ये मेरा है (और) मैं हूँ, (ऐसा मानता है), वह तो मिथ्यादृष्टि है, परन्तु एक समय की पर्याय की दृष्टि (वाला) पर्यायदृष्टि मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसी चौरासी लाख योनि... ध्रुवतत्त्व भगवान जहाँ सम्यग्दर्शन का ध्येय है, जिसके अवलम्बन से, आश्रय से, ध्येय करने से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा जीव ध्रुव तत्त्व, उसमें चौरासी लाख योनि है नहीं।

उसका अर्थ हुआ कि द्रव्यदृष्टि हुई तो उसको उत्पन्न स्थान की योग्यता रही नहीं। ऐसा है। आहाहा!

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त... एकेन्द्रिय जीव है सूक्ष्म लोक में, पूरे लोक में भरे हैं। उसकी **पर्याप्त और अपर्याप्त, स्थूल एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त...** पूरी भाषा आदि बाँधे, वह पर्याप्त; अधूरी हो, वह अपर्याप्त। **असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त...** मनवाले प्राणी और मन बिना के, **ऐसे भेदोंवाले चौदह जीवस्थान हैं।** वह जीव में नहीं। जीवस्थान जीव में नहीं। है वह जीवस्थान चौदह भेद, भगवान ध्रुव चैतन्य प्रभु जिसमें वह है ही नहीं। ऐसे जीव को यहाँ भगवान जीव कहते हैं। इस जीव की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया?

पीछे चौदह मार्गणा। चार गति उसमें नहीं, पाँच इन्द्रिय नहीं, काय नहीं। तीसरा बोल है न काय? योग पन्द्रह हैं, वह आत्मा में नहीं। वेद तीन है, वह आत्मा में नहीं। चार कषाय आत्मा में नहीं। पाँच ज्ञान की पर्याय और अज्ञान की (तीन) पर्याय ध्रुव में नहीं। ज्ञान की पाँच पर्याय मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और मति, श्रुत और विभंग, वह ध्रुवतत्त्व में है नहीं। **संयम...** ध्रुवतत्त्व में है नहीं। संयम तो पर्याय है। संयम, असंयम, संयमासंयम, वह तीनों ध्रुव में है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

दर्शन... चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन, यह चार पर्याय है, वह ध्रुवतत्त्व में नहीं। आहाहा! **लेश्या...** छह है। कृष्ण, नील, कापोत, तेजो (पद्म, शुक्ल) वह जीव में नहीं। **भव्यत्व...** जीव में नहीं। ध्रुव में भव्य, अभव्य है नहीं, वह तो पर्याय की अपेक्षा से भव्य, अभव्य है। आहाहा! ध्रुव भगवान चिदानन्द, जिसमें दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन हो, ज्ञान हो, ऐसी चीज़ में भव्य, अभव्यपना है नहीं। समझ में आया? उसका अर्थ है कि ध्रुवदृष्टि जहाँ हुई तो मैं भव्य, अभव्य हूँ, ऐसी शंका उसको होती नहीं। मैं अभव्य हूँ या नहीं? ऐसी शंका होती नहीं। भव्य है तो ही, उसका भान हो गया। समझ में आया? पर्याय में मेरी योग्यता है मोक्ष जाने की, ऐसा भान पर्याय में,

हों! द्रव्य तो है ही है। आहाहा! अभी तो लोग बाहर में ढूँढ़ने जाते हैं। शुभभाव में से कुछ आत्मा निकले? वहाँ कहाँ आत्मा था? शुभभाव में आत्मा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? शुभभाव में तो आस्रवतत्त्व है। आस्रवतत्त्व में से आत्मा प्राप्त होता है? आहाहा! भाई! तू तीन लोक का नाथ है न, नाथ! भाई! तेरी तुझे खबर नहीं। तेरी तुझे खबर नहीं, यह अन्धत्व कैसा? बाहर की बातों में चतुराई करे, फिर ऐसा है और वैसा है।

भगवान ध्रुव चैतन्य प्रभु में तो कहते हैं कि भव्य, अभव्यपना भी है नहीं। समझ में आया? ओहोहो! ध्रुवस्वभाव भगवान की दृष्टि हुई तो मेरा मोक्ष होगा या नहीं? मोक्ष नहीं होगा का प्रश्न तो है ही नहीं। परन्तु मोक्ष होगा या नहीं, ऐसा भी उसकी पर्याय में लक्ष्य नहीं जाता। क्योंकि द्रव्य—ध्रुव है, मुक्तस्वरूप है, उसको दृष्टि में पकड़ा तो उसमें मुक्ति की पर्याय पड़ी है, वह प्रगट हुए बिना रहेगी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

संज्ञीत्व... असंज्ञीत्व नहीं। कहते हैं या नहीं? संज्ञीपना जो क्षयोपशम, मन आदि हो तो धर्म पावे। यहाँ तो कहते हैं कि संज्ञीपना आत्मा है ही नहीं न। क्षयोपशमभाव से संज्ञीपना प्राप्त है तो क्षयोपसमभाव ही आत्मा में है नहीं न! समझ में आया? भाई! ज्ञान तो बढ़ायें। परन्तु कहते हैं कि क्षयोपशमभाव तुझमें है नहीं, किसमें तुझे बढ़ाना है? समझ में आया? ज्ञान का क्षयोपशम विकास तो विशेष करें। यहाँ तो कहते हैं कि क्षयोपशम तुझमें नहीं है, विशेष क्या करना है तुझे? विशेष करने जायेगा तो दृष्टि तेरी पर्याय में आ जायेगी। कठिन काम, भाई! बाबूलालजी! अलख की बात है। ओहोहो! संज्ञीपना, असंज्ञीपना उसमें है ही नहीं न।

और आहार... अनाहार। आहार—अनाहार दोनों आत्मा में नहीं है। **ऐसे भेदस्वरूप (चौदह) मार्गणास्थान हैं।** लो, चौदह मार्गणास्थान का वर्णन गोम्मटसार में बहुत चलता है, वह ध्रुव में है नहीं। वह तो पर्याय का व्यवहारनय का विषय चलता है तो बताते हैं। दृष्टि करनेवाले को उसका आश्रय लेनेयोग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? तो फिर जिससे सम्यग्दर्शन होता है, वह करणलब्धि आती है न, करणलब्धि? अपूर्वकरण, अध:करण, अनिवृत्तिकरण तो ध्रुव में है ही नहीं न! आहाहा! कठिन बात

भगवान! उसके ऊपर लक्ष्य रहेगा कि मुझे इस करण से परिणाम होगा, करण से शुद्ध होगा, (तो) कभी नहीं होगा। आहाहा! ऐसा कहते हैं। चिल्लाते हैं न बहुत लोग। देखो, करण शुभभाव है। तो शुभभाव से अन्दर आगे बढ़कर समकितदर्शन होता है। अरे! सुन तो सही! शुभभाव आत्मा में नहीं, तो उससे समकित होता है, यह आया कहाँ से? आहाहा! भगवान ध्रुव नित्यस्वरूप अविनाशी पदार्थ है, विनाशीक पर्याय अविनाशी में कहाँ से आयी? है ही नहीं न? विनाशीक पर्याय से अविनाशीक को लाभ हो, ऐसा है नहीं। आहाहा!

यह सब उन भगवान परमात्मा को... कौन भगवान? सिद्ध भगवान? यह द्रव्य भगवान आत्मा। देखो! भाषा कैसी की है। **यह सब उन भगवान परमात्मा को...** परमात्मा भगवान अपना ध्रुवस्वभाव भगवान नित्यानन्द प्रभु को **शुद्धनिश्चयनय के बल से...** पर्यायनय से (भेद) है, शुद्धनिश्चयनय के बल से उसमें है नहीं। आहाहा! **ऐसा भगवान सूत्रकर्ता का अभिप्राय है।** अर्थकर्ता टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव (कहते हैं)। यह सब, भगवान परमात्मा, अपना निज परमात्मा, निश्चय आत्मा, असली आत्मा। आहाहा! खुद भगवान आत्मा, उसमें यह भेद है नहीं।

ऐसा भगवान सूत्रकर्ता... देखो! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं। सूत्रकर्ता को भगवान कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य भगवान सूत्रकर्ताकार, **(श्रीमद्भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव का) अभिप्राय है।** यह अभिप्राय उसमें आया है।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ३५-३६ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि—

(मालिनी)

सकलमपि विहायाह्वाय चिच्छक्तिरिक्तं,
स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रम्।
इम-मुपरि चरन्तं चारु विश्वस्य साक्षात्,
कलयतु परमात्मात्मान-मात्मन्यनन्तम्॥

श्लोकार्थ—चित्शक्ति से रहित... क्या कहते हैं? शुद्धभाव ऊपर कहा है न?

उसको यहाँ चित्शक्ति कहा। चित्शक्ति, ध्रुवशक्ति, ज्ञानशक्ति, तत्त्व की सत्वरूप शक्ति ध्रुव। **चित्शक्ति से रहित अन्य सकल भावों को मूल से छोड़कर...** ऊपर शुद्धभाव कहा है न? उस शुद्धभाव को यहाँ चित्शक्ति कहा है। चित्शक्ति। ज्ञान का पूर्ण सत्व, तत्त्व ध्रुव, वह चित्शक्ति है, उससे रहित... उससे रहित... क्या कहते हैं? पुण्य-पाप में चित्शक्ति है नहीं, व्यवहाररत्नत्रय में चित्शक्ति है नहीं। परन्तु चित्शक्ति पर्याय में भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

चित्शक्ति से रहित अन्य सकल भावों को मूल से छोड़कर... अर्थात् उसमें है नहीं, ऐसा मूल से छोड़कर का अर्थ है। अकेला ज्ञान, केवल ज्ञान, केवल अर्थात् अकेला ज्ञान का पिण्ड ध्रुव, वह जिसमें नहीं, उन सबको छोड़कर **और चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा का अति स्फुटरूप से अवगाहन करके....** देखो! यह जीवशक्ति में आया न, पहली जीवशक्ति। **चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा...** इस जीवतत्त्व में... चित्शक्तिमात्र अकेला ज्ञान का रस। ज्ञानशक्ति सत्व स्वभावरूप त्रिकाल। ऐसा निज आत्मा। देखो! उसका नाम आत्मा। त्रिकाली ज्ञानस्वभावरूप निज आत्मा। समझ में आया?

चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा का अति स्फुटरूप से अवगाहन करके... क्या कहते हैं? अहो! पर्याय को अन्तर में झुकाकर (—मोड़कर).... पर्याय को... पर्याय का कथन व्यवहार से आता है न? कथन वह पर्याय का है। पर्याय को अन्तर में झुकाकर (अर्थात्) ध्रुव को पकड़कर जो सम्यग्दर्शन हुआ, कहते हैं, ऐसे आत्मा में स्फुट अवगाहन करके... जैसे समुद्र में मोती लेने को अन्दर प्रवेश करते हैं... मोती-मोती। प्रवेश करते हैं न समुद्र में? उसी प्रकार भगवान अनन्त आनन्द चैतन्यरत्नाकर ध्रुव है, उसमें प्रवेश करके—अवगाहन करके। निमित्त मैं नहीं, दया-दान विकल्प मैं नहीं, एक समय की पर्याय में अवगाहन करना नहीं। आहाहा! यह स्नान करने को पानी में जाते हैं या नहीं अवगाहन? डूबते हैं अन्दर। उसी प्रकार भगवान आत्मा चित्शक्तिमात्र में अति स्फुटरूप से... अति स्फुटरूप से—प्रगटरूप से—प्रत्यक्षरूप से, ऐसा कहते हैं। जिसमें विकल्प का सहारा नहीं, निमित्त का सहारा नहीं। अकेली मतिज्ञान की निर्मल पर्याय से अति स्फुट—प्रत्यक्ष से अवगाहन करके। समझ में आया?

परम अध्यात्म कथा अलौकिक कथा है। वह कहे, पढ़ो। कथानुयोग वाँचो, लोगों को समझ में आये। परन्तु कथानुयोग में मुख्य वस्तु की तो गौणरूप से बात है। द्रव्यानुयोग की दृष्टि नहीं होती, उसको कथानुयोग में किस नय से कथन है, उसका उसको पता नहीं चलेगा। देखो! यह दृष्टि हुए बिना कथानुयोग में किस अपेक्षा से कहा है, उसका बोध यथार्थ नहीं होगा।

यहाँ तो कहा है कि भगवान आत्मा निज आत्मा चित्शक्तिमात्र अकेला भगवान अतिस्फुटरूप से। '**स्फुटतरम्**' '**स्फुटतरम्**' है न? अर्थात्। '**स्फुटतरम्**' है न पाठ में? '**स्फुट**' '**स्फुटतर**' '**स्फुटतम्**'। '**स्फुटतर**' से पहली शुरुआत है न? '**अति स्फुटरूप से अवगाहन करके...** क्या कहते हैं? '**स्फुटतर**' शब्द पड़ा है न? अति स्फुट। पहली शुरुआत की बात है न? अत्यन्त स्फुटतम् हो जाये तो केवलज्ञान हो जाये। पहले तो भगवान आत्मा ध्रुवस्वरूपबिम्ब चैतन्यसागर—रत्नाकर प्रभु ध्रुव जो है, उसमें प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा, प्रत्यक्ष ज्ञान से अवगाहन करके, ऐसा कहते हैं। अति स्फुट अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान। मन का अवलम्बन नहीं, विकल्प का नहीं। सम्यग्दर्शन कैसे होता है, वह बात करते हैं। समझ में आया? अभी तो सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो, उसकी बात चलती है। आहाहा!

कहते हैं कि भगवान **चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा...** अपना आत्मा ऐसा। भगवान का आत्मा भगवान में रहा। अति प्रगटपने अवगाहन करके। ध्रुव में अवगाहन करके। क्या ध्रुव में प्रवेश होता है? चित्शक्ति आत्मा का अवगाहन करके **आत्मा समस्त विश्व के ऊपर प्रवर्तमान...** सारा विश्व ऊपर भिन्न, सारे विश्व से पृथक् ऐसे ऊपर प्रवर्तमान **ऐसे इस केवल (एक) अविनाशी आत्मा को...** देखो! अविनाशी ध्रुव **आत्मा को आत्मा में साक्षात् अनुभव करो।** उसका नाम धर्म और सम्यग्दर्शन है। आहाहा! भाषा में कितनी गम्भीरता पड़ी है, कितना पुरुषार्थ। ऐसा भगवान अन्तर में विराजमान है न परमात्मा।

निजप्रभु चित्शक्तिमात्र, उसमें अति स्फुट—प्रगटरूप से अवगाहन करके **आत्मा समस्त विश्व के ऊपर प्रवर्तमान ऐसे इस केवल (एक) अविनाशी आत्मा को...** त्रिकाल ध्रुव को आत्मा में... अन्दर में **साक्षात् अनुभव करो।** लो! अविनाशी आत्मा

को आत्मा में साक्षात् अनुभव करो। अविनाशी तो ध्रुव है। परन्तु ध्रुव के लक्ष्य से अनुभव करो तो वह ध्रुव का अनुभव किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? कठिन बात ऐसी महँगी। इसकी अपेक्षा तो एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया मिच्छामि दुक्कडम् जाओ, खड़े हो गये। पाप बारह महीने किये हों। हें? क्या कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो सच्ची है। वस्तु क्या है, इसका भान नहीं होता, दृष्टि की खबर नहीं होती, दृष्टि का विषय-ध्येय क्या है, उसकी खबर नहीं होती, बाहर की सिरपच्ची में मिथ्यात्व से हैरान हो गया। व्रत मैं पालन करूँ, विकल्प मैं पालन करूँ, विकल्प को रखूँ—मिथ्यात्व भाव है सब। आहाहा! समझ में आया? उसको छोड़कर भगवान चित्शक्तिमात्र प्रभु में अति प्रगटरूप से अवगाहन... समुद्र में जैसे प्रवेश करे। वहाँ तो प्रवेश होता है। ध्रुव में प्रवेश अन्तर (में) नहीं होता, परन्तु ध्रुव की ओर दृष्टि हुई, पर्याय झुकी, झुकाव... झुकाव हुआ तो ध्रुव में अवगाहन किया, ऐसा कहने में आता है।

अवगाहन करके, आत्मा समस्त विश्व के ऊपर प्रवर्तमान ऐसे इस केवल (एक) अविनाशी आत्मा को आत्मा में साक्षात् अनुभव करो। देखो! उसको आत्मा कहते हैं। निज परमतत्त्व भगवान जो ज्ञानमात्र आत्मा ध्रुव, आनन्दमात्र आत्मा ध्रुव, किसी भी गुण से कहो तो वह सारा ध्रुव, उसमें अवगाहन करके, उसमें दृष्टि लगाकर... ऐसे अविनाशी आत्मा (पर) दृष्टि हुई तो अविनाशी आत्मा का अनुभव करो, ऐसा कहने में आता है। अनुभव तो पर्याय का होता है। समझ में आया? वेदन में तो पर्याय आती है, कोई ध्रुव वेदन में आता नहीं। जो परलक्ष्य से राग का वेदन था, वह गुलाँट खाकर अन्तर की दृष्टि हुई तो कहते हैं कि अविनाशी का ही अनुभव हुआ। अविनाशी आत्मा को... पहले समझ में तो यह बात ले कि चीज़ ऐसी है और ऐसे प्राप्त होती है, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है। ऐसा पक्का ज्ञान विकल्प में निर्णय किये बिना उसमें अन्तर्मुख अनुभव हो नहीं सकता। आहाहा! शब्द कितना कहा है, देखो!

'चारुविश्वस्य साक्षात् कलयतु' ऐसा है न? साक्षात्। **'इममुपरि चरंतं'** देखो ऐसा था न? .... छोड़कर **विश्व के ऊपर प्रवर्तमान....** ऊपर शब्द आया न? **विश्व के ऊपर प्रवर्तमान...** वह **'इममुपरि चरंतं'** द्रव्यस्वभाव से ऊपर। पर्याय द्रव्य में प्रवेश नहीं करती। राग, पुण्य, विकल्प तो प्रवेश नहीं करता, परन्तु एक राग को जानने (वाली) पर्याय भी अन्तर में प्रवेश नहीं करती। ओहोहो! देखो! सुबह आया था न भाई! कि राग को ज्ञानी जानते हैं। अरे! गजब बात, भाई! राग को करता तो नहीं ज्ञानी, परन्तु राग को जानने(वाली) पर्याय राग सन्मुख होकर ज्ञेय को जाने, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! वह तो ज्ञाता स्वभाव भगवान आत्मा, उसके सन्मुख से जो स्व-परप्रकाशक पर्याय हुई तो राग को जाना, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। कर्ता तो नहीं परन्तु जानना भी व्यवहार है। आहाहा! कठिन बात, भाई! समझ में आया? अपनी पर्याय को जानना, वह भी व्यवहार है। द्रव्य को जानना, वह निश्चय। 'व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजन', वह तो पर्याय को जानना, वह कहते हैं। ...भाई! कहो। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जानना व्यवहार है। पर्याय है या नहीं? निश्चयरत्नत्रय पर्याय है। उसका जानना, वह पर्याय है। अपनी पर्याय अपनी पर्याय को जाने, वह भी व्यवहार है। आहाहा! गजब बात है। द्रव्य को—त्रिकाल को जाने, वह निश्चय है। वस्तु त्रिकाली है वह। सूक्ष्म है। कभी सुना ही नहीं। सुनने में आता ही नहीं। वहाँ सागर-फागर में है नहीं कहीं। कहो, समझ में आया?

वह कहा न? अवगाहन करके जानना... अपने को जानना... साक्षात् अनुभव करो, वह स्व को जाना, ऐसा कहने में आता है। जानने में आता है, वह पर्याय द्वारा, परन्तु पर्याय द्रव्य को लक्ष्य करके जाने, वह जानने में आया, ऐसा कहने में आता है। राग को जानो... राग को जानो... राग को जानो... क्या राग को जाने? आहाहा! करे तो कहाँ? राग को जानना, वह भी गलत है। भीखाभाई! राग का ज्ञान हुआ सहजरूप से, स्व का ज्ञान होने से... स्व पूर्ण ज्ञायक का ज्ञान हुआ तो उस पर्याय में, वह अपनी पर्याय त्रिकाल को जाने, वर्तमान पर्याय को जाने और राग है, उसका (ज्ञान) अपने में रहकर

राग को छुए बिना, राग को भिन्न रखकर राग का ज्ञान अपने से होता है। कहो, शान्तिभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक बार फिर कहो, ऐसा कहते हैं।

ऐसा कहते हैं कि राग को ज्ञेय बनाओ, राग को ज्ञेय बनाओ। अरे! क्या राग को ज्ञेय बनाये? सुन तो सही! राग का कर्ता हो, वह तो मिथ्यादृष्टि है। दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प का कर्तृत्व स्वीकार करे, वह तो मिथ्यादृष्टि है। वह तो अनादि से मान रखा है। परन्तु राग को ज्ञेय बनाओ। कैसे बने? राग तो परवस्तु भिन्न है। अपने में है ही नहीं तो राग भिन्न है, वह ज्ञेय कैसे बने? राग को ज्ञेय बनाओ। पर क्या बने? अपने आत्मा को ज्ञेय बनाकर जो ज्ञान में स्व-परप्रकाशक पर्याय हुई, उसमें व्यवहार को ज्ञेय कहने में आता है। राग को जाना, उसको व्यवहार कहने में आता है। वास्तव में तो राग सम्बन्धी ज्ञान अपने में से—स्वलक्ष्य में से आया है, उसको—द्रव्य-गुण-पर्याय को आत्मा जानता है। आहाहा! समझ में आया?

केवल (एक) अविनाशी आत्मा.... ऐसा लिया न? पर्याय का अनुभव करो, ऐसा नहीं (लिया)। केवल आत्मा का अनुभव करो, ऐसा लिया। **आत्मा में साक्षात् अनुभव करो।** ओहो! ध्रुव भगवान अनन्त आनन्द का सागर प्रभु ध्रुव, उसमें अवगाहन करो अर्थात् उस ओर सन्मुख हो। अवगाहन करने का अर्थ स्वभाव सन्मुख हो और सन्मुख होकर आत्मा का राग और पर की अपेक्षा बिना स्व के अवलम्बन से साक्षात् अनुभव करो, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। ओहोहो!

दूसरा श्लोक।

(अनुष्टुभ्)

चिच्छक्ति-व्याप्त-सर्वस्व-सारो जीव इयानयम्।
अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिका अमी॥

श्लोकार्थ—चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका सर्वस्व-सार है, ऐसा यह जीव... ऐसा लेना। चैतन्यशक्तिमात्र से व्याप्त—पसरा हुआ जिसका—आत्मा का सर्वस्व सार है,

ऐसा आत्मा। आहाहा! समयसार की गाथा के कलश का आधार दिया। समझ में आया? भगवान आत्मा वस्तु, जिसमें चैतन्यशक्ति से व्याप्त सर्वस्व सार है। उसमें राग-द्वेष, विकल्प, व्यवहार, निमित्त कुछ है नहीं। **ऐसा यह जीव इतना ही मात्र है...** इतना चैतन्यशक्तिमात्र व्याप्त—पसरा हुआ, अपने स्वभाव—गुण में (व्याप्त) इतना मात्र आत्मा है।

चित्शक्ति से शून्य... लो। ज्ञानभाव से शून्य। एक समय की पर्याय भी त्रिकाली ज्ञानभाव से शून्य है। सामान्यभाव जो त्रिकाली है, वह एक समय की पर्याय से शून्य है। एक समय की पर्याय सामान्य त्रिकालभाव से शून्य है। समझ में आया? कहते हैं कि **चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका सर्वस्व-सार है...** और **चित्शक्ति से शून्य जो यह भाव हैं, वे सब पौद्गलिक हैं।** पर्याय का लक्ष्य करते हैं (और) विकल्प होते हैं, वह पर्याय पौद्गलिक है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? एक ध्रुव तत्त्व भगवान जिसमें चैतन्य व्यापक है, वही सर्वस्व, वस्तु का सर्वस्व अपना सार वस्तु है। ऐसा यह जीव इतना मात्र है। चित्शक्ति से शून्य, चित्स्वभाव गुण से शून्य, हों! आहाहा! शक्ति है न? यहाँ तो गुण है। पर्याय की बात नहीं। ध्रुव भगवान चित्शक्ति जो है, ऐसी शक्ति से शून्य, यह भाव अर्थात् पर्याय, वह सब पौद्गलिक है। ओहोहो! समझ में आया? राग का उपयोग, वह अनुपयोग अचेतन है। गजब बात है न! आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ दर्शन और वह भी दिगम्बर दर्शन, उसमें यह प्रवाह चला आया है। समझ में आया? ऐसी बात किसी ने नहीं कही। अमृतचन्द्राचार्य तो अभी ९०० वर्ष पहले हुए।

कहते हैं कि चैतन्यशक्ति का सर्वस्व सार आत्मा और चैतन्यशक्ति से शून्य, वह पुद्गल। आहाहा! भगवान आत्मा... क्योंकि पर्याय का लक्ष्य करने से तो राग उत्पन्न होता है। राग पुद्गल है तो पर्याय को पुद्गल कह दिया। आहाहा! पूर्ण जीव नहीं, पर्यायवाला जीव, व्यवहार जीव, अभूतार्थ जीव, वह पुद्गल है। आहाहा! गजब बात है! अरे! लोगों को सत्य क्या है, यह सुनने में आवे नहीं, वह कहाँ से समझे? कहाँ से श्रद्धा करे? और सम्यग्दर्शन बिना सब बिना एक के शून्य हैं। शून्य-शून्य। बाबूलालजी! (शून्य) करोड़ लिखे और एक नहीं। एक रह गया। सम्यग्दर्शन क्या और उसका विषय

क्या, उसकी खबर नहीं। बाकी सब करते हैं। आहाहा! भगवान! तूने तो तेरा पता लगाया नहीं और तेरे पते बिना पर में घुस गया। कितनी बात है, देखो! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं न। आता है, आता है।

कहते हैं कि **चैतन्यशक्ति से व्याप्त...** कौन? आत्मा। आत्मा द्रव्य है, उसमें चैतन्यशक्ति व्याप्त है, ज्ञानशक्ति व्याप्त है, ध्रुव त्रिकाल। ऐसा **सर्वस्व सार है...** सर्वस्व आत्मा का सार वह चीज़ है। **ऐसा यह जीव इतना ही मात्र है; इस चित्शक्ति से शून्य जो यह भाव हैं, वे सब पौद्‌गलिक हैं।** आहाहा! गजब किया है न! यह सब केवलज्ञान (आदि) पर्याय को पुद्‌गल ठहराते हैं न, विकल्प उठता है इसलिए। कर्म की अपेक्षा न वहाँ? आहाहा! समझ में आया?

ध्रुव भगवान आत्मा, वह तो चैतन्यशक्ति से पसरा हुआ है। अकेला ज्ञानभाव से विस्तार... वह सर्वस्व सार ही भगवान आत्मा का है। ध्रुवस्वभाव शुद्धभाव चित्शक्ति स्वभावभाव, वही सर्वस्व सार है। **यह जीव इतना ही मात्र है।** निश्चय आत्मा तो इतना मात्र है। ओहोहो! चित्शक्ति से शून्य जितनी पर्याय है, वह सब पौद्‌गलिक है। दिगम्बर सन्त यह बात करते हैं, हों! दुनिया, समाज समतौल रहेगी या नहीं? समाज को इसकी रुचि होगी या नहीं? समाज उसको निश्चयाभास कह देगा या नहीं? अरे! एकान्त निश्चयाभास है, यह कहनेवाला तो। अरे! सुन तो सही! तुझे कुछ मालूम नहीं। समझ में आया? आहाहा!

शून्य जो यह भाव हैं, वे सब पौद्‌गलिक हैं। ऐसा तो अमृतचन्द्राचार्य का आधार देकर सिद्ध किया। अब स्वयं दो श्लोक कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ८, शुक्रवार, दिनांक - १९-०९-१९६९
गाथा-४३, श्लोक-६०, ६१, प्रवचन-१०

यह नियमसार, शुद्धभाव अधिकार चलता है। उसका ६०वाँ कलश। हिन्दी में, हिन्दी। ६०। ८९ पृष्ठ।

(मालिनी)

अनवरतमखण्डज्ञानसद्भावनात्मा,
व्रजति न च विकल्पं सन्सृतेर्घोररूपम्।
अतुलमनघमात्मा निर्विकल्पः समाधिः,
पर-परिणति-दूरं याति चिन्मात्र-मेषः ॥६०॥

क्या कहते हैं? देखो। **श्लोकार्थ—सततरूप से अखण्ड ज्ञान की सद्भावनावाला आत्मा...** क्या कहते हैं? निरन्तर... सततरूप—निरन्तर... अखण्ड आत्मद्रव्य जो है, अखण्ड ज्ञायकभाव ध्रुवभाव, जिसको यहाँ शुद्धभाव कहते हैं वह। अखण्ड जो नित्य ध्रुव ऐसा आत्मा अथवा ऐसा ज्ञान... ज्ञान कहते हैं, वह आत्मा ही है। सतत्रूप से—निरन्तर **अखण्ड ज्ञान की सद्भावनावाला आत्मा...** ऐसे आत्मा की सद्भावनावाला। वह सद्भावना, वह मोक्ष का मार्ग है। क्या कहा, समझ में आया?

द्रव्य कैसा है? सतत्, अखण्ड। निर्मल ज्ञायकस्वरूप शुद्ध ध्रुव, जिसमें कर्म, रागादि का प्रवेश नहीं, ऐसी जो ध्रुवधारा, ऐसी चीज़ में सद्भावनावाला (अर्थात्) सच्ची एकाग्रतावाला। समझ में आया? नियमसार—मोक्षमार्ग है न? तो सद्भावनावाला, वह मोक्षमार्ग की पर्याय है। परन्तु त्रिकाली ध्रुव पर लक्ष्य करने से, उसका आश्रय करने से; आश्रय कहो या एकाग्रता करने से जो पर्याय प्रगट होती है, उसको सद्भावनावाला—ऐसी निर्मल पर्यायवाला आत्मा, उसको यहाँ आत्मा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार की बात कब आयेगी? ऐई! जेठालालभाई! व्यवहार है ही नहीं न अन्दर में। वस्तु में है नहीं, गुण में है नहीं और उसकी सद्भावना में भी

व्यवहार है नहीं। सूक्ष्म विषय है। समझ में आया?

जिसको शुद्धभाव... यह शुद्धभाव अधिकार चलता है न? है ही नहीं, जो ध्रुवस्वरूप है, उसमें तो निमित्त भी नहीं, राग भी नहीं और एक समय की पर्याय से भी ध्रुव... ध्रुव दूर है। आहाहा! यह ध्रुव जो है, उसकी भावना करनेवाला आत्मा, ऐसा कहते हैं। नियमसार है और यह तो एकदम अध्यात्म। व्यवहार... यह कहते हैं न हमारे शुभभाव... शुभभाव तो जहर है, वह तो आत्मा में है ही नहीं। मोक्षमार्ग की... द्रव्य में, गुण में तो है नहीं, परन्तु उसकी भावना जो... सद्‌भावना शब्द पड़ा है न? सद्‌भावना, वह पर्याय है। ध्रुव चैतन्य द्रव्य ज्ञायकभाव को ध्यान में लेकर, उसको ध्येय बनाकर जो पर्याय सद्‌भावना उत्पन्न हुई, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र, वह सद्‌भावना। स्वरूप में सन्मुख होकर जो भावना हुई, ऐसा सद्‌भावनावाला आत्मा अर्थात् मोक्षमार्गी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन काम। यह ऐसी चीज़ है, बाहर में करना है... करना है... कुछ करना है। यहाँ कहते हैं कि करना नहीं, यहाँ स्थिर होना है।

मुमुक्षु : स्थिर तो होना है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करना नहीं, यह स्थिर होना है। अन्दर स्थिर होता है। वह स्थिर होनेरूपी कर्तव्य हुआ। वह कर्तव्य करता हूँ, ऐसा भी नहीं। क्योंकि द्रव्य जो वस्तु है, वह जो ध्येय में आया तो उसकी परिणति... परिणति उस समय में होगी, वह परिणति उस सन्मुख ही होती है। सूक्ष्म बात है न? यह कहते हैं यहाँ। सद्‌भावना शब्द पड़ा है न? ध्रुव चैतन्य है, ज्ञायकभाव सच्चिदानन्द प्रभु कारणपरमात्मा, वह ध्रुव। उसकी सद्‌भावनावाला, उस समय की पर्याय वही सत् है। परन्तु सन्मुख हुआ तो वह पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसा कहने में आता है। वरना है उस समय की वही पर्याय। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा... **सततरूप से अखण्ड ज्ञान की सद्‌भावनावाला...** यह अखण्ड वस्तु कहो या सतत् अखण्ड रहे कहो अथवा अखण्ड द्रव्य की सतत्‌रूप से सद्‌भावनावाला आत्मा। भगवान द्रव्य वस्तु महाभण्डार अनन्त... अनन्त सिद्धस्वभाव का भण्डार भगवान। ऐसा भगवान आत्मा अपना निज परमात्मा, उसको यहाँ अखण्ड ज्ञान कहने में आया है।

समझ में आया ? उसमें खण्ड नहीं। ऐसा जो अखण्ड भगवान आत्मा, उसमें सततरूप से सद्भावनावाला, निरन्तर उसके सन्मुख होकर तद्पर्याय, सच्ची पर्याय, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह सन्मुख होकर जो प्रगट हुई, ऐसा सद्भावनावाला आत्मा। यह भावना शब्द से (आशय) एकाग्रता है। भावना शब्द से भावना करते हैं, कल्पना करते हैं, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भावना तो अन्दर एकाग्र, वह भावना करते हैं। कितने लोग भावना का अर्थ ऐसा करते हैं। कहा था न वह ? श्रावक जो समकिती जीव है, उसको सामायिक काल में शुद्ध उपयोग की भावना होती है। तो भावना का अर्थ यह शुद्ध उपयोग ही भावना है। तो कोई कहे कि भावना होती है। समझे ? ऐसा अर्थ करते हैं। वह रतनचन्दजी आदि है न ? भावना अर्थात् कल्पना होती है कि मुझे ऐसा हो... ऐसा हो...

मुमुक्षु : हुआ नहीं। हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हुआ नहीं, है। हुआ नहीं। भावना करते हैं। ऐसा नहीं। यह अन्दर स्वरूप चैतन्यमूर्ति, उसमें शुद्ध उपयोग जम जाये, उसको ही भावना कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, एकाग्रता को भावना (कहते हैं)। शुभ-अशुभ विकल्प जो राग है... सूक्ष्म बात है भगवान! अन्तर का मार्ग कोई अलौकिक है न ? महा भगवान निरन्तर अखण्ड वस्तु पड़ी है, प्रत्यक्ष पड़ी है, प्रगटरूप तत्त्व है। वस्तु... वस्तुरूप से तो प्रगट ध्रुव है न ? उसकी सद्भावनावाला। उसकी सद्भावना... जो व्यवहारमोक्षमार्ग का विकल्प है, उसका निषेध करने को... आगे आयेगा अर्थ में। सद् सद्भावनावाला कहा। तो चैतन्य में ध्रुव की ओर की एकाग्रता होकर जो भावना अर्थात् निर्मल पर्याय हुई, ऐसी निर्मल पर्यायवाला आत्मा। अमरचन्दभाई! कठिन। हिन्दी तो आसान है परन्तु भाव बहुत गूढ़ है, अमरचन्दभाई कहते थे। समझ में आया ? आहाहा!

अरे! कहते हैं कि भगवान जिसमें निधि खान है। अनन्त आनन्द की निष्क्रिय

खान। ऐसा जो भगवान निजस्वभाव, उसकी सद्भावना, उसकी अन्तर में एकाग्रतावाला आत्मा, उसमें एकाग्रतावाला आत्मा। समझ में आया?

(अर्थात् 'मैं अखण्ड ज्ञान हूँ'.... देखो! है न? **ऐसी सच्ची भावना जिसको निरन्तर वर्तती है, वह आत्मा...)** भावना के ऊपर सतत् शब्द लगा है। आहाहा! 'मैं अखण्ड ज्ञान हूँ' ऐसी सच्ची। वह सत् शब्द पड़ा है न? तो जिसे सच्ची भावना सतत् अर्थात् निरन्तर वर्तती है। आहाहा! भगवान ध्रुवस्वरूप के सन्मुख दृष्टि निरन्तर वर्तती है, ऐसा कहते हैं। धर्मी जीव की तो शुद्ध ध्रुव सन्मुख की निरन्तर परिणति वर्तती है। समझ में आया?

अर्थात् 'मैं अखण्ड, अभेद चीज़ हूँ' उस ओर सच्ची पर्याय जिसे निरन्तर एकाग्रता वर्तती है वह आत्मा। **संसार के घोर विकल्प को नहीं पाता,...** देखो! पुण्य और दया, दान, व्रत का शुभोपयोग, यह संसार का घोर विकल्प है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है सेठ? क्या है? घोर विकल्प का अर्थ? संसार का घोर विकल्प शुभभाव है। वह **नहीं पाता...** शुभभाव को प्राप्त होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह सद्भावना सामने है न? ध्रुव चैतन्यद्रव्य अखण्ड वस्तु परमात्मा निजस्वरूप की सच्ची भावनावाला वह आत्मा संसार के घोर... सतत् भावना को प्राप्त होता है। तो शुभविकल्प घोर संसार का कारण है, उसको प्राप्त होता नहीं। आहाहा! बहुत कठिन काम! पंच महाव्रत का परिणाम, बारह व्रत के परिणाम, ग्यारह प्रतिमा के विकल्प—परिणाम, यह दान के परिणाम घोर संसार है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! चार गति जिससे से उत्पन्न होती है शुभभाव में से।

संसार के घोर विकल्प को.... कठोर भाव को—विकल्प को **नहीं पाता,...** क्योंकि शुद्धद्रव्यस्वभाव की एकाग्रता में शुद्धभाव के लक्ष्य से शुद्धभाव की एकाग्रता में शुद्धपर्यायरूप भावना होती है, सच्ची भावना—शुद्धपर्याय। उसको घोर विकल्प संसार नहीं है, ऐसे शुद्ध को प्राप्त होता है, अशुद्ध को प्राप्त होता नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन काम, भाई! बाहर की यह क्रियाकाण्डवालों को तो ऐसा लगे कि यह मार्ग तो कैसा है? भगवान का कहा हुआ होगा? यह किसका कहा हुआ है? भगवान ने कहा

है, देखो। यह क्या है ? श्लोक कुन्दकुन्दाचार्य का है। यह उसका अर्थ पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि महाव्रतधारी थे। व्यवहार से कहने में आता है न ?

मुमुक्षु : निश्चय महाव्रतधारी।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय महाव्रतधारी थे। अपने स्वरूप में स्थिर थे। अहिंसास्वभाव में स्थिर थे, सत्यभाव में स्थिर थे। चौर्य बिना की स्वरूप की स्थिरता में स्थित थे, ब्रह्म अर्थात् आनन्द में स्थिर थे, अपरिग्रहभाव अपना निर्मम स्वभाव में स्थिर थे। यह महाव्रत है। अट्ठाईस मूलगुण तो विकल्प-राग है। आस्रव है। उसको पाते नहीं, ऐसा कहे। आहाहा! यह अस्ति-नास्ति किया। उसका अर्थ करते हैं अब।

किन्तु निर्विकल्प समाधि को प्राप्त करता हुआ.... सद्‌भावना कहते हैं न ? शक्ति एकाग्रता। वस्तु की ओर की जो एकाग्रता है, वही निर्विकल्प समाधि को प्राप्त करता है। राग बिना की वस्तु निर्विकल्प अभेद है, उसकी पर्याय भी निर्विकल्प वीतरागी पर्याय ऐसी शान्ति, निर्विकल्प समाधि, निर्विकल्प शान्ति, अकषाय पर्याय की शान्ति, उसको प्राप्त करता हुआ... **प्राप्त करता हुआ परपरिणति से दूर...** घोर विकल्प का अर्थ कहा था, विकल्प / राग, वह विकारी परपरिणति है। समझ में आया ? आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प-राग, पंच महाव्रत आदि का राग, कहते हैं कि वह उससे दूर... परपरिणति से दूर।

पहले आया था कि आत्मा पर्याय से दूर है; यह निर्मल पर्याय में पर परिणति से दूर। यह पर्याय की बात चलती है। समझ में आया ? आया था न पहले कलश में ? पहले कलश में आया था। ३८ में, नहीं ? ३८ (वीं गाथा का ५४) वाँ कलश था। **सर्व तत्त्व में जो सार है, जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है,...** ५४वाँ कलश। टीका के बाद कलश। **सर्व तत्त्व में जो सार है,...** (शुद्धभाव अधिकार का) पहला ही कलश है। ५४वाँ कलश। **समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है...** पहला कलश, नहीं ? पहला अर्थात् ५४वाँ हों। कहाँ दूर है ? वह पर्याय से दूर है। पर्याय नाशवान है और ध्रुव भगवान आत्मा अविनाशी। वहाँ दूर है, वह पर्याय से दूर है। द्रव्य ध्रुव त्रिकाली वस्तु। यहाँ जो दूर कहा, वह निर्मल स्वभाव ध्रुव, उसमें एकाग्र होने से अशुद्ध परिणतिरूप

विकार, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प से दूर है। आहाहा! समझ में आाय? पण्डितजी!

जैसा शुद्ध ध्रुव चैतन्य है, ऐसी शुद्ध परिणति अन्तर एकाग्र होकर वर्तती है, वह आस्रव के विकल्प से दूर है। आहाहा! वास्तव में धर्मी विकल्प को छूता ही नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा! दूर कहा न? व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प को, शुभ उपयोग को धर्मी छूता ही नहीं। द्रव्य में छूता नहीं तो द्रव्यदृष्टि हुई तो विकार को भी छूता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि जीव... तब कोई कहे कि परन्तु वह सम्यग्दर्शन प्रगट कैसे हो? वही तो बात चलती है साथ में। ओहो! सारा प्रभु निजस्वभावभाव परमात्मा ध्रुव, उसको ध्येय बनाकर निर्विकल्प निर्णय हो... वह वस्तु निर्विकल्प अभेद है, ऐसा ही पर्याय में निर्विकल्प निर्णय हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? ऐसा धर्मी अपने द्रव्यस्वभाव-सन्मुख की एकाग्रता के कारण शान्ति को प्राप्त करता हुआ... ऐसा स्वभाव केवल अकषायस्वभाव है, ध्रुव शान्त स्वभाव है, ऐसा पर्याय में ध्रुव सन्मुख की एकाग्रता से शान्ति को प्राप्त करता हुआ। पण्डितजी! कठिन बात है! सेठीजी! आहाहा! कठिन मार्ग है। इसने कभी सुना नहीं, समझा नहीं, उसको तो कैसा लगे कि यह तो क्या कहते हैं?

कुछ करने का कहे, दया पालो, व्रत पालो, यह करो। कहते हैं कि करना, वह मरना है। समझ में आया? करूँ... करूँ... करूँ... वह तो कर्तृत्वबुद्धि हुई। ऐसा कर्तापना द्रव्यस्वभाव में है ही नहीं। द्रव्य राग को करे, वह द्रव्य में नहीं। वास्तव में पर्याय को करे, वह द्रव्य नहीं। निर्मल पर्याय को पर्याय करे, द्रव्य नहीं। समझ में आया? क्योंकि द्रव्य है, वह कूटस्थ ध्रुव है और पर्याय एक समय की अवस्था है। तो वास्तव में पर्याय में ही कर्ता, कर्म, करण (आदि) षट्कारक लगा दिया। आता है न ६२वीं गाथा?

एक समय की विकारी पर्याय अपने से कर्ता, अपना कर्म, अपना साधन, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, ऐसे निर्मल पर्याय जो है, वह भी कर्ता, कर्म, करण— साधन पर्याय में अपने से पड़ा है। समझ में आया? विकार... एक अंश में राग करते हैं

या द्वेष या मिथ्यात्व। भगवान कहते हैं कि एक समय की पर्याय में षट्कारक से वह काम होता है, पर से नहीं। विकारी पर्याय भी अपने से कर्ता पर्याय होकर, उसी पर्याय में कर्म होकर, उस पर्याय में राग का साधन होकर, उसी पर्याय में से पर्याय प्रगट होती है, प्रगट अर्थात् वह पर्याय हुई, और उसमें से निकली, अथवा सम्प्रदान—रखी, वह पर्याय के आधार से पर्याय हुई। समझ में आया? विकारी, हों!

विकारी पर्याय, एक समय की विकारीपर्याय षट्कारक से पर्याय होती है। द्रव्य-गुण से नहीं, कर्म से नहीं, पूर्व से नहीं, बाद की पर्याय से नहीं, पूर्व की पर्याय से नहीं। आहाहा! सत् है न? सत् को अहेतुक कहा। आहाहा! कहते हैं कि यहाँ निर्मल परिणति... वीतराग भगवान अपना ध्रुव निजस्वरूप, उस ओर की एकाग्रता हुई तो वह स्वतन्त्र पर्याय उत्पन्न हुई और उसमें परपरिणति का तो दूरपना है। आहाहा! कितनी बात करते हैं! पद्मप्रभमलधारिदेव सन्त, मुनि थे, हों! आचार्य (नहीं थे)। कितने ही कहते हैं कि मुनि नहीं, आचार्य को मानो। मुनि है, परमागम झरता है। देखो तो सही! समझ में आया?

परपरिणति से... परपरिणति अर्थात् व्यवहार दया, दान, भक्ति आदि का विकल्प—राग, उससे तो धर्मी दूर वर्तते हैं। आहाहा! और **अनुपम, अनघ चिन्मात्र को प्राप्त होता है।** उपमारहित अनघ चीज़, **दोषरहित; निष्पाप; मलरहित।** अनघ अर्थात् पुण्य-पाप से रहित, ऐसा चिन्मात्र भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु, वह ज्ञान का अनादि-अनन्त असाधारण स्वभाव जो है, ऐसे चिन्मात्र को प्राप्त होता है। तो चिन्मात्र—चैतन्यमात्र आत्मा को प्राप्त होता है। लो! वह चिन्मात्र वस्तु ध्रुव, उसको प्राप्त होता है। बहुत कठिन। समझ में आया?

ध्रुवस्वरूप भगवान आत्मा, उस ओर की दृष्टि हुई, उस ओर की भावना अर्थात् एकाग्रता हुई तो, कहते हैं कि चैतन्यमात्र आत्मा को प्राप्त होता है, वह ध्रुवस्वभाव को ही प्राप्त होता है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय—रागादि को प्राप्त होता नहीं, उसका नाम समकिती और धर्मी कहने में आता है। कठिन काम।

दूसरा श्लोक। ६१। ६१ है न?

(स्रग्धरा)

इत्थं बुद्ध्वोपदेशं जननमृतिहरं यं जरानाशहेतुं,
भक्तिप्रह्वामरेन्द्रप्रकटमुकुटसद्रत्नमालार्चिताङ्घ्रेः।
वीरात्तीर्थाधिनाथाद्दुरितमलकुलध्वान्तविध्वन्सदक्षं,
एते सन्तो भवाब्धेरपरतटममी यान्ति सच्छीलपोताः॥६१॥

आहाहा! अब जरा देखो!

श्लोकार्थः—भक्ति से नमित देवेन्द्र, मुकुट की सुन्दर रत्नमाला द्वारा.... वहाँ बहुत निश्चय कहा न? इसलिए थोड़ी भक्ति ली है।... आहाहा! कहते हैं कि **भक्ति से नमित देवेन्द्र,....** बड़े इन्द्र, शकेन्द्र, ईशान इन्द्र। ऐसे जो इन्द्र-देवेन्द्र के मुकुट की सुन्दर रत्नमाला। उसका मुकुट और उसकी सुन्दर मणिरत्न की माला। **द्वारा जिनके चरणों को प्रगटरूप से पूजते हैं....** परमात्मा को। ऐसा देवेन्द्र, अर्धलोक का स्वामी, ईशान इन्द्र और शकेन्द्र। जिसके मणिरत्न की माला द्वारा नमितभूत। नमित, ऐसा है न? भक्ति से नमित। **जिनके चरणों को प्रगटरूप से पूजते हैं....** ऐसे। नजदीक आकर पूजते हैं। दूर तो नहीं, परन्तु भगवान के पास आकर पूजते हैं।

ऐसे महावीर तीर्थाधिनाथ द्वारा... ऐसे महावीर तीर्थाधिनाथ द्वारा **ये सन्त, जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक तथा दुष्ट पापसमूहरूपी अंधकार का ध्वंस करने में चतुर, ऐसा इस प्रकार का (पूर्वोक्त) उपदेश समझकर,...** देखो! सन्त ऐसा उपदेश सुनते हैं। भगवान का ऐसा उपदेश मिला है, ऐसा कहते हैं। ऐसा मिला है। भगवान से उपदेश ऐसा मिला सन्त को। सन्त जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक है। जन्म हो, मृत्यु हो और जरा (उसका) नाशक।

दुष्ट पापसमूहरूपी अंधकार... दुष्ट समूह शब्द से पुण्य-पाप दोनों। शुभ और अशुभ दोनों दुष्ट पापसमूहरूपी अन्धकार है। वह **ध्वंस करने में चतुर, ऐसा इस प्रकार का उपदेश....** देखो! भगवान का उपदेश ऐसा था। जैसा था, वैसा सन्तों ने अनुभव में ले लिया, ऐसा कहते हैं। भगवान का उपदेश ऐसा था, यह सिद्ध करते हैं। परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर के समवसरण में ऐसा उपदेश था। जो भगवान को इन्द्र आकर

झुकते हैं। उनका (ऐसा) उपदेश था कि पुण्य और पाप जो अघ अर्थात् पाप है, पापसमूह दुष्ट अन्धकार है। पुण्य-पाप में चैतन्य का अंश नहीं है। आहाहा!

ऐसे **ध्वंस करने में चतुर, ऐसा इस प्रकार का (पूर्वोक्त) उपदेश समझकर,....** सन्तों ने ऐसा उपदेश समझा, ऐसा कहते हैं। भगवान ने ऐसा दिया था और सन्तों ने ऐसा लिया था। यहाँ कोई कहे कि ऐसा कहते हैं, वह कौन कहते हैं? वह कहते हैं भगवान महावीर। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : महावीर का उपदेश है, ऐसा कहते हैं। किसका उपदेश ऐसा है? ऐसा उपदेश किसका है? कि जिसको इन्द्र अर्धलोक के स्वामी एकावतारी, एक भवतारी जीव आकर मणिरत्न के मुकुट, उसमें मणिरत्न की मालायें वह झुक जाती हैं। माला हो न अन्दर? अरबों की कीमत की गिनती... ऐसे वीरनाथ। पहले ऐसा कहा। जिनको ऐसे इन्द्र पूजते हैं, जिसके चरणकमल, ऐसे वीरनाथ—महावीर—अन्तिम परमात्मा का यह उपदेश है। वह उपदेश सन्तों ने सुन लिया। समझ में आया?

मुमुक्षु : सन्त का अर्थ?

पूज्य गुरुदेवश्री : साधु। सन्त अर्थात् साधु, मुनि। मुख्यरूप से यहाँ मुनि कहना है न? मुनि हैं न? मुनि स्वयं कहनेवाले। उपदेश करनेवाले कुन्दकुन्दाचार्य मुनि हैं और यह भी टीका करनेवाले मुनि हैं। मुनि ने भगवान से ऐसा उपदेश (सुना)। भले दूर रहे। पहले कहा था न? पाँचवीं गाथा में आया न, समयसार? पर-अपर गुरु। हमारे सीधे (प्रत्यक्ष) गुरु और परम्परा में भगवान (आदि) वह सब गुरु विज्ञानघन में स्थिर थे। सन्त हो, साधु हो या केवली, विज्ञानघन में स्थिर थे। उन्होंने हमारे ऊपर कृपा करके ऐसा उपदेश दिया। यह बात ली है। जरा पढ़कर उसमें आया है, दूसरे को अनुकूल हो गया। ... समझे?

हमको तो परमात्मा, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। समझ में आया? यह समयसार है? हिन्दी? गुजराती है। पाँचवीं है न? कैसा है भगवान आत्मा? हमारा वैभव हमको प्रगट हुआ वह? कुन्दकुन्दाचार्य। हमारे आत्मा का आनन्द प्रगट हुआ, वह वैभव। वह

धूल के वैभव नहीं, ऐसा कहते हैं। निजवैभव अन्दर आनन्द, ज्ञान, शान्ति जो प्रगट हुई, वह कैसे प्रगट हुई? कहते हैं? समझ में आया? कहाँ गया? निर्मल विज्ञानघन जो आत्मा... हमें उपदेश मिला है, वह कैसा है? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

निर्मल विज्ञानघन जो आत्मा, उसमें अन्तर्निमग्न परम गुरु—सर्वज्ञदेव और अपरगुरु गणधरादि से लेकर हमारे गुरु पर्यन्त... सब विज्ञानघन में लीन थे। देखो! **निर्मल विज्ञानघन आत्मा में अन्तर्निमग्न...** देखो! साधु—हमारे गुरु भी ऐसे थे और वहाँ से लेकर परमात्मा तीर्थंकर भी ऐसे ही थे। उसमें अन्तर नहीं मानते। आहाहा! **सर्वज्ञदेव और अपरगुरु गणधरादि से लेकर हमारे गुरु पर्यन्त, उनके प्रसादिरूप से दिया गया...** उनके प्रसाद—मेहरबानी से दिया गया, **जो शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश, उससे निजवैभव का जन्म हुआ है।** हमारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसे भगवान का उपदेश जो मिला, उसमें से उत्पन्न हुआ है। निमित्त से कथन है न? हुआ है स्वयं से, परन्तु निमित्त कौन था, उसका ज्ञान कराते हैं। समझ में आया?

अपर—अपने गुरु और पर—सबको ही विज्ञानघन में अन्तर्निमग्न लिये हैं। पंच महाव्रत के पालनेवाले या ऐसे लिये नहीं। आहाहा! वह तो विज्ञानघन भगवान चैतन्य शान्तरस बर्फ का पिण्ड, उसमें लीन थे। सर्वज्ञ भी लीन थे और गणधरादि से लेकर हमारे गुरु सब उसमें (लीन थे), उन्होंने हमारे पर कृपा करके उपदेश दिया। आहाहा! समझ में आया? देखो! क्या कहते हैं? ओहोहो!

गणधरादि से लेकर हमारे गुरुपर्यन्त, उनके प्रसादरूप से दिया गया... मेहरबानी से दिया गया **शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश...** हमारा यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का वैभव उत्पन्न हुआ हमारे से, परन्तु उसमें निमित्त यह थे, ऐसा ज्ञान कराया है... ज्ञान कराया है। आहाहा! समयसार के एक-एक श्लोक में बहुत भर दिया है। यह यहाँ आचार्य कहते हैं, देखो! मुनि। हमें सन्त से कैसा उपदेश मिला है? कि जन्म-जरा-मृत्यु चार गति का नाशवाला **तथा दुष्ट पापसमूहरूपी अंधकार का ध्वंस करने में....** देखो! है? **ऐसा इस प्रकार का (पूर्वोक्त) उपदेश समझकर,....** भगवान ने ऐसा उपदेश दिया और सन्तों ने हमें इस प्रकार का कथन किया। महावीर तो बहुत दूर थे।

यहाँ कहा न कुन्दकुन्दाचार्य ने? सर्वज्ञदेव से लेकर हमारे गुरु, सर्व ने हमको ऐसा उपदेश दिया है। आहाहा! समझ में आया?

यह भी कहते हैं कि हमको वीरनाथ ने हमें ऐसा उपदेश दिया है। हमारे गुरु से लेकर सर्वज्ञ परमात्मा सब वीरनाथ हैं हमारे तो। ऐसा उपदेश हमको दिया है। अर्थात् यह उपदेश कोई पाप-पुण्य का नाश करनेवाला, जन्म-मरण का नाश करनेवाला और आत्मा की शान्ति का उत्पन्न करनेवाला भगवान का उपदेश है। कोई कहे कि यह व्यवहार का नाश करते हैं। वह भगवान का उपदेश ऐसा है। समझ में आया?

पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि हमारा **दुष्ट पापसमूहरूपी अंधकार का ध्वंस करने में चतुर, ऐसा इस प्रकार का उपदेश समझकर,....** समझे कैसे? उपदेश ऐसा मिला। भगवान की वाणी में ऐसा आया। आहाहा! **सत्शीलरूपी नौका द्वारा,....** सत्शीलरूपी नौका। सच्चे ब्रह्मचर्य, आनन्द आदि की परिणतिरूपी नौका द्वारा **भवाब्धि के सामने किनारे पहुँच जाते हैं।** आहाहा! संसार का किनारा। समझे? वहाँ पहुँच जाते हैं। भगवान का उपदेश ऐसा मिला हमको। सन्त कहते हैं कि ऐसा परमात्मा का (उपदेश) मिला कि जो जन्म-मरण का नाश करनेवाला है, दुष्ट पुण्य-पाप के समूह को नाश करनेवाला है। ऐसा सत्य उपदेश हमको मिला तो उसके द्वारा हम हमारे स्वरूप का आश्रय करके **सत्शीलरूपी नौका...** जैसे नौका तिरती है न? तैरते हुए समुद्र के किनारे पर आ जाती है। वेसे हमारी शुद्ध परिणति भी करते... करते... करते... संसार के किनारे पहुँच जायेंगे और मोक्ष का किनारा शुरु हो जायेगा। आहाहा! मोक्ष की दशा प्राप्त होगी और संसार का अन्त आयेगा। परन्तु इस कारण से, ऐसा कहते हैं। ऐसा उपदेश मिला और उस उपदेश में ऐसा मिला कि तेरा ध्रुव चैतन्य भगवान आत्मा, उस ओर की दृष्टि कर, ज्ञान और रमणता कर, उसके द्वारा पुण्य-पाप का नाश होगा और चार गति का जन्म-मरण-जरा का नाश होगा। आहाहा! समझ में आया?

अहो! **सत्शीलरूपी नौका...** हमारा भगवान आत्मा, सत् ब्रह्म, परमब्रह्म परमात्मा, उसमें एकाग्र होकर सत्शीलरूपी नौका प्रगट की। नाव। समझ में आया? श्वेताम्बर में आता है। बात झूठी है, परन्तु आती है। अतिमुक्तकुमार हो गये हैं न? नाव तिराते थे

भाई! यह कहते हैं कि नाव तो यह हमारी है। उसने उल्टा लिया है। भगवतीसूत्र में आया है। अतिमुक्तकुमार हैं छोटी उम्र के राजकुमार। उसने दीक्षा ले ली थी। साधु के साथ बाहर जंगल में गये। साधु के साथ बाहर जंगल में गये। जंगल में पीछे फिरे तो बहुत वर्षा हुई। वर्षा हुई तो पानी बहता था। तो बालक था न? भूल गये कि हमारे साधु को तो नहीं होता। बैठकर पाल बाँध दी। मिट्टी होती है न पंक? पंक-पंक—कादव। पाल ऐसे बाँध दी। पानी इकट्ठा हो गया। पात्र हाथ में था। वह तो पात्र (वाले मुनि) मानते हैं न? पात्र हाथ में था तो पात्र डाला उसमें।

'नाव तरे रे मोरी नाव तरे, ऐसे मुनिवर जल सु खेल करे। मुनि कर्म ना ये चाळा...' ऐसा आता है, समझे या नहीं? ऐई! स्थानकवासी में जन्म है या नहीं तुम्हारा? बैठ गया। पानी में पात्र डाला। पात्र मुनि को होता नहीं। परन्तु ऐसा बनाया है न? सिद्ध कर दी बात। तुम्हारे... आ गये। 'नाव तरे रे मोरी नाव तरे, ऐसे मुनिवर जल सु खेल करे। मोहनीय कर्म का यह चाळा, मुनिवर दोरे नावडिया रे बाळा।' वह और एक गजसुकुमार—दो का लिया। 'मुनिवर दोरे नावडिया रे...' यह सब पढ़ा है न वहाँ। स्वाध्याय का पुस्तक आता है। उसमें है। स्वाध्याय क्या कहते हैं? सज्झायमाला। उसमें आता है यह सब। समझ में आया कुछ? यह दुकान पर पढ़ते थे। बात झूठी है। मुनि को वस्त्र भी नहीं होता, पात्र भी नहीं होता। उसने पानी में पात्र डाला, ऐसा करके। वह मुनि और वह गजसुकुमार।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान को पूछने आये थे। अरर! साधु ऐसा करते हैं? साधु वहाँ से हट गये। भगवान के पास... महाराज! अतिमुक्तकुमार तो ऐसा करते हैं। महाराज! कितने भव में मोक्ष जायेगा? अरे! इस भव में मोक्ष जायेगा। उसकी सेवा करो। ऐई! ऐसी कथा डाली है। मूल सूत्र में, हों! भगवान की कही हुई गणधर को भगवती में। भगवान कहते हैं कि अरे! सन्तों! वह इस भव में मोक्ष जानेवाले हैं। इसलिए उनकी अवहेलना नहीं करना। अवहेलना नहीं करना। परन्तु ऐसे की सेवा करे? वह साधु है ही नहीं। साधु जल में क्रीड़ा करे? बालक था न तो क्रीड़ा करे।

यहाँ कहते हैं कि पण्डित है तो आत्मा की नौका में क्रीड़ा करते हैं। समझ में आया? देखो! **सत्शीलरूपी नौका...** 'आत्मा तरे रे मेरा आत्मा तरे, भवसागर से निकलकर मोक्ष में जायेगा।' मोक्ष में जाते हैं, ऐसा कहते हैं, देखो! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जन्म-जरा-मरण का नाश करनेवाला, **दुष्ट (पुण्य-) पापसमूहरूपी अंधकार का ध्वंस करने में चतुर, ऐसा....** जो उपदेश **सत्शीलरूपी नौका द्वारा, भवाब्धि....** भवरूपी सागर / समुद्र के **सामने किनारे पहुँच जाते हैं।** संसार का अन्त आ जाता है। अन्तर के ध्रुवस्वरूप की एकाग्रता की परिणति द्वारा संसार का अन्त होता है। दूसरे से संसार का अन्त होता नहीं। समझ में आाय? यह ४२ (गाथा) हुई।

अब ४३ (गाथा)। कैसा है आत्मा? वह शुद्धभाव।

णिद्दंडो णिद्दंद्दो णिम्मओ णिक्कलो णिरालंबो।
णीरागो णिद्दोसो णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा॥४३॥

आत्मा ऐसा है, देखो! यह कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा है और भगवान का उपदेश चला है, उससे यह उपदेश है। नीचे हरिगीत।

निर्दंड अरु निर्द्वंद्व निर्मम नि:शरीर निराग है।
निर्मूढ़ निर्भय, निरवलंबन आत्मा निर्दोष है॥४३॥

वह तो उसका अर्थ किया नीचे। निर्दण्ड है न? दूसरा। पहला कहाँ आया? अनघ। कलश में आ गया। दूसरी पंक्ति में आ गया है। 'अनघ=दोषरहित; निष्पाप; मलरहित' पहले कलश में और निर्दण्ड दूसरे में आया। **दण्ड रहित (जिस मन-वचन-कायाश्रित प्रवर्तन से आत्मा दण्डित होता है।)** आता है न? .... प्रतिक्रमण में आता है। तो कहते हैं।

यहाँ कहते हैं, देखो! टीका लो। **यहाँ (इस गाथा में) वास्तव में शुद्ध आत्मा को समस्त विभाव का अभाव है—ऐसा कहा है।** भगवान आत्मा में किसी प्रकार का विभाव नहीं है, उसको आत्मा कहते हैं। विभाव, वह अनात्मा है, जड़ है; आत्मा नहीं।

आहाहा! **(इस गाथा में) वास्तव में शुद्ध आत्मा को....** यह शुद्ध है न ऊपर? ऊपर शुद्धभाव है। उस शुद्धभाव को अथवा शुद्धात्मा को समस्त विभाव का अभाव है, ऐसा कहा है।

मनदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड के योग्य द्रव्यकर्मों तथा भावकर्मों का अभाव होने से आत्मा, निर्दण्ड है। आत्मा में मन, वचन, काया दण्ड है ही नहीं कि जिससे द्रव्यकर्म उत्पन्न हो। आहाहा! मन, वचन और काया आत्मा में है ही नहीं। भाव, द्रव्यकर्म और भावकर्म। पुण्य-पाप का भाव, दया, दान, विकल्प आदि जो शुभभाव कर्म, उसका अभाव होने से... वह आत्मा में है नहीं। इस कारण उसको निर्दण्ड कहा गया है। आहाहा! समझ में आया?

वहाँ आत्मा शब्द पड़ा है न बीच में? **भावकर्मों का अभाव होने से आत्मा, निर्दण्ड है।** वह '**अप्पा**' है न, '**अप्पा**'? इसलिए। भगवान आत्मा जिसको मन, वचन, काया का दण्ड ही नहीं है। निर्दण्ड है। द्रव्यकर्म नहीं, भाव-विकल्प नहीं, ऐसा आत्मा निर्दण्ड है। **निश्चय से परमपदार्थ के अतिरिक्त...** भगवान आत्मा परम पदार्थ आनन्दघन, ध्रुव ऐसे पदार्थ के अतिरिक्त—भिन्न **समस्त पदार्थ समूह का (आत्मा में) अभाव होने से आत्मा, निर्द्वन्द्व है।** द्वंद्व नहीं—द्वैत नहीं। समझ में आया? आहाहा! देखो! यह नौ तत्त्व में आत्मा कैसा है, उसकी बात करते हैं। यह जीवतत्त्व की बात है। आहाहा!

जिसमें निश्चय परमपदार्थ भगवान आत्मा, उससे अतिरिक्त—उससे भिन्न **समस्त पदार्थसमूह...** भगवान आत्मा में है ही नहीं। तो निर्द्वन्द्व-द्वंद्व नहीं... द्वंद्व नहीं। निर्द्वंद्व है। अद्वैत आत्मा है। केवल शुद्ध आनन्दकन्द आत्मा है। उसको आत्मा कहते हैं और उसकी दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। अब आयेगा, यह उपादेय, ऐसा लेंगे। ऐसा यह आत्मा वास्तव में उपादेय है। अन्तिम में। ऐसा आत्मा आदरणीय है। कहो, समझ में आया?

प्रशस्त-अप्रशस्त, समस्त मोह, राग, द्वेष का अभाव होने से... देखो! उसमें प्रशस्त भी ले लिया मोह-राग-द्वेष को। प्रशस्त राग-द्वेष ऐसा और अप्रशस्त राग-द्वेष-मोह, **समस्त मोह, राग, द्वेष का अभाव होने से...** उसमें तो राग-द्वेष विकल्प कोई है

ही नहीं। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! ऐसा आत्मा वास्तव में निर्मम है, वही उपादेय है। अन्तर में आदरणीय वह आत्मा है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म, भाई! कथा रखते हैं भावसागर और.... यह कथा आत्मा की है। आतमराम की कथा है। आहाहा! समझ में आया? यह सत्य नारायण की कथा है। सत्य नारायण आत्मा ऐसा है। लोग मानते हैं, ऐसा नहीं। भगवान आत्मा... कहते हैं कि ऐसा आत्मा ही निर्ममत्व है और उसके ऊपर दृष्टि करके वही अन्तर में आदरणीय है। अर्थात् दृष्टि वहाँ करनेयोग्य है। निमित्त पर, राग पर या पर्याय पर दृष्टि करनेयोग्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

निश्चय से औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, और कार्मण नामक पाँच शरीरों के समूह का अभाव होने से.... आत्मा नि:शरीर है। आत्मा को शरीर है ही नहीं। गोम्मटसार में कहते हैं कि आत्मा तीन शरीर हो, चार, शरीर हो, पाँच शरीर होता है। यहाँ ना कहते हैं। वह तो निमित्त कौन थे साथ में, वह बताते हैं। यहाँ तो आत्मा में है नहीं। शरीर-फरीर। कार्मणशरीर, सारा १४८ प्रकृति का पिण्ड आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? आत्मा नि:शरीर है। नि:शरीर, शरीररहित भगवान आत्मा। आहाहा! यहाँ चिल्लाते हैं कि शरीर से भिन्न आत्मा? पागल कहते हैं पागल। आहाहा! अरे! भगवान! क्या करता है? ऐसा कहते हैं, ऐई!

दूसरा कहते हैं, उसकी कॉपी करके जामनगर में ऐसा कहा था। अरे! आत्मा और शरीर भिन्न? पागल कहते हैं, पागल है वह तो। पागल। गाँडा समझते हो? आत्मा और शरीर भिन्न, वह तो पागल कहते हैं। अरे! भगवान! शब्द भी तुझे सुनने में ठीक न पड़े! गजब बात है! आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञानानन्द....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानानन्द शरीर है। राग, दया, दान, व्रत के विकल्प से भिन्न चैतन्यमूर्ति है। यह तो पहले कह गये कि उसमें विभाव है ही नहीं। आहाहा! क्या चला है आज तो! जेठालालभाई!

मुमुक्षु : स्वतन्त्र योग्यता....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वतन्त्र योग्यता। गजब करता है। आहाहा! यह शरीर रहित— नि:शरीरी ऐसा आत्मा अभी है, हों! ऐसा आत्मा उपादेय है। बाकी व्यवहाररत्नत्रय, निमित्त और पर्याय भी उपादेय है नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! नियमसार भारी स्पष्ट बात!

मुमुक्षु : गम्भीर वर्णन....

पूज्य गुरुदेवश्री : गम्भीर वर्णन। बहुत गम्भीर। अलौकिक है। उसका पेट खोल दिया है आत्मा का। आत्मा किसको कहे? आत्मा किसको कहे? हिले-चले वह आत्मा? राग करे वह आत्मा? रागवाला वह आत्मा? कहे, नहीं। वह तो नि:शरीरी भगवान आत्मा है। ऐसा आत्मा ही उपादेय है। दृष्टि में, ज्ञान में ज्ञेय बनाकर उसका ही आदर करनेयोग्य है।

मुमुक्षु : त्रिकाल ही ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल ही ऐसा ही है। त्रिकाल ही ऐसा है। मान रखा है कि मैं शरीरवाला हूँ, रागवाला हूँ, यह तो मानता है। उसकी मान्यता से फिर जाये? भ्रमणा, ऐसी मान्यता तो भ्रमणा है। भ्रमणा से भवभ्रमण करता है। समझ में आया?

निश्चय से परमात्मा को... देखो! यहाँ परमात्मा... पहले निश्चय से परमपदार्थ कहा। पहले आत्मा निर्दण्ड (कहा)। बाद में निश्चय से परमपदार्थ कहा। समझे? निश्चय से औदारिक आदि आत्मा में नहीं है, ऐसा लिया। यहाँ **निश्चय से परमात्मा को...** परमात्मा अर्थात् परमस्वरूप ध्रुव भगवान निज आत्मा, उस परमात्मा को **परद्रव्य का अवलम्बन न होने से....** उसको परद्रव्य का आलम्बन है ही नहीं। आहाहा! स्वद्रव्य को परद्रव्य का आलम्बन है ही नहीं। आहाहा! भगवान की मूर्ति का अवलम्बन है, भगवान की वाणी का अवलम्बन है। कहते हैं, नहीं। स्वद्रव्य में अवलम्बन है ही नहीं। समझ में आया? वह पर्याय नैमित्तिक और निमित्त सामने, वह तो पर्याय के साथ व्यवहार सम्बन्ध है। आत्मा में तो है ही नहीं पर का सम्बन्ध। ज्ञायकभाव का तो पर के साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध भी नहीं। फिर ऐसी तकरार आयी। निमित्त-निमित्त सम्बन्ध निश्चय से है, व्यवहार से नहीं। गजब भाई! निश्चय है, वह तो है इतनी बात है।

ऐसा कहे कि कर्म का उदय आये तो यहाँ विकार हो, ऐसा निमित्त सम्बन्ध सच्चा है, निश्चय है, ऐसा कहते हैं। परन्तु वह व्यवहार है। दोनों होकर व्यवहार है। सुन न! आहाहा! दिगम्बर के पण्डित कितने लिखे। अखबार में आया था। अखबार में आया था। गृहस्थ है।

निश्चय से परमात्मा अपना आत्मा... समझ में आया? ऐसे आत्मा को **परद्रव्य का अवलम्बन न होने से....** ओहो! द्रव्य को अपनी पर्याय का अवलम्बन नहीं है। आहाहा! परद्रव्य तो क्या? समझ में आया?

ऐसे भगवान आत्मा परमब्रह्म, शुद्ध ध्रुव चैतन्य परमेश्वर अपना स्वरूप... परमात्मा लिया है न? परमात्मा को परद्रव्य का अवलम्बन नहीं होने से वह निरालम्ब है। निरालम्ब है। आहाहा! यह झगड़ा दोनों में। स्थानकवासी में कहे, नहीं, भगवान की मूर्ति और भगवान का आलम्बन नहीं। यह कहे कि भाई! शुभभाव हो तो आलम्बन हो। कुछ लोग कहे कि वह हो तो शुभभाव प्रगटे। यह कहते हैं कि भाई! शुभभाव हो तो निमित्त आलम्बन कहते हैं। ऐसे मतभेद। अरे! भगवान कहाँ अटक गया है तू?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं न आपमें, नहीं? आगम और मूर्ति—दोनों अब आधार है। नहीं आनन्दजी! भव्यों को दोनों का आधार है। आगम और मूर्ति। आगम अर्थात् शास्त्र, मूर्ति, दोनों का आधार है, कहते हैं।

यहाँ कहते हैं कि वह हो तो लक्ष्य जाता है तो शुभभाव उससे उत्पन्न होता है, तो उस शुभभाव का भी आत्मा में आलम्बन नहीं है। आहाहा! वास्तव में शुभभाव भी परद्रव्य है। समझ में आया? आहाहा! भगवान निज परमात्मा, उसको परद्रव्य का आलम्बन न होने से उसको व्यवहार का आलम्बन नहीं है। व्यवहार है तो आत्मा रहा, ऐसा है नहीं। दया, दान, व्रत, आत्मा है, ऐसी मान्यता की विकल्प से, तो उससे आत्मा है? नहीं। वह तो निरालम्बी भगवान विराजमान है। समवसरण (स्तुति) में आता है न? समवसरण स्तुति में, नहीं? जैसे आत्मा निरालम्ब, वैसे भगवान समवसरण में नीचे कमल पर नहीं विराजते। भगवान समवसरण में कमल पर नहीं विराजते। कमल तो दूर रहता है, अद्धर विराजते हैं, अद्धर।

समवसरण में तीर्थंकर भगवान का शरीर... आत्मा तो भिन्न है अन्दर। शरीर कमल को नहीं छूता। कमल तो नीचे होता है। जैसा निरालम्ब आत्मा, वैसे भगवान निरालम्ब खड़े हैं, ऐसा कहते हैं। वह समवसरण (स्तुति) में रचा है हमारे पण्डितजी ने। आता है या नहीं? 'जैसा निरालम्ब आत्मद्रव्य, ऐसा निरालम्ब जिनदेह।' लो! समवसरणस्तुति में आता है। समवसरण। यह निरालम्बन यह, आहाहा! देखो! यह चन्द्र, सूर्य है, उसको कोई स्तम्भ है? उसी प्रकार भगवान जहाँ विराजते हैं, वहाँ नीचे कोई आधार नहीं है। कमल है, सिंहासन है, उससे दूर भगवान विराजते हैं। यह आत्मा भगवान भी निरालम्ब ही है, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जिसको राग का आलम्बन नहीं, निमित्त का आलम्बन नहीं, ऐसे आत्मा को निरालम्बन कहते हैं। बाद में आयेगा निराकुल।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

- आहाहा! पूरी दुनिया विस्मृत हो जाये, ऐसा तेरा परमात्मतत्त्व है। अरे रे! तीन लोक का नाथ होकर राग में रुक गया। राग में तो दुःख की ज्वाला सुलगती है, वहाँ से दृष्टि छोड़ दे! और जहाँ सुख का सागर भरा है, वहाँ तेरी दृष्टि जोड़ दे! राग को तू भूल जा! तेरे परमात्मतत्त्व को पर्याय स्वीकार करती है, परन्तु उस पर्यायरूप मैं हूँ, यह भी भूल जा। अविनाशी भगवान के समक्ष क्षणिक पर्याय का मूल्य क्या? पर्याय को भूलने की बात है, वहाँ राग और देह की बात कहाँ रही? आहाहा! एक बार तो मुर्दा खड़ा हो जाये, ऐसी बात है अर्थात् कि सुनते ही उछलकर अन्तर में जाये, ऐसी बात है। (11)

— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, दृष्टि के निधान

भाद्र शुक्ल ९, शनिवार, दिनांक - २०-०९-१९६९
गाथा-४३, श्लोक-६२, ६३, प्रवचन-११

नियमसार चलता है। नियमसार का अर्थ मोक्ष का मार्ग (अर्थात्) दुःख से मुक्त होने का और सुख की प्राप्ति का मार्ग। इसको मोक्ष का मार्ग कहते हैं। यहाँ नियमसार कहते हैं। वह मोक्ष का मार्ग कैसे आत्मा को मानने से, अवलम्बन से होता है? वह बात चलती है।

यहाँ आया निरालम्ब। आत्मा कैसा है? **निश्चय से परमात्मा को...** अपना परमस्वरूप भगवान ध्रुव चैतन्य, वह परमात्मा अर्थात् अपना—निज परमात्मा। ध्रुव चैतन्य अखण्ड अभेद अखण्ड ज्ञायकभाव, वह अपना निज परमात्मा है। उसको **परद्रव्य का अवलम्बन न होने से...** स्वतन्त्र पदार्थ भगवान, उसको परद्रव्य का आश्रय—अवलम्बन नहीं होने से निरालम्ब है। ऐसे आत्मा की अन्तर्दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन और मोक्ष का मार्ग उत्पन्न होता है। समझ में आया? यहाँ तक आया था कल।

अब, निराग है। कैसा है आत्मा? निराग। जिसमें मिथ्यात्व नहीं। मिथ्यात्व—विपरीत अभिप्राय, वह आत्मा के द्रव्यस्वभाव में नहीं है। **वेद...** वेद नहीं। वेद, स्त्री-पुरुष का वेद होता है। वेद वस्तु में नहीं। वस्तु तो मिथ्यात्वरहित और वेद अर्थात् वासना अर्थात् विकाररहित वस्तु आत्मा है। उसको आत्मा कहते हैं। यह परिणाम तो सब आस्रवतत्त्व, भावबन्ध का भावतत्त्व है। है भावबन्ध, परन्तु आत्मा में नहीं। समझ में आया?

आत्मद्रव्य भगवान सच्चिदानन्दस्वरूप अपना निज आत्मा, उसमें मिथ्यात्व, वेद नहीं है। मिथ्यात्व, वेद पर्याय में है, वस्तु में है नहीं। **राग, द्वेष, हास्य, रति, अरति...** नहीं है। **शोक, भय, जुगुप्सा...** क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसा लिया है। अभ्यन्तर परिग्रह लिया है न? राग-द्वेष (अथवा) क्रोध, मान, माया, (लोभ)—चार लिये हैं। वेद को एक गिनकर **चौदह अभ्यन्तर परिग्रहों को अभाव होने से...** चौदह का परिग्रह भगवान (आत्मा) में है नहीं। आहाहा! पैसे-बैसे तो है नहीं उसमें, कहते हैं। अपने

स्वभाव में परद्रव्य तो है ही नहीं। उसकी पर्याय में जो विकृतभाव है, वह वस्तु में है नहीं। यह (बात) चलती है। लक्ष्मी आदि तो अपनी पर्याय में—अवस्था में भी है नहीं। वह तो बाहर की चीज़ है। लक्ष्मी, यह शरीर, कर्म, वह तो अपनी वर्तमान दशा में भी यह चीज़ नहीं। समझ में आया? परन्तु अपनी पर्याय में जो अनादि से पर्यायबुद्धिवाले को मिथ्यात्वभाव, वेदभाव, राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया है, वह द्रव्यस्वरूप भगवान चिदानन्दस्वरूप आनन्दसागर में वह है नहीं। ऐसा आत्मा अन्तर (में) उपादेय है। ऐसा आत्मा अंगीकार करनेयोग्य, श्रद्धा करनेयोग्य, दृष्टि में लेनेयोग्य और धर्म करनेवाले को ऐसा धर्मी आदरणीय है। समझ में आया? इस कारण से उसको निराग कहा है। समझ में आया? ऐसा आत्मा में है नहीं तो निराग है। निराग अर्थात् कुछ भी पर के साथ सम्बन्ध नहीं है।

वस्तु ज्ञानानन्द, अखण्डानन्द प्रभु है, उसमें वह रागादि का विकल्प नहीं है। पर्याय में है, वह मान रखा है कि मैं ऐसा हूँ। वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? वस्तु चिदानन्द निज आत्मा में तो है ही नहीं। ऐसी दृष्टि अन्दर आत्मा में करना, उसका नाम प्रथम से प्रथम सम्यग्दर्शन, मोक्ष के मार्ग का पहला अवयव, धर्म उसको कहते हैं। समझ में आया?

दूसरा। निर्दोष भगवान आत्मा है। **निश्चय से...** वास्तव में **समस्त पापकलंकरूपी कीचड़ को धो डालने में...** अर्थात् उसमें है नहीं। धो डालने का अर्थ? है ही नहीं। निश्चय से समस्त पाप (अर्थात्) पाप और पुण्य दोनों। **पापमलकलंकरूपी कीचड़ को धो डालने में समर्थ, सहज, परमवीतराग....** स्वाभाविक परमवीतरागमूर्ति जिन **सुखसमुद्र में मग्न...** सुखसमुद्र में तो मग्न आत्मा है। आहाहा! अतीन्द्रिय अमृतसागर आत्मा आनन्द, उस स्वरूप ही आत्मा है, मग्न का अर्थ। **(डुबी हुई, लीन)...** सुखसमुद्र में लीन।

प्रगट सहजावस्थास्वरूप... प्रगट सहज अवस्था अर्थात् द्रव्य। यहाँ पर्याय की बात नहीं है। स्वाभाविक अवस्था निश्चय-स्थ रहनेवाला स्वरूप। **सहज ज्ञानशरीर...** लो। उसका तो स्वाभाविक ज्ञानशरीर है। चैतन्य शरीर आत्मा है, उसमें यह शरीर नहीं,

पाँचों शरीर नहीं, राग भी नहीं। ऐसा ज्ञानशरीरी प्रभु, अरूपी शरीर प्रमाण से विज्ञानघन ऐसा **उसके द्वारा पवित्र होने के कारण....** सहजज्ञान... शरीर के—उसके द्वारा। द्वारा का अर्थ ऐसा है। आत्मा निर्दोष है। भगवान आत्मा निर्दोष वस्तु है, उसके ऊपर दृष्टि करना। ऐसा आत्मा ही उपादेय है। धर्मी को—सम्यग्दृष्टि को—धर्म करनेवाले को ऐसा आत्मा आदरणीय अर्थात् उपादेय—ग्रहण करनेयोग्य है। समझ में आया? निर्मूढ है।

सहज निश्चयनय से... भाषा देखो! निश्चयनय भी सहज। वस्तुस्वरूप है, वही निश्चयनय है। वस्तुस्वरूप शुद्ध चिदानन्द को ही सहज निश्चयनय कहो, शुद्धनय कहो या भूतार्थ त्रिकाल सत्य पदार्थ कहो। समझ में आया? **सहज निश्चयनय से...** वास्तव में ज्ञान के स्वभाव से देखो तो वह सहज ज्ञान की मूर्ति आत्मा है। स्वाभाविक ज्ञान... यह केवलज्ञान या मति-श्रुत, वह बात तो यहाँ है नहीं। वह तो ज्ञानमूर्ति चैतन्यबिम्ब है। स्वाभाविक दर्शन है। त्रिकाल स्वभाव दर्शन है दृष्टापना।

सहज चारित्र... है। आत्मा में त्रिकाल चारित्र है। यह चारित्र की पर्याय की बात नहीं। स्वरूप में सहज चारित्र—स्थिरतारूप त्रिकाली वीतरागता सहज आत्मा में पड़ा है। समझ में आया? **सहज-परमवीतराग सुख आदि....** स्वाभाविक परम वीतराग आनन्द... राग की वासना बिना का परम वीतराग आनन्दस्वरूप आदि **अनेक परमधर्मों के आधारभूत....** ऐसा जो धर्म अर्थात् स्वभाव, इसका आधारभूत **निज परमतत्त्व को जानने में समर्थ....** अपना निजस्वरूप त्रिकाली, उसको जानने में समर्थ, इस कारण से **आत्मा निर्मूढ़ (मूढ़तारहित) है;....** त्रिकाली ज्ञान-दर्शन आनन्द स्वरूप को जानने में समर्थ, इसलिए निर्मूढ कहा। यहाँ त्रिकाली ज्ञान की बात चलती है। समझ में आया? ऐसा आत्मा .... आहाहा!

विकल्प... विकल्प... विकल्प... ऐसी तो एक उत्पाद-व्यय की पर्याय भी... ऐसे पर्याय पर दृष्टि है, उत्पाद-व्यय पर दृष्टि है तो उत्पाद-व्यय में ध्रुव चला गया। समझ में आया? ध्रुवतत्त्व जो है अनादि-अनन्त परमात्मा, (वह) उत्पाद-व्यय में आता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा आत्मा किसी दूसरे का होगा? परमात्मा से अलग होगा? तुम स्वयं हो, ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! आहाहा!

निजात्मा भगवान **निज परमतत्त्व को जानने में समर्थ....** यह 'जानने में समर्थ' का अर्थ त्रिकाली शक्ति की बात है। त्रिकाल गुण जो ज्ञान है, वह त्रिकालीस्वरूप को जानने में समर्थ है। त्रिकाली ज्ञान है, वह त्रिकालीतत्त्व को जानने में समर्थ है। आहाहा! अब उसकी बात आयेगी। उस कारण से निर्मूढ है। समझ में आया? वरना तो ऐसा लिया है... वह आपकी बालपोथी में लिया है। बालपोथी देखी है? आत्मा द्रव्य है, ज्ञान उसका गुण है, जानना उसकी पर्याय है। आता है? ऐ, लड़कों! आता है या नहीं बालपोथी में? आज तो लड़के आये हैं।

आत्मा वस्तु-द्रव्य, ज्ञानस्वभाव... ज्ञानस्वभाव गुण, जानना उसकी पर्याय है। यहाँ जानना उसका त्रिकाली गुण है। यहाँ तो ऐसा कहना है। यहाँ पर्याय नहीं है। पर्याय बाद में लेंगे। समझ में आया कुछ? बालपोथी आती है न? बहुत (छप) गयी बालपोथी। शायद लाख छप गयी है या नहीं? हरिभाई कहाँ गये? हरिभाई है या नहीं? हरिभाई नहीं हैं? ८६ हजार। कुछ आया था, लाख तक पहुँचा देना। ऐसी भाषा थी कहीं। समझ में आया?

यहाँ तो भगवान वस्तु जो सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजचारित्र त्रिकाली, हों! त्रिकाली, **सहज-परमवीतराग सुख आदि अनेक परमधर्मों....** स्वभाव और उसका आधार तत्त्व, ऐसा। गुण का आधार गुणी। गुणी वस्तु, वह गुण का आधार है। गुणी में गुण रहे हैं। ऐसा गुण जो सहज आनन्द, ज्ञानादि स्वभाव, जिसका आधार आत्मा है वस्तु.. वस्तु... ऐसा भगवान अपने को जानने में निर्मूढ़ है। परम तत्त्व को जानने में समर्थ है। पूरी चीज़ जानने में... उसमें पड़ा हुआ पूरा ज्ञानगुण में सारे तत्त्व को जानने की ताकत है। पर्याय की बात यहाँ नहीं है। समझ में आया?

अथवा... अब पर्याय आयी। **सादि-अनन्त...** केवलज्ञान प्रगट होता है, वह सादि-अनन्त। देखो! यहाँ आया केवलज्ञान सादि-अनन्त। केवलज्ञान की पर्याय तो एक समय रहती है। केवलज्ञान आत्मा में जो पर्याय उत्पन्न होती है, सर्वज्ञ परमेश्वर दशा, वह एक समय पर्याय रहती है, परन्तु वह पर्याय जब से प्रगट हुई तो ऐसी की ऐसी... ऐसी... ऐसी... अनन्त काल प्रगट होगी, इस कारण उसको सादि-अनन्त कहने में आया है। समझ में आया?

सादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाववाले शुद्धसद्‌भूतव्यवहारनय से.... विशेष लिखा न? सादि-अनन्त... अमूर्त (अर्थात्) मूर्तपना नहीं। अतीन्द्रिय स्वभाववाला शुद्ध सद्‌भूत व्यवहारनय। क्योंकि पर्याय है न? केवलज्ञान पर्याय है, गुण नहीं। गुण तो त्रिकाल में ले लिया पहले। त्रिकाली ज्ञानगुण त्रिकाल वस्तु को जानने में ताकतवाला है, बस इतना। सूक्ष्म अधिकार है, यह नियमसार का... तो ऐसा जो आत्मा त्रिकाली शक्तिरूप आत्मा, अनन्त गुण का आधार आत्मा, उसमें एक ज्ञानगुण त्रिकाली को जानने की ताकतवाला है, बस इतना। प्रगट पर्याय की बात यहाँ नहीं है। उस अपेक्षा से भी आत्मा निर्मूढ़ है और पर्याय अपेक्षा से भी सादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाववाला शुद्ध सद्‌भूत व्यवहार से... क्योंकि केवलज्ञान एक समय की पर्याय है। तो उसको शुद्ध सद्‌भूत व्यवहारनय कहा। क्योंकि पर्याय है अपनी। वह तो भेद पड़ा। है, अपनी (तो) सद्‌भूत (कहा), निर्मल है, इसलिए शुद्ध (कहा), भेद पड़ा, इसलिए व्यवहार (कहा)। गजब बात! भगवान आत्मा वस्तु जो त्रिकाल है, वह त्रिकाल जो ज्ञान-दर्शन-आनन्द, वह ध्रुवतत्त्व है—वह तो निश्चयनय वस्तु हुई। सहज निश्चयनय। स्वाभाविक निश्चयनय वस्तु और उस वस्तु में रहे हुए गुण, वह त्रिकाली को जानने में समर्थ है। एक बात।

अब केवलज्ञान की बात चलती है। केवलज्ञान किसे कहते हैं? कि एक तो सादि-अनन्त पर्याय है, अमूर्त है, अतीन्द्रिय स्वभाववाला है। शुद्ध सद्‌भूत। केवलज्ञान है, वह अपनी पर्याय है तो सद्‌भूत। शुद्ध है—पवित्र है, इसलिए शुद्ध और व्यवहार—एक अंश है, त्रिकाल में से वह एक अंश है तो उसको व्यवहार कहने में आता है। कठिन बात है। समझ में आया? त्रिकाली भगवान आत्मा अनादि-अनन्त सच्चिदानन्द स्वयं प्रभु आत्मा, वह तो निश्चयनयस्वरूप... निश्चयनयस्वरूप ही आत्मा है और एक समय की जो पर्याय, वह निश्चय के स्वरूप का आश्रय करके सम्यग्दर्शन हुआ और उसका उग्र आश्रय करके केवलज्ञान हुआ। किसका उग्र आश्रय? द्रव्यस्वभाव। समझ में आया?

ध्रुव चिदानन्द अनन्त आनन्द, ज्ञान, दर्शन की खान, ऐसी चीज़ वह ध्रुव, वह निश्चयनयस्वरूप। निश्चय अर्थात् यथार्थ ज्ञान का स्वभाव, उसका लक्ष्य करके होता

है, अथवा वह वस्तु ही निश्चयनय है। निश्चय अर्थात् यथार्थ स्वरूप ही ऐसा है। उस वस्तु को निश्चयनय कहा और एक समय की पर्याय, द्रव्यस्वभाव का आश्रय करके, उसकी दृष्टि करके जो पर्याय क्रमसर उत्पन्न होकर केवलज्ञान हुआ, (त्रिकाली) भाव का आश्रय करके सम्यग्दर्शन हुआ, उग्र आश्रय करके चारित्र हुआ, उग्र आश्रय करके शुक्लध्यान हुआ, उग्र आश्रय करके केवलज्ञान हुआ। समझ में आया?

उस केवलज्ञान की पर्याय को सादि-अनन्त... नयी उत्पन्न हुई न? गुण नया उत्पन्न नहीं होता। गुण तो त्रिकाल है। अनन्त है सादि-अनन्त, अमूर्त है। अन्त नहीं आनेवाला। केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, परन्तु अब उसका नाश होगा नहीं। वह किस अपेक्षा से? पर्याय का तो अन्त है, परन्तु ऐसी की ऐसी अनन्त काल रहेगी। अमूर्त है। उसमें मूर्तपना बिल्कुल नहीं है।

अतीन्द्रिय स्वभाववाले शुद्धसद्भूतव्यवहारनय से तीन काल और तीन लोक के स्थावर-जंगमस्वरूप समस्त.... चल-अचल ऐसा। स्थिर और अस्थिर वह द्रव्य-गुण-पर्याय को एक समय में जानने में समर्थ। **सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञानरूप से अवस्थित होने से आत्मा, निर्मूढ़ है।** आहाहा! कहो, समझ में आया कुछ? एक समय की पूर्ण पर्याय प्रगट हुई, उसमें रहनेवाला होने से आत्मा को निर्मूढ़ (अर्थात्) वह मूढ़ नहीं है। स्वभाव भी मूढ़ नहीं और उसकी पर्याय भी मूढ़ नहीं। स्वभाव भी निर्मूढ़ और पर्याय भी निर्मूढ़ है—ऐसा आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

अब, निर्भय है। आत्मा निर्भय है। भय बिना की अन्दर वस्तु है। **समस्त पापरूपी शूरवीर शत्रुओं की सेना....** पुण्य और पापरूपी शूरवीर शत्रुओं की सेना **जिसमें प्रवेश नहीं कर सकती....** आहाहा! भले महा शूरवीर हो, शुभ-अशुभ विकल्प शूरवीर हो, परन्तु अन्दर ध्रुव स्वभाव में निर्भय किला है तो उसमें प्रवेश नहीं कर सकते। कठिन बात, भाई! **जिसमें प्रवेश नहीं कर सकती—ऐसे निज शुद्ध अन्तःतत्त्वरूप....** ऐसा निज भगवान आत्मा शुद्ध अन्तःतत्त्व स्वरूप, पवित्र अन्तःतत्त्व स्वरूप **महा दुर्ग में...** महा किला। निज भगवान ध्रुवस्वरूप, वह महा किला है, उसमें **निवास करने से...** उसमें आत्मा निवास करता है। आहाहा! आपके बँगले में निवास करता है, वह आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सबके आत्मा की। समझ में आया? भगवान आत्मा ध्रुवस्वरूप अनादि-अनन्त नित्यानन्द भगवान, जो शूरवीर पाप और पुण्यरूपी सेना समूह असंख्य प्रकार का... पुण्य-पाप का विकल्प जो है, वह असंख्य प्रकार का है, इसलिए सेना कही। जिसमें प्रवेश नहीं। ध्रुव चिदानन्द में प्रवेश कैसा? आहाहा! ऐसा जो भगवान निश्चय आत्मा **निज शुद्ध अन्तःतत्त्वरूप महादुर्ग....** वह तो महा किला है। वह महादुर्ग वज्र के किले में मनुष्य का प्रवेश कहाँ से हो? इसी प्रकार निज शुद्ध भगवान ध्रुव आत्मा जो सम्यग्दर्शन का विषय है, ऐसा आत्मा महादुर्ग है, किला है। आहाहा! समझ में आया? उस किले में निवास करने से आत्मा निर्भय है। उस ध्रुवस्वभाव में आत्मा रहता है, ऐसा कहते हैं।

वस्तु जो आत्मा है, वह अपना त्रिकाली किला ध्रुवस्वरूप, नित्यस्वरूप में रहनेवाला है। आहाहा! कितनी महिमा की है! ऐसा आत्मा ध्रुव है, भाई! तुझे खबर नहीं। देह को न देख, कर्म को न देख, विकल्प को न देख, एक समय की पर्याय के ऊपर से दृष्टि छोड़ दे। आहाहा! त्रिकाली भगवान ध्रुव विराजता है, वहाँ दृष्टि कर। तेरा चैतन्य कब्जे में होगा दृष्टि में। समझ में आया? आहाहा! खबर नहीं लोगों को, यह बाहर प्रवृत्ति क्रियाकाण्ड में ऐसे घुस गये हैं, जिसको तत्त्व क्या है और दृष्टि कहाँ करनी है, उसको सारा.... है। भटकने में जो भाव है, वह उसमें घुस गया। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा यह आत्मा... ऊपर कहा न सब? **ऐसा यह आत्मा वास्तव में उपादेय है।** यह आदरणीय है। आहाहा! निमित्त है, वह आदरणीय नहीं। अरे! पाप परिणाम आदरणीय नहीं। दया, दान, शुभ, वह आदरणीय नहीं। एक समय की पर्याय भी आदरणीय नहीं। आहाहा! कहो, समझे या नहीं चन्दुभाई! आज तो... अच्छे होते हैं। .... आहाहा! भगवान.... यह इतने अर्थ किये न? निर्द्वंद्वो, निर्दण्डो.... '**णिद्दंडो णिद्दंद्दो णिम्ममो णिक्कलो णिरालंबो।**' यह पहली पंक्ति का अर्थ कल चला था। आज '**णीरागो णिद्दोसो णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा।**' है न? आत्मा शब्द पड़ा है देखो! '**अप्पा**'

ऐसा जो भगवान नित्यानन्द ध्रुव आत्मा, वह सम्यग्दृष्टि को अंगीकार करनेयोग्य है। उसमें दृष्टि देनेयोग्य है। ऐसा आत्मा आदरणीय अर्थात् उपादेय है, बाकी तो निमित्त हेय, दया-दान, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प हेय, एक समय की पर्याय भी हेय है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा यह आत्मा वास्तव में.... अंगीकार—लेनेयोग्य, आदरनेयोग्य, ग्रहण करनेयोग्य हो तो यह आत्मा है।

इसी प्रकार (श्री योगीन्द्रदेवकृत) अमृताशीति में (५७ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि—

(मालिनी)

स्वरनिकरविसर्गव्यञ्जनाद्यक्षरैर्यद्,
रहितमहितहीनं शाश्वतं मुक्तसङ्ख्यम्।
अरसतिमिररूपस्पर्शगन्धाम्बुवायु-
क्षितिपवनसखाणुस्थूल दिक्चक्रवालम्॥

श्लोकार्थ :- आत्मतत्त्व.... भगवान चैतन्यमूर्ति ध्रुव, जिसमें दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा भगवान आत्मा **स्वरसमूह....** स्वर का समूह आवाज... आवाज। अ, आ, ई आदि का समूह उसमें है नहीं। वह तो जड़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : बोले भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोले कहाँ से? और मौन भी कहाँ से रहे वह? समझ में आया? वह तो मौन ही है त्रिकाल। स्वर की आवाज उसमें है नहीं। आहाहा! मेरा स्वर ऐसा है, मेरी आवाज ऐसी है, मेरा कण्ठ ऐसा है, मेरी देशी ऐसी है। धूल में भी नहीं, सुन न! वह तो जड़ की पर्याय है। आहाहा! समझ में आया?

स्वरसमूह, (रहित) विसर्ग,.... यह विसर्ग आता है न? कं, कः, खः, विसर्ग सहित। विसर्ग क्या? यह दो बिन्दी। स्पष्टीकरण करते हैं। कः, क के बाद में दो बिन्दी नहीं आती? कः, खः, गः, घः उसे विसर्ग कहते हैं, विसर्ग। बच्चों को स्कूल में सिखाते हैं। वह विसर्ग रहित है। आत्मा में विसर्ग कैसा? स्वर्ग है नहीं और विसर्ग है नहीं।

व्यंजन आदि अक्षरों.... व्यंजन, अ, आ, इ, ई, क, का आदि अक्षर भी भगवान आत्मा में है नहीं। आहाहा! वह तो जड़ की अवस्था उसकी आवाज आती है। समझ में आया? अभ्यन्तर विकल्प में वाणी सब जड़ की पर्याय है। वह आत्मा में है नहीं। व्यंजन आदि —क, का आदि।

संख्या रहित है.... आत्मा में, एक, दो, तीन, चार, पाँच, अनन्त संख्या, ऐसी संख्या कहाँ है? एकाकार चिदानन्दस्वरूप है, उसमें संख्या का यह एक है, यह दो है, ऐसा है उसमें? एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात आता है न? एक, दो, तीन, ऐसा करते हैं न? पैर उठाते हैं। यह क्या कहते हैं आपके एन.सी.सी में। वह अक्षर-फक्षर है नहीं, संख्या भी नहीं। **(अर्थात्, अक्षर और अंक का आत्मतत्त्व में प्रवेश नहीं है);....** देखो! अक्षर और अंक। वह अंक हुआ न? क, ख, ग अंक। वह आत्मा में प्रवेश नहीं। आहाहा! कठिन बात! अ, आ, क, का ऐसे अक्षर आत्मा में हैं नहीं। तब कौन बोलता है? आत्मा न बोले तो दीवार बोले?

मुमुक्षु : शब्दवर्गणा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो शब्दवर्गणा है। आत्मा में है ही नहीं शब्दवर्गणा। बड़ा विवाद। यहाँ से कोई सुनकर गया, किसी को पूछा, महाराज! यह बोलता कौन है? यहाँ तो कहा था कि भाषा जड़ है, कुछ आत्मा बोलता नहीं। तो कहे, महाराज कौन बोले? कि तेरा बाप बोलता है? यह कौन बोलता है? तू नहीं बोलता? अरे! भगवान! क्या है? सीधा जवाब। नागा वह कहीं.... उसको कुछ। तेरा बाप बोलता है यह? तुम नहीं बोलते तो कौन बोलता है? अरे! भगवान! तू क्या करता है, भाई?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे। अहमदाबाद या.... था न एक। पन्द्रह दिन रह गये थे।

यहाँ कहते हैं कि बोलने में, सर्वज्ञ परमेश्वर भी पहले समय में वाणी ग्रहे और दूसरे समय में छोड़े। कहते हैं कि वाणी उसमें है ही नहीं तो क्या ग्रहे और छोड़े? पुद्गल को ग्रहे आत्मा? आहाहा! ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं। पुद्गल का ग्रहण और पुद्गल का ग्रहण और पुद्गल का विसर्ग आत्मा में ही नहीं है। वह तो ज्ञानस्वरूप,

आनन्दस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? आवाज उठती है, वह तो ध्वनि जड़ की है, अरूपी चैतन्यघन भगवान में कहाँ आवाज है? व्यंजनशक्ति नहीं। वह तो योग... कम्पन... कम्पन। वह कम्पन है, उसको छूता है। कम्पन भी वस्तुस्वरूप में नहीं है। यहाँ तो पर्याय में कम्पन है। वह ग्रहण क्या करे? वह तो कम्पन है। वह परमाणु आनेवाला है, ऐसा वहाँ आता है। वह कम्पन है तो आता है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

और वह कम्पन भी आत्मा में नहीं। आत्मा तो अयोगस्वरूप, ज्ञानस्वरूप निष्क्रिय है। आहाहा! अरे! तुम कौन हो, उसकी तुम्हें खबर नहीं। समझ में आया? श्रीमद् में आता है न? 'मैं कौन हूँ? आया कहाँ से और मेरा रूप क्या?' 'मैं कौन हूँ? आया कहाँ से? और मेरा रूप क्या? सम्बन्ध दुःखमय कौन है स्वीकृत करूँ परिहार क्या? इसका विचार विवेकपूर्वक शान्त होकर कीजिये तो सर्व आत्मिक ज्ञान के सिद्धान्त का रस पीजिये।' १६ वर्ष की उम्र में कहते हैं श्रीमद्। १६ वर्ष की उम्र। १६ वर्ष और चार महीने। मोक्षमाला। समझ में आया? यह तो शरीर की उम्र, आत्मा तो कहाँ उम्र-फुम्र है? सेठ! उम्र है ही नहीं। ६० हुए, ६८ हुए, ७० हुए। वह तो शरीर की बात है। उसको (आत्मा को) कहाँ ७०-७० है? वह तो एक समय की पर्याय की बात है। आहाहा!

कहते हैं कि अक्षर या अंक का आत्मतत्त्व में प्रवेश नहीं है। ऐसा शुद्ध ध्रुव आत्मा, वह धर्मी को अंगीकार करनेयोग्य है। आहाहा! ऐसे अक्षर, व्यंजन, अंकसहित मानना, वह मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मैं धीरे बोल सकता हूँ, मैं जल्दी बोल सकता हूँ, मैं धीरे से बोल सकता हूँ। समझ में आया? परन्तु तुम कौन हो कि बोल सके? तुझमें बोलने की क्रिया ही नहीं है न जड़ की। आहाहा!

ऐसा चिदानन्द भगवान ज्ञान का गंज प्रभु अहितरहित है। उसमें अहित है ही नहीं। आहाहा! मिथ्यात्व आदि अहित है, वह स्वभाव में है नहीं। ....जीव पर्याय में अहितपना उत्पन्न करता है। वस्तु में अहितपना है नहीं। आहाहा! शाश्वत् है... भगवान आत्मा तो शाश्वत् वस्तु है। प्रत्येक द्रव्य का आत्मा, प्रत्येक का आत्मा वह तो शाश्वत् है। एक समय की पर्याय से भी भिन्न—दूर है। आहाहा! 'आत्मा द्रव्य से नित्य है...' आता है न? 'पर्याय से पलटाये।' द्रव्य से तो नित्य ही है। द्रव्य से नित्य है तो नित्य ही

है। ऐसा नहीं कि द्रव्य से नित्य है और अनित्य भी है। ऐसा नहीं है।

ऐसा द्रव्य भगवान **शाश्वत् है, अन्धकार....** अन्धकाररहित है। उसमें अन्धकार है ही नहीं। आहाहा! चैतन्य के प्रकाश का नूर, ऐसा भगवान आत्मा का पूर, उसमें अन्धकार का त्रिकाल अभाव है। उसमें स्पर्श नहीं। भगवान आत्मा में स्पर्श नहीं। कोमल... रस नहीं, खट्टा-मीठा... गन्ध नहीं। **रूपरहित है, पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के अणुओं से रहित है...** पृथ्वी के अणु, जल के परमाणु, अग्नि के रजकण, वायु के अणुरहित आत्मा है। चार लिये हैं।

तथा स्थूल दिक्‌चक्र (दिशाओं के समूह) रहित है। लो! पूर्व और पश्चिम दिशा उसमें है नहीं। पूर्व, पश्चिम,... ईशान (आदि) दिशा का समूह, भगवान आनन्दकन्द प्रभु ध्रुवस्वरूप में वह दिशा का चक्र है नहीं। आहाहा! वह आत्मा आदरणीय है। ऐसा आत्मा जो अन्दर है, उसके ऊपर दृष्टि देने योग्य है। समझ में आया?

आज एक कुत्ता आया है। पूंछ सड़ गयी है तो जीव पड़ गये हैं। जीव पड़े हैं, जीव। भटका भटक करता है। जीव पड़े हैं, पूंछ सड़ गयी है। आहाहा! भगवान तो अमृत का सागर ध्रुव जिसमें पूंछ नहीं, कीड़े भी नहीं। आहाहा! ऐसा चैतन्य ध्रुव कारणप्रभु, कारणजीव, वह सम्यग्दृष्टि को आदरनेयोग्य है, उसके अतिरिक्त कुछ आदरनेयोग्य है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

और (४३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज सात श्लोक कहते हैं:-) देखो! सात श्लोक।

(मालिनी)

दुरध-वन-कुठारः प्राप्त-दुःकर्म-पारः,
पर-परिणति-दूरः प्रास्त-रागाब्धि-पूरः।
हतविविधविकारः सत्यशर्माब्धिनीरः,
सपदि समयसारः पातु मामस्त-मारः॥६२॥

श्लोकार्थ :- जो (समयसार).... भगवान ध्रुव आत्मा **दुष्ट पापों के वन को छेदने का कुठार है,....** आहाहा! क्या कहते हैं? ऐसे **दुष्ट पापों के वन को छेदने का**

कुठार.... अर्थात् उसमें है नहीं। समझ में आया? है नहीं तो फिर छेदना क्या? ऐसा कहा। यहाँ तो द्रव्य से ऐसा कथन किया है। छेदना, वह तो पर्याय में छेदने की बात है। द्रव्य तो द्रव्य है ही। समझ में आया? **दुष्ट पापों के...** पाप अर्थात् पुण्य और पाप दोनों शुभ और अशुभ विकल्प। उसका जो वन—असंख्य प्रकार के विकल्प के समूह को छेदने का कुठार है। आहाहा! भगवान आत्मा राग को रखे, राग को करे—ऐसा उसके स्वभाव में है नहीं। कठिन बात, भाई!

जो दुष्ट कर्मों के पार को प्राप्त हुआ है.... आठों कर्म जिसमें हैं नहीं। अन्त है, कर्म का उसमें अन्त ही है। समझ में आया? कर्मों का अन्त किया है अर्थात् आठों कर्म उसमें हैं नहीं। दृष्टि पड़ी वहाँ कर्मरहित ही आत्मा है। समझ में आया? **जो परपरिणति से दूर है,...** विकारी अवस्था से तो भगवान बिल्कुल दूर है। कौन? भगवान अर्थात् यह आत्मा, हों! भगवान का आत्मा भगवान के पास रहा। यहाँ कहाँ आता है? यह आत्मा **जो परपरिणति से दूर है, जिसने रागरूपी समुद्र के पूर को नष्ट किया है,....** ओहोहो! विकल्प—राग, पुण्य और पाप दोनों, उसका समुद्र उछलता है, ऐसा पूर राग-द्वेष का है ही नहीं। नष्ट किया है, (अर्थात्) द्रव्य में वह है नहीं और द्रव्य का आश्रय करने से वह नष्ट होता है। है नहीं, इसलिए 'नष्ट किया है' ऐसा कहने में आया है। भगवान आत्मा ध्रुव का आश्रय करे तो दुष्कर्म—आठ कर्म का नाश ही होता है। तो आत्मा ही कर्म का नाश करनेवाला है अर्थात् कर्म उसमें है नहीं। आहाहा!

जिसने विविध विकारों का हनन कर दिया है,... ध्रुव की बात चलती है, हों! ध्रुव में वह है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। है ही नहीं न? हनन करे, इसका अर्थ उसमें है ही नहीं न! आहाहा! **विविध विकारों का हनन कर दिया है, जो सच्चे सुखसागर का नीर है....** वह भगवान सच्चे सुखसागर का जल है। आत्मा सत्य आनन्दसागर का पानी है—जल है, सागर का बड़ा.... देखो! सागर आया, सेठ! सच्चे सुखसागर का जल भरा है उसमें। आहाहा! जहाँ विकल्प का अवकाश नहीं। ओहोहो! व्रत का विकल्प मैं करूँ, रखूँ, उसमें है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी चीज़ दृष्टि में लिये बिना उसको धर्म की शुरुआत कभी नहीं होती। और धर्म की शुरुआत किये बिना व्रत और

तप का सिर पर बोझ उठा लिया है। समझ में आया? उसका निर्वाह करने के पीछे दृष्टि (लगी है), इसलिए बोझा है। मिथ्यादृष्टि में बोझा है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में भान होते ही, विकल्प सहज हो, उसका जाननेवाला है, करनेवाला नहीं। बाहर की क्रिया भी सहज आनेवाली हो तो आती है, हो जाती है, आहार-पानी आदि।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसे कोई बलजोरी से खेंचकर... खींचतान कर कोई क्रिया करते नहीं। भाई! आता है न मोक्षमार्गप्रकाशक में? ....साधु। खींचतान कर क्रिया करते नहीं, सहज हो तो हो। आहाहा! है न? पहले, शुरुआत में। 'अपने योग्य बाह्य क्रिया आदि जैसे बनती है, वैसे बनती है परन्तु उसे खींचकर करते नहीं।' कितना स्पष्ट किया है! ज्ञान और आनन्द का जहाँ भान हुआ सम्यग्दर्शन, पश्चात् जैसी क्रिया जड़ की हो तो हो, विकल्प हो तो हो, उसमें खींचतान करके ऐसा करो... ऐसा करो... ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? बहुत अच्छी है। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो एक-एक बात अच्छी है।

कहते हैं कि भगवान सच्चे सुखसागर का नीर—जल (रूप) प्रवाह है, ऐसा कहते हैं। जैसे प्रवाह चले न प्रवाह, पानी का पूर। वैसे आत्मा सच्चे सुख का सागर, भगवान जल से भरा है। सच्चे सुखरूपी नीर। विकल्प तो दुःखरूप की जाल है। शुभ-अशुभ विकल्प है, वह तो अग्नि की भट्टी है। समझ में आया? अर्थात् दुःख की भट्टी। यह सुख का सागर। अभी वस्तु की खबर नहीं, श्रद्धा नहीं होती। सिर पर बोझा... बोझा... बोझा... सेठियों को सिर पर बोझे का पार नहीं होता। समाजभूषण बड़े पद होते हैं न! सेठ!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... में नहीं परन्तु पकड़ रखा है कि हमारे निभाव करना है। ऐसा हमारे समाज को.... क्या कहते हैं? आश्वासन जो करते हैं... रक्षा करना। व्यवस्था करना। कौन करे, धूल? अपनी... अपनी रक्षा आत्मा कर सकता है। ... ओहोहो! **'सत्यशर्म्माब्धिनीरः'** **'सत्य'** **'शर्म अब्धिय'** तीसरे का अन्तिम शब्द है। **'सत्य शर्म**

अब्धिय नीरः' सच्चे '**शर्म**' अर्थात् सुख का सागर, उसका नीर अर्थात् जल है। है न उसमें? तीसरे पद में अन्तिम लाईन। तीसरे पद की अन्तिम लाईन। '**सत्य शर्म अब्धिय**' अर्थात् समुद्र, सागर। '**सत्य**' अर्थात् सत्य, '**शर्म**' अर्थात् सुख, '**अब्धिय**' अर्थात् समुद्र, '**नीरः**' अर्थात् जल। '**सत्य शर्म अब्धिय नीरः**' आहाहा! विकल्प आया। कहो, समझ में आया?

और जिसने काम को अस्त किया है,... काम की वासना की तो उसमें गन्ध नहीं। समझ में आया? काम की वासना अस्त हो गयी है अर्थात् उसमें है नहीं। आहाहा! **वह समयसार मेरी शीघ्र रक्षा करो।** लो! मुनि स्वयं कहते हैं। ऐसा समयसार भगवान आत्मा, ध्रुवस्वरूप भगवान आत्मा मेरी शीघ्र रक्षा करो। समझ में आया? अपना आत्मा अपनी रक्षा करो, ऐसा कहते हैं। देखो! रक्षा आ गया। समाज की रक्षा नहीं करते। ऐई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह। आहाहा! **वह समयसार...** है न? '**सपदि समयसारः**' '**सपदि**' अर्थात् शीघ्र। '**सपदि समयसारः पातु मामस्तमारः**' **वह समयसार मेरी शीघ्र रक्षा करो।** अर्थात् मैंने उसका आश्रय लिया है तो वह समयसार मेरी रक्षा करता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह ६२ हुआ। शीघ्र रक्षा करो। ऐसा है न? '**सपदि**'— अल्पकाल में मुझे केवलज्ञान प्राप्त हो। अल्पकाल में मैं सिद्धपद को प्राप्त होऊँ, ऐसी मेरी रक्षा आत्मद्रव्य करो, ऐसा कहते हैं। लो, समयसार शीघ्र... दूसरा कुछ है समयसार? कहा वह आत्मा। अपना निजस्वरूप ध्रुव, उसकी दृष्टि हुई और उसका आश्रय लिया तो वह आत्मा की रक्षा हुई, अपनी पर्याय में रक्षा हुई। अशरण था, वह शरण हो गया। ६३ (कलश)।

(मालिनी)

जयति परमतत्त्वं तत्त्वनिष्णातपद्म-
प्रभमुनिहृदयाब्जे सन्स्थितं निर्विकारम्।

अपनी बात करते हैं मुनि। मुनि... मुनि हैं। आहाहा!

हतविविधविकल्पं कल्पनामात्ररम्याद्,
भव-भव-सुख-दुःखान्मुक्त-मुक्तं बुधैर्यत्॥६३॥

श्लोकार्थ :-जो तत्त्वनिष्णांत (वस्तुस्वरूप में निपुण)... देखो! निष्णात आया। **पद्मप्रभमुनि के हृदयकमल में सुस्थित है...** यहाँ है। सारा आत्मा मुक्त है, (ऐसा) दृष्टि, ख्याल में आ जाता है। **तत्त्वनिष्णांत (वस्तुस्वरूप में निपुण) पद्मप्रभमुनि....** अपनी बात कहते हैं, देखो! .... मुनि। पढ़नेवाले को, यह बात समझते हैं, उसको अन्दर निरपेक्षतत्त्व की दृष्टि हो तो सम्यक् हो—यह बात बैठती नहीं। व्यवहार हो तो ऐसा हो—फैसा हो (ऐसा) उसमें से निकले नहीं तो पद्मप्रभु (मान्य) नहीं। उनकी टीका भी हमें मान्य नहीं। ऐसा अभी (कुछ लोग) कहते हैं। समझ में आया? वह रतनचन्दजी बहुत कहते हैं। यह टीका मान्य नहीं है। अरे! भगवान! क्या कहते हैं? कलश है न कलश? राजमल की टीका। उसमें भी सुधार करो। कितने सुधार करोगे तुम? तुम्हारा बिगड़ेगा। आहाहा!

प्रश्न तो उसमें ऐसा लिया है कि भगवान आत्मा पर्याय से पार है, ऐसा ध्रुवस्वरूप द्रव्य तुझे अंगीकार करनेयोग्य है। उस सम्यग्दर्शन में किसी की सहायता तीन काल तीन लोक में है नहीं। भगवान चिदानन्द प्रभु की अन्तर नजर होते ही सारे निधान की परिणति प्रगट होती है। पर्याय में 'यह सारा निधान है' ऐसे आत्मा के निधान का—आत्मा का आश्रय करके सम्यग्दर्शन में सारे निधान की परिणति उत्पन्न होती है। समझ में आया? कोई विकल्प-फिकल्प, व्यवहार-फ्यवहार कारण है नहीं, ऐसा कहते हैं। वह नहीं चलता। नहीं... नहीं... नहीं... बहुत जगह कहा है न? कि व्यवहार साधन है। अरे! अमरचन्दभाई! छहढाला में कहा है। नियत का हेतु... अरे! यह तो व्यवहार का कथन है। है नहीं, उसको कहना, वह व्यवहार का लक्षण है। समझ में आया? वह व्यवहार का लक्षण ऐसा है, व्यवहार का। आहाहा! करो, भाषा करो, पूजा करो, भक्ति करो, ऐसा आ गया है न? तो कहे, हाँ, चरणानुयोग की विधि से ऐसा आता है। द्रव्यानुयोग की दृष्टि में करो, नहीं आता। वह तो दोनों का विरुद्ध हो गया। समझ में आया? व्यवहार चरणानुयोग में आया है, उसका अर्थ? उस समय में ऐसा भाव होता

है, 'उसको करो' ऐसा व्यवहारनय से कहने में आया है। वस्तु... से करे तब तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? यहाँ तो वह कहते हैं, उसमें तो है नहीं।

पद्मप्रभमुनि के हृदयकमल में सुस्थित (भगवान आत्मा) है,... और **जो निर्विकार है...** निर्विकार भगवान आत्मा **जिसने विविध विकल्पों का हनन कर दिया है,...** लो! विकल्प ही नहीं। आत्मा में विकल्प कैसा? दया, दान, व्रत का विकल्प और व्रत का अतिचार पालना-फालना वह आत्मा में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? **जिसने विविध विकल्पों का हनन कर दिया है, और जिसे बुधपुरुषों ने कल्पनामात्र रम्य ऐसे भव-भव के सुखों से तथा दुःखों से मुक्त (रहित) कहा है,....** यह भगवान आत्मा में, कल्पनामात्र विषयभोग में सुख है, ऐसी कल्पना और दुःख है, ऐसी कल्पना, वह आत्मा में है नहीं। कल्पनामात्र रम्य... कल्पनामात्र रम्य... भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति है। उसमें कल्पनामात्र कि मैं सुखी हूँ, पैसा है, ऐसा है, स्त्री है, परिवार है, ऐसा है, मैं सर्व प्रकार से सुखी हूँ—ऐसी अज्ञानी की कल्पना रम्य भव-भव के सुख... कहते हैं कि स्वर्ग के सुख की कल्पना और भव-भव में नरक का दुःख, उससे मुक्त कहा है। भगवान तो सुख-दुःख की कल्पना से भिन्न है। समझ में आया?

यह भागवत पढ़ते हैं। आगे आयेगा। भागवत शास्त्र कहा है। समझ में आया न? अन्त में कहा है। भागवत शास्त्र—भगवान का शास्त्र—भगवान आत्मा को बतानेवाला शास्त्र। आहाहा! भगवान ही है। द्रव्य से भी भगवान, गुण से भी और पर्याय से भी। आहाहा! अरे! **भव-भव के सुखों से...** सेठिया, देव, भव के दुःख—नारकी और ढोर—सबसे मुक्त कहा है। **वह परमतत्त्व जयवन्त है।** वह परमतत्त्व त्रिकाल जयवन्त वर्तता है। ध्रुवरूप से परम तत्त्व जयवन्त वर्तता है। उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है और किसी के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन होता नहीं। धर्म की पहली सीढ़ी—श्रेणी, धर्म की शुरुआत ऐसे ध्रुव आत्मा का आश्रय करने से, अवलम्बन करने से होती है और किसी के आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? परम तत्त्व जयवन्त है। अपनी पर्याय में भास हुआ न अन्दर? ऐसा कहते हैं। वह परमतत्त्व जयवन्त वर्तता है। पर्याय में—अवस्था में जहाँ ख्याल हुआ, पर्याय में

द्रव्य का अनुभव हुआ कि यह द्रव्य, कहते हैं कि ऐसा परमतत्त्व जयवन्त वर्तो, ऐसे। हमारी दृष्टि में आया आत्मा तो जयवन्त ही वर्तता है, शाश्वत् ही आया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी धर्म की कथा होगी? अब उसमें सामायिक करो, प्रौषध करो, कन्दमूल नहीं खाना... ऐई! पोपटभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बहुत सारे नाम इसमें आते हैं। अरे! भाई! इस वस्तु बिना तेरी सामायिक कैसी और प्रौषध कैसे और प्रतिक्रमण कैसा? सब एक बिना के शून्य है। अहो! वह परमतत्त्व जयवन्त वर्तो। जयवन्त है ही, ऐसा कहते हैं। दृष्टि में आया है आत्मा, तो आत्मा जयवन्त वर्तता है। आहाहा! समझ में आया? यह ६३वाँ श्लोक हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

- आहाहा! तीन लोक के नाथ मानो सामने खड़े हों और कहते हों कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कुछ भी नहीं करता—ऐसे फाट... फाट... फाट... प्याले की तरह दो द्रव्यों की भिन्नता बताते हैं। अहो! ऐसी वीतराग की बातें सुननेवाले लोग भाग्यशाली। साक्षात् भगवान कहते हों, वैसे सन्त शास्त्र द्वारा कहते हैं। (12)
- जिस प्रकार श्वान के कान में कीड़ें पड़ें और उसका लक्ष्य बारम्बार वहाँ ही जाया करता है; उसी प्रकार जिसे आत्मा प्राप्त करना है, उसका लक्ष्य बारम्बार आत्मा के सन्मुख हुआ करता है। आत्मा की धुन चला करे। दूसरी धुन तो अनन्त काल से चढ़ गयी है तो एक बार आत्मा की धुन तो जगा! और छह महीने तो प्रयत्न कर! बारम्बार अन्तर्मुख का प्रयत्न कर तो अवश्य तुझे आत्मा की प्राप्ति होगी। (13)

— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, दृष्टि के निधान

भाद्र शुक्ल १०, रविवार, दिनांक - २१-०९-१९६९
श्लोक-६३ से ६७, प्रवचन-१२

यह नियमसार, शुद्धभाव अधिकार। ४३ गाथा का कलश चलता है। ६३वाँ कलश चला था कल। देखो! थोड़ा फिर से। अहो! कहते हैं कि जो कोई पुरुष तत्त्व में निष्णात है... यह पद्मप्रभमुनि स्वयं कहते हैं।

मुमुक्षु : निष्णात....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहा न? तत्त्व में निष्णात है। आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, वह रागादि पर, मलिन, दुःखरूप है। ऐसा तत्त्व का निष्णात पुरुष—तत्त्व को जाननेवाला आत्मा पद्मप्रभमुनि, उसके हृदयकमल में स्थित है वह। भगवान आत्मा शरीर में शरीर से भिन्न है। हृदयकमल में ज्ञान में आनेवाला, ऐसा हृदयकमल में स्थित कहने में आता है। जो निर्विकार है। करनेयोग्य तो यह है। मनुष्यपना पाकर एक-एक समय की कीमत है। उसका जो समय चला जाता है, वह फिर नहीं आता। समझ में आया?

ऐसा आत्मा अपनी चीज़ और पर में निष्णात हो—निपुण हो... मैं तो आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप हूँ, राग और शरीर, वह परस्वरूप है अर्थात् उस स्ववस्तु में राग और शरीर है नहीं।—ऐसा, तत्त्व में निष्णात आत्मा **पद्मप्रभमुनि के हृदयकमल में सुस्थित है, जो निर्विकार....** आत्मा है अन्दर। **जिसने विविध विकल्पों का हनन कर दिया है,...** अर्थात् यह आत्मा कैसा है कि जिसमें अनेक प्रकार का पुण्य-पाप का विकल्प है ही नहीं। समझ में आया? उत्पन्न करे, परन्तु वह चीज़ में है नहीं। भगवान आत्मा का स्वभाव तो ज्ञान, चैतन्यसूर्य, आनन्द से भरा है। वह दया, दान आदि (के) विकल्प तो उसमें है नहीं।

ऐसा निर्विकार भगवान आत्मा.... **जिसे बुद्धपुरुषों ने कल्पनामात्र रम्य ऐसे भव-भव के सुखों....** वह दुःख... कल्पनामात्र सुख विषय में, देवों में, स्वर्ग में, चक्रवर्तीपद में या राजपद में, लक्ष्मी, स्त्री, अनुकूल परिवार आदि उसमें कल्पना का

सुख है, वह कल्पनामात्र है। उस कल्पनामात्र सुख से भगवान तो रहित है। आहाहा! समझ में आया? निजतत्त्व भगवान अनाकुल आनन्द और शान्ति से भरा है। ऐसा तत्त्व, वह कल्पना(रूप) ऐसा सुख और दुःख... सातवें नरक में—रव रव नरक में जो प्रतिकूलता में खेद होता है, वह खेद नाम का दुःख स्वरूप में है नहीं। समझ में आया? क्योंकि कल्पनारूप सुख-दुःख तो आस्रवतत्त्व है और भगवान आत्मा ज्ञायकतत्त्व है। ऐसे तत्त्व में निष्णात पुरुष स्वरूप में रहकर दुःखा से मुक्त है, ऐसा कहा है। पर में सुख, समाधान हो, वह परवस्तु देखकर अनुकूल आदि में आह्लाद आ जावे। ओहो! ठीक है। यह तो दुःखरूप कल्पना है।

और प्रतिकूलता में अरुचि आ जावे—द्वेष आ जाये कि ठीक नहीं। दोनों ही कल्पना स्वभाव में है नहीं। वह परमतत्त्व जयवन्त है। ऐसा भगवान अन्तर (में) जयवन्त वर्तता है। समझ में आया? ऐसा आत्मा जयवन्त वर्तता है, उसकी अन्तर्दृष्टि करके अनुभव करना, वह मोक्ष का मार्ग और नियमसार है। यह ६३ (कलश) हुआ।

६४ (कलश)।

(मालिनी)

अनिशमतुलबोधाधीनमात्मानमात्मा,
सहज-गुण-मणीना-माकरं तत्त्वसारम्।
निजपरिणतिशर्माम्भोधिमज्जन्तमेनं,
भजतु भव-विमुक्त्यै भव्यताप्रेरितो यः॥६४॥

श्लोकार्थ :- जो आत्मा भव्यता द्वारा प्रेरित हो,... पवित्रता के प्रगट होनेयोग्य आत्मा भव्यभाव का विपाक... समझ में आया? जिसमें विकारादि की तो अयोग्यता है, परन्तु निर्विकार (भाव) प्रगट होने की योग्यता है। ऐसी दशा अथवा ऐसा भाव, तो कहते हैं कि भव्यता द्वारा प्रेरित... अपनी निर्मल पवित्रता की योग्यता द्वारा प्रेरित हुआ। ओहोहो! **यह आत्मा भव से विमुक्त होने के हेतु....** चार गति के भव, उससे विमुक्त होने के हेतु **निरन्तर इस आत्मा को भजो...** लो! यह आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका भजन करो। भजन करो का अर्थ, उसमें एकाग्र हो। समझ में आया? ऐसा भगवान अपना

निजस्वरूप, उसकी सेवा करो। वह सेवा करना, वही मोक्षमार्ग है। आहाहा!

निरन्तर इस आत्मा को भजो... क्या कहते हैं? (एक) क्षण भी राग का सेवन नहीं करना और राग को अपना नहीं मानना। आहाहा! ऐसा कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय का जो विकल्प है, उसको नहीं सेवना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उस विकल्प से पार भगवान आत्मा निर्विकार है, उस आत्मा को सेवो। फुरसत नहीं मिले। समझ में आया? यह गड़बड़ होती थी, उसमें यह विचार आया कि यहाँ भी दो मिनिट पहले गड़बड़... गड़बड़... गड़बड़... यहाँ आकर कुछ विचार करना (नहीं, परन्तु) एक-दूसरे के साथ बात करे। समय कहाँ है उसको? घर पर तो गड़बड़ करे, परन्तु यहाँ आकर आपस में बातें करते हैं। णमो अरिहंताणं शुरु हो, तब बातें बन्द होती है।

यहाँ आकर कुछ विचार में रुकना कि यह क्या कहा? क्या कहते हैं? कैसा है? भीखाभाई! ऐसा भगवान आत्मा... कहते हैं कि अपनी योग्यता से प्रेरित हो तो यह दशा प्रगट हो, ऐसा है। दूसरी कुछ सूझ पड़े, ऐसा नहीं है। अज्ञानी को तो जहाँ-तहाँ पर में प्रेम... प्रेम... प्रेम... प्रेम... प्रेम... प्रेम में लुट गया। समझ में आया? पर के प्रेम के राग से आत्मा में लूट हो गयी। उसे छोड़कर अपना आत्मा निर्मलानन्द है, उस ओर की दृष्टि करो और उस ओर की सेवा अर्थात् एकाग्र हो, वह करनेयोग्य चीज़ है। समझ में आया?

कि जो (आत्मा) अनुपम ज्ञान के आधीन है,... देखो! एक तो उपमा नहीं, ऐसा शान्तिसहित, आनन्दसहित के ज्ञान के आधीन है। कहो, समझ में आया? यह अनुपम ज्ञान के आधीन। क्या? राग के आधीन तो नहीं, परन्तु जो शास्त्र का ज्ञान हुआ, उसके आधीन भी आत्मा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा उपमारहित ऐसे अपने ज्ञानस्वरूप के आधीन है और **जो सहजगुणमणि की खान है,....** आहाहा! स्वाभाविक गुणरूपी मणिरत्न, चैतन्यरत्नाकर... अन्दर अकेले ज्ञान, आनन्द आदि रत्न भरे हैं, स्वाभाविक रत्न भरे हैं। आहाहा! समझ में आया? समय थोड़ा, काम बड़ा।

कहते हैं कि भाई! भगवान सहजगुणमणि की खान तू है न? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को रत्न कहते हैं। रत्न कहते हैं न त्रिरत्न? उस रत्न का फल तो केवलज्ञानादि

है। ऐसे केवलज्ञानादि अनन्त रत्न चैतन्यगुण में पड़े हैं। समझ में आया कुछ? ऐसा भगवान आत्मा स्वाभाविक गुणमणि की खान है। ज्ञान, आनन्द, शान्ति, चारित्र, वीतराग आदि अनन्त गुण की खान आत्मा है, वहाँ नजर तो करो। समझ में आया कुछ?

जो (सर्व) तत्त्वों में सार है.... आहाहा! पुण्य-पाप का तत्त्व, अजीवतत्त्व और संवर, निर्जरा, मोक्षतत्त्व—उसमें भी वह सार है। समझ में आया? संवर, निर्जरा, मोक्ष तो पर्यायतत्त्व है और आस्रव-बन्ध, पुण्य-पाप, चारों तो रागतत्त्व है। उन सब तत्त्वों में सार तत्त्व त्रिकाली ज्ञायक भगवान सार तत्त्व है। समझ में आया?

और जो निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है। आहाहा! वास्तव में तो सुखसागर में ही मग्न है द्रव्य। परन्तु ऐसी दृष्टि हुई तो पर्याय में भी सुखसागर में मग्न आत्मा, उसको आत्मा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। जो आत्मा त्रिकाल आनन्दस्वरूप शुद्धस्वरूप है, उसकी अन्तर्मुख दृष्टि हुई तो परिणति में निजसुख स्वरूप हुआ, उस सुखस्वरूप में एकाग्रता, वही निजपरिणति में मग्न आत्मा है। **निजपरिणति के सुखसागर में...** ओहो! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के प्रवाह में मग्न है। समझ में आया? भगवान आनन्दस्वरूप में विकल्प उठाना, यह करना... यह करना... वह विकल्प उसमें है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि जो निजपरिणति... निजपरिणति—त्रिकाली परिणति को भी निजस्वभाव कहने में आता है और स्वरूप का भान हुआ तो संवर-निर्जरारूपी निज वीतरागी परिणति, उसमें आनन्द है, ऐसी निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है, उसको आत्मा कहते हैं। कहते हैं कि निजपरिणति... एक त्रिकाली शुद्ध परिणति—अवस्था को भी परिणति—अवस्था कहा जाता है। अपने स्वरूप में परि... परि—सर्व प्रकार से, (णति-नमा है), परिणति—सर्व प्रकार से उसमें ही नमा है—ढला है। अपने आनन्दस्वरूप में ही मग्न है वस्तु-ध्रुवरूप से। परन्तु जो ध्रुव का आश्रय लेकर जो पर्याय प्रगट हुई, वही निजपरिणति है, सुखसागर की। आहाहा! सुखसागर में से सुखसागर की दशा आयी, उसमें आत्मा मग्न है। जो आत्मा राग में मग्न है, वह आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

पहले चीज़ कैसी है, ऐसी यथार्थ समझ भी जिसको नहीं, वह अन्तर्मुख होकर अपनी परिणति कैसे प्रगट करे? बाहर में रुचि जम गयी, उससे प्रगट करे अज्ञान, राग-द्वेष, मिथ्यात्वभाव। समझ में आया? निजपरिणति के सुखसागर में भगवान विराजमान है। आहाहा! कहाँ है आत्मा? कि आत्मा, आनन्द की दशा में आत्मा है, ऐसा कहते हैं। पुण्य-पाप के विकल्प में आत्मा है नहीं, मूल तो ऐसा कहते हैं। मोक्षमार्ग को साथ में लेकर... ओहोहो! यहाँ स्पष्ट कथन, नियमसार में बहुत स्पष्ट है। व्यवहार का कामी है न? व्यवहार साधन—हेतु जिसने कल्पना की है न? उसको लगे कि यह एकान्त है। मुनि का कथन (स्वीकार) नहीं। समझ में आया? आयी है न पुस्तक? समयसार। थोड़ा अलग है। विकार... वह दृष्टान्त आता है स्त्री का—पुरुष का। दो से होता है, ऐसा न माने (और) एक से होता है, ऐसा माने तो वह मिथ्यात्व है।

पंचास्तिकाय में कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचन्द्राचार्य तो कहते हैं कि विकार एकान्त अपने से, निश्चय से अपने से होता है। और धर्म भी एकान्त निश्चय से अपने से होता है। समझ में आया? सब झूठे अर्थ किये हैं। थोड़ा-थोड़ा देखा। अरे! महाराज! ...अर्थ में पहले लिया। क्या कहते हैं? अनुक्रमणिका। अरे! ऐसे पुस्तक बाहर निकले। समय-स्वसमय तो तेरहवें गुणस्थान में होता है, उससे पहले बारहवें तक परसमय है। आहाहा! अरे! भगवान! क्या कहते हैं? ऐसी पुस्तकें बाहर प्रकाशित हो, लोगों को बेचारों को खबर नहीं।

यहाँ तो (कहते हैं कि) चौथे गुणस्थान से स्वसमय है। आत्मा जहाँ राग से भिन्न हुआ, निज परिणति सुखसागर में (मग्न), वह स्वसमय है। समझ में आया? परन्तु अपना निजस्वरूप और उसका माहात्म्य है, ऐसी दृष्टि उसको होती नहीं। कुछ... कुछ... कुछ... राग हो, विकल्प हो कुछ... कुछ... सहारा हो। ऐसी राग की परिणति में अपनापन मानते हैं तो वह मिथ्यात्वभाव है। मिथ्यात्व में मग्न है, वह आत्मा में (मग्न) नहीं है। समझ में आया?

निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है। अपनी निज परिणति निर्मल वीतरागदशा, वह निजपरिणति पर्याय है। राग कहाँ निजपरिणति है? व्यवहार विकल्प

है, वह कोई निजपरिणति नहीं, वह तो परभाव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों किये हैं। बहुत अर्थ किया। मुफ्त में समय जाये। हमने जाना है कि यह है। क्या करे परन्तु? आहाहा!

अरे! प्रभु का मार्ग, वीतराग का मार्ग वीतरागभाव से प्रगट होता है। राग से प्रगट होता नहीं। राग से उत्पन्न होता ही नहीं। आहाहा! प्रभु! तुम कहाँ राग हो? तेरे स्वरूप में राग है ही कहाँ? वह तो वीतराग मूर्ति चिदानन्द है। ओहो! कितनी धीरज चाहिए। कितनी आकुलता मिटाने का पुरुषार्थ (चाहिए)। स्वभाव सन्मुख ढलना (हो, उसे) वह विकल्प उठे, उसको ऐसा देखना चाहिए कि कुछ जलता है... जलता है... भट्टी लगती है, कषाय है, वह अग्नि है, ऐसा लगना चाहिए। समझ में आया?

रुई होती है न रुई? रुई का... सूक्ष्म। रुई... रुई... कपास कहते हैं न? तो लोहे का अग्नि का गोला हो तो उसमें रखे तो जलहल जल जाता है। लोहे के गोले में अग्नि बाहर दिखे नहीं, परन्तु थोड़ी अन्दर है। तो रुई की गठरी रखे तो जले नहीं परन्तु रुई को सूक्ष्म करके उसमें रखे तो जलता है क्योंकि अन्दर अग्नि होती है। समझ में आया? लोह की अग्नि, लोहे की अग्नि उष्ण हो तो रुई ऐसे रखे तो सारी जल जाती है। परन्तु अग्नि बहुत निकल गयी हो और मन्द अग्नि रही हो अन्दर..., समझ में आया? तो उसमें भी रुई जरा पोचा करके रखे न जरा, तो जल जाती है। (क्योंकि) कुछ अग्नि अन्दर है। उसी प्रकार तीव्र कषाय है, वह जलहल अग्नि है। मन्दकषाय शुभ (सूक्ष्म) अग्नि है। आहाहा! आत्मा की शान्ति को जलाती है। आहाहा! यह बात कहाँ बैठे?

अरे! कहते हैं कि पंच महाव्रत का परिणाम जो तुम कहते हो—अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य का विकल्प, वह भी सूक्ष्म जलहल (अग्नि है), उसमें शान्ति जलती है। तुम जिसको धर्म मानते हो, उसमें तो अधर्म होता है वहाँ। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अशुभ से बचता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुभ से... मिथ्यात्व ही महा अशुभ है, बचे कहाँ से? धूल में से? वह तो अनन्त बार ऐसे अभव्य को भी आ गयी कषाय की मन्दता। वस्तु भगवान

(आत्मा) राग के विकल्प के अंश से—गन्ध से रहित है। ऐसी दृष्टि हुए बिना कभी अशुभ से बचते हैं, वह भी बात सच्ची नहीं है।

मुमुक्षु : मुनि तो बचते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि को क्या है? मुनि तो, शुभाशुभपरिणाम से रहित हैं, वह मुनि हैं। मुनि तो शुद्ध उपयोगी हैं। अरे! भगवान! शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा के शुद्ध उपयोग की लीनता चले, वह मुनि है। शुद्ध उपयोग को मुनि अंगीकार करते हैं, ऐसा लिया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में (लिया है)। प्रवचनसार में से लिया है। पहली पाँच गाथाओं में से। आचार्य, उपाध्याय, साधु उसको कहते हैं कि जिसने शुद्ध उपयोग अंगीकार किया है। आहाहा! 'परम शुद्ध उपयोग' शब्द पड़ा है टीका में। परम शुद्ध उपयोग। क्या कहते हैं? उसमें लिखा है। चौथे, पाँचवें, छठवें में उपयोग शुद्ध होता ही नहीं। चौथे में होता नहीं। उसमें लिखा है। पुस्तक आयी है न अभी? ज्ञानसागर पहले भूरामल ब्रह्मचारी थे। भूरामल थे वही... उसमें भावार्थ लिया है थोड़ा। बाकी तो रतनचन्दजी... ओहोहो! चौथे गुणस्थान में शुद्ध उपयोग होता ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : शुद्ध उपयोग से धर्म होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध उपयोग से धर्म होता है, (परन्तु) शुभ उपयोग से धर्म होता है, ऐसा उनको मनवाना है। शुभ से धर्म है। अरे! भगवान! क्या करते हो? भाई! ऐसा काल मिला है (वह) चला जाता है समय-समय में। आहाहा! देह छूटने के नजदीक जाता है। उसमें किसका तुझे रखना है? भाई! अरे! मृत्यु के समय में यह दृष्टि यदि नहीं बदली तो मृत्यु के समय ऐ... हो जायेगा। वहाँ किसकी शरण है? कहाँ जायेगा? शुभ उपयोग में जायेगा, वह तो अग्नि है। आहाहा! समझ में आया? चारों ओर से शरीर में दबाव पड़े और सारे आंत खिंचे। यह तो (शरीर तो) वेदना की मूर्ति है। सुख का सागर तो भगवान आत्मा है। उसकी दृष्टि किये बिना उस समय दब जायेगा, भाई! तेरा भान तुझे नहीं रहेगा। समझ में आया कुछ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह बात चलती है। वह अन्दर राग से भिन्न होकर आत्मा

की एकाग्रता करना, वह सुखसागर में मग्न है। आहाहा! समझ में आया? पहले से राग—विकल्प से मैं भिन्न निर्विकल्प आनन्द हूँ, ऐसे पर से भिन्न हुए बिना मृत्युकाल में तू कहाँ नजर करेगा? कहाँ तेरी नजर जायेगी? समझ में आया? भाई! तेरा शरण तो पर से भिन्न तेरा चिदानन्द आत्मा है, उसका तो तुझे पता नहीं और पर से एकत्व मानकर तो पर में दृष्टि रहेगी। दब जायेगा भगवान! तुझे पीड़ा होगी। तेली की घानी में जैसे तिल पिसते हैं... तिल पिसते हैं न? तिल। आहाहा! यहाँ से उठते हैं... क्या कहते हैं? क्या कहते हैं? हार्ट अटैक।

मुमुक्षु : हेमरेज, हृदय का अटेक।

पूज्य गुरुदेवश्री : हुमलो... हृदय का वह क्या कहलाता है? कैंसर। हृदय का कैंसर। भाई! वह तो जड़ की दशा है। उसमें तुम नहीं और उसको लेकर तुझे दुःख है ही नहीं। उसको लेकर दुःख तुझे है ही नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति तूने दृष्टि में, अनुभव में ली नहीं, तो प्रतिकूलता देखकर तुझे द्वेष हो जाता है। आहाहा! मर जाता हूँ रे कोई बचाओ... बचाओ... कौन बचावे भगवान? आहाहा!

निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है। प्रभु! तेरी स्थिति यह है, ऐसा कहते हैं। राग में मग्न होना, वह तेरा स्वभाव नहीं। आहाहा! शुभराग हो। यहाँ तो शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा के सन्मुख की जो निर्मल परिणति, वह तेरी दशा है, वह तेरे आत्मा की दशा–स्वभाव है। समझ में आया? यह ६४ (कलश) हुआ।

(अब) ६५।

(द्रुतविलंबित)

भवजभोगपराङ्मुख हे यते
पदमिदं भवहेतुविनाशनम्।
भज निजात्मनिमग्नमते पुन-
स्तव किमध्रुववस्तुनि चिन्तया॥६५॥

अरे! तुझे अध्रुव की चिन्ता से क्या काम है?

श्लोकार्थ :- निज आत्मा में लीन बुद्धिवाले.... अपना आनन्द, ज्ञानस्वरूप आत्मा है, ऐसा जिसने दृष्टि में लिया और पुण्य-पाप के विकल्प से दृष्टि हटा ली, वह निज आत्मा में लीन बुद्धिवाले **तथा भव से और भोग से पराङ्मुख हुए हैं...** भव अर्थात् संसार और भोग अर्थात् राग का अनुभव, उससे पराङ्मुख है अर्थात् भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप के सन्मुख है और विकार भव का कारण है और भोग राग का (कारण है), उससे पराङ्मुख है। समझ में आया?

तू भवहेतु का विनाश करनेवाले ऐसे.... भगवान! तू तो भव का नाश करनेवाला है न! आहाहा! **भवहेतु का नाश करनेवाले ऐसे ध्रुव पद को भज...** समझ में आया कुछ? यह तो केवल मक्खन की बात है। भगवान ध्रुवस्वरूप चिदानन्द... १९२ (कलश) में बहुत आया था। ध्रुव पर नजर कर, ध्रुव को भज। अरे! **ऐसे ध्रुव पद को भज; अध्रुववस्तु की चिन्ता से तुझे क्या प्रयोजन है?** आहाहा! जो पुण्य आदि का परिणाम जो अध्रुव और नाशवान है, उसकी चिन्ता (छोड़)। उससे क्या प्रयोजन है तुझे? समझ में आया? यह धर्म की पद्धति बताते हैं। भगवान! तू ध्रुव को भज न! अध्रुव आता है... वह दृष्टान्त दिया था न छाया का? मुसाफिर चलता है सड़क पर। सड़क कहते हैं न? सड़क। हजारों वृक्ष हो, सूरज हो, छाया पड़ती हो। मुसाफिर चलते... चलते... चलते... किसी छाया को छूता नहीं, छाँव में रुकता नहीं। वहाँ खड़ा रहता नहीं। वह तो चलता है। ऐसा तेरा ध्रुवस्वरूप, अध्रुव विकल्पादि हो, उन्हें स्पर्शे बिना गति करता है ध्रुव में। कहो, पोपटभाई! यहाँ स्त्री, बच्चे कहीं रह गये। क्या कहते हैं? टाईल्स की मशीन। .... भाषा समझते हो। ...है सब। पोपटभाई! आहाहा!

तेरे स्वरूप को लूटकर पर में सावधान होता है, भाई! पर में सावधान होता है, वहाँ तेरा स्वभाव लुट जाता है। समझ में आया? ऐसा मनुष्यदेह का समय फिर नहीं मिलेगा तुझे। हमारे वनेचन्दभाई सेठ थे वांकानेर में। ८० में गाते थे। 'मनुष्य भवना टाळा रे वालीडा तने नहीं रे मळे। ऊंटना भवमां व्हाला मारा कंथारिया ना खाधा रे नाथ।' कोरडा... कोरडा समझते हो? कंथारिया वृक्ष होता है। जंगल में ऐसी वनस्पति होती है चिकनी। उसका बनाते हैं कोरडा। कोरडा नहीं समझते? लम्बा। चाबुक...

चाबुक। 'ऊंटना भवमां व्हाला मारा तने कंथारियाना पडया मार अने कूतराना भवमां ते रोटलाना टूकडा माटे घेर घेर भम्यो छो नाथ'* आहाहा! अभी भी तुझे ऐसा भवभ्रमण छोड़ना नहीं है ? आहाहा! समझ में आया ?

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु सत् शाश्वत् तत्त्व है वह तो। आनन्द और ज्ञान से तो भरा हुआ प्रभु है। अरे! उसको तो भजो, उसकी तो सेवा करो। तुझे अध्रुव से क्या चिन्ता है ? समझ में आया ? शरीर को ऐसा रखूँ, परिवार को ऐसा रखूँ, लक्ष्मी को ऐसा रखूँ। वह कोई तेरी चिन्ता से रहेगा नहीं। तुझे चिन्ता निरर्थक जायेगी। उस चिन्ता से तुझे लाभ नहीं और चिन्ता से पर में ऐसा होगा नहीं। समझ में आया? यह ६५ (कलश) हुआ। (अब) ६६।

(द्रुतविलंबित)

समयसारमनाकुलमच्युतं
जननमृत्युरुजादिविवर्जितम्।
सहज-निर्मल-शर्म-सुधामयं
समरसेन सदा परिपूजये॥६६॥

तेरी पूजा तू कर—ऐसा कहते हैं। आहाहा!

श्लोकार्थ :- जो अनाकुल है.... कैसा है भगवान ? अनाकुल। उसमें आकुलता बिल्कुल नहीं। व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प की आकुलता भी जिसमें नहीं। आहाहा! और **अच्युत है,... अस्खलित-निजस्वरूप से न हटा हुआ।** अपने ध्रुवस्वरूप से कभी हटता नहीं, ऐसा भगवान ध्रुव, सारी दुनिया हिल जाये, परन्तु वह हिले नहीं—डिगे नहीं, ऐसी चीज़ है। ऐसा कहते हैं। ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... सत्... सत्... सत्... ज्ञायक सत्... आनन्द सत् ऐसा ध्रुव स्वरूप किसी से हिलाये हिले नहीं, टलता नहीं। कम्पन नहीं। मेरुपर्वत, जैसे मेरुपर्वत पवन से भी हिलता नहीं, वैसे ध्रुवतत्त्व... आहाहा! कहते हैं, वह अच्युत है।

चाहे जितना अशुभभाव हो तो भी ध्रुव में बिगाड़ नहीं होता और चाहे जितनी निर्मल पर्याय हो तो ध्रुव में शुद्धि नहीं होती, ध्रुव तो ध्रुव है। समझ में आया ? मोक्ष की

पर्याय हो तो ध्रुव तो ध्रुव ही है, ध्रुव में सुधार हो गया —ऐसा नहीं और मिथ्यात्व, गृहीत मिथ्यात्व का परिणाम हो तो ध्रुव में कुछ मलिनता आ गयी है, ऐसा नहीं है, दोनों पर्याय से पार तेरा ध्रुवतत्त्व है। आहाहा! समझ में आया? तेरी दृष्टि का विषय तो वह ध्रुव है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : चीज़ अपनी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अपना त्रिकाली वह ध्रुव अपना है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वही है। अपने पास कहने में तो, यह आदमी बैठा है, अपने पास लकड़ा है (ऐसी दूरी लगती है)। तू ही है ऐसा। पास में (कहने में) व्यवहार आ गया। समझ में आया? नरसिंह मेहता में आता है न? 'प्रभु तारी पासे रे हरि नथी वेगळा जी। प्रभु तारी पासे रे हरि नथी वेगळा जी। पण तने आडो आव्यो रे अहंकार...' पुण्य के विकल्प का अहंकार, शरीर का अहंकार, इसका अहंकार, इसका अहंकार... यह मेरे... मेरे... अहंकार आड़े आया, इसलिए भगवान तुझे दिखते नहीं। भगवान तुझे देखने में आता नहीं। यह तो अलौकिक बात है। समझ में आया? ओहोहो!

अच्युत है.... कभी च्युत हुआ नहीं। ध्रुव से कहाँ च्युत होवे? मेरुपर्वत कैसे हिले? समझ में आया? संवर्तक पवन ऐसी होती है, आयेगी पंचम काल के अन्त में। सारे वृक्ष, पर्वत (आदि) सब नाश हो जायेगा। मेरुपर्वत को संवर्तक पवन हिला सके, ऐसी सामर्थ्य नहीं है। आहाहा! अपने से हिले नहीं, (उसे) निमित्त क्या करे? इसी प्रकार भगवान आत्मा ध्रुव नित्यानन्द भगवान... ध्रुव कहा न यहाँ? किसी से टलता नहीं, किसी से डिगता नहीं।

इसी प्रकार भगवान **जन्म-मृत्यु-रोगादि रहित है,...** लो! **'जननमृत्युरुजादि' 'रुजा'** अर्थात् रोग। जिसमें जन्म नहीं, जिसमें मृत्यु नहीं, जिसमें रोगादि आधि-व्याधि नहीं। सहज निर्मल सुखामृतमय है। आहाहा! भगवान! तुम तो निर्मल स्वभावी सुखामृत हो। निर्मल स्वभावी सुख के अमृतमय आत्मा है। आहाहा! **उस समयसार को...** ऐसे समयसार को... ऐसा समयसार अर्थात् भगवान आत्मा, **समरस (समताभाव) द्वारा**

सदा पूजता हूँ। वीतरागी पर्याय द्वारा उसका आदर करता हूँ। समझ में आया? बात समझने में भी न आवे, वह प्रगट कहाँ से करे? बाहर में धक्के धक्का धमाल... धमाल... धमाल... धर्म के नाम पर... आता है न कुछ? यशोविजय का कुछ नहीं आता?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : 'धामधूम से धमाधम चली, ज्ञानमार्ग रहा दूर रे।' धमाधम बाहर की। आहाहा! बड़ी शोभायात्रा होती है। ...रविवार है न रविवार? रविवार पहला आया न? तपस्वी प्रसन्न होते हैं कि हमने तपस्या की। वे प्रसन्न होते हैं कि हमारे चातुर्मास में तपस्या हुई।

मुमुक्षु : सब राग....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब राग का पोषण करते हैं, भगवान! तुझे पता नहीं, भाई! आहाहा! धर्म के नाम पर धमाधम चली, ज्ञानमार्ग रहा दूर। आहाहा! अन्तर आनन्दस्वरूप का ज्ञान और अन्तर में एकाग्रता, वह मार्ग तो कहीं दूर रह गया। उसमें से निकलकर धमाधम....

कहते हैं कि मैं तो समरस द्वारा... देखो! समता, पुण्य-पाप के रागरहित समता द्वारा, समता के पिण्ड को मैं पूजता हूँ। आहाहा! समझ में आया? मैं तो सदा वीतराग परिणति द्वारा ही उसका आदर करता हूँ। कठिन बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वीतराग समभाव। पुण्य-पाप के विकल्प से हटकर अपने शुद्धस्वरूप में शुद्ध उपयोग का होना, उसका नाम समता परिणाम है। आहाहा! शुद्ध उपयोग, वह समरस। आहाहा! उसके द्वारा मैं पूजता हूँ। सदा पूजता हूँ, ऐसा कहते हैं। एक समय भी राग का आश्रय करके मुझे लाभ होगा, वह मेरी दृष्टि में है नहीं, ऐसा कहते हैं मूल तो। गजब पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध उपयोग ही सदा है। वह सदा ही है। शुद्ध परिणति सदा शुद्ध उपयोग ही है। समझ में आया? वह आता है न आगे, नहीं? धर्मध्यान नहीं तो बहिरात्मा है, ऐसा कहा है। वह आता है न आवश्यक में, नहीं? पाठ में। धर्मध्यानी नहीं, धर्मध्यानी नहीं, धर्मध्यान निर्विकल्प ऐसा नहीं, उसकी परिणति में शुद्धता— निर्मलता न हो तो वह बहिरात्मा है। कहाँ आवश्यक में है? कहाँ है?

मुमुक्षु : ३०५ पृष्ठ पर।

पूज्य गुरुदेवश्री : ३०५ पृष्ठ पर, देखो! ३०४, वह नहीं। यह तो मूल पाठ है। १५१ गाथा। १५१ गाथा, ३०४ पृष्ठ मूल पाठ।

जो धम्मसुक्काझाणम्हि परिणदो सो वि अंतरंगप्पा।
झाणविहीणो समणो बहिरप्पा इदि विजाणीहि॥१५१॥

विकल्प हो तो भी धर्मध्यान तो निरन्तर है। समझ में आया? अमरचन्दभाई! '**झाणविहीणो समणो बहिरप्पा**' ध्यान कौन सा? अन्दर निर्विकल्प में रहे, वह ध्यान? निर्विकल्प में तो अल्प काल रहते हैं परन्तु भगवान आत्मा की जो श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति की निर्विकल्प परिणति, वह धर्मध्यान है, वह स्वभाव का ध्यान है। उसके बिना हो तो बहिरात्मा है। पुण्य के विकल्प में रहते हैं, उसको कर्तव्य मानते हैं, वह तो बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? वह तो बाद के कलश में डाला है २६० में। पाठ था वह।

दो ध्यानों से रहित तुच्छ मुनि बहिरात्मा है। वह तो मूल पाठ है उसका। यह तो कुन्दकुन्दाचार्य का पाठ है। ध्यान रहित है, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। उसका अर्थ क्या? कि आत्मा पवित्र शुद्ध चिदानन्द की दृष्टि और ज्ञान की परिणति, वही धर्मध्यान है। कहो, देवीलालजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पाठ में है न? पाठ में कहा, धर्मध्यान नहीं तो बहिरात्मा है, ऐसा कहा। धर्मध्यान किस समय में नहीं है? धर्मी को किस समय में धर्मध्यान नहीं है? वस्तु जो अखण्ड आत्मा परमात्मा है, उसकी दृष्टि जम गयी (तो)

निरन्तर धर्मध्यान है। समझ में आया? आहाहा! और वह नहीं है तो बहिरात्मा है, आर्तध्यान है। राग के विकल्प में अपनापन मानकर राग का अनुभव करता है, तो भवभ्रमण का कारण (है और) वह बहिरात्मा है। बहिर् चीज़ को अपना माने, वह बहिरात्मा है। अन्तर चीज़ को एकाग्र होकर अपना जाने, वह अन्तरात्मा है। समझ में आया?

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, अपना शाश्वत् ज्ञान और आनन्दकन्द वस्तु, उसकी अन्तर में एकाग्रता वीतरागी परिणति, वह धर्मध्यान है। देखो! यहाँ विकल्प... (निर्विकल्प) धर्मध्यान रहित है, (परन्तु परिणति) विकल्प रहित हो तो भी धर्मध्यान सहित है। यह तो निश्चय धर्मध्यान की बात चली है। वह कहते हैं कि धर्मध्यान शुभोपयोग है और शुक्लध्यान शुद्ध उपयोग है। यहाँ तो कहते हैं कि धर्मध्यान बिना का बहिरात्मा है। समझ में आया? धर्म, वह आत्मा पूर्णानन्द सच्चिदानन्द प्रभु ऐसी चीज़ में एकाग्रता हुई, वह धर्मध्यान की शुद्धता कायम रहती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। कुछ नहीं। चौथे से धर्मध्यान।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो सातवें से। सातवें से कहा न? सातवें से। उसने लिखा है कि छठवें तक शुभभाव, सातवें के बात शुद्धोपयोग। अरे! भगवान! क्या कर रहा है तू? शुभोपयोग तो उदयभाव है। उदयभाव, वह धर्मस्वरूप है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दोनों कहा है। लिखा है। पहला। भगवान की भक्ति से शुभ भी होता है और धर्म भी होता है। आहाहा! भगवान (पर-) सन्मुख परमात्मा साक्षात् तीन लोक के नाथ हैं। समवसरण में विराजते हों, उनकी भक्ति का भाव भी शुभराग है। शोभालालजी! बहुत कठिन! परसन्मुख दृष्टि हुई, वह तो विकल्प-राग है, यह कहते हैं। लिखा है। पुद्गल... और पुद्गल का व्यवहार से कर्ता हूँ। पुद्गल का कर्ता हूँ, ऐसा लिखा है। पुद्गल का कर्ता हूँ, देखो! ....पुद्गल .... मैं कर सकता हूँ,

ऐसा लिखा है। वह तो कहीं-कहीं लिखा है थोड़ा। अरे! भगवान! क्या करता है? भाई! अरे! उल्टे रास्ते पर तो है बेचारे और उल्टे रास्ते पर चलने की बात करते हैं। ऐई! देवीलालजी!

वह रतनचन्दजी हैं न? उनको तो आपने देखा होगा। वर्णीजी के पास रहते थे। जाते थे न उनके पास? बहुत वर्ष गये। पैसे-बैसे बहुत देते थे। पैसे तो कहाँ उसके थ? समझ में आया? आहाहा! भगवान! तुझमें राग भी नहीं, तो पैसे कहाँ से आये? आहाहा! शोभालालजी! ऐसा है, भाई! आहाहा! प्रभु! तेरी सम्पत्ति और तेरी लक्ष्मी की ऋद्धि कोई अलौकिक है। तुझे अन्तर में बैठी नहीं, तो कुछ करे, विकल्प से शुभ करे तो कुछ करता हूँ, (ऐसा मानता है)। आहाहा! करना, वह मरना है। भाई ने लिखा है न? भाई ने लिखा है। निहालचन्द (सोगानी ने)। कुछ करना ही नहीं। जानने-देखने में रमणता करना, वही आत्मा की दशा है। आहाहा! बहुत कठिन लगे लोगों को। यह तो १०-१० हजार लोग, २०-२० हजार लोग इकट्ठे हों तो उसमें यह बात कहे, तो क्या कहते हैं, वह सुनने भी खड़े रहे नहीं। व्यक्ति की शोभा भी नहीं होती। यह क्या कहते हैं? बापू! तेरे घर की बात कहते हैं, भाई! तेरे घर में, अन्दर दया, दान, व्रत, महाव्रत का राग उत्पन्न होता है, वह तेरे घर में नहीं, वह परघर की बात है। वह आत्मा का आचरण नहीं। खबर नहीं... खबर नहीं... पोपटभाई!

उसकी भतीजी बैठी है न? उसने दीक्षा ली है। उसको कुछ कहा नहीं होगा? कोई किसी का मानता है? आहाहा! हैरान होनेवाले हैं हैरान। मिथ्यात्वपने धर्म नहीं और वह विकल्प है, उसमें यह.... वह तो राग है। राग है, वह हमारा धर्म—चारित्र है। वह तो मिथ्यात्वभाव है, क्षण-क्षण में मिथ्यात्व का घोंटना है। रगड़... रगड़... अफीम का प्याला होता है न? रगड़ता नहीं अफीम? अफीम। लो महाराज! लो महाराज! ऐसा कहते हैं। काठी लोग होते हैं न काठी? अफीम बहुत करते हैं न?

एक बार सुना था, आपके आते हैं न गोंडल और राजकोट के बीच में... बाबा। ... में उतरे थे। (संवत्) १९७१ की बात है। ....बाद में सामने काठी का... था। बाबा बोलता था। देखो! बापू! चाँदी की राब। पीने का समय हुआ न? महँगी होती है।

अफीम महँगा होता है न? तो चाँदी की राब। राब समझते हो? राब नहीं होती? गेहूँ और घी की बनाते नहीं? घी, आटा, शक्कर या गुड़ डालकर बनाते हैं न सुबह में? ... बनावे उसमें थोड़ी सोंठ डाले। राबड़ी कहते हैं हमारे यहाँ। सोंठ डालकर राबड़ी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग है। रबड़ी तो पतली होती है जरा। नरम होती है। लापसी दो प्रकार की है। ओरमा की लापसी। ओरमा होता है न? बड़े-बड़े टुकड़े गेहूँ के और एक आटा होता है, उसकी लापसी होती है। उसमें राबड़ी तीसरी जाति है। बाद में कहता था बाबा। (संवत्) १९७१ की बात है। चैत्र महीना था। ७१। लो, बापू! चाँदी की राबड़ी। अकेला था तो भी बोला करे। ऐसा बोला तब चढ़े, वरना चढ़े नहीं। जो पीने के समय कोई बोल जाये कि अफीम चढ़ा नहीं, तुरन्त उतर जाती है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उतर जाये। ... खाये तो ऐसे पागल। पागल के कोई गाँव अलग होते हैं? आहाहा! ७१ की बात सुनी थी। बाबा वृद्ध था बेचारा। ....

यहाँ कहते हैं कि भगवान! तू समताभाव द्वारा आत्मा को पूज न सदा। यह विकल्प तो विषमताभाव है। आहाहा! यह ६६ (कलश) हुआ। (अब) ६७।

(इन्द्रवज्रा)

इत्थं निजज्ञेन निजात्म-तत्त्व-
मुक्तं पुरा सूत्रकृता विशुद्धम्।
बुद्ध्वा च यन्मुक्तिमुपैति भव्य-
स्तद्भावयाम्युत्तमशर्मणेऽहम् ॥६७॥

श्लोकार्थ :- इस प्रकार पहले निजज्ञ सूत्रकार ने.... देखो! पद्मप्रभमलधारिदेव कुन्दकुन्दाचार्य के लिये कहते हैं कि निजज्ञ—अपने आत्मा को जाननेवाले, अनुभव करनेवाले कुन्दकुन्दाचार्य कैसे थे? निजज्ञ—अपने आत्मा को जाननेवाले थे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर का पता चला, देखो! आहाहा!

निजज्ञ सूत्रकार ने (आत्मज्ञानी सूत्रकर्ता श्रीमद्-भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव).... ओहोहो! **जिस निजात्मतत्त्व का वर्णन किया....** कुन्दकुन्दाचार्य ने निज आत्मतत्त्व का कथन किया। श्लोक में है। **और जिसे जानकर भव्य जीव, मुक्ति को प्राप्त करते हैं,....** ऐसे भगवान आत्मा को जानकर, शुद्ध आनन्दकन्द को ज्ञान में ज्ञेयरूप से बनाकर जो भव्य जीव मुक्ति को प्राप्त करते हैं। **उस निजात्मतत्त्व को उत्तमसुख की प्राप्ति के हेतु मैं भाता हूँ।** उसकी भावना मैं करता हूँ। आहाहा!

ऐसा करना हो तब रसोई कब बनावे? खाना कब? पीना कब? और यह करना? आहाहा! कौन खावे? कौन पीवे? भगवान! यह तो क्रिया जड़ की जड़ में होती है। तुम निराले रहकर अपनी पर्याय में रहो। वह तो होता हो तो हो, न होता हो तो न हो। वह तेरे से होता है? समझ में आया? गम्भीर बात, भाई! कितने कहते हैं कि यह तो बड़ी वीतराग की बातें करते हैं, परन्तु पहले धर्म की शुरुआत कैसे होती है, इसकी बात करते नहीं। यह धर्म की शुरुआत की बात है। भीखाभाई! एवंभूत की बात की करे। एक बार कहा था। यह तो एवंभूतनय की बात करते हैं। नैगमनय की। आहाहा! देखो! यह बात करते थे। गये थे न पहले। अरे! यह नैगमनय की व्याख्या है यह। अपना शुद्ध चिदानन्दस्वरूप (उसकी) अन्तर में श्रद्धा, ज्ञान करके अनुभव करना, वह पहले निगम का अंश है, एवंभूत का—केवलज्ञान का अंश नहीं। समझ में आया? ऋजुसूत्रनय.... ऐसी परिणति हो तो उसको ऋजुसूत्र अपनी स्वीकारता है। राग को स्वीकारता नहीं। आहाहा! नय के चक्र में घुस गया।

कहते हैं, अहो! जिसने वर्णन किया, कुन्दकुन्दाचार्य ने **जिसे जानकर भव्य जीव, मुक्ति को प्राप्त करते हैं,....** इतनी पहली बात कही। अब, **उस निजात्मतत्त्व को उत्तमसुख की प्राप्ति के हेतु मैं भाता हूँ।** उसका अर्थ? आनन्दस्वरूप की भावना—एकाकार (होकर) श्रद्धा, ज्ञान करना, वही मुक्ति का उपाय है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। यह नियमसार है। यह लिया है। समझ में आया? यह ६७ गाथा (कलश) हुई, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ११, सोमवार, दिनांक - २२-०९-१९६९
गाथा-४४, श्लोक-६८, प्रवचन-१३

यह नियमसार, शुद्धभाव अधिकार चलता है। शुद्धभाव कहो या नित्य द्रव्य आत्मस्वभाव कहो। वह शुद्ध नित्य द्रव्यस्वभाव, वही निश्चय आत्मा है। ऐसे निश्चय आत्मा की अन्तर्दृष्टि करना और निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करना, वह मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग, वही यह नियमसार। वह मोक्षमार्ग किसमें से प्रगट होता है? किसके आश्रय से? कि शुद्धभाव के आश्रय से। समझ में आया? वह आत्मा कैसा है? ६८ कलश।

(वसन्ततिलका)

आद्यन्त-मुक्त-मनघं परमात्म-तत्त्वं,
निर्द्वन्द्वमक्षयविशालवरप्रबोधम्।
तद्भावना-परिणतो भुवि भव्य-लोकः,
सिद्धिं प्रयाति भवसम्भवदुःखदूराम्॥६८॥

नीचे श्लोक का अर्थ। **परमात्मतत्त्व....** यह परमात्मतत्त्व अर्थात् निज शुद्ध त्रिकाली वस्तु। अपना—निज ध्रुवतत्त्व परमात्मतत्त्व नित्यतत्त्व, वह कैसा है? कि **आदि-अन्त रहित है।** उसकी आदि नहीं, अन्त नहीं। सत्स्वभाव है, परम आनन्द ध्रुवस्वभाव वह आदि-अन्त रहित है। **दोषरहित है,...** उसमें दोष कहाँ? मुक्ति और संसार की पर्याय भी जहाँ नहीं, ऐसी अपनी दोषरहित वस्तु ध्रुव नित्य है। **निर्द्वन्द्व है....** द्वंद्व अर्थात् राग आदि का जुड़ान उसमें है नहीं। दूसरी कोई चीज़ नहीं। द्रव्य और पर्याय, वह दो द्वंद्व भी नहीं। समझ में आया? **निर्द्वन्द्व है....** अर्थात् एकरूप है।

और अक्षय विशाल उत्तम ज्ञानस्वरूप है। भगवान त्रिकालीस्वरूप सत्ता अक्षय अर्थात् क्षय नहीं हो, ऐसा विशाल उत्तम ज्ञान। ज्ञानस्वभाव... विशाल, उत्तम, ज्ञानस्वरूप आत्मा है। समझ में आया? यह दया, दान, व्रत, भक्ति ऐसा विकल्प उसमें है नहीं, ऐसा कहते हैं। क्योंकि वह तो विशाल उत्तम ज्ञानस्वरूप है। समझ में आया? महाविस्तार सामर्थ्य विशाल... विशाल... उत्तम ज्ञानस्वरूप है। केवलज्ञान की पर्याय भी उसमें नहीं,

ऐसा कहते हैं। समझ में आया? विशाल उत्तम ज्ञानस्वरूप है।

जगत में जो भव्यजन.... जगत के अन्दर जो कोई भव्य प्राणी **उसकी भावनारूप परिणमित होते हैं,...** लो! नित्यानन्द भगवान... सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने ऐसा ध्रुवतत्त्व आत्मा प्रत्येक का ऐसा देखा। समझ में आया? तीर्थंकर सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने ऐसा प्रत्येक का ध्रुवतत्त्व आत्मा देखा। ऐसे आत्मा में जगत में भव्य प्राणी... अहो! लायक प्राणी—योग्य प्राणी उसकी भावनारूप परिणमित होते हैं। शुद्ध आनन्द, ज्ञानस्वरूप विशाल, उसकी भावना (अर्थात्) वस्तु में एकाग्रता। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह सब विकार है, बन्ध का कारण है। समझ में आया?

वह चैतन्यदल है। सुखकन्द है, उसमें एकाग्रता। द्रव्यस्वभाव शुद्ध है। यह शुद्धभाव चलता है न? त्रिकाली शुद्धभावरूप तत्त्व है, परमात्मतत्त्व। उसमें एकाग्र होना, सम्यक् पर्याय से, सम्यग्दर्शन से एकाग्र होना, सम्यक् ज्ञान से एकाग्र होना और स्वरूप में स्थिरता—ऐसी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो वीतरागी पर्याय स्वभाव की भावनारूप परिणमित होते हैं। निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्यायरूप, भावनारूप अवस्था होती है। **वे भवजनित दुःखों से दूर ऐसी सिद्धि को प्राप्त करते हैं।** समझ में आया?

वही जीव, ऐसे। भवजनित दुःख—चार गति का दुःख। स्वर्ग में हो या नरक में हो या पशु में हो या मनुष्य में हो, सेठाई में हो या भिखारी / रंक हो—वह दुःखी प्राणी है। दुःख आकुलता का है। शुभ-अशुभ जो विकारीभाव है, वह दुःख है। वह भवजनित दुःख—भव को उत्पन्न करनेवाला जो दुःख है विकार, दूर ऐसी, दुःखों से दूर, ऐसी मुक्ति को प्राप्त करते हैं। लो! मुक्ति का उपाय, उपाय का आश्रय द्रव्य और उस उपाय से मुक्ति होती है—वह तीनों बात ले ली। समझ में आया? शोभालालजी!

शरीर, वाणी, मन से तो यह दूर है। दया, दान, व्रत, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय के परिणाम तो दूर है। दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम दूर, उसको जाननेवाली जो एक समय की अवस्था है, वह भी दूर है और एक समय की (शुद्ध) अवस्था है, उससे भिन्न है। ऐसा अन्तरात्मा ध्रुवस्वरूप का आश्रय करके, उसमें भावना अर्थात् एकाग्रता होती है, जिसमें से आनन्द प्रगट हो, सम्यग्दर्शन में आनन्द प्रगट हो। सम्यग्ज्ञान में आनन्द

प्रगट हो, और चारित्र में उग्र आनन्द प्रगट हो। समझ में आया? उसको मोक्षमार्ग कहते हैं। उसको धर्म कहते हैं। कहो, पोपटभाई!

उसकी अर्थात् शुद्ध द्रव्यस्वभाव की भावना, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का मार्ग, उसमें परिणत होते हैं (अर्थात्) उसरूप अवस्था करते हैं। **वे भवजनित दुःखों से दूर ऐसी सिद्धि को....** मुक्ति को—मोक्ष को—अनन्त आनन्द को प्राप्त होता है। बहुत कठिन काम। बाहर में नजर करने से कुछ दिखे नहीं। अन्दर नजर करे तो क्या है? बालक पूछता था न एक बार? जामनगर में। दस वर्ष का बालक। महाराज! ऐसा आत्मा... आत्मा... आप कहते हो, परन्तु बाहर में तो कुछ दिखता नहीं। अन्दर नजर करते हैं तो अन्धेरा दिखता है। ऐई! चन्दुभाई! क्या नाम उसका?

मुमुक्षु : परेश।

पूज्य गुरुदेवश्री : परेश। परेश लड़का। अब तो बड़ा हो गया। तब दस वर्ष का था। यह आत्मा देखो... आत्मा देखो। परन्तु बाहर नजर करने से आत्मा दिखता नहीं। अन्दर नजर करें तो अन्धेरा दिखता है। ऐई! सेठ! प्रश्न किया। पाँच-छह साल पहले के बालक ने। भाई! अन्धेरे को जाननेवाला अन्धेरा नहीं। यह अन्धेरा है, (ऐसा जो) जानता है, वह अन्धेरा नहीं है। जिसमें अन्धेरा जानने में आता है, वह ज्ञानप्रकाश चैतन्य है। बालक ने तो प्रश्न किया कि हमको तो अन्धेरा दिखता है? भाई! अन्धेरा किसको दिखता है? किस सत्ता में? किसके होनेपने में? किसके होनेपने में अन्धेरा दिखता है? क्या अन्धेरे के अस्तित्व में अन्धेरा दिखता है? समझ में आया? अन्धेरा समझते हो या नहीं? तो अन्धकार, अन्धकार के अस्तित्व में दिखता है? अन्धकार चैतन्य के अस्तित्व —सत्ता में दिखता है। आहाहा! समझ में आया? चैतन्य सत्ता जो ज्ञायक सत्ता ज्ञान की सत्ता होने से अन्धेरा दिखता है। जो देखता है, वह अन्धेरेरूप नहीं है। आहाहा! अन्धेरे को देखनेवाला अन्धेरेरूप नहीं है। चेतनजी!

यह तो चैतन्यप्रकाश का नूर है। परन्तु तुझे खबर नहीं। कभी खबर की नहीं। ऐसा करो... ऐसा करो... ऐसा करो... मर गया क्रियाकाण्ड करते-करते। अनादि काल से चौरासी के अवतार में भटककर, दुःखी, भवजनित दुःख है। कोई शुभभाव हो तो मरकर स्वर्ग में जाये, वहाँ भी दुःख है। शुभभाव यहाँ भी दुःख है। वहाँ यह विषय के

भाव के अंगारे में सिंक रहा है। सिंक रहा है समझे? जलता है। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का भाव हुआ, उसमें पुण्य बँध गया तो स्वर्ग में जाये। स्वर्ग में कषाय का अंगारा है, शीतल चेतनस्वरूप, उस ओर की दृष्टि नहीं, इसलिए परसन्मुख के आश्रय से राग उत्पन्न होता है। वह कषाय अग्नि है। कषाय अग्नि से जलते हैं। देव भी कषाय अग्नि से जलते हैं। सुखी नहीं। समझ में आया?

कहा न? पहले कहा था। ७७.... प्रवचनसार। भाई! पाप के परिणाम में बन्ध हो और नरक में जाये तथा पुण्य के परिणाम दया, दान, व्रत के विकल्प से पुण्यबन्ध हो तो स्वर्ग में जाये। दोनों में तो आकुलता है और तुम पुण्य-पाप में अन्तर मानते हो, पुण्य-पाप में विशेष मानते हो, पाप से पुण्य ठीक है (ऐसा) दोनों में विशेष मानते हो, (परन्तु) विशेषता (तो) रहती नहीं। समझ में आया?

यह व्रतादि शुभभाव हो—दया, दान, व्रत का, तो वह भी स्वर्ग में जाकर क्लेश-आकुलता भोगते हैं और पाप के परिणाम से नरक में वह आकुलता है। दोनों ही आकुलता के अंगारे में जल जाते हैं। उसमें कुछ शान्ति है नहीं। तो तुम पुण्य-पाप के भाव में विशेष मानते हो—अन्तर मानते हो कि पाप से पुण्य अच्छा है तो घोर संसार में मिथ्यादृष्टि रुलेगा। ऐसा कहते हैं। ७७ गाथा में कहते हैं। जिसमें आत्मा की शान्ति नहीं, वह तो कषाय अग्नि है, दोनों स्थान में। पोपटभाई! बराबर है? आपके ४०-५० लाख रुपये में सुख नहीं होगा कुछ? सेठ साहेब! सेठ साहेब! करे, लो! हमारे कुंवरजीभाई को सेठ साहेब! सेठ साहेब कहते हैं। कहते हैं, पाँच सौ बार कहते होंगे। अरे! हजार बार कहे तो धूल है। कहाँ गया? एक दिन रामजीभाई ने पूछा था। कितनी बार आपको सेठ साहेब कहते हैं? हजार बार कहते होंगे? कि हजार बार नहीं, पाँच सौ बार तो कहते होंगे। भोले व्यक्ति, कुछ भान नहीं होता। ऐई! कुछ भान नहीं होता। यह तो एक जरा पुण्य लेकर आये हैं, इसलिए गिना जाये। वरना तो... ऐई! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! क्या है परन्तु? सेठ पाँच सौ बार क्या, लाख बार कहे, लो न! उसमें तुझे क्या आया? नौकर रखे लो न, दो रुपये वेतनदार। रोजिंदार। दो रुपये वेतन देकर बोलो सेठ साहेब... सेठ साहेब... सेठ साहेब... अब भाईसाहेब रहने दे।

मुमुक्षु : अब मुझे सोने दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्यों? सेठ साहेब करने से तुझे सुख होता है या नहीं? सुख होता है तो सुख का अन्त क्यों लाते हो? कहे, अब नहीं। सोने दे। नौ बज गये हैं, सिर पक गया है। बन्द कर दे। अरे! सुख है न? सुख है न? सुख का अन्त ऐसे क्यों हद बाँध देते हो? बस अब नहीं। सुख तो अनन्त चाहिए। सुख नहीं, आकुलता है, भाई! समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं कि यह सब भवजनित आकुलता है। वह आकुलता भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप की एकाग्रता से नाश होती है। समझ में आया? दुर्लभ है, अशक्य नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्य दरबार जिसमें अनन्त शान्ति, आनन्द आदि सत्व गुण(रूप) अनन्त समाज पड़ा है। भगवान आत्मा में अनन्त गुणरूप समाज पड़ी है। ऐसा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, उसमें एकाग्र होकर परिणत होता है, जैसे पारिणामिकभाव शुद्ध ध्रुव है, ऐसी पर्याय में परिणति / अवस्था करते हैं, वही मुक्ति को पाते हैं। वह भवजनित दुःख से दूर होकर मुक्ति को पाते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो व्यवहार से मुक्ति को प्राप्त होता है, व्यवहार शुभभाव से—उसकी तो बात भी नहीं की। यह तो भोगियों के भोग के लिये शुभभाव है।

कहो, **ऐसी सिद्धि को प्राप्त करते हैं**। लो, ४३ गाथा हुई।

अब ४४। **यहाँ (इस गाथा में) भी शुद्धजीव का स्वरूप कहा है**। शुद्ध जीव का। ऊपर शुद्धभाव है न? वह ४४।

णिग्गंथो णीरागो णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मुक्को।
णिक्कामो णिक्कोहो णिम्माणो णिम्मदो अप्पा॥४४॥

उसी को आत्मा कहा है। देखो! भाषा देखो। यह आत्मा, ऐसा कहते हैं। ऐसा ही आत्मा। आहाहा! एक समय की पर्याय-फर्याय आत्मा नहीं और दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम तो जड़—अनात्मा है। समझ में आा? सबमें '**अप्पा**' शब्द पड़ा है। देखो! नीचे हरिगीत।

निर्ग्रन्थ है, निराग है, निःशल्य, जीव अमान है।
सब दोष रहित, अक्रोध, निर्मद जीव यह निष्काम है॥४४॥

टीका - यहाँ (इस गाथा में) भी शुद्धजीव का स्वरूप कहा है। शुद्ध अर्थात् नित्यानन्द भगवान शुद्ध चैतन्यदल ध्रुव नित्य आनन्दकन्द सुखकन्द, ऐसा आत्मा की यहाँ परिभाषा करते हैं। आहाहा! **शुद्ध जीवास्तिकाय....** देखो! पहले शब्द लिया। **'अप्पा'** का अर्थ किया। **शुद्ध जीवास्तिकाय...** क्योंकि भिन्न-भिन्न करके उसका स्वरूप सिद्ध करना है न? असंख्य प्रदेशी जीव अस्तिकाय है। शुद्ध, जीव, अस्ति और काय—चार बोल हैं। शुद्ध-पवित्र, जीव-अस्ति है, कार्य-असंख्य प्रदेश। असंख्य प्रदेश जीवास्तिकाय को यहाँ शुद्ध जीवास्तिकाय कहा गया है। वह उसकी काय, असंख्य प्रदेश, वह उसकी काय। शरीर, वाणी, मन-फन उसकी काय नहीं। आहाहा!

शुद्ध जीवास्तिकाय... भगवान अपना निजस्वरूप त्रिकाली, जो त्रिकाली दल है—पिण्ड है, उसकी नजर करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है, वह एक समय की पर्याय है। परन्तु पर्याय में उत्पन्न होनेवाली चीज़, वह पर्यायवान शुद्ध जीवास्तिकाय है। शुद्ध जीवास्तिकाय। देखो! समझ में आया?

वह **बाह्य-अभ्यंतर चौबीस परिग्रह के परित्यागस्वरूप होने से....** उसमें चौबीस प्रकार का परिग्रह है ही नहीं। परित्याग अर्थात् उसमें है नहीं। परि—समस्त प्रकार के—चौबीस प्रकार के परिग्रह नहीं होने से निर्ग्रन्थ है। यह आत्मस्वरूप ही निर्ग्रन्थ है। आहाहा! वस्तु जो आत्मा है... जो वस्तु है पूर्ण नित्यानन्द ध्रुव, एक समय की पर्याय को छोड़कर त्रिकाली जो नित्य वस्तु है, वह निर्ग्रन्थ है। निर्ग्रन्थ है तो पर्याय में निर्ग्रन्थपना आता है। आहाहा! यह कठिन बात कभी सुनी नहीं हो। आत्मा निर्ग्रन्थ है। निर्ग्रन्थ साधु होते हैं न बाहर में? छोड़कर हो गये निर्ग्रन्थ साधु। रखते हैं गठरी की गठरियाँ। और बाहर के परिग्रह दूसरे लो न, साथ में मोटर। वह निर्ग्रन्थ नहीं है।

यह अन्दर में रागभाव है, दया, दान, व्रत, भक्ति का वह भाव मेरा है, वह सग्रन्थ मिथ्यादृष्टि है। वह निर्ग्रन्थ नहीं। परिग्रह है, राग है, वह परिग्रह है। आहाहा! वह राग ही आत्मा में नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। वस्तु जो भगवान आत्मा नित्य अविनाशी अनादि-अनन्त वस्तु आत्मा है, वह २४ प्रकार के परिग्रह के त्यागस्वरूप निर्ग्रन्थ है। उसमें नीचे लिखा है।

उसमें **क्षेत्र, मकान...** क्षेत्र अर्थात् खेत आदि। **मकान, चाँदी, सोना, धन, धान्य...** अनाज आदि। **दासी, दास, वस्त्र और बर्तन—ऐसा दस प्रकार का बाह्यपरिग्रह है;...** शुद्ध ज्ञानघन नित्य आत्मा जिसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन हो, उस आत्मा में दस प्रकार का परिग्रह है नहीं। शान्तिभाई! समझ में आया? जरा बहुत सूक्ष्म है। वहाँ से आये हो मस्तिष्क में लेकर। धमाधम चलती हो न वहाँ स्टेशन में। और चौदह प्रकार का परिग्रह—दूसरा। पहले आया था चौदह परिग्रह। वहाँ तीनों वेद को एक कर दिया था। राग, द्वेष को भिन्न किया था। उसको तीनों एक कर दिया। इसलिए चौदह हो गया। वह चौदह ऐसे लिये थे। समझ में आया?

देखो, यह मिथ्यात्व, वह परिग्रह है। मिथ्यात्व, वह महापरिग्रह है। पुण्य का विकल्प जो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग, वह मेरी चीज़ है, मुझे लाभदायक है, ऐसी मिथ्यात्व की मान्यता, वह महापरिग्रह है।

मुमुक्षु : अशुभ से करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुभ... मिथ्यात्व स्वयं अशुभ है। आहाहा! समझ में आया? पाप का परिणाम जो है, उसमें सुखबुद्धि वही मिथ्यात्व है और पुण्यपरिणाम में हितबुद्धि दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम मेरे हैं अथवा उनसे मुझे लाभ होगा, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव महापरिग्रह है... महापरिग्रह है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह परिग्रह, महापरिग्रह। वह दूसरे परिग्रह से महापरिग्रह है। समझ में आया?

ऐसे मिथ्यात्वपरिग्रह से रहित वस्तु है। वस्तु द्रव्यस्वभाव में वह है नहीं। आहाहा! द्रव्य क्या और स्वभाव क्या?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह किसकी बात करते हैं? यह धर्म कैसे हो, उसकी तो बात चलती है। ऐई! यह पैसे-बैसे से धर्म होता नहीं, ऐसा कहते हैं। पचास हजार दिये और राग मन्द किया हो तो वह पुण्य है, धर्म नहीं और वह पुण्य मेरा है, मैंने किया

(ऐसी मान्यता) है तो मिथ्यात्वभाव है। गहरी बात। समझ में आया? भगवान (आत्मा) मिथ्यात्वपरिग्रह से रहित है। रहित न हो तो रहित कहाँ से हो सकता है? आहाहा! शरीर की क्रिया मैं करता हूँ, मैं कर सकता हूँ—ऐसा मिथ्यात्वभाव....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा है दोनों ने? इसमें लिखा है। पढ़ा नहीं होगा आपने। आया है न जयसेनाचार्य की टीका में? देखो! वह तो पहले से पढ़ा है। पहले में आया था। पुद्गल की क्रिया वह कर सकता है। देखो! समझ में आया? ऐसा कहते हैं।

देखो! पहली गाथा में '**वोच्छामि समयपाहुडम्... सुद केवलिभणिदं...**' इस वाक्य द्वारा यह बताया है कि केवली, श्रुतकेवली, पुद्गलरूप द्रव्यश्रुत के कर्ता हैं। ठीक! गजब करते हैं न शास्त्र में यह बात डाल कर? और मैं कुन्दकुन्द भी ऐसा कहता हूँ कि मैं मोक्षपाहुड द्रव्यश्रुत को पौद्गलिक वचनों द्वारा कहूँगा। ठीक! जीवद्रव्य अपनी पर्याय द्वारा पुद्गलद्रव्य की पर्याय का निमित्तकर्ता है। ऐसे अर्थ किये। अरे! भगवान! क्या करते हो तुम? समझ में आया? यह जयसेनाचार्य की टीका अभी छपी है न वहाँ अजमेर से। ऐसे अर्थ करते हैं। अरे रे! लोग बेचारे तो भ्रम में तो हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि विकल्प का कर्ता... दया, दान, व्रत के विकल्प का कर्ता हो तो भी मिथ्यादृष्टि है। देह की क्रिया, अरे! भगवान! क्या करे? वह परमाणु की पर्याय—भाषा की पर्याय तो परिणमनेवाली है। उस समय जीव को निमित्त कहने में आता है। निमित्तकर्ता कहो उसको, परन्तु उससे होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह तो पहले से आया था। इसमें पुस्तक में डाला, समयसार का नाम दिया। भगवान के नाम पर जहर डाल दिया। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि पुण्य का दया का भाव हो, जीव की दया, वह भाव भी राग है। कठिन पड़े। एक-एक बात लोगों को कठिन लगे। यह राग मेरा स्वभाव है, मैं राग का करनेवाला हूँ, वह मिथ्यात्वभाव है, मिथ्यादर्शन शल्य है, वही महापरिग्रह है। आहाहा! उसके त्याग की तो खबर नहीं और बाह्य त्याग करके बैठे तो मिथ्यात्व का पोषण है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों मिथ्यात्व। वह कहते हैं न? वह भी लिखा है उसमें। आत्मा कर्ता नहीं, तब उसका अर्थ समझ लो। जब आत्मा स्वभाव कर्ता नहीं तो समझ लो कर्म कर्ता है। अरे! किस अपेक्षा से? सुन न, भाई! यह भी लिखा है। अनुक्रमणिका... है अब। ऐसे कि आत्मा राग का कर्ता नहीं, क्योंकि कर्मजन्य उपाधि है। इसलिए कर्म कर्ता है। अरे! ऐसा नहीं। कर्म कर्ता का अर्थ क्या? आत्मा अपने निजस्वभाव, आनन्दस्वभाव की जहाँ दृष्टि हुई तो आनन्द की पर्याय का कर्ता उपचार से कहने में आता है। यह व्यवहार है न? भेद हो गया न? अरे! भगवान! क्या करता है? अरे! तुझमें चौरासी के अवतार... आहाहा!

एक बात नहीं सुनी? अजगर ने सिंह को पकड़ा। अभी अखबार में आया था। हजारों लोग देखने गये थे। वहाँ ट्रेन निकलती, ट्रेन निकलती थी वहाँ एक जंगल में अजगर ने सिंह को पकड़ा। अजगर था बड़ा। वहाँ सिंह निकला तो सिंह को ऐसा बाँध लिया। भरडा समझे न? बाँध लिया। तो दो पैर नीचे रहे और दो पैर ऊपर रहे। मुँह ऐसे रह गया। अब सिंह ने दो दिन तक मेहनत की अजगर से छूटने को। मनुष्य ट्रेन में निकलते हैं तो सब देखते थे। क्या करे? नीचे खड्डा हो गया। सिंह के दो पैर थे न बाहर? छूटकर... मुँह ऐसा हो गया था। दो पैर ऊपर ऐसे रह गये, दो पैर नीचे रह गये। अजगर बड़ा था। अजगर समझते हो? दो दिन तक सिंह ने इतनी मेहनत की... इतनी मेहनत की छूटने की। अन्त में अजगर ने ऐसा कर दिया... ऐसा बाँध दिया। देखो! यह जीव की (दशा)! आहाहा! सिंह को अजगर ने मार दिया। गजब बात है!

ऐसी स्थिति में आ गया... ऐसी स्थिति में आ गया वह कि मुँह काम न करे। अजगर बड़ा था, बहुत बड़ा। ऐसे ले लिया भरडा। भरडा क्या कहते हैं? चपेट में ले लिया। मुँह ऐसा रह गया। यहाँ तक अजगर बहुत बड़ा था। और पैर नीचे रह गये। ऐसे करने जाये तो मुँह फिरे नहीं। पैर करने जाये तो पैर बाहर पड़े हैं। ४८ घण्टे लगभग दो दिन हुए। खड्डा कर दिया नीचे सिंह ने पैर मार-मारकर। सिंह अजगर को कुछ कर नहीं सका। अन्त में अजगर बहुत जोर में आ गया तो बहुत ऐसी चपेट में ले लिया, पेट फट गया।

मुमुक्षु : इसमें से हमको सार समझाइये।

पूज्य गुरुदेवश्री : सार यह है कि तुमने मिथ्यात्व को चपेट में लिया है। मिथ्यात्व से छूटना है। समझ में आया? चपेट में लिया है तूने। वह दूसरी चीज हुई। उसका दूसरा भाव है। अज्ञानी अपने चिदानन्दस्वरूप को भूलकर राग से एकता मानकर एकाकार... आता है न? क्रियाकलाप को। छाती से लगाया। प्रवचनसार ९४-९५ गाथा। दया, दान, व्रत का विकल्प है... परसन्मुख का लक्ष्य जाता है कि उसको न मारूँ, वह विकल्प सब राग है। तो वह क्रिया के साथ... सब भेंटे। मर जायेगा। समझ में आया? आहाहा! मैं कर्ता, मैंने किया... 'मैं कर्ता मैं किन्हीं कैसी, अब यौं करौ कहो जो ऐसी।' यह भाव जिसमें है, वह मिथ्यात्वभाव है। आता है समयसार नाटक में। समयसार नाटक में (बन्ध द्वार, पद ५)। आहाहा!

पुद्गल की क्रिया का कर्ता.... कुन्दकुन्दाचार्य वोच्छामी कहते हैं। मैं कर्ता, वह तो विकल्प है। ऐसी भाषा उसके कारण से हो गयी। समझ में आया? आत्मा तो... अन्तिम में कहा नहीं अमृतचन्द्राचार्य ने? कि इस वाणी का कर्ता मैं नहीं और मैं दूसरे को समझानेवाला नहीं और दूसरा मुझसे समझे, ऐसा वह नहीं।

मुमुक्षु : भाषा से समझे....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही नहीं। आहाहा! हे जीवो! मोह से न नाचो। मिथ्यात्वरूप से न परिणमो, ऐसा कहते हैं कि हम भाषा के कर्ता हैं और भाषा का हमारा कार्य है और लोग मेरी भाषा से समझते हैं, ऐसा न नाचो। उनकी योग्यता से समझते हैं, भाषा तो निमित्त है, भाषा से समझते नहीं। भाषा का मैं कर्ता नहीं। भाषा जड़ की पर्याय जड़ से होती है। आहाहा! समझ में आया?

तो कहते हैं कि मिथ्यात्व परिग्रह... देखो! **चार कषाय....** परिग्रह। क्रोध, मान, माया, लोभ। उसमें—चार कषाय में लोभ में दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम उसमें आ जाते हैं। समझ में आया? चार कषाय है न? उसमें जो लोभ है, उसमें दया, दान, राग में आता है और लोभ में आता है। क्योंकि माया और लोभ दोनों राग का भाग है। क्रोध और मान दो द्वेष का भाव है। माया और लोभ दो राग का भाग है। उसमें दया,

दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय का विकल्प वह सब लोभ में और राग में जाता है। तो वह चार कषाय से भगवान आत्मा रहित है। वह चार कषाय तो परिग्रह है। आहाहा! समझ में आया?

और नौ कषाय... नौ। तीन वेद—स्त्री, पुरुष, नपुंसक तीन वेद। हास्य, रति, अरति, भय, शोक और जुगुप्सा (आदि) नौ कषाय, चार कषाय और मिथ्यात्व। **ऐसा चौदह प्रकार का अभ्यन्तरपरिग्रह है।** वह **चौबीस परिग्रह के परित्यागस्वरूप होने से निर्ग्रन्थ है;....** नित्यानन्द निश्चय परमात्मा, निश्चय आत्मा—सत्य आत्मा, वह चौबीस परिग्रह से रहित है। अभी, हों! आहाहा! समझ में आया? अरे! वीतराग का मार्ग दुनिया को समझ में आये नहीं। सुनने को मिले नहीं, वह कब समझे? कब उतारे और कब दृष्टि हो? आहाहा! और सच्ची बात का विरोध... विरोध... विरोध करते हैं। अरे! भगवान! तुम किसका विरोध करते हो, भाई! तुझे भी जब सम्यग्ज्ञान होगा तो ऐसे तुम मानोगे। समझ में आया?

बहुत विरोध आया है। आज भी आया जैनदर्शन (पत्र) में। दिगम्बर नहीं है वे लोग। उठाओ। कौन है हमको मालूम नहीं। साधु सब तालाब की गन्दी मछली है, ऐसा किसी ने कहा है, सोनगढ़वाले ने। हमको कुछ खबर नहीं। किसने कहा? लिखा है दो-तीन बार। अरे! भगवान! क्या करता है, भाई! बहुत विरोध किया है। वह लोग दिगम्बर नहीं, जैन नहीं। निकाल दो विचार करके सब। निकाल दो न! आहाहा! उसमें है। जैनदर्शन में है। जैनदर्शन में। तेज काला... अरे! भगवान! ऐसे नहीं होता, भाई! उसको तो ऐसा है कि यह सब व्रत पालते हैं न? ऐसे व्रत भी अभी कहाँ है? भाई! वह सत्यस्वरूप का कथन समझावे, तब वस्तु का स्वरूप बतावे न? किसी व्यक्ति के प्रति विरोध है, ऐसा है नहीं। तब तो सत्य बात समझने में कभी आवे ही नहीं। कहते हैं कि टोडरमलजी... कि पीछे तुम सबको निन्दा करते हो। बापू! निन्दा नहीं। वस्तु का स्वरूप कहते हैं। समझ में आया? ऐसा स्वरूप न कहें तो सत्य समझ में आवे नहीं तो उसको शल्य रहेगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं कुछ। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत मण्डन करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : खण्डन और मण्डन दोनों चलता है।

मुमुक्षु : अनेकान्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकान्त बिना कहाँ से? ऐसा होता नहीं और ऐसा होता है। यही बात है। अनेकान्त कहाँ से? अस्ति, स्व से अस्ति और पर से नास्ति। दोनों वस्तु होकर अनेकान्त होता है। वस्तु का स्वरूप बताते हैं। उसको ऐसा लगे हाय... हाय... अरर! हमारा तो निकल गया। बहुत लिखा है। बहुत लिखा है। ... वह तब बोले थे। खड़ा था। वहाँ ... में। १२-१३ के वर्ष में। बाहर निकले तब खड़ा था। लम्बा कोट... हो बेचारे। उसमें कोई व्यक्ति के प्रति कुछ नहीं। उसको जो बात बैठी हो, वह करे। इस सत्य बात की उसको ख्याल नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पाने की योग्यता नहीं। भाई! यह क्या है? उसको तो ऐसा कि यह व्रतादि माने हुए हैं, वे सब साधु हैं, उनको साधु मानो। अब तक आपने किसी के पैर छुए हैं? कोई साधु सच्चा मिला नहीं आपको? अरे! भगवान! यह तुम क्या कहते हो? यह सच्चा तो... है। साधु तो सच्चे महाविदेह में बहुत विराजते हैं। परन्तु तुम कहते हो उसको साधु ऐसे कैसे माने? आगम से व्यवहार मिलता नहीं, आगम से निश्चय मिलता नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि निर्ग्रन्थ ही आत्मा है। देखो! यह निर्ग्रन्थ वस्तु (जिसमें) राग नहीं, मिथ्यात्व नहीं, ऐसी चीज़ है। ऐसी चीज़ पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शनरूपी रागरहित निर्ग्रन्थदशा समकित की प्रगट होती है और उसी चीज़ में स्थिर होने से निर्ग्रन्थ अर्थात् तीन कषाय का अभाव होकर निर्ग्रन्थदशा पर्याय में छठवीं भूमिका की दशा उत्पन्न होती है। समझ में आया? श्रीमद् में आता है न, 'सकल मार्ग निर्ग्रन्थ...' उसमें शब्द आता है न? 'समझाया संक्षेप में सकल मार्ग निर्ग्रन्थ।' पहले भाषा। 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता, वह पावे सो पंथ।' १२३। 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता...' मोक्ष किसको कहते हैं? निज पवित्र पूर्ण दशा प्राप्त हो, उसका नाम मोक्ष। 'मोक्ष कह्यो निज

शुद्धता वह पावे सो पंथ।' निज शुद्धता पाने का उपाय जो है, उसको मोक्षमार्ग का पंथ कहा जाता है।

'समझाया संक्षेप में सकल मार्ग निर्ग्रन्थ।' वीतराग परमात्मा निर्ग्रन्थ सन्तों ने 'समझाया संक्षेप में'। इस तरह संक्षेप में परमात्मा ने कहा है। कहाँ गये कनुभाई ? देखो यह। १२३ गाथा में है। 'मोक्ष कह्यो...' देखो, यहाँ कहा न? यहाँ यह आया न? निर्ग्रन्थ। जिसमें बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह नहीं। लो! वह निर्ग्रन्थ। और वह निर्ग्रन्थ... पहले आया न ऊपर ? ऐसा निर्ग्रन्थ भावनारूप परिणमित होता है, वह मोक्ष का मार्ग है। ऊपर पंक्ति में आ गया न ? आहाहा!

निर्ग्रन्थस्वरूप भगवान आत्मा... वह महाचीज़ है, वीतराग जिनस्वरूप 'जिन सो ही आत्मा...' विकल्प दया, दान, व्रत रहित जो जिनस्वरूप वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। उसको यहाँ निर्ग्रन्थ कहने में आया है। वह निर्ग्रन्थ भगवान निजस्वरूप अपना उसके पर दृष्टि देकर अन्दर एकाग्र होकर वीतरागी पर्याय प्रगट करे, वह पर्याय में निर्ग्रन्थ हुआ। द्रव्य में निर्ग्रन्थ है—वस्तु में निर्ग्रन्थपना है। पर्याय में निर्ग्रन्थपना प्रगट किया, वह भावलिंगी सन्त कहने में आता है। समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं वह... है। यह... समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि **चौबीस (प्रकार के) परिग्रह का...** जिसमें अभाव है। ऐसा भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु ध्रुव है, निराग है। पहले निराग की परिभाषा आ गयी है थोड़ी। पहले एक बार। 'सकल मोह-राग-द्वेषात्मक चेतन कर्म के अभाव के कारण निराग है...' भाषा देखो! पहले भी निराग आ गया था पहले। उसमें आया था न ? वह निराग है, देखो। वहाँ चौदह प्रकार के परिग्रह से रहित को निराग कहा था। ४३ में। चौदह प्रकार के परिग्रहों का अभाव होने से आत्मा निराग है, ऐसा आया है। समझ में आया ? यहाँ **मोह-राग-द्वेषात्मक चेतन कर्म के अभाव....** ऐसे विस्तार लिया। चेतन कर्म। जड़ नहीं। चेतन का कार्य, जो मोह मिथ्यात्व, राग, द्वेष का परिणाम, (ऐसे) चैतन्य का कार्य का अभाव होने से। वह चैतन्य द्रव्यस्वभाव में चैतन्य की क्रिया का अभाव है। समझ में आया ?

भाषा कितनी स्पष्ट की है, देखो! मोह अर्थात् मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष स्वरूप चेतन कार्य। जो पर्याय में राग-द्वेष-मोह है, वह चेतन की अवस्था है, उसका जिसमें अभाव है, ऐसे भगवान आत्मा को शुद्ध और ध्रुव कहने में आता है। उसको निराग कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? निराग ही भगवान आत्मा वस्तु है। उसी वस्तु का आश्रय करके पर्याय में निरागता प्रगट हो तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों निरागता है। समझ में आया?

वस्तु स्वयं द्रव्यस्वभाव निराग है। चिदानन्दकन्द आनन्द का धाम। आहाहा! उसमें एकाग्र होकर जो निराग सम्यग्दर्शन... क्योंकि वस्तु निराग है। तो उस वस्तु के आश्रय से जो निराग सम्यग्दर्शन अर्थात् वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी स्वसंवेदन ज्ञान और वीतरागी चारित्र (प्रगट हो), उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। निराग वस्तु है, ऐसी पर्याय निराग प्रगट करे, उसका नाम मोक्षमार्ग है। आहाहा! कठिन काम! समझ में आया? शुद्धभाव अधिकार है न? तो शुद्धभाव कौन? कि निराग त्रिकाली। अब मोक्षमार्ग का अधिकार है न? नियमसार है। आहाहा! सुनने में आया नहीं। सुना हो तो निकाल दिया हो। नहीं, यह निश्चय की बात है, यह निश्चय की बात है। निश्चय अर्थात् सच्ची बात। सच नहीं, झूठ चाहिए हमारे। आहाहा! अरे! भगवान! यह मनुष्यदेह, भाई! बिखर जायेगा, हों! यह सब सामग्री पंचेन्द्रिय फू होकर उड़ जायेगी। आहाहा! भगवान अकेला विपरीत दृष्टि लेकर चौरासी में भटकने—भ्रमण में चला जायेगा, हों! यदि यह दृष्टि और इस द्रव्य को नहीं जाना, नहीं पहिचाना और विपरीत दृष्टि की और विपरीत रखी तो वह चौरासी के चक्र में... में भटकेगा, भाई! समझ में आया? आहाहा!

वह चक्र में नहीं हुआ अभी मुम्बई? कौन आये थे, उसकी भतीजी मर गयी, नहीं? भाई यह डॉक्टर। डॉक्टर आये थे न जामनगर से? कान्तिभाई। वह कहते थे कि मैं मेरी भतीजी को छोड़कर आया। वह (मेला) देखने को गयी थी। चकडोल होता है न? उसमें बैठने गयी थी। उसमें बैठी थी। बैठी उसमें दरवाजा खुला रह गया। उड़कर गिरी बाहर। वहीं मर गयी। बाहर गिर गयी। चोटला समझते हैं? हिन्दी लोगों को ऐसा लगे कि यह भाषा कुछ समझते नहीं। पहले मन में ऐसा हो न! परन्तु इसमें चोटलो

(चोटी) नहीं समझते? बाल। वह चक्र में बाई बैठी थी। मेले में... मेले में होता है या नहीं? उसमें कुछ रह गया, ऐसे... पीछे छोड़ा तो उसमें से निकल गयी तो वहाँ बाल घुस गये। वहाँ तो रहे नहीं। बाहर गिर गयी, मर गयी। ३२ साल की जवान। डॉक्टर आये थे न? कान्तिभाई आये थे जामनगर। मैं तो अभी छोड़कर आया था। वह देखने गयी थी। यहाँ समाचार आया कि मर गयी। (गिर गयी) चक्र में से। जाओ।

इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि को चौरासी के चक्र में फेंक दिया, जाओ भटको। आहाहा! उन लोगों को क्या लगा होगा? चोटी वहाँ रह गयी हो... बहुत जोर होता है। निकल जायेगा। वह कहते थे। चोटी फँस गयी थी। आहाहा! चोटी होती है न? बाल की। ... उसमें क्या? गन्ने की मशीन नहीं होती? गन्ना? गन्ना। ऐसा घुस गया उसमें। चलता था, ऐसा घुस गया। टूट गया, जाओ। अरे! भाई! चौरासी के चक्र में है वह।

भगवान आत्मा रागरहित—निरागी मोह-राग-द्वेषरहित ऐसा उसका स्वरूप है। ऐसे परमात्मा का शरण नहीं लिया, आश्रय नहीं लिया, उसको नजर में बहुमान से प्रतीति नहीं की और राग की प्रतीति और पर की प्रतीति रह गयी, मिथ्यादृष्टि चौरासी के चक्र में जायेगा। नरक और निगोद। आहाहा! दुनिया वहाँ बीच में नहीं आयेगी सिफारिश करने को। आहाहा! समझ में आया?

तीसरा बोल। निःशल्य आत्मा है, **निदान, माया और मिथ्यात्व—इन तीन शल्यों के अभाव के कारण निःशल्य है;....** आत्मा में तीन शल्य है ही नहीं, वस्तु में। निदान अर्थात् कुछ क्रिया करके, हेतु बाँधना (कि) मुझे स्वर्ग मिले, राज मिले—वह वस्तु में है नहीं। माया नहीं आत्मा में, मिथ्यात्व नहीं। **तीन शल्यों के अभाव के कारण निःशल्य है;....** लो, निःशल्योव्रती। यहाँ तो कहा कि निःशल्यो द्रव्य। आहाहा!

मुमुक्षु : ....हो तब होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : तब होता है। ... समझ में आया? वह तत्त्वार्थसूत्र में आता है न निःशल्योव्रती? वह आत्मा ही निःशल्य है। त्रिकाली आनन्दकन्द ध्रुव निःशल्य है। उसके आश्रय से निःशल्यदशा प्रगट हो, स्वरूप की दृष्टि-ज्ञान-चारित्र, वह निःशल्य व्रती है। जैसा द्रव्य है, ऐसी पर्याय प्रगट हो, उसका नाम व्रती कहने में आता है। कठिन, भाई! मिथ्यात्व का शल्य है और हमारे व्रत हो गया। तत्त्वार्थसूत्र तो ना कहता

है निःशल्योव्रती। निःशल्य तो चैतन्यद्रव्य है। जैसी वस्तु है निःशल्य, उसका आश्रय करने से माया, निदान—शल्य वस्तु में नहीं है। उसका आश्रय करने से भी तीन भाव उत्पन्न नहीं होते। मायारहित, निदानरहित और मिथ्यात्वरहित तीन पर्याय उत्पन्न होती है। समझ में आया?

ओहो! **निदान, माया और मिथ्यात्व—इन तीन शल्यों के अभाव के कारण निःशल्य है;....** कौन निःशल्य है? वस्तु शुद्धभाव ध्रुव। ध्रुव नित्य आत्मा, एक समय की पर्याय सिवाय का आत्मा। आहाहा! परमपारिणामिकभाव। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा... पुण्य-पाप तो नहीं, कर्म तो नहीं, एक समय की पर्याय भी ऊपर-ऊपर आती-जाती है, ध्रुव को छूती नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा शुद्ध ध्रुव नित्य भगवान द्रव्य—वस्तु, उसमें तीन शल्य नहीं; इसलिए निःशल्य है।

अब विमुक्त है। **'सयलदोसणिम्मुक्को' शुद्ध निश्चयनय से....** शुद्ध निश्चय ज्ञान के विषयरूप जो आत्मा **शुद्ध जीवास्तिकाय....** शुद्ध जीवास्तिकाय.... राग नहीं, एक समय की पर्याय नहीं—ऐसा शुद्ध जीवास्तिकाय, शुद्धभाव। उसमें **शुद्ध जीवास्तिकाय को द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म का अभाव होने के कारण....** उसमें जड़ कर्म नहीं। पुण्य-पाप का विकल्प नहीं और शरीर नहीं। उस **कारण सर्वदोषविमुक्त है;....** सर्वदोषविमुक्त आत्मा है तो उसका आश्रय करने से सर्वदोषविमुक्त पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया? वीतरागी मार्ग ऐसा रूखा लगे... रूखा लगे। ऐसा मारा, ऐसा किया, ऐसा किया... कथा पढ़ते हैं न रामकथा ढालसागर। श्रीकृष्ण ने कंस को मारा है। उसको तो ऐसा हो जाये कि मैं भी... श्रीकृष्ण ने एकदम... वह कंस था। ...करते नहीं। वह कथा चले तो, आहाहा! क्या है सुन न? समझे? और रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी ने एक बाण मारा तो दस सिर तोड़ डाले रावण के। कथा ढालसागर में आती है। समझ में आया? सिर तोड़ दिया। रामकथा में आता है। ढालसागर में कृष्ण का आता है।

अब रावण को मारेगा कब? सुननेवाला ऐसा कहे। कल मारेगा। कल सुनने को आना। समझ में आया? हमारे पहले वर्ष में हुआ था, (संवत्) १९७० में। नीचे पढ़ते थे। एक व्यक्ति भावसार था। भावसार था। रतनशी भावसार। वहाँ हुंकार देनेवाला था। रतनशी भावसार नहीं? बोटाद। महाराज! नीचे आईये न? मैंने कहा, विकथा है।

(संवत्) १९७० में अषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा। पहले दिन ही उसने कहा, महाराज! आपका स्वर बहुत अच्छा है। क्या है ? विकथा है। हमारे गुरु पढ़ते थे। गुरु पढ़े या कोई और पढ़े। हीराजी महाराज नहीं पढ़ते थे। मूलचन्दजी पहले पढ़ते थे। बाद में... लोगों का रंजन बहुत होता है। बहुत लोग इकट्ठे होते हैं। अरे! भगवान! इसमें तुझे क्या आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान! तुझमें तो विकल्प नहीं न ? तू तो सर्वदोष से विमुक्त है। ऐसा भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु, उस पर दृष्टि करना, उसका नाम धर्म है। आहाहा! कठिन बात, भाई! क्या आया ?... **शुद्ध निश्चयनय से निज परमतत्त्व की भी वांछा न होने से....** आहाहा! क्या कहते हैं ? मैं द्रव्य हूँ, ऐसी वांछा भी उसमें नहीं। मैं द्रव्य हूँ, शुद्ध हूँ, ऐसी वांछा-इच्छा भी द्रव्य में नहीं है।

शुद्ध निश्चयनय से.... शुद्ध, पवित्र निश्चय—यथार्थ ज्ञान के विषय से देखो तो निज परमतत्त्व भगवान परमानन्द प्रभु हूँ, ऐसी निज परमतत्त्व की भी वांछा न होने से... मेरे परमतत्त्व मैं प्रगट करूँ, परन्तु वह तो प्रगट है ही। ऐसी इच्छा भी जिसमें है नहीं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा भगवान आत्मा, सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमेश्वर ने कहा हुआ आत्मा... अब उसने सुना भी नहीं हो, खबर न हो। चलो, त्यागी हो जाओ। मिथ्यात्व है, धर्म का त्यागी है। मिथ्यात्व का ग्रहण करनेवाला है। क्या करे ? उसकी दया उसको नहीं। उसकी उसको खबर भी नहीं। भाई! यह तो वस्तु के स्वरूप की स्थिति का वर्णन किया है। ऐसा स्वरूप है।

अरे! **निज परमतत्त्व की भी वांछा न होने से....** वांछा तो इच्छा है। वस्तु में इच्छा कैसी ? इच्छा का अभाव भी कैसा ? है ही नहीं फिर उसमें 'है' और 'नहीं है' ऐसा उसमें है कहाँ ? समझ में आया ? ऐसे **निज परमतत्त्व की भी वांछा न होने से निष्काम है;....** और बाद में निःक्रोध आदि आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल १३, मंगलवार, दिनांक - २३-०९-१९६९
गाथा-४४, ४५, ४६, श्लोक-६९, प्रवचन-१४

शुद्धभाव अधिकार चलता है। आत्मा शुद्धभावस्वरूप कैसा है, उसको कहते हैं। धर्मी जीव को यह शुद्धभाव ही उपादेय—आदरणीय है। वह बात कहते हैं, देखो! निष्काम तक आ गया है। कैसा है आत्मा? शुद्ध ध्रुव चैतन्यमूर्ति निश्चयनय से—यथार्थ दृष्टि से देखो तो **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त परद्रव्यपरिणति का अभाव होने के कारण...** शुभ और अशुभ रागादि का उसमें अभाव है। **होने के कारण निःक्रोध है;....** क्रोध कहा उस विकार को। प्रशस्त-अप्रशस्त भाव को क्रोध कहने में आया है। उससे रहित निःक्रोध है।

धर्मी को निमित्त भी उपादेय नहीं, राग भी उपादेय नहीं, अंगीकार करनेयोग्य नहीं और एक समय की पर्याय भी उपादेय नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? त्रिकाली शुद्धभाव ज्ञानस्वभावी वस्तु, वही उपादेय, अंगीकार करनेयोग्य है। तो उसको सम्यग्दर्शन धर्म होता है। उसमें **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त परद्रव्यपरिणति का अभाव होने के कारण निःक्रोध है; निश्चयनय से सदा परमसमरसीभावस्वरूप होने के कारण....** ऐसा कहते हैं। कैसा है आत्मा? त्रिकाल परम समतारसभावस्वरूप होने के कारण **निर्मान है।** उसमें मान नहीं है।

त्रिकाल शुद्ध द्रव्य में परमसमरसीभाव भरा है। ध्रुव... ध्रुव की बात चलती है, हों! पर्याय नहीं। **सदा परमसमरसीभावस्वरूप होने के कारण निर्मान है;...** ऐसा आत्मा दृष्टि में लेकर अनुभव करने योग्य है। उसको धर्म होता है। **निश्चयनय से....** निर्मद... निर्मद। **निःशेषरूप से अन्तर्मुख होने के कारण....** भगवान आत्मा तो अन्तर्मुख है। वह कोई निमित्त में आता नहीं, व्यवहाररत्नत्रय में आता नहीं और एक समय की पर्याय में आता नहीं। समझ में आया?

समस्तरूप से अन्तर्मुख होने के कारण.... अन्तर्मुख चैतन्यद्रव्य कन्द, वह तो अन्तर्मुख विषय है। अन्तर्मुख दृष्टि करने से अन्तर्मुख तत्त्व का पता लगता है। बहुत

कठिन काम लोगों को लगे। चौथे, पाँचवें... देखो न, यहाँ लिखा है न? चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें में ज्ञानी कहलाते हैं। बाकी अज्ञानी कहते हैं। लिखा है। ऐसी अपेक्षा है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन से ही ज्ञानी कहने में आता है। पण्डित जयचन्दजी ने स्पष्ट खुलासा किया है। यहाँ तो मुख्यरूप से ज्ञानी की ही व्याख्या है। ज्ञानी उसको कहा कि आत्मा आनन्दस्वरूप अन्तर्मुख चीज़ की दृष्टि करके ज्ञान हो, पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न हो, वह ज्ञानी है, सम्यग्दृष्टि है।

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि को अज्ञानी कहे....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसको अज्ञानी कहे। छठवें तक अज्ञानी कहे।

कहते हैं कि निर्मद है। भगवान पूर्णानन्दस्वरूप वस्तु का कन्द, चिदानन्द ऐसी जो ध्रुव चीज़ शुद्धभावरूप वह अन्तर्मुख चीज़ है। अन्तर्मुख के कारण उसमें मान है नहीं। निर्मान है। निर्मद है। **उक्तप्रकार का (ऊपर कहे हुए प्रकार का), विशुद्ध सहजसिद्ध....** देखो! यहाँ विशुद्ध, त्रिकाल द्रव्य को भी विशुद्ध कहा। निर्मल पर्याय को भी विशुद्ध कहते हैं और शुभभाव को भी विशुद्ध कहते हैं। तीन प्रकार से विशुद्ध कहने में आता है। यहाँ तो त्रिकाली द्रव्य शुद्ध....

विशुद्ध सहज सिद्ध.... स्वाभाविक सिद्ध ही है। सिद्ध अर्थात् 'है'। स्वाभाविक वस्तु त्रिकाली अनादि-अनन्त जगत की चीज़ वह आत्मतत्त्व सहजसिद्ध नित्य-निरावरण... जिसमें आवरण है ही नहीं। समझ में आया? नित्य वस्तु, **नित्य-निरावरण निज कारणसमयसार का स्वरूप....** जिसको शुद्धभाव कहा, उसको यहाँ निज कारणसमयसार कहा। शुद्धभाव अधिकार चलता है न? शुद्धभाव कहो, ध्रुव कहो, नित्य कहो, ज्ञायकभाव कहो या निज कारणसमयसार कहो। त्रिकाली वस्तु। ऐसा अपना निज कारणसमयसार का स्वरूप, वही धर्मी जीव को उपादेय—आदरणीय है। दूसरी कोई चीज़ आदरणीय है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

उसके सिवा (सब) हेय है। उसका अर्थ यह हुआ न? एक समय की पर्याय भी हेय है। आहाहा! ध्रुव चैतन्यसूर्य अनादि-अनन्त अन्तर्मुख नित्य निरावरण सहज शुद्ध, विशुद्ध, वही एक दृष्टि में आदरनेयोग्य है, वहाँ दृष्टि पसारनेयोग्य है। ऐसे ध्रुवस्वरूप में

दृष्टि पसारनेयोग्य है। समझ में आया?

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री प्रवचनसार की टीका में ८वें श्लोक द्वारा) कहा है कि— लो!

(मन्दाक्रान्ता)

इत्युच्छेदात्पर-परिणतेः कर्तृ-कर्मादि-भेद-
भ्रान्तिध्वन्सादपि च सुचिराल्लब्धशुद्धात्मतत्त्वः।
सञ्चिन्मात्रे महसि विशदे मूर्च्छितश्चेतनोऽयं,
स्थास्यत्युद्यत्सहज-महिमा सर्वदा मुक्त एव॥

कैसा है आत्मा? कि **परपरिणति के उच्छेद द्वारा (अर्थात् परद्रव्यरूप परिणमन के नाश द्वारा)....** जो पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत आदि की परिणति है, वह परद्रव्य परिणति है। परिणति अर्थात् पर्याय परद्रव्य की है, स्वद्रव्य की नहीं। **परपरिणति के उच्छेद द्वारा तथा कर्ता, कर्म आदि भेद होने की जो भ्रान्ति उसके भी नाश द्वारा....** आहाहा! समझ में आया? राग का कर्ता है और राग का कार्य है और राग का साधन है, वह तो नहीं, परन्तु एक समय की पर्याय का कर्ता, करण, साधन—ऐसे भेद भी द्रव्य में नहीं है। समझ में आया?

कर्ता—करनेवाला, कर्म—कार्य, करण—साधन, सम्प्रदान—पर्याय बनकर रखना, अपादान—उससे निकालना और आधार—यह भेद उसमें है ही नहीं। **भेद होने की जो भ्रान्ति...** ऐसा कहा है। छह प्रकार के पर्याय में जो भेद पड़ते हैं, वह भ्रान्ति है, वह मेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा! **भ्रान्ति उसके भी नाश द्वारा अन्त में जिसने शुद्ध आत्मतत्त्व को उपलब्ध किया है....** भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप को प्राप्त किया, पर्याय से लक्ष्य करके त्रिकाल ध्रुव को जिसने प्राप्त किया....

ऐसा यह आत्मा, चैतन्यमात्ररूप विशद (निर्मल) तेज में लीन रहता हुआ,.... लो! ऐसा आत्मा चैतन्य ज्ञानमात्र ज्ञायकभाव, असाधारण कारण ज्ञानभाव में लीन रहता हुआ... **अपनी सहज (स्वाभाविक) महिमा के प्रकाशमानरूप से सर्वदा मुक्त ही रहेगा।** द्रव्य भी मुक्त है और उसकी प्राप्ति की तो वह पर्याय भी सदा मुक्त ही रहेगी।

आहाहा! निश्चय की बात बहुत कठिन। अध्यात्म की बात, ऐसा कहे कि सातवें से लेना। ऐसा कहते हैं। निमित्त का आग्रह करते हैं, हठाग्रही है। देखो! यहाँ आता है न.... उसका अर्थ किया है। विशेष अर्थ देख लिया। सबका थोड़ा-थोड़ा। सब उल्टा लिखा है। टीका का तो ख्याल में है, विशेष अर्थ क्या किया है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थ कर डाला है। आहाहा! भाई! तत्त्व तो तत्त्व रहेगा। जो बदलना चाहता है, वह बदल जायेगा दृष्टि में। आहाहा! वस्तु महा भगवान पूर्णानन्द शुद्ध चैतन्य ध्रुव, उसका अवलम्बन करने से ही धर्म होता है। उसके अतिरिक्त कोई दूसरे प्रकार से धर्म कहे तो मिथ्यात्व होगा। बाबूलालजी! आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं **ऐसा यह आत्मा, चैतन्यमात्ररूप विशद (निर्मल) तेज में लीन रहता हुआ, अपनी सहज (स्वाभाविक) महिमा के प्रकाशमानरूप से सर्वदा मुक्त ही रहेगा।** पर्याय में मुक्त रहेगा, यहाँ तो कहते हैं, हों! वस्तु तो मुक्त है ही, परन्तु दृष्टि से प्राप्त किया, पर्याय निर्मल हुई, ऐसा सादि-अनन्त रहेगा। अनादि-अनन्त मुक्तस्वरूप है। वस्तु तो पर्यायरहित मुक्तस्वरूप द्रव्य है, वह अनादि-अनन्त है। उसका आश्रय करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पूर्ण प्राप्ति हुई, वह सादि-अनन्त। समझ में आया?

यहाँ तो पहले बँगले बनाये २५-५० साल तक रहे। छूट जाये तो क्या? ऐई! सेठ! कितने काल रहते हो? संगमरमर के बँगले। उसमें जरा सा जो नीचे हिला-भूकम्प। दस लाख के मकान, चालीस लाख के, जरा दरार पड़े। धूल।

मुमुक्षु : अन्दर घुस जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिहार में सब अन्दर चले गये थे न? वह तो अनित्य चीज़ है। नाशवान चीज़ के काल में स्थिति बने, वह तो व्यवस्थित है। आहाहा!

भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु ध्रुवस्वरूप अनन्त आनन्द और चैतन्य सिद्धपद की खान है। ऐसी अन्तर दृष्टि करके, ज्ञान करके रमणता पूर्ण की और स्वरूप में पूर्णता प्राप्त हुई तो सदा ऐसे रहेगा। कभी उसको अवतार फिर लेना पड़ेगा नहीं, ऐसा कहते हैं।

और (४४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं)— वह अमृतचन्द्राचार्य का श्लोक था, यह पद्मप्रभमलधारिदेव का है।

(मन्दाक्रान्ता)

ज्ञानज्योतिः प्रहतदुरितध्वान्तसङ्घातकात्मा,
नित्यानन्दाद्यतुलमहिमा सर्वदा मूर्तिमुक्तः।
स्वस्मिन्नुच्चैरविचलतया जातशीलस्य मूलं,
यस्तं वन्दे भवभयहरं मोक्षलक्ष्मीशमीशम्॥६९॥

श्लोकार्थः—जिसने ज्ञानज्योति द्वारा पापरूपी अन्धकारसमूह का नाश किया है,.... अर्थात् उसमें है नहीं। ज्ञानज्योति चिदानन्द प्रभु जिसमें पाप अर्थात् पुण्य और पाप दोनों अन्धकार हैं। देखो! ज्ञानज्योति लिया है न? सामने पुण्य-पापरूपी अन्धकार लिया। शुभ और अशुभराग, वह अन्धकार है। समझ में आया? अज्ञान है। चिदानन्द ज्योति, ज्ञायकज्योति, चैतन्यस्वरूप वह ज्ञान है और उससे विरुद्ध पुण्य-पाप का विकल्प, वह अन्धकार है, अज्ञान है। क्योंकि उसमें ज्ञान का अंश नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

जिसने.... अर्थात् भगवान आत्मा, ऐसा स्वरूप उसका है **ज्ञानज्योति द्वारा...** अर्थात् उसमें पुण्य-पाप का **अन्धकारसमूह का नाश किया है...** अथवा उसमें है नहीं। **जो नित्य आनन्द आदि अतुल महिमा का धारण करनेवाला है,....** नित्य आनन्द आदि अतुल महिमा... वह ज्ञान उसमें आया न? ज्ञानज्योति द्वारा कहा न? इसलिए आनन्द दूसरा लिया है। नित्य आनन्द आदि अतुल महिमा। भगवान आत्मा में तो अतीन्द्रिय आनन्द... अतीन्द्रिय आनन्द, शान्तरस, पूर्ण आनन्द पड़ा है आत्मा में। त्रिकाली नित्य। वह नित्य आनन्द आदि ज्ञानादि, शान्ति आदि, वीतरागता आदि अतुल महिमा का धारण करनेवाला भगवान आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे आत्मा की खबर नहीं और उसको धर्म हो जाये? क्या करे?

जो सर्वदा अमूर्त है,... लो! उसमें कहा है कि मूर्त है।... मूर्त है। आया है अन्दर में। वह तो निमित्त है, उसकी अपेक्षा से आरोप किया। त्रिकाली द्रव्य अमूर्त, उसका

गुण अमूर्त और पर्याय अमूर्त ही है। आहाहा! अरूपी है, उसमें रूप, गन्ध, रस, स्पर्श है ही नहीं। अमूर्त, सर्वदा अमूर्त है। भगवान सर्वदा अरूपी अमूर्त की मूर्ति है। अमूर्तरूपी मूर्त है मूर्ति। आहाहा!

जो अपने में अत्यन्त अविचलपने द्वारा उत्तमशील का मूल है,.... क्या कहा? देखो! अपने स्वभाव से चलता नहीं तो उत्तम शीलस्वरूप ही है। अपना निजस्वभाव शुद्ध ज्ञान, आनन्द जो है, उसमें से अत्यन्त अविचल, बिल्कुल चलित नहीं, इसलिए उसका स्वरूप उत्तम शीलरूप है। पर्याय नहीं, हों! द्रव्यस्वभाव। उसका द्रव्य अविचल नित्य शीलरूप ही है। आहाहा! उसने आत्मा के गीत सुने ही नहीं बराबर। सुना ही नहीं कि आत्मा कैसा है? परमेश्वर कहे ऐसा, हों! अज्ञानी दुनिया कहे आत्मा... आत्मा... वह (यथार्थ) आत्मा नहीं है। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग केवलज्ञानी ने जो आत्मा कहा, ऐसा देखा और ऐसा कहा, ऐसा आत्मा। कितनी महिमावन्त, कितना उत्तम शीलस्वरूप! पर्याय की बात यहाँ नहीं। अपने नित्यानन्द ध्रुव से बिल्कुल चलित नहीं। चलित हो, तब तो अशील हो गया। समझ में आया? ऐसा नित्य ध्रुव भगवान उत्तम शीलरूप है।

उस भव-भय को हरनेवाले.... वस्तु। भवभय को हरनेवाले **मोक्षलक्ष्मी के ऐश्वर्यवान स्वामी को....** मोक्षलक्ष्मी का स्वामी आत्मा है। राग का स्वामी नहीं, कर्म का स्वामी नहीं, पुत्र-पुत्री का पिता नहीं। वह तो महा मोक्षलक्ष्मी... त्रिकाली लक्ष्मी का स्वामी है और पर्याय में प्रगट हुआ उसका स्वामी **मैं वेदन करता हूँ।** भवभय को हरनेवाला, चौरासी के भव... घानी में पिल जाना (ऐसे) भव। दु:ख की घानी के हरनेवाले को वह दु:खरूप दशा अन्दर है नहीं। ऐसा मोक्षलक्ष्मी के ऐश्वर्यवान... वह मोक्षलक्ष्मी का ईश्वर, मोक्षलक्ष्मी के स्वामी को मैं वन्दन करता हूँ। पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं। लो! कहो, शोभालालजी! आत्मा की बात सुनी नहीं उसने। आत्मा कैसा है और आत्मा में क्या-क्या चीज़ है? ऐसा करो, छह काय की दया पालो, व्रत करो, धूल करो। करते-करते (कर्ता) बुद्धि में मर गया मिथ्यात्व में।

भवभय को हरनेवाला... ओहो! चार गति का भव, उसका जो भय, उसको

हरनेवाला भगवान है। समझ में आया कुछ? परिपूर्ण भगवान के शरण में जाने से भवभय रहता नहीं। ऐसा मैं वन्दन करता हूँ। आचार्य-मुनि कहते हैं, मैं वन्दन करता हूँ। यह ४४ गाथा हुई।

(गाथा) ४५-४६। **टीका - यहाँ (इन दो गाथाओं में) परमस्वभावभूत ऐसा जो कारणपरमात्मा का स्वरूप....** कहने में आता है।

वण्णरसगंधफासा थीपुंसणउंसयादिपज्जाया।
संठाणा संहणणा सव्वे जीवस्स णो संति॥४५॥

अरस-मरूव-मगंधं अव्वत्तं चेदणा-गुण-मसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीव-मणिद्दिट्ठ-संठाणं॥४६॥

यह समयसार की ४९ वीं गाथा। यहाँ ४६। यह गाथा सबमें—समयसार में, प्रवचनसार में, नियमसार में, अष्टपाहुड़ में, पंचास्तिकाय में, जयधवल में—छहों में यह गाथा है। पुरानी गाथा है।

नहिं स्पर्श-रस-अरु-गंध-वर्ण न, क्लीव, नर-नारी नहीं।
संस्थान संहनन सर्व ही ये भाव सब जीव को नहीं॥४५॥

रस, रूप, गंध न, व्यक्त नहिं, नहिं शब्द, चेतनगुणमयी।
निर्दिष्ट नहिं संस्थान, होता जीवलिंग-ग्रहण नहीं॥४६॥

वास्तव में भगवान आत्मा चिदानन्द सच्चिदानन्द प्रभु निज कारणपरमात्मा... समझ में आया? यह टीका है न टीका पहली? **(इन दो गाथाओं में) परमस्वभावभूत...** परमस्वभावभूत... क्षायिक आदि पर्याय अपरमभाव है। समझ में आया? क्षायिक केवलज्ञान भी अपरमभाव है। रागादि की तो बात क्या करना? परन्तु केवलज्ञानादि की पर्याय है, वह अपरम है। यह भगवान त्रिकाली परमस्वभावभाव है। समझ में आया?

परमस्वभावभूत ऐसा जो कारणपरमात्मा का स्वरूप,.... कारणपरमात्मा... जगत के आत्मा में कोई कारण ईश्वर होगा? क्या सेठ? कारणपरमात्मा कहा। कौन होगा? निज द्रव्यस्वभाव पूर्ण वह कारणपरमात्मा। समझ में आया? और उस कारण के आश्रय से पूर्ण केवलज्ञान उत्पन्न होता है, वह कारणपरमात्मा। सिद्ध आदि, केवली आदि

कार्यपरमात्मा और वस्तु त्रिकाली, वह कारणपरमात्मा। भाषा ऐसी है। समझ में आया?

परमस्वभावभूत ऐसा जो कारणपरमात्मा का स्वरूप, उसे समस्त पौद्गलिक विकारसमूह नहीं है.... उसमें पौद्गलिक का कोई विकार है नहीं। ऐसा प्रभु विराजमान आनन्दकन्द है, वही आदरणीय है और दृष्टि में लेने योग्य है। कर्तव्य हो तो यह कर्तव्य है ज्ञानी—धर्मी का। समझ में आया? सम्यग्दर्शन, वह कर्तव्य है, सम्यग्ज्ञान-चारित्र वह कर्तव्य है। वह स्व के लक्ष्य में आवे तो तीन का कर्तव्य उत्पन्न होता है, ऐसा कहा यहाँ।

निश्चय से पाँच वर्ण,.... नहीं आत्मा में। काला, लाल आदि है न? **पाँच रस....** नहीं। खट्टा-मीठा। **दो गन्ध...** नहीं, सुगन्ध-दुर्गन्ध। **आठ स्पर्श....** नहीं। ठण्डा-गर्म (आदि)। आत्मा में ठण्डा-गर्म, ऐसा स्पर्श नहीं है। **स्त्री-पुरुष-नपुंसकादि विजातीय विभावव्यंजनपर्यायें,...** नहीं। आत्मा में स्त्रीपना नहीं। आत्मा स्त्री नहीं, पुरुष नहीं, हिंजड़ा-नपुंसक नहीं। आहाहा! वह तो भगवान आनन्दकन्द पुरुष चिदानन्दस्वरूप है। आहाहा! उसको विभावव्यंजनपर्याय कहा, लो। विजातीय—विकार्य।

कुब्जादि संस्थान.... संस्थान है न छह? वह नहीं। **वज्रर्षभनाराचादि संहनन पुद्गलों को ही हैं, जीवों को नहीं हैं। संसारदशा में स्थावरनामकर्मयुक्त संसारी जीव को....** क्या कहते हैं अब? संसारदशा में स्थावरनामकर्मयुक्त संसारी जीव... यह एकेन्द्रिय है न? पृथ्वी, पानी आदि। **कर्मफलचेतना होती है,....** समझ में आया? पंचास्तिकाय की शैली ली है। क्या कहा? एकेन्द्रिय जीव है न संसारी स्थावर? पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, वनस्पति, वह पाँचों—उसको क्या है? कि संसारी कर्मफलचेतना होती है। उसको हर्ष-शोक का वेदन, वह भाव उसके पास है। समझ में आया?

एकेन्द्रिय जीव जो है, उसको कर्मचेतना मुख्यरूप से नहीं गिनी है। क्योंकि उसको तो राग-द्वेष मिथ्यात्वभाव, वह कर्मफल... कर्मफल। वह कर्म का फल भोगते हैं। उसको कर्मफलचेतना है। **त्रसनामकर्मयुक्त संसारी जीव को कार्यसहित कर्मफलचेतना होती है।** यह पंचास्तिकाय में है। दो इन्द्रिय से लेकर, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, नारकी, मनुष्य, देवादि संसारी जीव को कार्यसहित कर्मफलचेतना

है। कार्यसहित कर्मफलचेतना। इतना रागादि का कार्य मेरा है, ऐसी कार्यसहित हर्ष-शोक का भोगना, वह कार्यसहित कर्मफल(चेतना) है। इसलिए कर्मचेतनासहित कर्मफलचेतना है। समझ में आया?

एकेन्द्रिय को मात्र कर्मफलचेतना है। हर्ष-शोक का भोगना, वही एक चेतना उसके पास है। दु:ख का वेदन, वही चेतना उसके पास है और त्रस जीव को कार्य चेतनासहित कर्मफलचेतना है। त्रस जीव जो है दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय (तक) वह रागादि विकार कर्ता भी होता है और उसका फल हर्ष-शोक को भोगता है। वह कार्यसहित कर्मफलचेतनावाला है। कहो, समझ में आया?

और **कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा को....** अब थोड़ी सूक्ष्म बात है। कार्यपरमात्मा अर्थात् केवलज्ञानी परमात्मा और कारणपरमात्मा अर्थात् त्रिकाली द्रव्यस्वभाव। समझ में आया? कर्मफलचेतना, कर्मचेतनासहित कर्मफलचेतना और केवल ज्ञानचेतना की व्याख्या करते हैं। कार्यपरमात्मा अर्थात् केवलज्ञानी परमात्मा और सिद्ध। वे कार्यपरमात्मा कहे जाते हैं। कार्य पूर्ण हो गया न? और कारणपरमात्मा त्रिकाली द्रव्य। चिदानन्द की खान में ऐसे कार्यपरमात्मा अनन्त पड़े हैं। समझ में आया?

उस **कारणपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना होती है।** क्या कहते हैं? त्रिकाली द्रव्य में शुद्धज्ञानचेतना है। शुद्धज्ञानचेतना का अनुभवस्वरूप ही वह है, ऐसा। पर्याय की बात नहीं है, त्रिकाली। समझ में आया? कार्यपरमात्मा... शुद्धज्ञानचेतना अर्थात्... कारण जो त्रिकाली द्रव्य है, उसमें ही शुद्ध ज्ञानचेतना है, वह पर्याय नहीं। शुद्धज्ञान का अनुभवनस्वरूप ही आत्मा है और केवलज्ञानी को शुद्धज्ञानचेतना अनुभव में है। कठिन बहुत है।

कार्यपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना... द्रव्यरूप भी शुद्धज्ञानचेतना है और पर्यायरूप भी शुद्धज्ञानचेतना है। क्या कहा? केवलज्ञानी परमेश्वर, सिद्ध भगवान, दोनों ही कार्यपरमात्मा हैं। क्योंकि पर्याय पूर्ण हो गयी। उनके पास दो शुद्धज्ञानचेतना हैं। एक तो द्रव्यरूप शुद्धज्ञानचेतना और एक पर्यायरूप शुद्धज्ञानचेतना। समझ में आया? उनके

पास कर्मचेतना नहीं है। राग करना या एकाग्र होना, वह नहीं है। वह तो ज्ञान में एकाग्र हुए हैं। त्रिकाली शुद्धज्ञानचेतना में तो एकाग्रता पड़ी है, पर्याय में ज्ञान की एकाग्रता है तो कार्यपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना एक ही है। उसको राग का करना और राग का भोगना, वह दो चेतना (रूप) एकाग्रता है नहीं। समझ में आया या नहीं?

एक पर्याय है और एक द्रव्य है। कार्यपरमात्मा है केवलज्ञानी, सिद्ध आदि। वह पर्याय है, वह कार्यसमयसार है। कार्यसमयसार में प्रगट ज्ञानचेतना है, शुद्धज्ञानचेतना। और द्रव्य में है त्रिकाली वह भी शुद्धज्ञानचेतना है, वह ध्रुवरूप है। समझ में आया? ऐसी बात कैसी? एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय की बात करे तो कहे, दो। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिया.... आता है न? इच्छामि पडिक्कमणा में? किया था न भगवानजीभाई? पुराना हो गया? जीविया वहोरविया तस्स मिच्छामिदुक्कडम्। बस, जाओ। उसमें क्या समझना? ऐसे अंक पढ़ डाले, परन्तु तत्त्व क्या है, उसकी खबर नहीं।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शनसहित.... स्पष्टीकरण।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय भी हेय है। दृष्टि की अपेक्षा से वह पर्याय भी हेय है। उस पर्याय को... ४९-५० गाथा में आयेगा। वीतरागी मोक्षमार्ग की पर्याय भी स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य है; स्वभाव की अपेक्षा से परभाव है; उपादेय की अपेक्षा से हेय है। यह उपादेय तो वह हेय। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्यायबुद्धि....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय हेय, द्रव्य उपादेय। आश्रय करनेयोग्य नहीं, हेय ही है। लक्ष्य में नहीं है न? जहाँ लक्ष्य करते हैं, वहाँ वह नहीं। हेय हो गयी। इस अपेक्षा से हेय है। लक्ष्य करना है त्रिकाली वस्तु में, वहाँ तो वह है नहीं। इसका अर्थ हुआ कि हेय है, उपादेय तो रहा नहीं। उपादेय तो यह (द्रव्य) रहा। जहाँ लक्ष्य करना है, वह द्रव्य उपादेय रहा। यहाँ आश्रय, लक्ष्य रहा नहीं यहाँ तो यह हेय हो गयी। यह हेय है, ऐसा कहाँ (लक्ष्य) करना है उसका? समझे? आहाहा! मार्ग सम्यग्दर्शन का अलौकिक मार्ग है। लोगों ने बहुत साधारण और धर्म की व्याख्या बदल दी।

कहते हैं कि कार्यपरमात्मा अर्थात् सिद्ध भगवान और केवलज्ञानी तथा कारणपरमात्मा, वह त्रिकाली द्रव्यस्वभाव—उन दोनों को शुद्धज्ञानचेतना है। उनको राग का अनुभव नहीं, राग की एकाग्रता नहीं और हर्ष की भी एकाग्रता नहीं। कर्मचेतना और कर्मफलचेतना दोनों केवली को और सिद्ध को होती नहीं।

इसी से कार्यसमयसार अथवा कारणसमयसार को... क्या कहते हैं? देखो! कि दो शुद्ध ज्ञानचेतना होने से... यह कर्म हुआ। केवली को, सिद्ध भगवान को शुद्धज्ञानचेतना होने से और त्रिकाली द्रव्य में शुद्धज्ञानचेतना होने से... आहाहा! गम्भीर बात, भाई! **कार्यसमयसार अथवा कारणसमयसार को सहजफलरूप शुद्धज्ञानचेतना होती है।** उसको तो सहजफलरूप ज्ञानचेतना होती है। किसको? कि त्रिकाली द्रव्य जो ध्रुवस्वरूप भगवान आत्मा, उसमें भी शुद्धज्ञानचेतनारूपी उसका कार्य त्रिकाली है। तो उसका ज्ञान का फल आनन्दरूप, वह भी त्रिकाली है। आहाहा! समझ में आया?

कार्यसमयसार अथवा कारणसमयसार को सहजफलरूप.... स्वाभाविक फलरूप। केवलज्ञानी को सहजफलरूप शुद्धज्ञानचेतना होती है, फलरूप। कर्मचेतना त्रस को... त्रस जीव को... संसारी त्रस को... त्रस संसारी है न? उसको कर्मचेतनासहित कर्मफलचेतना है। राग का करना सहित हर्ष का भोगना है। केवलज्ञानी को शुद्धज्ञानचेतनासहित शुद्ध ज्ञान-आनन्द का वेदन है, वह चेतना है। समझ में आया?

देखो! **कारणसमयसार को सहजफलरूप....** वह तो ठीक। परन्तु द्रव्य जो है त्रिकाली द्रव्य ध्रुव, उसमें ध्रुव शुद्धज्ञानचेतनारूपी... शुद्धज्ञानचेतनारूपी एकाग्रता त्रिकाल पड़ी है। तो उसको भी सहजफलरूप आनन्द का वेदन उसमें त्रिकाल पड़ा है।

मुमुक्षु : दोनों को सहज बनाया?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों ही सहज है।

मुमुक्षु : पुरुषार्थ भी दो तरफ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ भी सहज है या नहीं? त्रिकाली स्वभाव पुरुषार्थ का पिण्ड है। उसमें जो पुरुषार्थ हुआ, वह भी सहज वीतरागीदशा का पुरुषार्थ हुआ, तो

उसका आनन्द का भोगना भी सहज है। त्रिकाली वस्तु में भी शुद्धज्ञानचेतना है और उसके फलरूप सहजज्ञानफलचेतना है। ज्ञानरूपी कर्म है (और) कर्म का फल आनन्दरूपी वेदन है तो द्रव्य में भी त्रिकाल पड़ा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

एक तो यह कहा कि एकेन्द्रिय जीव जो हैं, (उनको) तो हर्ष-शोक के वेदनरूपी कर्मफल है। कर्म अर्थात् यहाँ जड़, ऐसा नहीं। कर्म अर्थात् विकारी राग का फल जो हर्ष-शोक है, उसका वेदन करते हैं, उसमें एकाग्र है। वह एकेन्द्रिय जीव। और दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय देव, नारकी, मनुष्य आदि त्रस वह राग का, पुण्य का, पाप का.... देखो! एकेन्द्रिय को पुण्य भी है। एकेन्द्रिय जीव को निरन्तर पुण्य-पाप... पुण्य-पाप... पुण्य-पाप... होते ही रहते हैं। शुभभाव-अशुभभाव.... शुभभाव-अशुभभाव.... निरन्तर होते ही रहते हैं। तो कहते हैं कि शुभभावरूपी... एकेन्द्रिय को उसका वेदन जो है, वह मात्र कर्मफलचेतना का वेदन है। क्योंकि है तो कर्मचेतना भी, परन्तु उसको गौण करके, उसकी कर्मफलचेतना की मुख्यता (बतायी) है। क्योंकि मन नहीं, इसलिए बुद्धिपूर्वक ऐसा करूँ, ऐसा नहीं। तो इस अपेक्षा से एकेन्द्रिय जीव को है तो कर्म—राग-द्वेष का कर्तापना परिणमन है। परन्तु उसकी मुख्यता नहीं, उसको वहाँ भोगने की मुख्यता है हर्ष-शोक की। और त्रस जीव में राग-द्वेष के कर्तापनेसहित हर्ष-शोक का भोक्तापना अज्ञानी संसारी जीव को है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आया। शुभभाव है उसमें। अशुद्ध की दशा में शुभभाव होता है, ऐसा नहीं। उसमें अमुक भाव शुभ है, अशुभलेश्या में अमुक भाव शुभभाव है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न। न हो तो... ऐसा कर्मचक्र है न। दो पुण्य-पाप, दो पुण्य-पाप चलते ही हैं।

यहाँ तो विशेष तो यह है कि कार्यसमयसार केवलज्ञानदशा आदि, उसको शुद्धज्ञानचेतना है अर्थात् ज्ञान की पूर्ण एकाग्रता है तो उसको सहजशुद्धफलज्ञानचेतना है। सहजरूपी ज्ञान का वेदन, वह फल स्वाभाविक है। वह तो ठीक। परन्तु जो त्रिकाली

द्रव्य है, वस्तु त्रिकाली द्रव्य। उसको भी फल है। फल का अर्थ अन्दर जो त्रिकाली ज्ञानचेतना पड़ी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : कार्य के बिना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कार्य करे नहीं, परन्तु वह कार्यरूप दशा ही त्रिकाली है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सहज है। कर्तापने का गुण भी सहज है और भोक्तापने का गुण भी ध्रुव त्रिकाली है। समझ में आया? एक-एक द्रव्य में छह कारक पड़े हैं या नहीं? त्रिकाली पड़ा है। छह कारक त्रिकाली पड़े हैं, शक्तिरूप है त्रिकाली। उसको कर्मचेतना भी गिनने में आयी? कौन-सी कर्मचेतना? ज्ञानरूपी कर्मचेतना और उसका सहजफलरूप आनन्दफलरूप कर्मचेतना का फल। समझ में आया?

शुद्ध उपयोग... लो, प्रवचनसार में लिया है। शुद्ध उपयोग ही कर्मचेतना और शुद्ध उपयोग के फलरूप आनन्द, वही कर्मफलचेतना। आनन्द का अनुभव करते हैं कार्य में और द्रव्य में आनन्द का अनुभव त्रिकाल पड़ा ही है। जो अन्दर में आनन्द का अनुभव (स्व)रूप न हो तो पर्याय में आनन्द का अनुभव कार्य कहाँ से आयेगा? ऐसा कहते हैं। आहाहा! त्रिकाली नित्य शुद्धज्ञानचेतना जो त्रिकाली द्रव्य में न हो तो पर्याय में ज्ञान की एकाग्रता की शुद्धचेतना कहाँ से आयेगी? समझ में आया? गम्भीर बात, भाई! ऐसी धर्मकथा! मजा आये नहीं। ...मारफाड़... एकेन्द्रिय की दया पालना, ऐसा करना....

भाई! यत्न करना कि प्राणी न मरे। उसको तो ठीक लगता है। यहाँ कहा कि परजीव का यत्न... परजीव को तो न मैं मार सकता हूँ—न बचा सकता हूँ—वह यत्न तो मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यादृष्टि का यत्न किया उसने। समझ में आया? दो बात को सिद्ध करके अब सार कहते हैं।

इसी से कार्यसमयसार अथवा कारणसमयसार को.... यहाँ मोक्षमार्ग की वर्तमान पर्याय की बात नहीं। यहाँ तो पूर्ण कार्यफलरूप और कारण त्रिकाली द्रव्य। उसमें जो

त्रिकाली में ज्ञानरूप एकाग्रता ज्ञानरूप पड़ी है त्रिकाल। और उसके आनन्दरूप के भोक्तापना का गुण भी अन्दर त्रिकाली है। **इसी से कार्यसमयसार अथवा कारणसमयसार को....** आहाहा! पढ़नेवाले को ऐसा लगे कि क्लिष्ट कर डाला। क्लिष्ट नहीं, स्पष्ट किया है।

इसलिए सहजशुद्ध-ज्ञानचेतनास्वरूप निज कारणपरमात्मा संसारावस्था में या मुक्तावस्था में सर्वदा एकरूप होने से उपादेय है... क्या कहते हैं ? देखो! भगवान आत्मा नित्य ध्रुव चैतन्य, वह सहज शुद्धज्ञानचेतनास्वरूप त्रिकाली होने से... त्रिकाल में सहज ज्ञान, शुद्धज्ञानचेतनास्वरूप। यहाँ देखो! शुद्ध शब्द लिया है। समझ में आया ? उसमें भी शुद्धज्ञानचेतना... शुद्धज्ञानचेतना... यहाँ सहज शुद्धज्ञानचेतना। आहाहा!

भगवान आत्मा स्वाभाविक शुद्धज्ञानचेतनास्वरूप निज कारणपरमात्मा... लो, निज कारण (परमात्मा) ऐसे लिया। **सहजशुद्ध-ज्ञानचेतनास्वरूप निज कारणपरमात्मा संसारावस्था में या मुक्तावस्था में....** पर्याय, परन्तु **सर्वदा एकरूप होने से...** वस्तु तो सर्वदा एकरूप है। समझ में आया? संसारपर्याय में हो या मुक्तपर्याय में हो, वस्तु त्रिकाली ध्रुव तो एकरूप है, उसमें दो भेद नहीं। समझ में आया? भाई! वीतरागमार्ग अलौकिक है। लौकिक के साथ उसका मिलान नहीं होता। चलते प्रवाह के साथ मिलान करने जाये तो वह मेल नहीं होगा। समझ में आया? यह तो अलौकिक मार्ग है। आहाहा!

कहते हैं कि अज्ञानी त्रस है, पंचेन्द्रिय मनुष्य आदि, उसको दया, दान, महाव्रत का जो परिणाम है, वही उसकी कर्मचेतना है—अधर्मचेतना है और उसका फल उसी समय में हर्ष-शोकरूपी जो विकल्प है, वह कर्मफलचेतना है। यहाँ जड़कर्म की बात नहीं है। आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति, ऐसा अन्तर्दृष्टि का अनुभव नहीं, तो अज्ञानी को यह पंच महाव्रत और बारह व्रत का विकल्प कर्मचेतना है। उसमें एकाग्रता है। स्वभाव में एकाग्रता नहीं और उसमें दुःख वेदते हैं। आहाहा! समझ में आया? पंच महाव्रत का भाव या बारह व्रत के भाव में दुःख वेदते हैं। पण्डितजी! आहाहा! सुख का वेदन नहीं करते। ज्ञानचेतना उसमें नहीं। आहाहा!

ज्ञानचेतना पूर्णरूप से कार्यसमयसार में गिनने में आयी और पूर्णरूप से द्रव्य में

गिनने में आयी। परन्तु वह शुद्ध त्रिकाली ज्ञानचेतना द्रव्य है, उसकी दृष्टि करने से पर्याय में अपूर्ण ज्ञानचेतना प्रगट होती है, उसको यहाँ गौणपने गिनने में आया है। मुख्यपने पूर्ण ज्ञानचेतना—केवलज्ञान प्रगट हो, उसको मुख्यपने गिनने में आया। बाकी तो जो त्रिकाली द्रव्य ज्ञायकस्वरूप है, शुद्धज्ञानचेतना से भरी पड़ी चीज़ है, उसकी दृष्टि-अनुभव करने से पुण्य-पाप के विकल्प से रहित निर्विकल्प ज्ञान की एकाग्रता, वह ज्ञानचेतना है। वह चौथे गुणस्थान से ज्ञानचेतना है। धर्म की दशा कहो, ज्ञानचेतना कहो, मोक्ष का मार्ग कहो। आहाहा! समझ में आया?

भगवान ज्ञानस्वरूप चिदानन्द ध्रुव में एकाग्रता, वह ज्ञानचेतना है। राग में एकाग्रता, वह कर्मचेतना है और हर्ष-शोक में एकाग्रता, वह कर्मफलचेतना है। और आनन्द में भी, आनन्द का कर्ता होकर आनन्द का भोक्ता (होता है), वह भी कर्म और कर्मफलचेतना है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चेतना है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं कर्मचेतना। कहा न? वह तो कर्मचेतना है। वह तो राग है।

मुमुक्षु : पंच महाव्रत भी राग है?

पूज्य गुरुदेवश्री : महाव्रत भी राग है। अरे! यह तो कितनी बार आया। महाव्रत के परिणाम आस्रव है, राग-कर्मचेतना है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भावना भले न करे, परन्तु महाव्रत का विकल्प ही राग है। भावना का क्या प्रश्न है? महाव्रत कहो, अट्ठाईस मूलगुण कहो—सब कर्मचेतना है,

राग की चेतना है, अधर्मचेतना है। जरा कठिन लगे। जगत ने सुना नहीं न! बाबूलालजी! सुना ही नहीं... सुना नहीं... सुना नहीं। समझे तो करे। समझ में आया नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि जो महाव्रत का—पंच महाव्रत का विकल्प, अट्ठाईस मूगुण का विकल्प, वह कर्मचेतना राग है, वह सुबह में तो बहुत आया। आस्रवतत्त्व है। वह तो पराश्रितभाव है, पर के आश्रय से उत्पन्न हुआ भाव है।

मुमुक्षु : भावना....

पूज्य गुरुदेवश्री : भावना तो राग की भावना है। महाव्रत की भावना तो राग की भावना है। समझ में आया? वह तो कर्मचेतना है। ज्ञानी को ज्ञानचेतना होती है। जो महाव्रत का विकल्प आया, उसको जानने की चेतना होती है। आहाहा! उसका नाम मुनि और समकिती है। धर्मी को राग आया, उस राग को जानना और अपने को जानना, ऐसी ज्ञान की एकाग्रता, वह ज्ञानचेतना उसको है। आहाहा! अरे रे! बात को समझे नहीं। राग तो कहाँ रह गया। उसकी यहाँ बात ही नहीं करते। यहाँ तो एक समय की पर्याय, जो राग को जाना, ऐसी जो पर्याय, वह भी हेय है। ज्ञानचेतना भी द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से हेय है। पर्याय है न? आहाहा! क्योंकि उसके ऊपर भी लक्ष्य करनेयोग्य नहीं। आहाहा! बहुत बात! क्या करे? पूरा चक्कर फिर गया है।

मुमुक्षु : कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो राग है, विकल्प है, अशुद्ध पर्याय है। यहाँ तो शुद्धपर्याय भी परद्रव्य है। अभी आयेगा ४९ में। ५० में तो कहेंगे कि राग तो परद्रव्य है, परभाव है, हेय है, परन्तु उसके साथ जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (रूप) जो स्वाश्रय हुआ, उसको भी परद्रव्य कहकर, परभाव कहकर हेय कहा गया है। क्योंकि एक स्वद्रव्य आदरणीय है। वह तो चलता है बहुत। आहाहा! मस्तिष्क में प्रविष्ट नहीं हो। अनादि का शल्य अन्दर है, शल्य अन्दर। महा भगवान अन्दर चैतन्य क्या है... समझ में आया?

कहा न? कुन्दकुन्दाचार्य ने मोक्ष अधिकार में कि शुभभाव महाव्रत का है, वह विषकुम्भ—जहर का घड़ा है। है? प्रतिक्रमण करना, ऐसा करना, ऐसे विकल्प उठते हैं, वह जहर का घड़ा है। भगवान अमृत का घड़ा है, घट। उसका—अमृत चिदानन्द

का आश्रय... देखो! अमृतसागर भगवान है ध्रुव। उसमें शुद्धज्ञानचेतना और आनन्द की चेतनारूप भाव त्रिकाली पड़ा है। बस, उसका आश्रय करने से... उसका आश्रय करने से जो ज्ञान की एकाग्रता, आनन्द की एकाग्रता हुई, वह पर्याय हुई। उसको यहाँ ज्ञानचेतना और ज्ञान का आनन्दफल चेतना कहने में आता है।

धर्मी को कर्मचेतना और कर्मफलचेतना थोड़ी है। परन्तु उसका वह ज्ञानी जाननेवाला है। कर्तृत्वबुद्धि से करना और भोगना, ऐसा है नहीं। जाननेवाला है। है मेरी पर्याय में जरा राग, विकल्प है, दोष है, जहर है, दु:ख है। पंच महाव्रत का परिणाम भी समकिती को दु:ख है। आहाहा! कठिन बात। समझ में आया? जिसको आत्मदर्शन हुआ—सम्यग्दर्शन हुआ, विकल्प से पार (होकर) द्रव्यस्वभाव का आश्रय किया तो सम्यग्दर्शन-चारित्र आदि हुआ और उस भूमिका में जो राग आता है, वह ज्ञानी का नहीं। उस कर्मचेतना का ज्ञानी ज्ञान करनेवाला है। समझ में आया?

वह कर्मचेतना मेरा कर्तव्य है, ऐसा माने, तब तो मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि आत्मा का स्वभाव राग का करना, ऐसा है नहीं। फिर भी माना तो स्वभाव को करनेवाला माना, तो वह तो मिथ्यादृष्टि है, अज्ञानी अनादि का है ही। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। बहुत अलौकिक बात है। अलौकिक अर्थात् लौकिक से पार—लोकोत्तर बात है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **इसलिए सहजशुद्ध-ज्ञानचेतनास्वरूप निज कारणपरमात्मा....** वह तो निगोददशा में हो या मुक्त अवस्था में हो, वह तो सर्वदा एकरूप होने से वही आदरणीय है। **ऐसा, हे शिष्य! तू जान।** है? '**हे शिष्य त्वं जानाहि इति।**' कहो, समझ में आया? मूलपाठ में है न? '**जाण**' उसमें से लिया है। अन्तिम में है न? '**जाण अलिंगग्गहणं**' इसलिए वहाँ लिया है। पाठ में है। '**चेदणागुणमसद्दं। जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं**' आहाहा! भगवान त्रिकाली ध्रुवस्वरूप तो है, संसारदशा निगोद की हो या सिद्ध की हो, वह तो त्रिकाली कारणसमयसार एक ध्रुवरूप, वही दृष्टि में आदरनेयोग्य है। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को तो वह द्रव्यस्वभाव ही आदरणीय है। समझ में आया? व्यवहार का व्रत जो विकल्प है, वह तो आदरणीय नहीं, परन्तु उस समय की निर्मल पर्याय प्रगट

हुई, वह भी आदरणीय नहीं, क्योंकि वह लक्ष्य करनेयोग्य नहीं। जाननेयोग्य है। आहाहा! देखो! **ऐसा, हे शिष्य! तू जान।** ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। हे शिष्य! तू जान। दूसरी ओर अर्थ किया है। १७२ अलिंगग्रहण के २० बोल दूसरे चले। समयसार में दूसरा। भिन्न-भिन्न अर्थ होता है न उसका।

इस प्रकार एकत्वसप्तति में (श्री पद्मनन्दि-आचार्यदेवकृत पद्मनन्दिपंचविंशतिका नामक शास्त्र में एकत्वसप्तति नामक अधिकार में ७९वें श्लोक द्वारा) कहा है कि— लो!

(मन्दाक्रान्ता)

आत्मा भिन्नस्तदनुगतिमत्कर्म भिन्नं तयोर्या,
प्रत्यासत्तेर्भवति विकृतिः साऽपि भिन्ना तथैव।
काल-क्षेत्र-प्रमुख-मपि यत्तच्च भिन्नं मतं मे,
भिन्नं भिन्नं निजगुणकलालङ्कृतं सर्वमेतत्॥

ओहोहो! **श्लोकार्थः—मेरा ऐसा मन्तव्य है....** पद्मनन्दि मुनि भावलिंगी सन्त वनवासी। इस शास्त्र को वनशास्त्र कहते हैं, पद्मनन्दि (मुनि) को वनवासी (कहते हैं)। कहते हैं कि **मेरा मन्तव्य है...** समझ में आया? है न? '**भिन्नं मतं मे**' तीसरे पद में। '**मतं मे**' **मेरा ऐसा मन्तव्य है कि....** आचार्य कहते हैं कि मेरा अभिप्राय और मन्तव्य है कि **आत्मा पृथक् है और उसके पीछे-पीछे चलनेवाला कर्म पृथक् है;...** कर्म जड़, उसके पीछे-पीछे चलता है, वह भी मेरे से पृथक् है।

मुमुक्षु : कर्म ले जाये....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ.... मेरे पीछे-पीछे चलनेवाले हैं वह तो।

मुमुक्षु : कर्म ले जाये तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई नहीं ले जाता। लोगों को भान नहीं, क्या करे? आहाहा! समयसार के नाम पर उल्टे अर्थ होते हैं। लोगों को बेचारों को... उल्टी दृष्टि करके पोसते हैं।

आचार्य कहते हैं कि **मेरा ऐसा मन्तव्य है कि आत्मा पृथक् है...** भगवान! **और**

उसके पीछे-पीछे चलनेवाला कर्म पृथक् है;.... देखो! कर्म अपने से चलता है, मेरे कारण से चलता है—ऐसा नहीं। मैं कर्म के कारण से मैं चलता हूँ, ऐसा भी नहीं। **आत्मा और कर्म की अति निकटता से जो विकृति होती है,...** देखो! विकार पुण्य-पाप का भाव.... आत्मा को कर्म का संग होने से... ऐसे अतिनिकट से। जो विकृति दया, दान, व्रत, भक्ति आदि महाव्रत का विकल्प है, **विकृति होती है, वह भी उसी प्रकार (आत्मा से) पृथक् है;....** उसी प्रकार; जैसे कर्म पृथक् हैं, वैसे पुण्य-पाप का विकल्प भी मेरे आत्मा से अत्यन्त पृथक् है। आहाहा! समझ में आया?

और काल-क्षेत्रादि जो हैं वे भी (आत्मा से) पृथक् हैं। यह पंचम काल, यह काल, वह मेरे में नहीं। **निज-निज गुणकला से अलंकृत यह सब पृथक्-पृथक् हैं....** उसकी व्याख्या थोड़ी है। **(अर्थात् अपने-अपने गुणों तथा पर्यायों से युक्त सर्व द्रव्य अत्यन्त भिन्न-भिन्न हैं)।** देखो! विशेष व्याख्या होगी....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

- एक बार पर के लिये तो मर जाना चाहिए। पर में मेरा कुछ अधिकार ही नहीं। अरे भाई! तू राग को और रजकण को कर नहीं सकता! ऐसा ज्ञाता-दृष्टा पदार्थ है। ऐसे ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव की दृष्टि कर, चारों ओर से उपयोग को समेटकर एक आत्मा में ही जा। (14)
- भगवान जिनेन्द्र सर्वज्ञदेव की दिव्यध्वनि आयी। उसमें सिंहनाद आया! क्या आया? कि हे जीव! तू सच्चिदानन्द परमात्मस्वरूप है। प्रभु! तू स्वयं परमात्मस्वरूप मेरी जाति का ही है। बकरियों के झुण्ड में सिंह मिल गया हो, वैसे शुभाशुभभाव में भगवान मिल गया है, उसे भगवान सर्वज्ञ का सिंहनाद आया कि तू मेरी जाति का भगवानस्वरूप है, ऐसा जान! (15)

— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, दृष्टि के निधान

भाद्र शुक्ल १४, बुधवार, दिनांक - २४-०९-१९६९
गाथा-४७, श्लोक-७०, ७१, प्रवचन-१५

यह नियमसार, शुद्धभाव अधिकार है। कलश चलता है। हिन्दी ५८ पृष्ठ है नीचे। देखो! क्या कहते हैं? आचार्य महाराज—मुनि ऐसा कहते हैं। पद्मप्रभ आचार्य मुनि हैं दिगम्बर सन्त वनवासी—(जंगल में) रहनेवाले। कहते हैं कि **मेरा ऐसा मन्तव्य है...** मेरा तो यह अभिप्राय है—विचार है **कि - आत्मा पृथक् है....** आत्मा तो शरीर से अत्यन्त भिन्न है।

मुमुक्षु : कब.... कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी.... अभी की बात है। सिद्ध हो, तब तो क्षेत्रान्तर हो गया। वह तो एक क्षेत्र में रहते हुए भी भिन्न है। समझ में आया? वस्तु अत्यन्त भिन्न है। **और उसके पीछे-पीछे चलनेवाला कर्म पृथक् है;....** वह जड़कर्म है न? वह कर्म तो अपने कारण से चलता है, आत्मा के कारण से नहीं। ऐसे कर्म भी आत्मा से भिन्न है। सम्यग्दृष्टि को ऐसे भिन्न आत्मा के ऊपर दृष्टि करना, ऐसा कहते हैं।

आत्मा और कर्म की अति निकटता से जो विकृति होती है, वह भी उसी प्रकार (आत्मा से) पृथक्.... कर्म के निमित्त से पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ विकल्प जो राग है, शुभोपयोग या अशुभोपयोग... यह विकृति होती है, वह भी उसी प्रकार... उसी प्रकार... जैसे कर्म और आत्मा भिन्न हैं, उसी प्रकार (भाव)कर्म विकार भिन्न हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : सुबह आया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वही आया है।

और काल-क्षेत्रादि जो हैं, वे भी (आत्मा से) पृथक् हैं। पंचम काल, चौथा काल, यह काल, दिवस, रात्रि, पहर और क्षेत्र—भरतक्षेत्र, महाविदेहक्षेत्र। वह सब क्षेत्र-काल से भगवान आत्मा भिन्न है-अलग है। समझ में आया? **वे भी (आत्मा से) पृथक् हैं। निज-निज गुणकला से अलंकृत....** उसमें लिया है वह। पाठ में आता है न

४७ में '**अलंकिया**'। तो (उससे) पहले कलश में 'अलंकृत' शब्द है। ४७ में आयेगा न '**अष्टगुण अलंकिया।**' मूल पाठ में से टीका में यह ले लिया। उसके पहले उपोद्घात में यह शब्द ले लिया है कि आत्मा भी निज निज गुण और पर्याय से (अलंकृत) है, कर्म उसके गुण और पर्याय से (आत्मा से) पृथक् है और शरीर भी उसके गुण और पर्याय से (आत्मा से) पृथक् है और पुण्य-पाप का भाव भी उसकी शक्ति और पर्याय से—आत्मा से पृथक् है। समझ में आया? ऐसा आत्मा पर से भिन्न है, उसको यहाँ शुद्धभाव कहा गया है। उस शुद्धभाव पर दृष्टि करना, उसे ध्येय बनाकर दृष्टि उसमें पसारना, वही सम्यग्दर्शन कहा जाता है। समझ में आया?

जो पर से भिन्न है... तो जिसको आत्मा का कल्याण करना हो तो भिन्न है, उस (चीज़) पर दृष्टि देना नहीं, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा अखण्ड ज्ञायकस्वरूप शुद्धभाव, त्रिकाली ध्रुवभाव है, उसके ऊपर दृष्टि करने से, पर की अपेक्षा रखे बिना अपने स्वभाव का आश्रय करने से, ध्रुव का अवलम्बन करने से, नित्यानन्द प्रभु को लक्ष्य में-ध्येय में लेने से सम्यग्दर्शन होता है। पहली धर्म की दशा। समझ में आया?

निज-निज गुणकला से अलंकृत.... द्रव्य तो ठीक, परन्तु विकार की भी उसकी (अपनी) गुण कला कही। विकार की—उसकी शक्ति और उसकी अवस्था आत्मा से भिन्न है। शुभभाव का गुण बन्ध का कारण और वह पर्याय, अपने गुण और पर्याय का कारण शुभभाव है, आत्मा से भिन्न है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण शुभ बन्ध का कारण है। दु:ख होना, वह उसका गुण। शुभ उपयोग का गुण... शुभ उपयोग का गुण दु:ख होना, वह (है)। शुभ उपयोग का फल क्या? शुभ उपयोग का गुण क्या? कि शुभ उपयोग का गुण दु:ख।

मुमुक्षु : अनुकूल पदार्थ बीच में आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी बात नहीं है। पदार्थ तो उसके कारण से है। उसका तो प्रश्न भी कहाँ है यहाँ? आहाहा!

देखो! आत्मा भी अपने निजगुण-पर्याय से रहा है, कर्म भी अपनी निजगुण की

पर्याय से रहा है, शरीर से भी अपनी निजगुण अवस्था से रहा है, उसी प्रकार पुण्य-पाप का भाव भी उसकी शक्ति और उसकी अवस्था से रहा है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....न्यारी हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : न्यारी हो गयी नहीं, न्यारी है। समझ में आया?

अपने-अपने गुणों तथा पर्यायों से.... गुण और कला। कला की परिभाषा पर्याय की है। उससे सहित **सर्व द्रव्य अत्यन्त भिन्न-भिन्न हैं।** अत्यन्त-अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! शरीर से आत्मा भिन्न कहने में तो चिल्लाने लगते हैं कितने ही बेचारे। आहाहा! आज एक का पत्र आया है। नहीं है वह पोरबन्दर का मेयर-मेयर। एक करशनजी आते हैं न? करशनभाई आते हैं। बहुत प्रेम। मेयर है। मेयर जाति का है। उसका लम्बा पत्र आया है। अरे! शरीर से भिन्न बताकर आत्मा का कल्याण करना चाहते हैं।

मुमुक्षु : उसके गले उतरती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके गले उतरती है। इसको नहीं। वहाँ रजनीश आये होंगे। रजनीश। उसको सुनने गये होंगे। अरे! कहाँ यह भेदज्ञान की बात और गन्ध नहीं मिलती वहाँ, ऐसा लिखा है। एक मेयर की जाति है शोभालालजी! मेयर। जैसे अपने बनिये, वैसे एक मेयर, ऐसा। राजपूत है ऐसी एक मेयर जाति है। आर्य जाति मेयर की। उसका एक लड़का है करशनजी। ४० वर्ष की उम्र है। नानजीभाई का नौकर है। करोड़पति है न! आठ करोड़। गुजर गये। एक नानजी। आठ-दस करोड़ रुपये थे। वह गुजर गये। वहाँ नौकर है। लिखा है। बहुत बार यहाँ आते हैं। उसने कहा था कि रजनीश का व्याख्यान आया था। अरे! यह भेदज्ञान की बात! यह स्याद्वाद की बात कहीं सुनने को नहीं मिलती। बहुत बड़ा पत्र लिखा है। यह तो सारे भरतक्षेत्र में हमारा कल्याण किया, ऐसा लिखा है। प्रमोद है। अन्यमति... अन्यमति। वैष्णव है। भगवानजीभाई! उसने लिखा है। आहाहा! ऐसा भाव! यह वस्तु!

शरीर से भिन्न ध्यान करने से आत्मा का लाभ होता है, ऐसा उसने लिखा है। शोभालालजी! आहाहा! आत्मा है न? भगवान शरीर या रजकण से भिन्न है न, प्रभु! शरीर तो जड़ होकर रहा है। कुछ तेरा होकर रहा है? जड़ जड़रूप से रहा है, वैसे

विकार विकाररूप से रहा है। तेरा स्वरूप होकर रहा है ? आहाहा! देखो! यहाँ लिखा नहीं ? **उसी प्रकार (आत्मा से) पृथक् हैं।** कैसा ? जैसे जड़कर्म और आत्मा भिन्न है, वैसे पुण्य-पाप के भाव भी कर्म की तरह आत्मा से भिन्न है। ऐसा कहते हैं। देखो! उसी प्रकार आत्मा से पृथक् है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : 'तथैव'

पूज्य गुरुदेवश्री : 'तथैव' दूसरी पंक्ति। **'साऽपि भिन्ना तथैव'** ओहोहो! पद्मप्रभमलधारि मुनि वनवासी हैं। दिगम्बर मुनि। कहते हैं कि **'तथैव'** जैसे भगवान आत्मा अरूपी चिद्घन भिन्न और रूपी जड़कर्म भिन्न, वैसे ही पुण्य और पाप का विकल्प, शुभाशुभराग ऐसे ही। जैसे शरीर से, कर्म से भिन्न है, वैसे ही विकार से आत्मा भिन्न (और) आत्मा से विकार भिन्न है। समझ में आया ? आहाहा!

और (इन दो गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—) लो। यह पद्मनन्दि आचार्य का था जो पहला श्लोक था। पद्मनन्दि वनवासी मुनि थे। वनवासी मुनि, ऐसा कहते हैं। पद्मनन्दि पंचविंशति का है न, हम सुबह में पढ़ते हैं न ? दस... का धर्म....

(मालिनी)

असति च सति बन्धे शुद्धजीवस्य रूपाद्,
रहित-मखिलमूर्त-द्रव्यजालं विचित्रम्।
इति जिनपतिवाक्यं वक्ति शुद्धं बुधानां,
भुवनविदितमेतद्भव्य जानीहि नित्यम्॥७०॥

वह **'जानीहि'** शब्द पड़ा है न अलिंगग्रहण में! शब्द पड़ा है, इसलिए यहाँ कलश में डाल दिया।

श्लोकार्थ - बन्ध हो, न हो... आहाहा! भगवान आत्मा में राग की अवस्थारूपी भावबन्ध हो या राग के अभावरूप मोक्ष हो। **समस्त विचित्र मूर्तद्रव्यजाल (अनेकविध मूर्त द्रव्यों का समूह) शुद्ध जीव के रूप से व्यतिरिक्त है...** आहाहा! समझ में आया ? वस्तु शुद्ध चिद्घन आनन्दकन्द प्रभु आत्मा। कहते हैं कि जो... शुद्धभाव अधिकार है न

यह ? ध्रुवभाव कहो, शुद्धभाव कहो, नित्यानन्द ज्ञायकभाव कहो। वह वर्तमान राग की पर्याय भावबन्ध की अवस्था में हो। कर्म तो पर है उसके साथ। या राग के अभावरूप वीतरागी केवलज्ञानी, सिद्ध की अवस्था में हो, परन्तु **समस्त विचित्र मूर्तद्रव्यजाल (अनेकविध मूर्तद्रव्यों का समूह) शुद्ध जीव के रूप से व्यतिरिक्त है...** व्यतिरिक्त है। भगवान अरूपी ज्ञानघन आनन्दस्वरूप, वह बन्ध अवस्था में हो या मोक्ष अवस्था में हो। द्रव्य तो परद्रव्य से अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! नियमसार में भी अलौकिक बात कही है। **समस्त विचित्र मूर्तद्रव्यजाल (अनेकविध मूर्त द्रव्यों का समूह) शुद्ध जीव के रूप से व्यतिरिक्त....** अर्थात् भिन्न है। **ऐसा जिनदेव का शुद्ध वचन बुधपुरुषों को कहते हैं।** देखो! समझने का कामी है, समझनेवाला है, उसको जिनदेव का शुद्ध वचन ऐसा है, वचन भी शुद्ध ऐसे। '**जिनपतिवाक्यं**' वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ का वाक्य ऐसा है। किसके लिये ? '**बुधानां**' बुधपुरुषों के लिये है। समझनेवाले हैं, उनके लिये है। न समझे तो नहीं समझे, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यहाँ तो शरीर से यह होता है, इससे यह होता है। ओहोहो! कितना! समयसार में पड़ा है। अन्त तक थोड़ी-थोड़ी विशेष बात। दो-चार पन्ने बाकी हैं। गड़बड़-गड़बड़। अरे! प्रभु! यह क्या किया तूने ? समकित। निर्विकल्प समाधि में हो, वह समकिती, बाहर निकला तो अज्ञानी। आहाहा! यहाँ तो स्वरूप दृष्टि... कुछ मतभेद हुआ होगा, ऐसा लगता है। मतभेद होने पर भी यह छपा है। ऐसा छापे...

कहते हैं, भगवान आत्मा चाहे जो राग की अवस्था में—विकारीदशा—पर्याय में देखो या रागरहित मुक्त अवस्था में देखो तो, द्रव्य तो मूर्त की विचित्र जाल से अत्यन्त भिन्न है। समझ में आया ? वह राग भी मूर्त है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। अत्यन्त निराला चैतन्य सत् वस्तु का कस जो तत्त्व है, (वह) विचित्र मूर्तजाल से अत्यन्त भिन्न है। वह कहे, नहीं, संसार अवस्था में मूर्त है। अरे, भगवान! क्या करते हो तुम ? भाई!

अरे! **ऐसा जिनदेव का शुद्ध वचन....** देखो! पर से एक कहे, वह शुद्ध वचन

नहीं, ऐसा कहते हैं। व्यवहारनय का अशुद्ध वचन है। आहाहा! व्यवहार से तो है न? व्यवहार से तो है, ऐसा कहते हैं। यह शुद्ध वचन है। व्यवहार से है वह। अहो! जिनदेव! परमात्मा अपने वीतरागस्वभाव में विराजमान है, उनकी वाणी निकली (ऐसा) निमित्त से कथन कहा है। जिनदेव का शुद्ध वचन... वचन कुछ उनका है नहीं। ऐसा अर्थ करे, देखो! उनका शुद्ध वचन कहा।

मुमुक्षु : हो तो कहे या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : हो तो क्या हुआ? वह तो निमित्त का कथन है। वाणी भगवान आत्मा की कैसी? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वही लिखा है। प्रवचनसार में तो नीचे लिखा है। श्रुतज्ञानी के लिये। कि वाणी सुनते हैं, उसको श्रुत कहना और उससे श्रुतज्ञान है, ऐसा कहना, वह तो उपाधि है। (द्रव्य) श्रुतज्ञान का शब्द निकालकर जो ज्ञान की पर्याय अपने से हुई, उसको ही श्रुतज्ञान कहते हैं। प्रवचनसार में तो श्रुतज्ञानी की बात करते हैं। यह तो केवलज्ञानी है। वाणी में निमित्त कौन था, उसको बताते हैं। तीन लोक के नाथ केवलज्ञानी परमेश्वर ऐसे वीतराग परमेश्वर की ऐसी वाणी। देखो! शुद्धवचन। वाणी में ऐसी सामर्थ्य है। समझ में आया? बुधपुरुषों को कहते हैं। ज्ञानी समझदार पुरुष को कहते हैं। न समझे, उसको तो लाख बात करे तो भी समझे नहीं, ऐसा कहते हैं। शोभालालजी! आहाहा!

भाई! तुम प्रभु हो न! भाई! तेरी चीज़ अन्दर निराली पड़ी है। समझ में आया? दृष्टान्त दिया है भाई ने। ऐसा कहते हैं कि पाईप है, उसमें पवन है, वह पवन भिन्न है और पाईप भिन्न है। उसने दिया है। यह पोरबन्दरवाले ने। मेयर। जाति मेयर है। जैसे अपने बनिये हैं, वैसे उसकी मेयर जाति का आर्य। उसने कहा कि पाईप, उसमें पवन वह भिन्न चीज़ है, पाईप भिन्न चीज़ है। नली... नली। नली है, उसमें पवन भिन्न और नली भिन्न है। वैसे नली-शरीर भिन्न है और पवन—आत्मा चैतन्य भिन्न है, ऐसा लिखा है। ऐसा लिखा है उसमें। उसके शब्द हैं, हों! यहाँ बहुत बार आते हैं। अन्यमति है

वैष्णव। नौकरी करते हैं। घर में आठ लोग हैं। बड़ा पत्र है।

पानी की बात कुछ बात कही होगी, उसमें से डाला है। नली का दृष्टान्त दिया है। यह रहा देखो। नली और हवा दोनों एक नहीं है। आज पत्र आया है। है कोई मेयर... वहाँ नेमिदासभाई है न, वहाँ सुनने जाये। बहुत वर्ष से। नली और हवा दोनों एकरूप नहीं है। वस्तु भिन्न, गुण भिन्न, गुरुदेव ने समझाये हुए दृष्टान्त से स्पष्ट किया है। क्या कहते हैं आपकी भाषा में?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। नली के दृष्टान्त से आत्मा और शरीर भिन्न है। उसको तो शरीर भिन्न, ऐसा सुनते ही... पागल कोई कहता था, कहे। पागल कहे आत्मा और शरीर भिन्न। अरे! भगवान! क्या कर रहा है तू? भाई! आया है। अन्यमति जैसा अर्थ लिखे। दृष्टान्त उसने अपनेरूप से लिखा है। नली का। बहुत बड़ा लिखा है। भुंगली। भुंगली समझते हो न? नली। ऐसे यह नली है। उसमें पवनरूपी चैतन्य तो भिन्न है। पवन उसमें रहता नहीं। भिन्न चीज़ है। दृष्टान्त है। पोपटभाई! कहो, बनिया नहीं, जैन में जन्मा नहीं। वह तो आत्मा है न? आहाहा! ऐसा स्वरूप का ध्यान करना, वह धर्म है, ऐसा लिखता है भाई! ऐई! अन्दर विकल्प छोड़कर उसमें एकाग्र होना, इसका नाम धर्म है। आपने कही, बात ऐसी ही है। चिमनभाई!

कहते हैं कि अहो! जिनदेव का—वीतरागदेव का शुद्ध वचन। ऐसे वचन ज्ञानी का होता है, शरीर और आत्मा अत्यन्त भिन्न है और पुण्य-पाप का विकल्प और आत्मा अत्यन्त भिन्न है। सुबह में आया था। क्या आया? बराबर। अरे! **इस भुवनविदित को...** यह बात तो जगत में प्रसिद्ध सत्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है? **इस भुवनविदित को (इस जगतप्रसिद्ध सत्य को), हे भव्य! तू सदा जान।** यह तो जगतप्रसिद्ध है। भगवान आत्मा शरीर से, राग से अत्यन्त भिन्न है, वह तो जगत प्रसिद्ध है। जैसे सिद्ध प्रसिद्ध हैं, सिद्ध प्रसिद्धं—आता है न स्तुति में? सिद्ध की स्तुति नहीं आती?

मुमुक्षु : ....आचार्य की आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आती है। स्तुति आती है। सिद्ध प्रसिद्धं। प्रसिद्ध सिद्धं। सिद्ध

प्रसिद्ध सिद्ध है। वैसे यह भी प्रसिद्ध सिद्ध जगत में है, कहते हैं। जगत में तो प्रसिद्ध है, तुमको खबर नहीं? पुण्य-पाप के भाव और आत्मा भिन्न है, शरीर से आत्मा भिन्न है—यह तो जगत प्रसिद्ध है। आहाहा! **भुवनविदित को हे भव्य! तू सदा जान।** आहाहा! वह ४६ गाथा हुई।

४७ (गाथा)।

जारिसिया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीव तारिसा होंति।
जर-मरण-जम्म-मुक्का अट्ठ-गुणालंकिया जेण॥४७॥

अब सिद्ध और आत्मा समान है, वह बताते हैं। शक्ति, हों! पर्याय की अपेक्षा से बात नहीं।

है सिद्ध जैसे जीव, त्यों भवलीन संसारी वही।
गुण आठ से जो है अलंकृत जन्म-मरण-जरा नहीं॥४७॥

अरे रे! चिल्लाने लगते हैं। अरे! हमारे जन्म-मरण-जरा कुछ नहीं? तब किसको? अरे! सुन न! अरे... सुन न! यह तो तेरी पर्याय में है, वस्तु में कहाँ है? समझ में आया? जहाँ दृष्टि... आहाहा!

इसकी **टीका:—शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के अभिप्राय से....** लो। शुद्ध द्रव्य भगवान आत्मा त्रिकाली द्रव्य की दृष्टि से... जो शुद्धद्रव्यार्थिकनय। शुद्ध त्रिकाली शुद्ध, द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसका जिसका प्रयोजन है, ऐसा जो नय-ज्ञान, उस **नय के अभिप्राय से संसारी जीवों में....** मुक्त जीवों में, **अन्तर न होने का कथन है।** 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आता है या नहीं यह? बनारसीदास में। 'सर्व जीव है सिद्ध सम...' सर्व जीव है ज्ञानमय। योगीन्द्रदेव में। सर्व जीव ज्ञानमय... जितने अनन्त आत्मायें, वे ज्ञानमय हैं। तुम भी ज्ञानमय हो और वह भी ज्ञानमय है। सर्व जीव है ज्ञानमय, वह जाने, वह समता रखे, ऐसा आता है न भाई कुछ? समताभाव रखे।

कोई विरोधभाव हो, उसका राग-द्वेष आदि अज्ञान, वह तो उसका है नहीं। तुझे क्या देखना उसमें? तू पर्यायदृष्टि से तुझे देख तो दूसरे को पर्यायदृष्टि से देख। तेरी दृष्टि में द्रव्यस्वभाव शुद्ध आनन्दकन्द देख तो दूसरे को भी ऐसा देख। पर्याय है, उसको गौण

कर दे। आहाहा! कहते हैं, **शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से....** भगवान शुद्ध ध्रुव चैतन्य की दृष्टिवाले नय से संसारी जीव, निगोद का जीव और मुक्त सिद्ध जीव, दोनों में वस्तुदृष्टि की अपेक्षा से कुछ अन्तर नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अहो! अब जरा सिद्ध कैसे होते हैं, वह बात जरा मुनि करते हैं।

सिद्ध भगवान होते हैं, वह कैसे होते हैं? **जो कोई अति-आसन्न-भव्यजीव हुए,....** ओहो! अल्प काल में जिसको मुक्ति होनेयोग्य है, ऐसे—निकट में मोक्ष के योग्य हैं, ऐसे—जीव हुए, **वे पहले संसारावस्था में संसार-क्लेश से थके चित्तवाले होते हुए....** राग-द्वेष और मिथ्यात्व जो संसार क्लेश है, उससे थके। थकान... यह नहीं... यह नहीं... थकान समझते हो या नहीं? चलते-चलते थकान लग जाये। थकान लगी, थकान लगी कहते हैं। आहाहा!

पहले संसारावस्था में संसार-क्लेश से.... देखो! चार गति के भाव जो हैं, वह क्लेश है। उस **क्लेश से थके चित्तवाले होते हुए....** थकान लगी, यह नहीं... यह नहीं... चार गति के भाव जो (संसार) क्लेश, जो दुःख, वह नहीं। समझ में आया? बहुत चलते-चलते थक जाते हैं न लोग? आठ-दस कोस चले तो थक जाये। बाद में आराम करने को मिले तो अपने पड़ाव डाले। थक जाते हैं। इसी प्रकार कहते हैं कि जिसको गति में परिभ्रमण करने की थकान लगी हो। समझ में आया? थकान... थकान लगी हो। आहाहा! समझ में आया?

संसारदशा में संसार क्लेश से, इस संसारदशा में संसार क्लेश है। राग-द्वेष मिथ्यात्व उदयभाव, वह क्लेश है। आहाहा! शुभभाव, अशुभभाव, वह सब क्लेश है, क्योंकि दुःख है। समझ में आया? संसारदशा में क्या है? भाव क्या है? शुभ-अशुभ निगोद में भी है। वह संसारदशा है। नित्यनिगोद में शुभ-अशुभभाव तो निरन्तर चलते ही हैं। वह संसारदशा है। उदयभावदशा, वह संसारदशा है। संसार क्लेश से थके चित्तवाले... थके चित्तवाले... बाहर से नहीं। अन्दर मन में थकान लगी है। अरे! चौरासी के अवतार, जन्म-मरण करते-करते थक गये। भगवान! यह दुःख सहन नहीं होता है। ऐसा कहते हैं न? स्तुति में आता है न? थक गये।

सहजवैराग्यपरायण होने से... सहज वैराग्य... वह क्लेश पुण्य-पाप के परिणाम से भी वैराग्य। स्वाभाविक वैराग्यपरायण होने से... उत्कृष्ट साधु की बात करते हैं न? **द्रव्य-भावलिंग को धारण करके....** जिसको वीतरागीपर्याय प्रगट करके भावलिंग और द्रव्यलिंग नग्नदशा (हुई) अथवा अट्ठाईस मूलगुण विकल्प, वह भी द्रव्यलिंग है, पंच महाव्रत का विकल्प, वह भी द्रव्यलिंग है। समझ में आया?

परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त किए हुए... देखो! निमित्त कैसा है? **परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त किए हुए...** गुरु महासन्त वीतरागी मुनि निर्ग्रन्थ। ऐसा प्रसाद प्राप्त हुआ। प्रसाद से प्राप्त हुए, मेहरबानी से प्राप्त हुए। क्या? **परमागम के अभ्यास द्वारा...** परमागम के अभ्यास द्वारा। परम ज्ञानस्वरूप जो आत्मा, उसके अभ्यास द्वारा... अन्तर परमागम ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा की पर्याय, उसका अभ्यास करते-करते... उस परमागम में दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आ गये। समझ में आया? आहाहा! परमागम में ऐसा कहा है, गुरु ने ऐसा कहा, ऐसा अभ्यास अन्तर में किया, ऐसा कहते हैं। क्या कहा, समझ में आया? जो गुरु, परमगुरु हैं, वह तो यही कहते हैं कि तेरा आत्मा आनन्दस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता कर, वह परम आगम का अभ्यास है। समझ में आया? ज्ञान का अभ्यास कहो, आत्मा का अभ्यास कहो, परमागम का अभ्यास कहो—एक ही बात है। समझ में आया?

परमागम के अभ्यास द्वारा सिद्धक्षेत्र को प्राप्त करके... उसके द्वारा सिद्धक्षेत्र को प्राप्त किया। समझ में आया? देखो! इसमें ऐसा नहीं कहा कि व्यवहार विकल्प पंच महाव्रत से सिद्धक्षेत्र को प्राप्त हुआ। वह राग तो भिन्न है। उससे आत्मा की क्या प्राप्ति होती है आत्मा को? समझ में आया? कितनी बात ली है! ओहोहो! आसन्नभव्य जीव हुए। अति आसन्नभव्य जीव। पहले संसारक्लेश से थके चित्तवाले... सहज वैराग्य परायण—तत्पर होने से, सारे विकल्प से और पर से उदास।

वह **द्रव्य-भाव लिंग को धारण करके...** निमित्त भी साथ में लिया। वीतरागी-पर्याय—अकषाय पर्याय धारण जो भाव है और अट्ठाईस मूलगुण और नग्नदशा, वह निमित्त है। समझ में आया? जो कोई सिद्ध होता है, इस स्थिति से सिद्ध होता है। कोई

तीन कषाय के अभाव बिना सिद्ध हो और लिंग में निमित्त नग्नदशा और अट्ठाईस मूलगुण न हो और सिद्ध हो—ऐसा नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : निमित्त से होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो शब्द क्या आवे व्यवहार कथन में? कारण अर्थात् है। ऐसा है। वीतरागी निर्मल पर्याय मोक्ष के मार्ग की वह भी है, साथ में विकल्प और शरीर की नग्नदशा है, विकल्प आस्रवतत्त्व है, शरीर की अवस्था अजीवतत्त्व है। दोनों निमित्तरूप हैं, वह जानते हैं। समझ में आया? परमागम के अभ्यास द्वारा... बाद में अभ्यास किसका किया? धारण यह किया भले। समझ में आया? आयी दो बातें। परन्तु अभ्यास किसका किया?

परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त हुए परमागम के अभ्यास द्वारा... समझ में आया? अन्तर में भगवान ज्ञानस्वरूप जाननस्वभाव का अभ्यास, ज्ञान की एकाग्रता, स्वरूप की एकाग्रता के अभ्यास द्वारा सिद्धपद को प्राप्त हुआ। समझ में आया? आहाहा! निमित्त ऐसा था, उसका ज्ञान कराया। निमित्त ऐसा ही होता है। मुनि भावलिंगी हो और बाह्य में वस्त्र-पात्र रह जाये और अट्ठाईस मूलगुण के अतिरिक्त दूसरा अव्रत या रागादि का विकल्प हो, ऐसा होता नहीं। परन्तु अभ्यास किसका किया अब? यह तो बात... आहाहा! **परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त किए हुए परमागम के अभ्यास द्वारा सिद्धक्षेत्र को प्राप्त करके...** सिद्धक्षेत्र प्राप्त करके, देखो! यहाँ पर्याय में भी सिद्धक्षेत्र प्राप्त किया, वहाँ (क्षेत्र में) सिद्धक्षेत्र वहाँ प्राप्त किया। अव्याबाध-बाधारहित सकल-विमल सर्वथा निर्मल केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसुख, केवलवीर्ययुक्त सिद्धात्मा हो गये। वह परमात्मा सिद्धदशा हो गयी। आहाहा! यह 'णमो सिद्धाणं'। समझ में आया कुछ? यह बात है।

कि जो शुद्धात्मा कार्यसमयसाररूप है। कि जो सिद्धात्मा उसको कार्यसमयसार कहते हैं। अथवा कार्यशुद्ध कहते हैं। अथवा कार्य अपेक्षा से शुद्ध। उसकी निर्मल पर्याय पूर्ण हो गयी है कार्य। कार्य अपेक्षा से सिद्ध भगवान को शुद्ध कहते हैं। समझ में आया? कठिन बात कही। **जैसे वे सिद्धात्मा हैं, वैसे ही शुद्धनिश्चय से भववाले जीव हैं।** जैसे यह सिद्धात्मा हैं, वैसे ही शुद्धनिश्चय स्वभाव की दृष्टि से देखो तो... भवलीन

शब्द पड़ा है न उसमें? भववाले जीव ऐसे ही हैं। पर्याय को न देखो तो वस्तु तो ऐसी ही है। आहाहा! समझ में आया?

शक्तिरूप तो मुक्त ही है, सिद्ध ही है। समझ में आया? व्यक्तरूप—प्रगटरूप मुक्तदशा जिसको प्राप्त हुई, ऐसा यह आत्मा शक्तिरूप मुक्तस्वरूप ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परन्तु कैसे बैठे अन्दर से? बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं, शुभभाव हो तो ठीक पड़े—ऐसा आग्रह जिसको हो, उसको ऐसी बात अन्तर में बैठती नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि जैसा वह कार्यशुद्ध भगवान आत्मा उसको कार्यसमयसाररूप कहा; उसी प्रकार भववाले जीव भी ऐसे हैं। **जिस कारण वे संसारी जीव सिद्धात्मा समान हैं,...** वस्तुरूप से, द्रव्यरूप से, स्वभावरूप से दोनों समान हैं। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आता है या नहीं यह? 'चेतनरूप अनूप....' परन्तु यहाँ सिद्ध समान कहा। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' बनारसीदास ने कहा। मैं तो सिद्ध समान ही द्रव्यस्वभाव त्रिकाल हूँ। उनको प्रगट पर्याय है। मुझमें वह शक्तिरूप ऐसा ही अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि पड़ा है। आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, वीर्य ऐसा पड़ा ही है। उनको प्रगट है। यहाँ अप्रगट है। परन्तु वस्तुरूप से वह समान है। वस्तु में फेरफार नहीं। आहाहा! देखो! यह सम्यग्दर्शन का विषय। अन्तर्मुख ऐसा तत्त्व है सिद्ध समान, उसकी अन्तर्दृष्टि करने से पर्याय का भेद ऐसा लक्ष्य में से छोड़ देने से। छठवीं गाथा में आया न? '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।**' कौन सी पर्याय बाकी रह गयी? जहाँ १३वें गुणस्थान और १४वें गुणस्थान की पर्याय भी मैं नहीं। समझ में आया?

ऐसे भगवान जैसे सिद्ध हैं, वैसे संसारी जीव हमारे समान हैं। द्रव्यदृष्टि करने से, शुद्ध दृष्टि करने में जो चीज़ पड़ी है, वह तो सिद्ध समान ही है। अभेद चिदानन्द भगवान... वह सिद्ध की दशा—पर्याय प्रगट है। यहाँ सिद्ध जैसा ही द्रव्यस्वभाव है। **उस कारण वे संसारी जीव जन्म-जरा-मरण से रहित....** देखो! आहाहा! भगवान वस्तुस्वभाव, उसमें जन्म-मरण क्या आया? जन्म-जरा-मरण, हों! आत्मा द्रव्यस्वरूप में जन्म कहाँ? जरा अर्थात् वृद्धावस्था कहाँ? और शरीर का अन्त, ऐसा मरण कहाँ?

आहाहा! भगवान अन्तर्मुख चैतन्य प्रभु वह तो सिद्ध समान जन्म-मरण और वृद्धावस्था से रहित है।

भाई! वृद्धावस्था में शरीर काम नहीं कर सके, युवा अवस्था में आत्मा काम कर सके, शरीर को लेकर। ऐसा है या नहीं? ... में यह अधिकार आया था, उन लोगों को श्वेताम्बर में। परदेशी राजा थे न, परदेशी राजा? एक... स्वामी को मिला। यह तो कथा बनायी होगी। ... स्वामी थे एक। पार्श्वनाथ। चार ज्ञान के स्वामी थे। मिले। परदेशी जीव माने नहीं। उसने प्रश्न किया कि महाराज! तुम शरीर और जीव को भिन्न मानते हो? हाँ। शरीर और जीव को हम भिन्न मानते हैं। उसका बड़ा भाई था उसकी तरह ... मुनि। क्या कहते हैं? ....प्रधान। यह... प्रधान आत्मा का वर्णन किया है। बौद्ध में है। परदेशी राजा अर्थात् आत्मा, राग को अपना माननेवाला ऐसा आत्मा परदेशी, वह चितप्रधान। यहाँ राजकोट में पढ़ा था अपन ने। ८९ के वर्ष। तीन-तीन हजार लोग। राजकोट, (संवत्) १९८९ वर्ष। ८९। कितने वर्ष हुए? ११ और २५=३६ वर्ष। तीन-तीन हजार लोग। सुधरेवाले ऐसे ठाठ जमे। एक घण्टा पहले आवे। तीन-तीन हजार लोग। ... में श्वेताम्बर में। वहाँ पढ़ा था।

तो.... वहाँ उसको ले गये कि चलो तो सही। ...घोड़े पर सवारी करे। घोड़े समझे? अश्व। तो अश्व थक गया तो वहाँ जाकर वन में उतारा। जहाँ मुनि बैठे थे। वरना परदेशी तो जाये नहीं अनार्य जैसा। परन्तु उसको घोड़े पर बैठाया। नये घोड़े आये थे ऊँचे अश्व। अश्व। राजा था न, तो बहुत ऊँचे कहीं से आये थे भेंट में। तो ... उसका बड़ा भाई था। अब दीवानपना था। यह राजा था। भाई! अपने घोड़े नये आये हैं न? घोड़े पर सवारी करने को जाते हैं। चलो चलें। उसका हेतु था मुनि के पास ले जाना। वैसे तो मुनि के पास आये नहीं। घोड़े को इतना दूर ले गये कि राजा थक गया। अन्दर बैठा था। अरे! चिता! गाड़ी को घुमाओ। थकान लगी है।

वन में मुनि बैठे थे। वहाँ ले गये। घोड़े को छोड़ दिया। टहल करते-करते। यह कौन? महाराज! यह मुनि हैं। यह मुनि शरीर और जीव को भिन्न मानते हैं। वह भिन्न नहीं मानता था न? चित ने कहा—उसके दीवान को। शरीर और जीव को भिन्न मानते

हैं। हैं! शरीर, जीव भिन्न। वहाँ चलें चिता! हम चलें। हाँ, साहेब! चलो। फिर प्रश्न पूछा। शरीर और जीव भिन्न है? हम प्रश्न करते हैं, परदेशी कहे। शरीर जवान हो तो आत्मा बहुत काम कर सकता है शरीर से और वृद्ध हो तो काम नहीं कर सकता, देखो! आत्मा और शरीर एक है तो ऐसा होता है। ऐसा प्रश्न किया परदेशी राजा ने। बहुत प्रश्न आया।

देखो! शरीर मजबूत हो तो कितना काम कर सकता है। मण, दो मण... होता है उसमें से उठावे कहाँ से? अरे! परदेशी! मूढ़ है? ऐसा कहा जरा, हों! मूंढा... मूढ है। चितप्रधान साथ में थे। मूंढा परदेशी? मूढ हो तुम? क्या? वह तो कांवड़ जैसी। कांवड़ समझते हैं? कांवड़ नहीं होती, पानी भरने की।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह। तो कांवड़ जीर्ण हो तो जवान आदमी क्या करे? कांवड़ है वह तो। समझ में आया? कांवड़ है। बाँस जीर्ण हो तो... उठाने का होता है न? क्या कहते हैं उसको? रस्सी... रखने की हो। मण रखे तो वह जीर्ण हो जाये, पड़ जाये। जवान में ताकत नहीं, ऐसा नहीं, परन्तु वह साधन कच्चा है। वैसे शरीर कच्चा है परन्तु शरीर आत्मा है नहीं। समझ में आया? वह तो बहुत प्रश्न चलते थे।

कहते हैं कि अरे! वर्तमान जीव जन्म-मरण से रहित है। जैसे सिद्धरहित हैं, राग से-शरीर से-कर्म से; उसी प्रकार भगवान आत्मा अभी राग से, शरीर से, कर्म से रहित है। **उस कारण वे संसारी जीव जन्म-जरा-मरण से रहित और सम्यक्त्वादि आठ गुणों की पुष्टि से तुष्ट हैं...** इससे रहित है और सम्यक्त्वादि आठ गुणों से **(-सम्यक्त्व, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु तथा अव्याबाध इन आठ गुणों की समृद्धि से आनन्दमय है।)** आत्मा। अन्दर स्वभाव में, हों! आठ गुणों से अनन्त शक्ति में अन्दर आनन्दमय आत्मा है। समझ में आया?

सम्यक्त्वादि आठ गुणों की पुष्टि से तुष्ट हैं... पुष्टि से तुष्ट है। तुष्ट अर्थात् आनन्दमय है। आठ गुणों को धारण करने से आनन्दमय आत्मा है। अभी आत्मा ऐसा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! निगोद का आत्मा भी ऐसा है। यहाँ तो संसारी की... वस्तु तो वस्तु

है। पूरा शक्तिरूप तत्त्व वस्तु चैतन्यतत्त्व उसमें तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, समकित आदि अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। वह सिद्ध को प्रगट है, यहाँ शक्तिरूप अप्रगट है। परन्तु वस्तुरूप से तो सिद्ध समान ही आत्मा है। समझ में आया? यहाँ शुद्धभाव कहते हैं, वह सिद्ध समान जीव को कहते हैं और वह जीव ऐसा है, उस पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शनरूपी धर्म की पहली पर्याय प्रगट होती है। उसके अतिरिक्त दूसरे कोई क्रियाकाण्ड करने से... बहुत डाला है भाई ने। व्रत आदि करने से, बाह्य में व्यवहार भले साधन करे, बाह्य का त्याग करे। बाद में उसकावे समकित होता है, ज्ञान होता है। बहुत डाली है विपरीतता। आहाहा! ऐसे पुस्तक समयसार के नाम पर, उससे ज्यादा तो पण्डित जयचन्दजी ने कितना अच्छा अर्थ किया है! पण्डित जयचन्दजी ने अर्थ किया है, उनको वह मान्य नहीं। अरे! भगवान! क्या करता है? और साधु नाम धराये। भाई! वह सत्य का अनादर होता है। वह सुख का मार्ग नहीं, भाई! समझ में आया? जिस मार्ग पर जा रहे हो, वह संसार का फल है।

यहाँ तो रागरहित, राग की अपेक्षा जिसको नहीं। ऐसी चीज़ भगवान आत्मा... व्यवहार पहले करे, तो पहला व्यवहार और बाद में निश्चय, ऐसा लिखा है ... में। प्रथम यह है, बाद में यह है। यहाँ कहते हैं कि... और दोनों को मोक्षमार्ग कहा है। व्यवहार और निश्चय दोनों मोक्षमार्ग है। यहाँ भाई टोडरमलजी ने कहा, दो मोक्षमार्ग है ही नहीं। उसकी श्रद्धा नहीं होती, इसको। मोक्षमार्ग एक ही है। दो तो कथन में आता है निमित्त देखकर। मोक्षमार्ग दो है नहीं। वह तो लिखा है, स्पष्ट लिखा है। दो मोक्षमार्ग है। पहले व्यवहार आता है, व्यवहार के फलरूप से निश्चय आता है। आहाहा! अरे! भगवान! क्या करता है? साधु नाम धरावे और ऐसा काम करे! गजब काम करे!

लोगों को बेचारों को पता नहीं। सम्प्रदाय में लोगों को फुरसत नहीं मिलती। चीज़ क्या है और कैसे होती है? निवृत्ति, समझे क्या कहते हैं? फुरसत। फुरसत नहीं। ऊपर बैठते हैं उसका मान ले। झुकावे। झुकानेवाला चाहिए। झुकनेवाला तो तैयार है। जैसे कहे कि हाँ। आहाहा! कहते हैं कि उसकी स्वीकृति तुझे कैसे आवे? जैसे सिद्ध के गुण प्रगट हैं समकित आदि, वैसे ही गुण मुझमें हैं। समझ में आया? बिल्कुल अल्प

नहीं, कम नहीं, अधिक नहीं, ऐसी चीज़ मुझमें है। ऐसी द्रव्यदृष्टि करना, वह महापुरुषार्थ है। समझ में आया?

यह सारा आत्मा अन्तर्मुख तत्त्व... अन्तर्मुख आया था न? निःशेष अन्तर्मुख। पहले आया था। निःशेष अन्तर्मुख आया था। **विशेषरूप से अन्तर्मुख होने के कारण निर्मद है।** कल निर्मद की बात कही थी रात्रि को? पूछा था न मान और निर्मद। **वहाँ निश्चय परमसदा समरसीभाव स्वरूप होने के कारण निर्मान है और निश्चयनय से निःशेष अन्तर्मुख होने के कारण से निर्मद है।** ऐसा कहा। आहाहा! एक मूल पर्यायदृष्टि ही उसको अनादि से हुई है। एक अंश को देखते हैं, राग को देखते हैं, निमित्त को देखते हैं, वह पर्यायदृष्टि है। वह पर्यायदृष्टि ही मिथ्यात्वभाव है।

अनादि-अनन्त चैतन्य वस्तु... क्या सेठ! प्रश्न किया या नहीं? ऐसा कहे कि वह उपदेशक को किया है ऐसा कहे। तुमने माना, इसलिए तुमने किया। ऐसा है नहीं, सेठ! आहाहा! जिनभगवान तो ऐसा फरमाते हैं, देखो न! शुद्ध जिनवचन ऐसा कहते हैं। जिनपति का शुद्ध वाक्य। जिनपति का शुद्ध वाक्य ऐसा है और भुवनविदित है। वह तो जगत में प्रसिद्ध है। तुमको कैसे नयापन लगता है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रभु! वह विकल्प दया, दान, व्रत आदि से भिन्न है तो भुवनविदित है, जगतप्रसिद्ध है और जिनपति का शुद्धवाक्य है। समझ में आया? आहाहा! यह भेदज्ञान की बात है। ऐसा भेदज्ञान करना, उसका नाम सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन है। साथ में विपरीतता रखकर शुभभाव मेरा है, ऐसा है, वैसा है—यह तो मिथ्यात्वभाव है। देवीलालजी! आहाहा!

भगवान! तुम जैसे हो, वैसा लक्ष्य में लो, फिर अन्तर्दृष्टि में जा तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा, धर्म होगा तो उस मार्ग पर चलेगा। सम्यग्दर्शन बिना मार्ग में नहीं। वह तो कुमार्ग है। आहाहा! अरे! भाई! थोड़ा दुःख भी तुझे ठीक नहीं लगता है तो महामिथ्यात्व का महा दुःख कैसे सहन होगा? भगवान! आहाहा! समझ में आया? एक जरा थोड़ा दुःख हो, एक चींटी काटे चींटी। चींटी कहते हैं न, कीड़ी? मकोड़ा ऐसा होता है न मकोड़ा? ऐसा काटे कि टूट जाये, दो भाग हो जाये परन्तु छोड़े नहीं। पहले चिल्लाये। बाद में कुछ नहीं होता। मकोड़ा। मकोड़ा कहते हैं न? भाई! इतना दुःख तुझे प्रतिकूल लगता

है, ठीक नहीं, तो आत्मा जैसा है वैसा न मानकर विपरीत मान्यता का महादुःख नरक-निगोद का कैसे सहन होगा तुझे? आहाहा! पैसे आदि सब हों। १०६ डिग्री बुखार आये। भगवानजीभाई! लो, पैर में दर्द हुआ तो घर पर पड़े रहे। पैसे, पैसे के पास रहे, लड़का लड़के के घर पर गया।

मुमुक्षु : लड़का चला गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो यहाँ बैठकर क्या करे? कब तक बैठा रहे? वह सब ठगों की टोली है। इसमें आता है। ऐई! चिमनभाई! स्त्री, पुत्र, माँ-बाप सब ठगों की टोली है (जो) कि आजीविका के लिये तुझे मिली है।

मुमुक्षु : लुटाने को तैयार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जानबूझकर लुटाता है। ऐई! भीखाभाई! है न कहीं? कहाँ पर है। आजीविका के लिये ठगों की टोली मिली.... वह कहीं है। उसमें लिखा है। यह तो नया है न हिन्दीवाला? है न उसमें? यह है न। कहीं पर है। ठगों की टोली। इस ओर है। कलश है, कलश। कौन सी जगह है, वह खबर है। १९६ पृष्ठ पर। गुजराती? दोनों पृष्ठ एक हैं। देखो! अरे! स्वयं किये हुए कर्मफल... इसमें देखो न? कौन सा पृष्ठ कहा? १९६। **स्वयं किये हुए कर्म के फलानुबन्ध को स्वयं भोगने के लिये तू अकेला जन्म में तथा मृत्यु में प्रवेश करता हैं, अन्य कोई (स्त्री-पुत्र-मित्रादिक) सुख-दुःख के प्रकारों में बिल्कुल सहायभूत नहीं होता;...**

मुमुक्षु : .... पैर दबाते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैर धूल में दबाते नहीं। वहाँ दबावे तो क्या करे? पाँच डिग्री बुखार हो।

एक लड़की थी बारह वर्ष की, हों! उसको कुत्ते ने काटा। कुत्ता—पागल कुत्ता। बाद में हमारे प्रेमचन्दभाई थे न? उसके पहिचानवाले थे। तो वह लड़की थी। बारह वर्ष की ब्राह्मण की, वह उसमें पागल हो गयी। उसमें वह... क्या कहते हैं? हड़कवा। ४८ घण्टे तक पानी की बूँद नहीं, कुछ नहीं, ऐसे के ऐसे मर गयी। प्रेमचन्दभाई नहीं

अपने? राणपुरवाले थे। उसके पास गये। क्या हुआ बहिन? भाई! चाचा! मुझे कहीं ठीक नहीं लगता। कुछ उसे हवा नहीं दिखे–हवा ठीक न पड़े। सब देखे उसके माँ-बाप। बाप तो मर गया था। माँ और भाई सब। क्या करे? वह कहते हैं कि स्त्री-पुत्र-मित्रादिक। १०६ डिग्री बुखार हो तो स्त्री देखे। क्या आपको है? भाई! मुझे हो रहा है वह सहन नहीं होता। आहाहा!

आता है न उसमें? 'सगी नारी रे तारी कामिनी, खड़ी टगटग देखे, अरे काया में अब कुछ नहीं।' अन्तिम स्थिति हो गयी। २५ वर्ष की जवान अवस्था। दो वर्ष की शादी। आहाहा! 'अरे काया में अब कुछ नहीं, खड़ी सुबक-सुबककर रोवे जी।' धुसके समझते हो न? (सुबक-सुबककर) हाय... हाय... ऐसे रोने लगे। परन्तु क्यों रोने लगे? कहते हैं कि **अपनी आजीविका के लिये ठगों की टोली तुझे मिली है।** है उसमें? ठगों अर्थात् लुटेरे। ऐई! मगनभाई! कठिन भाई! उसमें धुतारा, अपने यहाँ ठग कहा।

(मात्र अपने स्वार्थ के लिये स्त्री-पुत्र-मित्रादिक).... सब ऐसे हो। मित्र भी ऐसे सब। अच्छा हो तब तक ठीक, वरना सामने देखे भी नहीं। पैसावाला हो तो सामने जाये, तब देखने जाये, हम आपके मित्र हैं, हम आपके सगे हैं। आपके साले के साले हैं। ऐसा सम्बन्ध लेकर आये। ऐसे सगा साला हो, पैसा-बैसा न हो तो सामने न देखे। पैसावाला हो जाये तो... समझ में आया? आहाहा! **ठगों की टोली तुझे मिली है।** लिखा है न? ठगों की टोली है। भाई-भाई ठगों की टोली है, ऐसा समझना। आहाहा! पेटी... आहाहा!

कहते हैं कि भगवान आत्मा... तेरा स्वरूप ही ऐसा है। आठ मूलगुण जैसे भगवान को प्रगट हुए, वैसे तुझमें हैं। किंचित्मात्र कम है नहीं। ऐसे भगवान आत्मा की अन्तर्मुख दृष्टि करने से, ऐसी चीज़ को स्वीकार करने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? पर्याय को, राग को, निमित्त को स्वीकार करने से मिथ्यादृष्टि होता है। इसके लिये यह बात करते हैं।

(अब ४७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं-)

(अनुष्टुभ)

प्रागेव शुद्धता येषां सुधियां कुधियामपि।
नयेन केनचित्तेषां भिदां कामपि वेद्म्यहम्॥७१॥

श्लोकार्थः—जिन सुबुद्धियों को.... ज्ञानियों को **तथा कुबुद्धियों को....** मिथ्यादृष्टि को **पहले से ही शुद्धता है,....** चाहे तो मिथ्यादृष्टि हो या चाहे तो सम्यग्दृष्टि हो या सिद्ध हो, परन्तु पहले से ही अपना (स्वरूप) शुद्ध त्रिकाली पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? **उनमें कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ?** मुनि कहते हैं।

मुमुक्षु : व्यवहार से नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार-फ्यवहार है नहीं। व्यवहार असत्यार्थ-झूठा है। देखो! सुबुद्धियों—सम्यग्ज्ञानी हो और केवलज्ञानी हो या कुबुद्धि मिथ्यादृष्टि हो, पहले से ही भगवान (आत्मा) में शुद्धता त्रिकाल पड़ी है।

उनमें कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ? (वास्तव में उनमें कुछ भी भेद अर्थात् अन्तर नहीं है।) ऐसा आत्मा शुद्धभाव त्रिकाली द्रव्यस्वभाव, वह आदरणीय है, उपादेय है, नजर करनेयोग्य है, आश्रय करनेयोग्य है। इसके अतिरिक्त कोई आश्रय करनेयोग्य है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

- भाई! तेरे माहात्म्य की क्या बात! जिसका स्मरण होते ही आनन्द आवे, उसके अनुभव के आनन्द की क्या बात! अहो! मेरी ताकत कितनी! जिसमें नजर डालने से निधान खुल जाये, वह यह वस्तु कैसी! राग को रखने का तो मेरा स्वभाव नहीं। परन्तु अल्पज्ञता को भी मैं रख नहीं सकता—ऐसा इसे प्रतीति में आने पर, मैं सर्वज्ञ होऊँगा और अल्पज्ञ नहीं रह सकूँगा, ऐसा इसे भरोसा आ जाता है। (16)

— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, दृष्टि के निधान

भाद्र शुक्ल १५, गुरुवार, दिनांक - २५-०९-१९६९
गाथा-४८, ४९, श्लोक-७२, प्रवचन-१६

असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा।
जह लोयग्गे सिद्धा तह जीवा संसिदी णेया॥४८॥

विन देह अविनाशी, अतीन्द्रिय, शुद्ध निर्मल सिद्ध ज्यों।
लोकाग्र में जैसे विराजे, जीव है भवलीन त्यों॥४८॥

क्या कहते हैं? **टीका :— और यह, कार्यसमयसार तथा कारणसमयसार में अन्तर न होने का कथन है।** कहते हैं कि सिद्ध भगवान जो पूर्ण केवलज्ञानादि को पाये, वह कार्यसमयसार है और वह आत्मद्रव्य त्रिकाली, वह कारणसमयसार है। समझ में आया? तो सिद्ध भगवान लोकाग्र... देखो! शब्द पड़ा है न? लोकाग्र सिद्धा। सिद्ध भगवान... लोक के अग्र में जो अनन्त सिद्ध हैं, वह कार्यसमयसार कहे जाते हैं और यह आत्मा द्रव्य... दो मिनिट पहले आना चाहिए, सेठी! दो मिनिट पहले आना चाहिए। बीच में गड़बड़ में होती है न? यह तो धर्मकथा है। समझ में आया? यह धर्मकथा है, वह शुरु हो, उसके पहले आना चाहिए, जिसको आना हो उसको। नहीं आना हो उसको कुछ नहीं। क्योंकि यह कथा कोई दूसरी नहीं, यह तो आत्मा की कथा है और उसमें नियमसार है। यह अलौकिक बात है, यह बात। समझ में आया?

सिद्ध भगवान अनन्त केवलज्ञान, अनन्त दर्शन आदि पर्याय सम्पन्न है-वह कार्य सम्पन्न है। पर्याय में पूर्णता, वह कार्य सम्पन्न है। सम्पन्न है, उस कारण उसको कार्यसमयसार कहने में आया है। समझ में आया? ऐसा ही, देखो! **यह, कार्यसमयसार तथा कारणसमयसार....** कारणसमयसार अर्थात् द्रव्य। जो शुद्धभाव अधिकार है, वह त्रिकालीद्रव्य। एक समय की पर्याय लक्ष्य में न लेने से... जो कार्यसमयसार है, वही पर्याय है और संसारपर्याय है, वह भी पर्यायनय का विषय है। तो यहाँ तो कहते हैं कि जैसे सिद्ध भगवान हैं, ऐसा ही आत्मा अनादि संसारी का है। देखो! **'जीवा संसिदी णेया।'** उसकी दृष्टि में यह बात अनादि से बैठती नहीं। यह वस्तु ऐसी है और अन्तर्मुख दृष्टि करके उसका अनुभव लेना, वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? जो अन्तर

वस्तु है वह, कार्यसमयसार सिद्ध भगवान जैसा ही यह आत्मा है। कार्यसमयसार और कारणसमयसार में अन्तर न होने का कथन है। अन्तर है ही नहीं। सिद्ध समान सदा पद मेरो। समझ में आया?

पाठ है, देखो! **'जीवा संसिदी णेया।'** जीव संसार में पर्याय में होने पर भी निगोद की पर्याय में रहते हुए भी, द्रव्यस्वभाव जो अखण्डानन्द अभेद सम्यग्दर्शन का जो विषय है, वह चीज़ तो सिद्ध जैसी ही वह चीज़ है। उसमें कोई भेद नहीं। समझ में आया? वह कथन है। **जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी भगवन्त निश्चय से पाँच शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण 'अशरीरी' हैं,...** लोकाग्र में, लिया देखो यहाँ। धर्मास्तिकाय का अभाव भगवान, यह लोकाग्र में रहनेवाली चीज़। कल प्रश्न हुआ था न? कि धर्मास्तिकाय अभावात्। वह तो व्यवहारनय का कथन है।

लोकाग्र रहते हैं, वह पर्याय का, द्रव्य का स्वभाव ही है। **लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी भगवन्त निश्चय से पाँच शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण...** पाँच शरीर का प्रपंच है वह तो। अभाव... अशरीरी है, ऐसा बाद में सब ले लेना। उसी प्रकार... अन्तिम पंक्ति है। **उसी प्रकार संसार में भी यह संसारी जीव किसी नय के बल से...** अशरीरी है, ऐसा लेना। अन्तिम शब्द है। **जिस प्रकार लोकाग्र में...** सिद्ध भगवान विराजते हैं, ऐसा निश्चयनय, किसी नय अर्थात् निश्चयनय से आत्मा अशरीरी है। अभी अशरीरी है। क्योंकि शरीर की तो उसमें नास्ति है। शरीर, शरीर के कारण से टिकता है, निभता है, रहता है। उस कारण से आत्मा से कुछ (सम्बन्ध) है नहीं। समझ में आया?

ऐसा यह संसारी जीव निगोद से लेकर... द्रव्यदृष्टि से देखो तो कारणसमयसार भगवान त्रिकाली वस्तु कार्यसमयसार सिद्ध भगवान जैसी है। कहो, सेठ! क्या कहा? जैसे सिद्ध हैं, वैसा द्रव्यस्वभाव आत्मा का अभी है।

मुमुक्षु : क्या करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे? उसमें दृष्टि करना, वह करना है; बाकी करना क्या है? द्रव्यस्वभाव ऐसा है, ऐसे अन्तर्मुख दृष्टि करके स्थिर होना, वह करना है। दूसरा करना क्या है? आहाहा! समझ में आया? ऐसा है, ऐसा अन्तर्दृष्टि से निर्णय करना और

ऐसा है, उसमें स्थिर होना। बस, करना, दूसरा क्या करना है? मोक्षमार्ग की बात चलती है न? दर्शन, निर्णय करना और स्थिर होना चारित्र। ज्ञान तो है। समझ में आया? एक बोल हुआ अशरीरी।

'अविणासा' है न ४८ में? **निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों के...** यह मनुष्य का शरीर आदि गति। समझे? यह मनुष्य का, नारकी, देव या पशु ऐसे **पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण....** त्याग-ग्रहण का आत्मा में अभाव है। सिद्ध में अभाव है। त्याग-ग्रहण है कोई? ऐसा आत्मा में है। चार गति का शरीरादि का ग्रहण-त्याग आत्मा में है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो पर्याय में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, वह तो जड़ में है। आत्मा में क्या है? जीव में है ही नहीं। जड़ जड़ की दशा सब है गति (आदि)। गति आदि वह तो पर की अवस्था है, आत्मा की क्या है? आहाहा! ऐसे पूरा उल्टा होकर पर्यायदृष्टि छोड़कर द्रव्यदृष्टि करना, उसका नाम यहाँ मोक्षमार्ग है। समझ में आया?

त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण... अर्थात् क्या? जन्में, तब ग्रहण है; मृत्यु हो, तब छोड़ता है—ऐसा आत्मा में है ही नहीं। सिद्ध में है नहीं तो आत्मा में भी नहीं। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। कब क्या? आहाहा! उसका त्याग-ग्रहण आत्मा में है ही नहीं न! किसको छोड़ना? मृत्युकाल में समाधिमरण करके देह छोड़ना, जन्मकाल में शरीर का संग होता है। किसको? आत्मा में है ही नहीं न जन्म-मरण। आहाहा! समझ में आया?

निश्चय से नर-नारकादि... मनुष्यादि **पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण...** सिद्ध भगवान अविनाशी हैं। सिद्ध भगवान की यह व्याख्या चलती है। ऐसे आत्मा भी द्रव्यदृष्टि से ऐसा ही अविनाशी है। आत्मा में चार गति का ग्रहण-त्याग, जन्म-मरण का त्याग। यह जन्म (अर्थात्) संयोग ग्रहण किया, (मरण अर्थात्) त्याग

किया, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया? **अविनाशी है।** इस कारण से। वह नाशवान कहा न? आता है और जाता है। आता है, जाता है। उत्पाद-व्यय होता है। ऐसी यह वस्तु नहीं। वस्तु तो अविनाशी सिद्ध भगवान है। आता है और जाता है, ऐसा कुछ सिद्ध में है नहीं। उसी प्रकार भगवान आत्मा चार गति का संयोग हो और गति का अभाव हो, ऐसा वस्तु में है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

परम तत्त्व में स्थित.... आत्मा में—परमवस्तु उसमें **सहजदर्शनज्ञानादिरूप कारणशुद्धस्वरूप को....** कारणशुद्धस्वरूप अर्थात् त्रिकाली द्रव्यस्वभाव। परमतत्त्व जो त्रिकाली वस्तु, उसमें स्थित रहनेवाला स्वाभाविक दर्शन-ज्ञान और आनन्द। दर्शन आदि आनन्दरूप कारणशुद्धस्वरूप त्रिकाली द्रव्य, उसको **युगपत् जानने में समर्थ....** एक समय में जानने में **ऐसी सहज ज्ञानज्योति द्वारा....** सहज ज्ञानज्योति द्वारा **जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं, ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण अतीन्द्रिय हैं।** कौन? सिद्ध भगवान। यह आता है न, देखो!

परम तत्त्व में स्थित सहज दर्शनादिरूप कारणशुद्धस्वरूप... त्रिकाली **युगपत् जानने में समर्थ...** कौन? सिद्ध। **ऐसी सहज ज्ञानज्योति द्वारा...** अपनी स्वाभाविक ज्ञानज्योति द्वारा **जिसमें से समस्त संशय दूर...** होकर नि:संशय परिणमन हो गया है। **ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण अतीन्द्रिय हैं।** सिद्ध भगवान। आत्मा अतीन्द्रिय ऐसा ही है। समझ में आया? परमतत्त्व अर्थात् द्रव्यस्वभाव, वस्तु आनन्दकन्द, सहजानन्द में रहनेवाला सहज दर्शन, आनन्द के कारण शुद्धस्वरूप त्रिकाली, उसको एक साथ जानने में समर्थ। कौन? सिद्ध। ऐसी सहज ज्ञानज्योति द्वारा। सिद्ध को पर्याय में। **जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं, ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण अतीन्द्रिय हैं।** उसी तरह आत्मा भी ऐसा ही है।

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अब। वह (सिद्ध) पर्याय द्वारा जानते हैं, इसकी शक्ति में त्रिकाल द्रव्य को जानने की शक्ति द्वारा जानने का ही स्वभाव उसका है। बस, ऐसा कहना है। समझ में आया? सिद्ध भगवान पर्याय द्वारा त्रिकाल परमतत्त्व में स्थित सहज दर्शन, ज्ञान, आनन्द को और सहज ज्ञानज्योति द्वारा जानते हैं, इसलिए सिद्ध भगवान

अतीन्द्रिय हैं; इसी प्रकार यह आत्मा भी अपने अन्तर दर्शन-ज्ञान-स्वभाव की शक्ति द्वारा आत्मा त्रिकाल द्रव्य को जाने, ऐसा सामर्थ्यवाला है, तो उस अपेक्षा से उसको अतीन्द्रिय कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : द्रव्यस्वभाव में शक्तिरूप और पर्याय में व्यक्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे व्यक्तरूप से जानते हैं, यहाँ शक्तिरूप है, ऐसा जानने का उसका स्वभाव है। आहाहा! बहुत कठिन काम। वस्तु... वस्तु... वस्तु कारणसमयसार भगवान है, वह कैसा है, उसको कभी ख्याल में लिया ही नहीं। यह किया, व्रत किया, दया करे... समझे?

कल एक प्रश्न उठा था न रात्रि को? भाई! यह प्रतिक्रमण आदि करते हैं तो शुभभाव है, व्रत का शुभभाव है। वह तो शुभभाव है नहीं और शुभभाव करने को जाता है, कर्तृत्वबुद्धि होती है तो मिथ्यात्व होता है, मिथ्यात्व का पोषण होता है। वह बात है कि सम्यग्दर्शन बिना शुभभाव हो, समझ में आया? व्रत का शुभभाव न हो....

मुमुक्षु : ....गुणस्थान में होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पंचम गुणस्थान में होता है। इसलिए व्रत का शुभभाव और इस शुभभाव में बहुत अन्तर है। इसलिए कोई ऐसा कहे कि जैसे (अज्ञानी को) शुभभाव आता है और कर्तृत्वबुद्धि हो जाये तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसा यहाँ पंचम गुणस्थान में नहीं है। यहाँ शुभभाव हो, परन्तु व्रत का शुभभाव नहीं है यहाँ। यह तो स्वाध्याय का है, भक्ति आदि का शुभभाव है। परन्तु शुभभाव (करनेवाले) का लक्ष्य तो अन्दर होना चाहिए स्वभाव सन्मुख, तो शुभभाव हो, उसका जाननेवाला रहता है और उसमें कर्तृत्वबुद्धि हो जाये, तब तो मिथ्यात्व है परन्तु यहाँ चौथे गुणस्थान में (और) पहले मिथ्यात्व (गुणस्थान) में व्रत का शुभभाव नहीं होता है, इतना बड़ा अन्तर है। समझ में आया?

व्रत का शुभभाव उसको सम्यग्दर्शन बिना और मिथ्यात्व हो, उसमें होता नहीं। सम्यग्दर्शन हो तो भी सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान में व्रत का भाव नहीं होता है। पाँचवें में जब स्वरूप की बहुत दृष्टि और शान्ति प्रगट हुई, तब शुभभाव आया व्रत का। वह

शुभभाव भिन्न है और यह शुभभाव भिन्न है। मिथ्यादृष्टि को भी व्रत बिना का दया, दान, आदि का शुभभाव आता है और सम्यग्दृष्टि को भी व्रत बिना का दया, दान, भक्ति का भाव आता है और व्रत के परिणाम शुभ हैं, वह सम्यग्दर्शन बिना और सम्यग्दर्शन हो तो शुभभाव का कर्तृत्व उसको है नहीं। यहाँ तो सम्यग्दर्शन है नहीं और व्रत का परिणाम मानते हैं कि मैं व्रती हूँ, तब तो व्रती के परिणाम की योग्यता की भूमिका ही नहीं उसकी। पण्डितजी! और वह शुभभाव का कर्तृत्व... क्योंकि उसको रखने का प्रयत्न है (और) दृष्टि तो स्वरूप में है नहीं, अनुभव तो दृष्टि का हुआ ही नहीं और उसको व्रत का परिणाम रखने का भाव हुए बिना, मैं ऐसा रखूँ... मैं ऐसा रखूँ.... समझ में आया? यह तो मिथ्यादृष्टि का पोषण है। यह बात बहुत अलग है।

मुमुक्षु : ऐसा स्वरूप है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा स्वरूप है।

मुमुक्षु : ....न जाने तो क्या होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : न जाने तो मिथ्यात्व का पोषण करता है। न जाने तो दिक्कत कुछ नहीं। दिक्कत किसको? नरक और निगोद में जाये, ऐसी दिक्कत है।

मुमुक्षु : शुभभाव करे तो भी नरक में जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाववाला नरक-निगोद में जाये। उस समय थोड़ा पुण्य बाँधता है (तो) एकाध भव (स्वर्ग का हो), परन्तु मिथ्यात्व का पोषण करता है, मिथ्यात्व निगोद का कारण है। समझ में आया?

व्रत, तप ऐसा जो विकल्प है, वह तो पंचम गुणस्थान से शुरु होता है। सम्यग्दर्शन बिना नहीं। और यहाँ तो सम्यग्दर्शन बिना ही व्रतादि लेते हैं, सम्यग्दर्शन बिना दया, दान, भक्ति, पूजा ऐसा भाव आता है। समझ में आया? तो उससे उसे पुण्यबंध होता है। परन्तु उसका मेरा कर्तव्य है, ऐसा स्वीकार करे तो मिथ्यात्वसहित पुण्यबंध होता है। तो मिथ्यादृष्टि को व्रत के परिणाम होते ही नहीं वास्तव में तो। समझ में आया? इसलिए कहा न कि अज्ञानी को तो बालव्रत और बालतप है।

मुमुक्षु : मिथ्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि... है। अभी चैतन्य निर्विकल्प ज्ञाता-दृष्टा है, ऐसा अनुभव (और) भूमिका तो प्रगटी नहीं सम्यग्दर्शन की।

मुमुक्षु : चारों कषाय मन्द....

पूज्य गुरुदेवश्री : चारों कषाय मौजूद और मिथ्या अभिप्राय मौजूद है। कठिन काम, भाई! समझ में आया? सम्यग्दर्शन में चौथे गुणस्थानवाले को शुभभाव होता है। दया का, दान का, भक्ति का, पूजा का, नामस्मरण का।

मुमुक्षु : यात्रा का

पूज्य गुरुदेवश्री : उसको व्रत का नहीं होता है। यात्रा का। व्रत का उसको नहीं होता है। क्योंकि उसकी भूमिका नहीं है। समझ में आया? तो वहाँ सहज शुभभाव हो, उसको सम्यग्दृष्टि जानते हैं। सहज हो वहाँ जानते हैं। और पंचम गुणस्थान में भी भूमिका की निर्मलता बहुत प्रगट हुई और शुभभाव आया तो उसको भी सहज आया, ऐसा जानते हैं। मैं खींचकर लाऊँ, ऐसा होता नहीं और अज्ञानी को तो खींचकर ऐसा व्रत करना, ऐसा करना, ऐसा पालना, ऐसा आता है। बात बहुत... समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि विकल्प आदि, कर्तृत्व आदि वस्तु में है नहीं। सिद्ध में नहीं है, वैसे ही आत्मा में अभी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वह तो जाननेवाला-देखनेवाला आत्मा है। वह पर्याय से जानते हैं सिद्ध भगवान, यह द्रव्य का स्वभाव, अपने द्रव्य को जाने-देखे, ऐसी शक्ति-स्वभाव उसमें पड़ा है। सिद्ध भगवान कार्यपर्यायरूप परिणमे हैं और आत्मद्रव्य अभी कार्यरूप परिणमा नहीं, परन्तु (शक्तिरूप) है। तो द्रव्यस्वरूप जो कारणसमयसार है, और कार्यसमयसार दोनों में अन्तर नहीं। आहाहा! भारी गड़बड़ हुई है न? कि मूलवस्तु हाथ आना मुश्किल है उसको। और फिर व्रतादि ले लिया हो और है नहीं वस्तु तो। है उसको टालने के लिये छटपटाहट करे अन्दर रखने के लिये। वरना बाहर में इज्जत जाये। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्तानुबन्धी गये बिना दूसरे कहाँ से निकले? कठिन काम

है, भाई! यह तो निर्मानपने काम करने का है। यह कोई मान ले कि हमें ऐसा हुआ है, ऐसा है बाहर से। तो यह चीज़ है नहीं।

यहाँ तो सहजानन्द ज्योति अतीन्द्रिय अविनाशी, निर्विकल्प, राग और मोक्ष की पर्याय की क्रियारहित ऐसा द्रव्य की दृष्टि अनुभव हुए बिना कारणसमयसार की सम्यक् दृष्टि होती नहीं। समझ में आया? पीछे तो **मलजनित क्षायोपशमिकादि विभावस्वभावों के...** देखो! यह तो कहते हैं कि क्षयोपशम, उदय, यह तो मलजनक विभाव है। उसमें कर्म के निमित्त की अपेक्षा है न? विभावभाव है। वह सिद्ध में नहीं, वैसे आत्मा में भी नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **मलजनित क्षायोपशमिकादि....** मलजनक का अर्थ? क्षयोपशम तो है स्वभाव का अंश, परन्तु उसमें कर्म का निमित्त पड़ा है न? क्षायिक हुआ ही नहीं। क्षायिक हो तो भी निमित्त की अपेक्षा से उसको भी विभावभाव गिनने में आया है। त्रिकाली परमस्वभाव की अपेक्षा से। आहाहा!

मलजनित क्षायोपशमिकादि विभावस्वभावों के अभाव के कारण... क्योंकि क्षयोपशम ज्ञान की पर्याय है, उसका आश्रय करे तो राग / मल ही उत्पन्न होता है। सिद्ध में यह है नहीं। **क्षायोपशमिकादि...** क्षयोपशम आदि लेना, उपशम आदि। **विभावस्वभावों के अभाव के कारण (सिद्ध भगवान) निर्मल है।** ऐसे यह आत्मा भी... पीछे शब्द है। **उसी प्रकार संसार में भी यह संसारी जीव....** ऐसे ही है। शुद्धनय से। पाठ में है न? **'जीवा संसिदी णेया' 'जीवा संसिदी णेया'** संसारी जीव को भी ऐसा अन्तर में दृष्टि से जानना। आहाहा!

और द्रव्यकर्मों तथा भावकर्मों के अभाव के कारण.... लो। सिद्ध में नहीं आठ कर्म और नहीं दया, दान के विकल्प का भावकर्म। इसी प्रकार आत्मा... **अभाव के कारण विशुद्ध आत्मा है,....** विशुद्ध आत्मा। देखो! यहाँ सिद्ध को विशुद्धात्मा कहा। केवलज्ञान पर्याय को विशुद्ध कहा। किसी समय शुभभाव को विशुद्ध कहे, किसी समय शुद्धपर्याय निर्मल को विशुद्ध कहे, वह शुद्धपर्याय। कम-ज्यादा शुद्धपर्याय उसको भी विशुद्ध कहे। शुभभाव को विशुद्ध कहे, केवलज्ञान को भी विशुद्ध कहे। समझ में आया? आहाहा!

विशुद्धात्मा है, उसी प्रकार.... देखो! है? **संसार में भी....** यह संसार की विकारी

पर्याय उदयभाव के काल में भी **संसारी जीव किसी नय के बल से...** किसी अर्थात् निश्चयनय के बल से **शुद्ध है।** समझ में आया? और सब (जीव) को लेकर कहा है। यहाँ विशुद्ध आत्मा के लिये कहा, ऐसा नहीं। यह पहले कहा न सब? पहले बोल कहे न? '**असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा।**' इस कारण से... समझ में आया? **शुद्ध है।** भगवान त्रिकाल ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... शुद्धकन्द, आनन्दकन्द दल है। यह तो जैसा सिद्ध की पर्याय में है, ऐसा ही भगवान द्रव्यस्वभाव वस्तु तो ऐसी है। समझ में आया? समझ में आता नहीं। जहाँ रहा... यहाँ अन्तर नहीं। जैसे जीव सिद्धक्षेत्र में बसे वैसे ब्रह्म यहाँ बसे। यहाँ-वहाँ अन्तर नहीं। उसको बात अन्तर के अभिप्राय से बैठनी चाहिए। ऐसा कैसे होगा? ऐसा कैसे होगा? तब यह सब मिथ्यादृष्टि महाव्रत पाले, व्रत के विकल्प हैं, सब मिथ्यात्व का ही पोषण करते हैं। महापाप तो अनन्त संसार का कारण, उसी पाप का पोषण करते हैं। पोपटभाई! आहाहा! ऐसा है, भाई! क्या करे?

उसने ऐसा कहा कि अभव्य है, वह भोग के लिये व्रतादि पालते हैं, ऐसा लिखा है। और भव्य अशरीरी होने के लिये व्रत पाले तो उसको मुक्ति होती है। वह गाथा है न? वहाँ तो दृष्टान्त दिया है कि अभव्य भी व्रत आदि पाले तो उसको मुक्ति होती नहीं, तो भव्य को भी ऐसा है। ऐसा अर्थ किया है। भोग है न भोग? क्या कहा? भोग निमित्तं। भोग निमित्तं। बन्ध अधिकार। बन्ध अधिकार है न? कौन-सी गाथा है? भोग... भोग... गाथा है न वह? ... उसकी व्याख्या की। ....

जैसे किसान अन्न पृथ्वी पर डालता है, इसलिए नहीं कि वह बेकार है। अपितु उसे इसलिए डालता है कि ऐसा करने से मुझे कई गुना अधिक होकर फल देगा। इसी प्रकार अभव्य मुनि भी वर्तमान भोगों का त्याग करता है, वह वैराग्य से नहीं, परन्तु मैं मानवोचित भोगों को छोड़ दूँगा तो मुझे स्वर्गादि भोग प्राप्त होंगे, इसलिए करता है। वह तो नौवें ग्रैवेयक भी न जाये। और शरीर के कायक्लेश तपादि करता है। वह भी इसलिए कि यदि मैं घिनावने शरीर को तप में लगा दूँगा तो मुझे वैक्रियिक आदि ऋद्धिवाला मिलेगा। अपितु इसलिए नहीं कि मैं अशरीरी बन जाऊँगा। क्योंकि अशरीरी बन जाने का महत्व उससे मालूम नहीं। इसलिए उसको श्रद्धान आदि नहीं। ठीक! भव्य जो करते

हैं, वह अशरीरी (होने) के लिये करते हैं। दूसरे में है। परन्तु उसमें आ गया न? उसका अर्थ हुआ न? अशरीरी। ठीक! वह तो आ गया न उसमें। उसमें ही आ गया। फिर से। इसमें भी है, देखो।

दूसरा अभव्य द्वारा... भव्य जीव अशरीरी अबन्ध रहने के लिये... धारण करता है। यहाँ बात ही कहाँ है? अरे! भगवान! वहाँ तो ऐसा कहते हैं कि भाई देखो! जितने जिनवर ने कहे हुए व्रत, तप आदि वह शुभभाव, वह अज्ञानी भोग के लिये करते हैं, इसका अर्थ? राग का अनुभव वर्तमान में है और अनुभव के लिये करते हैं। स्वभाव का अनुभव नहीं है, राग का अनुभव है। वह राग के अनुभव में रहा करता है तो राग के अनुभव के लिये करते हैं।

मुमुक्षु : राग में रुचि नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहा। ऐसा कहा। अरे...! भगवान! उससे मुझे स्वर्ग मिले, वह तो पापबुद्धि है। वह नौवें ग्रैवेयक जाये कहाँ से? परन्तु ऐसा अर्थ करते हैं न! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि व्रत, तप, भक्ति, पूजा चाहे जो शुभभाव अभव्य करे, परन्तु अशरीरी चैतन्यदृष्टि नहीं, उस कारण से व्यवहार है, वह निषेध करनेयोग्य है। वह आत्मा को लाभदायक है नहीं। चाहे तो अभव्य करे या भव्य करे। अभव्य का दृष्टान्त दिया है। वह तो कहे, अभव्य के लिये कहा है। भव्य तो अशरीरी (होने) के लिये करते हैं। अशरीरी (होने) के लिये व्यवहार व्रत पाले? आहाहा! क्या करता है? समयसार छापे, लोगों को खबर न हो। समझ में आया या नहीं? आपको भी पता नहीं। वह सब पढ़े तो हां... हां... कर दे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त बार गये। अनन्त बार गये। आहाहा! परन्तु सुनी ही नहीं कि बात क्या है? यहाँ तो दृष्टान्त दिया है। भगवान! भाई! जिनवर ने कहे हुए व्रत, तप, वह तो अभव्य भी अनन्त बार करते हैं। उससे तो स्वर्ग मिले, उससे मुक्ति तो है नहीं। तो तू भी ऐसे करे तो तुझे भी स्वर्ग है, मुक्ति है नहीं, ऐसा कहा है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भाई! आत्मा अत्यन्त शुद्ध त्रिकाली आत्मा है अन्दर। व्रत के विकल्प भी नहीं और व्रत के विकल्प का त्याग, वह भी उसमें नहीं। आहाहा! ऐसा शुद्ध भगवान आत्मा, उसकी अन्तर्दृष्टि करना, आश्रय करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली भूमिका है। समझ में आया?

४८ गाथा पूर्ण करते हुए...

(शार्दूलविक्रीडित)

शुद्धाशुद्धविकल्पना भवति सा मिथ्यादृशि प्रत्यहं,
शुद्धं कारण-कार्य-तत्त्वयुगलं सम्यग्दृशि प्रत्यहम्।
इत्थं यः परमागमार्थमतुलं जानाति सद्दृक् स्वयं,
सारासारविचारचारुधिषणा वन्दामहे तं वयम्॥७२॥

मुनि भी कहते हैं। ओहोहो!

श्लोकार्थः—शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है;.... देखो! क्या कहते हैं? देखो! **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना....** विपरीत कल्पना-मिथ्या मान्यता-अनिश्चय-शंका या भेद। शुद्ध-अशुद्ध पर्याय का भेद मैं हूँ, (यह) मिथ्यादृष्टि को होता है।

मुमुक्षु : पर्यायबुद्धि....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्यायबुद्धि की बात करते हैं। समझ में आया?

पर्याय से शुद्ध (होऊँगा) और संसारदशा से अशुद्ध (हूँ), ऐसा एक द्रव्य में भेद करता है, वह पर्यायबुद्धिवाला मिथ्यादृष्टि है। समझे नहीं? हम तो नहीं समझे। फिर कहते हैं न? क्या ऐसा लिखा है उसमें? **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना, वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है....** सदैव होती है का अर्थ? कि अज्ञानी की दृष्टि द्रव्य और स्वभाव पर है नहीं। तो अज्ञानी के विकल्प में और पर्याय में अशुद्ध हूँ और पर्याय शुद्ध होगी, ऐसी पर्याय के ऊपर उसकी दृष्टि है। तो पर्यायदृष्टि के कारण विपरीत मान्यता है। विपरीत मान्यता के कारण मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : द्रव्य शुद्ध है, ऐसा नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य शुद्ध नहीं आया। पर्याय में यह अशुद्ध है तो निकलकर शुद्ध होगा पर्याय में। दृष्टि पर्याय में और पर्याय में है। समझ में आया? साथ में डाला है, देखो! उसको कठिन लगे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो दूसरी बात है। उसकी यहाँ बात नहीं। यहाँ तो द्रव्यदृष्टि के विषय में वह बात यहाँ नहीं। समझ में आया कुछ? यहाँ तो कहते हैं कि पर्याय का अंश अशुद्ध है और अंश टलेगा तो शुद्ध—ऐसी उसकी दृष्टि अंश के ऊपर—पर्याय के ऊपर है। समझ में आया? सारा द्रव्य जो चिदानन्द चोसला पड़ा है अखण्डानन्द, उसका अनादर हो गया। ऐसी बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अवगुण देखना नहीं है। देखता कौन है? अवगुण कौन देखता है? द्रव्यदृष्टि होवे, तब अवगुण की पर्याय का ज्ञान करे। उसके बिना अवगुण देखे कौन? चिमनभाई! यह सब दूसरी बात है। सब शून्य करना पड़ेगा इसमें। कहो, समझ में आया, कुछ? उसमें आता है न ऐसा कि 'अधमा अधम अधिकोपति सकल जगत में मैं, यह निश्चय हुए बिना...' वह तो पर्याय में ऐसा मैं हूँ, ऐसा ज्ञान कराते हैं। समझे? ऐसा कि आश्रय होता है वहाँ?

जरा यह शब्द कठिन है, देखो! लोगों को यह पढ़े कि '**शुद्धाशुद्धविकल्पना भवति सा मिथ्यादृशि प्रत्यहं**' उसका अर्थ कि पर्यायरूप जो अवस्था है... द्रव्य तो त्रिकाली आनन्दकन्द ध्रुव है। उसके ऊपर तो उसकी दृष्टि है नहीं और पर्याय के अंश पर उसकी खलबलाहट है। पर्याय में खड़ा रहकर—अवस्था में खड़ा रहकर, यह अशुद्ध है, बाद में शुद्ध होगी—ऐसे पर्याय में खड़ा होकर इस बात का विचार करता है तो वह पर्यायबुद्धिवाला मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, देखो न! **शुद्धाशुद्धविकल्पना भवति सा मिथ्यादृशि**' आहाहा! यह तो आगे कहेंगे, आवश्यक अधिकार में। समझे? बहिरात्मा को यह विचार

आता है न, एक दूसरा बोल? आवश्यक में है। आलोचना? बाद में आवश्यक है। आवश्यक में नहीं है एक? उसमें कहाँ है? श्लोक (गाथा) है १५०।

अंतररबाहिरजप्पे जो वट्टउ सो हवेइ बहिरप्पा।
जप्पेसु जो ण वट्टइ सो उच्चइ अंतरंगप्पा॥१५०॥

यह तो हिन्दी है न, इसलिए आ गया। १५० गाथा। १५० है न? देखो, उसका अर्थ—**जो अन्तर्बाह्यजल्प में वर्तता है, वह बहिरात्मा है....** भाषा देखो! उसका अर्थ—पर्यायबुद्धि में वर्तता है, ऐसा। समझ में आया? वह बहिरात्मा है। है शब्द? शोभालालजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो ठीक। नहीं ऊपर शब्दार्थ? **जो अन्तर्बाह्य जल्प में....** यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य का महासिद्धान्त है। अन्वयार्थ नहीं? अन्वयार्थ / शब्दार्थ। उसके ऊपर। वह पढ़ा उसके ऊपर। शब्दार्थ है। शब्दार्थ या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बहिरात्मा है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

मुमुक्षु : पर्याय के भेद में ही पड़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय के भेद में पड़ा है। सेठ! ठीक लाते हैं। अभी तुम्हारे ऐसा जोर नहीं आता है। पर्याय के भेद में पड़ा है। पूरा द्रव्य छुप जाता है। ऐई! करसनजी! आहाहा! यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। देखो!

कहते हैं कि बाह्य और अन्तर्जल्प, **जो अन्तर्बाह्यजल्प में वर्तता है...** उसका अर्थ? कि विकल्प की पर्याय में वर्तते हैं, ऐसे। वर्तमान विकल्प आया शुभादिक कि मैं ऐसा हूँ, फैसा हूँ, ऐसा विकल्प में वर्तता है। वह विकल्प में वर्तता है तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? द्रव्यस्वभाव में वर्ते, वह सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! बहुत कठिन काम, भाई! यह तो नियमसार तो समयसार से कितनी बात में सूक्ष्म हैं। इसलिए लोगों को लगे, ठीक पढ़ा नहीं और नियमसार निकला है अभी। वह भाई शीतलप्रसाद को हाथ आया। कहाँ, जयपुर में? जयपुर में चौमासा था शीतलप्रसाद। वह नियमसार बाहर नहीं प्रकाशित हुआ था। श्रीमद् के समय में बाहर नहीं आया था। उनको नहीं मिला था —

श्रीमद् को। अभी शीतलप्रसाद वहाँ आये थे, तब बाहर आया तो उन्होंने थोड़ी हिन्दी टीका बनायी पहले। बाद में बाहर आया। अभी ही आया है।

मुमुक्षु : शीतलप्रसाद कब हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी थे। थे न?

मुमुक्षु : .... थी न उस समय में यह हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न, अपने यहाँ है। नियमसार है। यहाँ शीतलप्रसाद... शीतलप्रसाद यहाँ (संवत्) १९९४ में आये थे। १५ दिन रहे थे। यह जो अपने खोला न? स्वाध्यायमन्दिर। स्वाध्यायमन्दिर में जो समयसार की प्रतिष्ठा की है न? उनके हाथ से की है। हमको कहाँ ऐसे मन्त्र-बन्त्र आते थे। वह यहाँ थे। उद्घाटन हुआ तब यहाँ थे १५ दिन। शीतलप्रसाद ९४ में। फिर गुजर गये। लखनऊ में रहते थे। लखनऊ में रहते थे कोई-कोई सेठ। उद्घाटन किया।

मुमुक्षु : उसके मित्र के साथ रहते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मित्र के साथ रहते हैं। ऐसे... हो गया था।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह शीतलप्रसाद। यहाँ १५ दिन रह गये ९४ में। दृष्टि का पता नहीं, निमित्त की प्रधानता से कथन करते थे। यहाँ श्लोक बोलते थे। परन्तु यहाँ शीतलप्रसाद ने किया, समझे? उनको पहले हाथ आया जयपुर के भण्डार में से। चातुर्मास किया था, उसमें हाथ आया। बाद में उन्होंने हिन्दी बनाया। वह पुस्तक अपने यहाँ है। पुरानी। ...नया है उसमें। संस्कृत है। हिम्मतभाई ने संस्कृत मूल को छूकर बनाया है। संस्कृत को छूकर। ऐसा सूत्र तो उसमें है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : बहुत गम्भीर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ओहोहो! गम्भीर है भाई! बात ऐसी है। शीतलप्रसादजी ने उसमें लिखा है कि समयसार से भी नियमसार बहुत सूक्ष्म है। उससे भी अधिक है। ऐसा उन्होंने लिखा है। ऐसे पढ़े तो समझे नहीं। सिरपच्ची में... क्या कहते हैं? स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा कि **अन्तर्जल्प और बाह्यजल्प में वर्तता है...** वह मिथ्यादृष्टि है।

यह कहे, निकालना क्या? तब विकल्प नहीं है? समकिती को नहीं है? सुन तो सही! समकिती जल्प में वर्तता नहीं। समकिती ज्ञान में वर्तता है। जल्प का ज्ञान करता है। आहाहा! समझ में आया?

राग में वर्तता है, वर्तन में पड़ा है तो मिथ्यादृष्टि है। आस्रव में वर्तन करता है वह तो। जो आत्मस्वभाव नहीं, (ऐसा) विरुद्धभाव, उसमें वर्ते तो कुन्दकुन्दाचार्य ने १५० में कहा कि अन्तर-बाह्यजल्प में वर्तता है, वह मिथ्यादृष्टि है। तब कुछ लोग भड़के। अररर! बस! विकल्प होता ही नहीं समकिती को? मुनि को? मुनि को भी होते हैं, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प और महाव्रत के विकल्प। अरे! सुन तो सही! तुझे खबर नहीं। वह विकल्प है, उसमें ज्ञानी वर्तते नहीं। आहाहा! समझ में आया? आस्रव में वर्ते, वह तो दृष्टि मिथ्या हो गयी। आहाहा! यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं १५० गाथा में। समझ में आया? और यह आयी टीका। टीका का कलश है।

शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना... विकल्पना का अर्थ किया न हमारे पण्डितजी ने। विपरीत कल्पना। विपरीत कल्पना का अर्थ? द्रव्यदृष्टि छोड़कर पर्यायबुद्धि में आ गया। पर्याय में अपना सर्वस्व माना, ऐसा कहते हैं। भगवान आनन्दकन्द ध्रुवस्वभाव का अनादर हो गया। समझ में आया? एक समय की पर्याय में खड़ा होकर, खड़ा रहना, वही मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? वह पर्यायबुद्धि है। धर्मी की पर्यायबुद्धि नहीं। समझ में आया? आता है न वह? पर्यायबुद्धि नहीं। बनारसीदास में (आता है)।

ऋद्धि सिद्धि बुद्धि दिसै घट में सदा।
अन्तर की लच्छीसों अजाची लच्छपति है।
दस भगवंत के उदास रहे जगतसों,
सुखीया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं।

चौथे गुणस्थान की बात करते हैं। न गृहस्थ है, न यति है। श्रावक नहीं, साधु नहीं। चौथे की बात करते हैं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि अहो! **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना....** विपरीत मान्यता अर्थात् अंशबुद्धि में रहकर अंश की कल्पना में वर्तता है, उस मिथ्यादृष्टि को... मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है। द्रव्यदृष्टि वस्तु द्रव्य है, वह तो दृष्टि में आया नहीं, तो पर्याय में ऐसी

कल्पना अशुद्ध है, शुद्ध होगा, वह तो पर्याय में खड़े रहकर सब बात विचारते हैं, बोलते हैं, करते हैं। पर्यायबुद्धि है तो मिथ्याबुद्धि—अंशबुद्धि में पूरे द्रव्य का अभाव कर दिया। कठिन काम! समझ में आया?

शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना, वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है। ऐसी भाषा है। क्यों? चाहे तो व्रत, तप, दया, दान, भक्ति करे, मौन रहे, बोले, तो उसमें विकल्प का—राग का ही अन्तर आश्रय है और राग के ऊपर उसकी बुद्धि है। आहाहा! समझ में आया? सदैव होती है, ऐसा कहा है, देखो! निरन्तर। तो सम्यग्दृष्टि को निरन्तर विकल्प में वर्तना है नहीं। आहाहा! **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना...** भेदबुद्धि-पर्यायबुद्धि-विपरीत कल्पना-वस्तु से विपरीत पर्यायबुद्धि की कल्पना, **वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है।** सदैव होती है। आहाहा! एक अंश में खड़ा होकर सब विचारता है। समझ में आया? एक अंश में खड़ा है तो अंशबुद्धि हुई, पर्यायबुद्धि हुई। परसमय हुआ।

सम्यग्दृष्टि को सदा (ऐसी मान्यता होती है कि).... देखो! सामने डाला। गुलाँट खाकर। उसमें सदा शब्द है। **कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं।** कारणद्रव्य भी शुद्ध है और कार्य भगवान सिद्ध भी शुद्ध है। ऐसी मान्यता में पर्यायबुद्धि उसको होती नहीं। द्रव्यबुद्धि होती है, ऐसा कहते हैं न? **सम्यग्दृष्टि को सदा (ऐसी मान्यता है कि)....** कारणद्रव्य शुद्ध त्रिकाल शुद्ध हूँ, वह पर्याय अशुद्ध, पश्चात् पर्याय शुद्ध (वह) तो पर्यायदृष्टि की बात है। द्रव्य में ऐसा है नहीं। ऐसा कारणतत्त्व कार्यतत्त्व जैसा ही शुद्ध है।

इस प्रकार परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा.... देखो! अहो! **इस प्रकार परमागम....** भगवान का परमागम, उसका जो अतुल अर्थ। उपमा बिना का अर्थ। आहाहा! **परमागम के अतुल अर्थ...** अतुल अर्थ (अर्थात्) निश्चय का जो अर्थ है, वह अर्थ समझते हैं, ऐसा कहते हैं। **सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि...** सार है तो कारणद्रव्य है, बाकी रागादि या पर्याय आदि असार है। आहाहा! आयी है गाथा। कलश में आया था। सर्व तत्त्व में सार आत्मा है। संवर, निर्जरा पर्याय हुई नहीं। समझ में आया? पहले आया था न ३८ में? ३८ में आया था। देखो! कलश में आया था, कलश में।

सर्व तत्त्वों में जो एक सार है... ३८ (गाथा) का पहला (५४वाँ) कलश है। देखो! ५४वाँ कलश है। **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है...** सर्व तत्त्व में एक सार। एक सार अर्थात् द्रव्य सार। पुण्य-पाप विकल्प और संवर, निर्जरा, मोक्ष (आदि) सर्व तत्त्व में भी एक द्रव्य सार। आहाहा! वह सार और पर्याय आदि असार, दो का विचार करने में सुन्दर बुद्धिवाले सम्यग्दृष्टि, ऐसा कहा, देखो! परमागम के अतुल अर्थ को... परमागम के अतुल—उपमारहित का जो कहना है, ऐसे अर्थ को **सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है,....** लो!

कारणतत्त्व द्रव्यस्वभाव और कार्य दोनों शुद्ध ही है, बस। अशुद्धता यहाँ है और बाद में शुद्ध होगा, ऐसा द्रव्य में है नहीं। **कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं। इस प्रकार परमागम के अतुल अर्थ को....** शास्त्र के महा अलौकिक अर्थ को **सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा...** आहाहा! सम्यग्दृष्टि को तो सार चीज़ एक ध्रुव ही है। सम्यग्दृष्टि के विचार में सार तो एक ध्रुवतत्त्व ही है। आहाहा! ऐई!

मुमुक्षु : कार्यशुद्ध पर्याय है....

पूज्य गुरुदेवश्री : कार्यशुद्धि तो सिद्ध की बात ली। कारणतत्त्व तो द्रव्य ही लिया। पहले आ गया। समझ में आया? क्योंकि यह बात तो सम्प्रदाय में चले नहीं। सम्प्रदाय में तो व्रत करो, तप करो, दया करो, दान करो, यह छोड़ो, यह छोड़ो, सब छोड़ो। छोड़ दो धर्म। खबर नहीं। क्या करे? आहाहा! लुट गया है। जगत सारा वीतरागमार्ग से विरुद्ध होकर लुट गया है। वीतराग परमात्मा क्या हैं, उसको खबर नहीं। आहाहा! लो, समझ में आया? वह तो उसमें भी आया न? समस्त नष्ट होनेवाले भावों से दूर है। उत्पाद-व्यय से भी दूर है। वह आया था। सर्व तत्त्व में सार है और समस्त नष्ट होनेवाले भावों से दूर है। राग से तो दूर है, भगवान! परन्तु उसकी पर्याय उत्पाद-व्यय से दूर है। क्या कहते हैं, वह समझना कठिन है। देवीलालजी! अभी तो एकेन्द्रिया, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिय में पड़ा हो। तस्स मिच्छामि दुक्कडम्। तावकायं... अप्पाणं वोसरामि। पूरा आत्मा वोसराई (छूट) गया। आत्मा किसको कहे, उसकी खबर नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि कैसा है? कि परमागम के उपमा बिना का अर्थ निश्चय

का। **सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है,...** स्वयं जानता है। पर की अपेक्षा रखे बिना। द्रव्य त्रिकाल एक ध्रुव शुद्ध है, वह मैं हूँ। पर्याय आती-जाती है, उत्पन्न होती है, वह भी मेरा त्रिकाली स्वरूप नहीं। आहाहा! मुनि कहते हैं कि ओहो! **उसे हम वन्दन करते हैं।** देखो! यह तो मुनि... प्रभु! आहाहा! धन्य भाई! तेरा अवतार, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नमता है अर्थात् वह आदर करता है। सम्यग्दृष्टि का श्रद्धान... समझ में आया? यहाँ मुनि जो सम्यग्दृष्टि, उसको यहाँ... आदर करते हैं। अहो! धन्य भाई! तेरी दृष्टि और तेरा ज्ञान यथार्थ है, ऐसा। ऐई! समझ में आया? लो, ४८ गाथा पूरी हुई।

४९ (गाथा)।

एदे सव्वे भावा ववहारणयं पडुच्च भणिदा दु।

ध्यान रखना, अन्दर टीका में उपादेय शब्द आयेगा। वह '**ववहारणयं पडुच्च भणिदा**' उसका अर्थ किया है। व्यवहारनय से बतलाया है, उसका अर्थ वहाँ उपादेय अर्थात् ज्ञान करने को कहा है। समझ में आया?

एदे सव्वे भावा ववहारणयं पडुच्च भणिदा दु।
सव्वे सिद्धा-सहावा सुद्ध-णया संसिदी जीवा ॥४९॥

व्यवहारनय से हैं कहे सब जीव के ही भाव ये।
है शुद्धनय से जीव सब भवलीन सिद्ध स्वभाव से ॥४९॥

कौन? यह नरकगति और राग, पर्याय, यह सब व्यवहारनय, उदयभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिकभाव। आहाहा! धर्म की पर्याय वह आत्मा, (ऐसा) भगवान ने व्यवहारनय से कहा है। है न '**ववहारणयं पडुच्च**' व्यवहारनय के आश्रय कहा। वह अर्थ उसमें उपादेय में लिया है। उपादेय अर्थात् वह जाननेयोग्य है। व्यवहारनय का विषय जाननेयोग्य है और स्वभाव का त्रिकाली वस्तु आदरनेयोग्य है। समझ में आया?

व्यवहारनय से हैं कहे सब जीव के ही भाव ये।
है शुद्धनय से जीव सब भवलीन सिद्ध स्वभाव से ॥४९॥

भवलीन अर्थात् संसारी। '**संसिदी**' है न अन्दर? '**संसिदी**' अर्थात् भवलीन। वह सिद्धस्वभाव, सिद्धस्वभाव जैसे सब आत्मा हैं। व्यवहारनय से ज्ञान कराया। उदयभाव, क्षायिकभाव भी पर्याय में है व्यवहारनय से। ओहोहो! समझ में आया? सच्चा मोक्षमार्ग जो है, चिदानन्द भगवान आत्मा के अन्तर आश्रय से जो प्रगट हुआ, वही व्यवहारनय का विषय जाननेयोग्य है, ऐसा यहाँ कहते हैं। अस्ति है न? अस्ति अर्थात् जाननेयोग्य। जाननेयोग्य को उपादेय कहा जाता है। कहा न? वह टीका में आयेगा।

वह द्रव्यस्वभाव है त्रिकाली, वही जाननेयोग्य और आदरनेयोग्य है, ऐसा। परन्तु पर्याय में जो क्षायिकभाव आदि उदयभाव है, वह जाननेयोग्य है, उसका ज्ञान करनेयोग्य है। वह अस्ति है न? पर्याय में रागादि है, निर्मल पर्याय है, तो इतना ज्ञान करना, उसके लिये उपादेय कहने में आया है ज्ञान के लिये। समझ में आया? आश्रय करनेयोग्य और आदरनेयोग्य है, ऐसा नहीं है। वह पाठ ही बोलता है न? देखो! इसलिए कहा '**ववहारणयं पडुच्च भणिदा**' व्यवहारनय आश्रय कहा। कहा अर्थात् जाननेयोग्य है, ऐसा उसका अर्थ लेना। कथन तो वाचक है। परन्तु व्यवहारनय से वह पर्याय है, उसको जाननेयोग्य है। समझ में आया? कठिन बात! देखो!

टीकाः—यह, निश्चयनय और व्यवहारनय की उपादेयता का प्रकाशन है। देखो! वह उपादेय का अर्थ व्यवहारनय को जानने का अर्थ किया है। दूसरा पद है न उसका? जाननेयोग्य है। व्यवहारनय का विषय नहीं है, ऐसा नहीं है। वेदान्त कहते हैं कि केवल द्रव्य है, पर्याय नहीं है, राग नहीं है—ऐसा नहीं है। पर्याय है, राग शुभादि है, क्षायिकभाव आदि है, उपशमभाव आदि है। है, उसको जानना। ऐसा ज्ञान का ग्रहण करना, ऐसा कहने में आया है। वह आया न उसमें? तत्त्वार्थ में मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आया है। नय को ग्रहण करने को कहा न? उपादेय अर्थात् ग्रहण। उपादेय अर्थात् ग्रहण। ग्रहण करने को कहा है न! ग्रहण करने का अर्थ जाननेयोग्य है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। समझ में आया? इसका विशेष अर्थ होगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १, शुक्रवार, दिनांक - २६-०९-१९६९
गाथा-४९, श्लोक-७३, प्रवचन-१७

यह नियमसार, शुद्धभाव अधिकार है। ४९वीं गाथा चलती है। देखो, क्या कहते हैं?

टीकाः—यह, निश्चयनय और व्यवहारनय की उपादेयता का प्रकाशन है। निश्चयनय जो है त्रिकाली द्रव्यस्वभाव, उसका भी यहाँ प्रकाशन है और व्यवहारनय का विषय जो वर्तमान पर्याय में चार भाव आदि हैं—उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, वह भी है। समझ में आया? तो वह भी ग्रहण करनेयोग्य अर्थात् जाननेयोग्य है।

टीका कहते हैं—इसका स्पष्टीकरण। **पहले जो विभावपर्यायें ''विद्यमान नहीं हैं'' ऐसी प्रतिपादित की गई हैं,...** की गयी है। कि आत्मा में द्रव्य त्रिकाली की अपेक्षा से चार भाव—उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशम, क्षायिक एक समय की पर्याय वस्तु में विद्यमान नहीं है। समझ में आया? **पहले जो विभावपर्यायें....** विभाव अर्थात् चारों पर्यायें। चार पर्याय हैं—उदय, उपशम, क्षायिक, क्षयोपशम। चाहे तो क्षायिक सम्यग्दर्शन हो, केवलज्ञान हो, परन्तु वह सब पर्याय है। एक अवस्था है, वह तो व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया?

कहते हैं कि **पहले जो विभावपर्यायें ''विद्यमान नहीं हैं'' ऐसी प्रतिपादित की गई हैं,...** वस्तु जो त्रिकाल ज्ञायक ध्रुव चैतन्य है, वही आत्मा है, उसमें चार प्रकार की पर्यायें है नहीं। समझ में आया? ऐसा कहा था। **वे सब विभावपर्यायें वास्तव में व्यवहारनय के कथन से विद्यमान हैं।** त्रिकाली वस्तु की दृष्टि के विषय में वह है नहीं, इसलिए 'नहीं है'—ऐसा कहा था। अभी उसकी पर्याय रागादि है, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक आदि संसारी जीव की पर्याय में है। समझ में आया? पर्याय में है, वह विद्यमान है। बिल्कुल असत्यार्थ कहा था, व्यवहार असत्यार्थ है—झूठा है। वह तो त्रिकाली की अपेक्षा से व्यवहारनय को ऐसा कहा था। परन्तु पर्याय की अपेक्षा से पर्याय विद्यमान है। ऐसे उसको बराबर जानना चाहिए। समझ में आया? आहाहा!

पहले जो विभावपर्यायें ''विद्यमान नहीं हैं'' ऐसी प्रतिपादित की गई हैं,... भगवान आत्मा एक समय में ध्रुव चैतन्यदल जो सम्यग्दर्शन का विषय है, जो आश्रय करनेयोग्य है, उस चीज़ में पर्याय, कोई भी पर्याय, चार भावों में से कोई भी पर्याय वस्तु में नहीं है। पर्याय, पर्याय में है; पर्याय, द्रव्य में नहीं। समझ में आया? समझ में आया सेठ?

मुमुक्षु : दृष्टि....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। द्रव्य में पर्याय है ही नहीं। त्रिकाली वस्तु में कहाँ है? वह पर्याय तो एक समय की अवस्था है। समझ में आया? शुद्धभाव। शुद्धभाव है न यहाँ? तो त्रिकाली ध्रुव ज्ञायकभाव सच्चिदानन्द प्रभु, कारणपरमात्मा अथवा कारणजीव जो त्रिकाली ध्रुव है, उस अपेक्षा से वह (ध्रुव) चीज़ है। उस अपेक्षा से पर्याय के चार भाव हैं नहीं। समझ में आया?

सब विभावपर्यायें वास्तव में व्यवहारनय के कथन से विद्यमान हैं। वर्तमान पर्याय... व्यवहारनय का विषय करनेवाला नय है न? नय तो जाननेवाला है न? तो जाननेवाले का विषय है या नहीं? विषय है या नहीं? तो चार भावरूप एक समय की पर्याय वह व्यवहारनय से विद्यमान है। शोभालालजी! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, व्यवहार है इतना। विद्यमान है। बिल्कुल नहीं, ऐसा नहीं। द्रव्य में, शुद्धनय की दृष्टि में त्रिकाली वस्तु में नहीं है। वह त्रिकाली शुद्धभाव का कथन किया और वही आश्रय करनेयोग्य है कि जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। उस अपेक्षा से... क्योंकि मोक्षमार्ग बताना है न? तो मोक्षमार्ग जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, वह तो पर्याय है। तो वह पर्याय किसके आश्रय से उत्पन्न होती है? समझ में आया? तो कहा, त्रिकाली वस्तु ध्रुव चैतन्य सत्... सत् दल शाश्वत् दल, ध्रुव अनादि-अनन्त ऐसा जो त्रिकालीभाव है, जो शुद्धभाव ध्रुव, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन-मोक्षमार्ग होता है। तो उस अपेक्षा से त्रिकाली ध्रुव का आश्रय कराने को त्रिकाली ध्रुव में वर्तमान चार पर्याय के प्रकार उसमें है नहीं। समझ में आया? अमरचन्दभाई! आहाहा!

और जो (व्यवहारनय के कथन से).... वर्तमान पर्याय का अंश है, उसको बताने को विद्यमान (कहा) है। है; है, उसको जानना, उसका नाम उपादेय (अर्थात्) ग्रहण करना कहने में आया है। समझ में आया? यह प्रश्न चला है न उसमें? मोक्षमार्गप्रकाशक में। शास्त्र में दो नय को ग्रहण करने को कहा है न? आया था, नहीं? दो नय को ग्रहण करने को कहा था। समझ में आया? वह क्या? आप तो कहते थे या नहीं, ग्रहण करना नहीं। नहीं ग्रहण करना, ऐसा कहा, लो!

प्रश्न—ऐसा है तो जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है न? उसका क्या कारण है? तुम तो कहते थे कि व्यवहारनय नहीं... व्यवहारनय नहीं... व्यवहारनय नहीं...

मुमुक्षु : व्यवहार की मान्यता छोड़ो... मिथ्यादर्शन...

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ो, छोड़ो। व्यवहार की मान्यता छोड़ो, हेय है। तो शास्त्र में तो दो नय को ग्रहण करना कहा है। इसका क्या कारण? जिनमार्ग में तो किसी स्थान में निश्चयनय की मुख्यतासहित व्याख्यान है, उसका तो सत्यार्थ ऐसा ही है, ऐसा जानना। त्रिकाली ध्रुव है निश्चयनय का व्याख्यान, तो सत्यार्थ, ऐसा जानना। और किसी जगह व्यवहार की मुख्यता से व्याख्यान है। चार पर्याय का कथन चले... आत्मा में पर्याय का कथन चले, वह तो पर्याय की मुख्यता से 'है' ऐसा व्याख्यान किया। परन्तु ऐसा नहीं। पर्याय है, वह त्रिकाल में नहीं। पर्याय, वह त्रिकालीस्वरूप नहीं। परन्तु निमित्तादि की अपेक्षा से निमित्त, अंश, वर्तमान भाव की अपेक्षा से वह उपचार किया है, ऐसा जानना और इस प्रकार जानना, (वही) दोनों नयों का ग्रहण है। समझ में आया? टोडरमलजी ने इतना स्पष्ट कर दिया है।

दो नय को जानने का नाम ही ग्रहण है, परन्तु दोनों नयों का व्याख्यान समान सत्यार्थ जाने कि इस प्रकार भी है और इस प्रकार भी है, ऐसे भ्रमरूप प्रवर्तने को तो दोनों नयों को ग्रहण करना नहीं कहा है। समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़ा है कभी? पूरा नहीं पढ़ा, कुछ पन्ने पलटे हैं। कहो, समझ में आया?

आत्मा के दो रूप। एक द्रव्यरूप, एक पर्यायरूप। बराबर है? पर के साथ कुछ

सम्बन्ध नहीं। पर, पर में रहा। वस्तु जो है आत्मा, वह द्रव्यरूप त्रिकाली वस्तु है और एक वर्तमान पर्याय अर्थात् अवस्थारूपी अंश—दो होकर प्रमाण का विषय द्रव्य कहने में आता है। समझ में आया? तो उसमें जो त्रिकाली द्रव्य है, उसको जहाँ बताना है तो उसको निश्चय कहकर सत्यार्थ, वही सत्य है और पर्याय उसमें है नहीं, इस अपेक्षा से पर्याय को असत्य कहा। ११वीं गाथा में। मूल गाथा समयसार की। '**ववहारोऽभूदत्थो**' व्यवहार है ही नहीं। व्यवहार को अभूतार्थ कहा। है ही नहीं। है नहीं का अर्थ? त्रिकाल में नहीं। आश्रय करनेयोग्य नहीं। परन्तु है नहीं का अर्थ ऐसा नहीं कि पर्याय पर्यायरूप नहीं है। समझ में आया? वही व्याख्या आयी उसमें से '**ववहारोऽभूदत्थो**' जो पर्याय है, राग है, वह सब असत्यार्थ—झूठा है। अर्थात् वह त्रिकाली द्रव्य में नहीं और त्रिकाली द्रव्य का आश्रय करने से ही धर्म की पर्याय उत्पन्न होती है। इस कारण से वहाँ '**ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' भूतार्थ, सत्यार्थ, त्रिकाल, वही सत्य और निश्चयनय है, वही शुद्धनय, वस्तु वही शुद्धनय है। ध्रुव त्रिकाली है, वही शुद्धनय है और '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' ऐसी ध्रुव चीज़, सत् चीज़, सामान्य चीज़ का आश्रय करने से सम्यग्दृष्टि होता है। यह कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा। वही भाव यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : कठिन लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन कुछ नहीं। यह तो एकदम सादी भाषा आती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है नहीं, किस अपेक्षा से? त्रिकाल में नहीं, इस अपेक्षा से। परन्तु अपनी अपेक्षा से तो है। आत्मा की अपेक्षा से—स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य... परद्रव्य है ही नहीं। लो, अद्रव्य है वह। क्या? अपनी स्ववस्तु है, स्ववस्तु की अपेक्षा से सारा जगत अद्रव्य है—अवस्तु है। अपने स्वद्रव्य की अपेक्षा से सारे जगत के सब पदार्थ अद्रव्य, अवस्तु, अक्षेत्र, अकाल, अभाव है। समझ में आया? मार्ग तो ऐसा है, भाई! परन्तु जब उसकी (अपनी) अपेक्षा से लो तो वह अपने द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से, वह भी है। समझ में आया? ऐसे... वह तो पर और स्व की अपेक्षा रही। अब अन्तर में द्रव्य और पर्याय के भेद करने हैं। आहाहा! समझ में आया?

तो अपना द्रव्य जो त्रिकाली ध्रुव चैतन्य अनादि-अनन्त, वह ध्रुव की अपेक्षा से ध्रुव है और ध्रुव की अपेक्षा से एक समय की पर्याय ध्रुव में नहीं, इसलिए 'नहीं है'। समझ में आया? जैसे परद्रव्य अपने द्रव्य में नहीं, उसी अपेक्षा से परद्रव्य को अद्रव्य कहा। परन्तु उसकी अपेक्षा से द्रव्य है। वैसे त्रिकाली द्रव्य भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति ध्रुव, वही वस्तु का स्वरूप त्रिकाल है। वह है, इस अपेक्षा से एक समय की पर्याय, जैसा पर नहीं, वैसी उसकी एक समय की पर्याय नहीं। समझ में आया? कठिन बात, भाई! परन्तु पर्याय की अपेक्षा से पर्याय है, ऐसा जिसका ज्ञान नहीं, उसका शुद्ध द्रव्य का ज्ञान भी यथार्थ नहीं होता। वह तो एकान्तदृष्टि हो गयी।

मुमुक्षु : पर्याय उसकी नहीं या उसमें नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी नहीं और उसमें नहीं—दोनों। उसकी नहीं और उसमें नहीं। समझ में आया?

पहले जो विभावपर्यायें.... विभाव अर्थात् चारों, हों! चार भाव। पाँच भाव हैं न? एक पारिणामिकभाव—कायमी चीज़ वस्तु और चार पर्यायभाव... चार पर्यायभाव। उदय-रागादि का, उपशम-समकित आदि का, क्षयोपशम-ज्ञान आदि का। क्षायिक-समकित आदि का। समझ में आया? तो वह त्रिकाली वस्तु भगवान... परन्तु उसको (मैं) त्रिकाली चीज़ हूँ, ऐसी बात बैठती नहीं। उसको यह क्षणिक अवस्था—यह वर्तमान पर्याय इतना मैं या ज्ञान का विकास एक अंश है, इतना मैं; राग है, इतना मैं। परन्तु वह तो एक अंश है। त्रिकाली चीज़, ध्रुव त्रिकाली चीज़ तो बाकी रह गयी। समझ में आया? अंश दृष्टि है, वह तो मिथ्या दृष्टि है।

एक अंश की दृष्टि छुड़ाने को, त्रिकाली द्रव्य में वह है नहीं और वह द्रव्य की है नहीं। द्रव्य में पर्याय कैसी? और द्रव्य की कैसी? प्रमाण का अंश लेने में द्रव्य की पर्याय (कही जाती है) परन्तु द्रव्य के (ध्रुव) अंश में पर्याय द्रव्य की है ही नहीं। आहाहा! बहुत गम्भीर बात! ऐसा मार्ग समझना पड़े, उससे तो व्रत पालना, जीव दया पालना, मुंड जाना। धूल में नहीं। मर जाये तो वहाँ धर्म है नहीं। सुन तो सही! समझ में आया? जहाँ से धर्म प्रगट होता है... कहाँ गये? आये आपके भाई या गये? भाई, भाई, धारशीभाई। गये। यह भाईयों को देखो न! आपके दो भाई, उसके भाई वह सब।

मुमुक्षु : आने तो लगे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आते हैं। परन्तु आकर सुने तो पता चले। यह चीज़ तो ऐसी है।

मुमुक्षु : सुने तो रह जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुने तो कुछ ले। क्या कहते हैं यह? भाई! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग है, बड़ी तीर्थंकर की पेढ़ी का मार्ग है। समझ में आया? आहाहा! सर्वज्ञ....

मुमुक्षु : उसकी नहीं, उसकी नहीं तो आयी तो किधर से?

पूज्य गुरुदेवश्री : आयी ऊपर से। पर्याय पर्याय से है, पर्याय पर्याय के कारण से है, पर्याय पर्याय के आधार से है, पर्याय पर्याय का कर्ता है और पर्याय का कर्म है। ठीक। हमारे पण्डितजी हैं उदयपुर के। समझ में आया? आहाहा! स्पष्टीकरण समझना चाहिए, बापू!

भगवान आत्मा... निश्चय से तो पर्याय पर्याय का कर्ता। क्षणिकपर्याय पर्याय का कर्ता, पर्याय पर्याय का कारण, पर्याय पर्याय का कार्य, पर्याय पर्याय के आधार से है, पर्याय पर्याय में से आयी। आयी अर्थात् अंश ऐसे। आहाहा! ऐसी चीज़ सत् है न, वह अंशरूप से। द्रव्य का आश्रय नहीं, द्रव्य की अपेक्षा उसको नहीं। आहाहा! समझ में आया? अमरचन्दभाई! बात ऐसी है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का कहा मार्ग अलौकिक है। परन्तु लोगों को सुनने नहीं मिलता, बाहर में भटक जाये।

मुमुक्षु : आप सर्वथा निरपेक्ष कहकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वथा निरपेक्ष। कहा न वस्तु... उसमें भी आया आप्तमीमांसा में। धर्म और धर्मी किसी अपेक्षा बिना निरपेक्ष है। निरपेक्ष बिना दो सिद्ध होते नहीं। यह पर्याय इसकी, यह द्रव्य उसका—वह तो बाद में व्यवहार लागू पड़ता है। सेठ! बहुत मस्तिष्क को कसना पड़ता है। बीड़ी में चले, ऐसा यहाँ नहीं चलता। उसमें तो पुण्य के परमाणु पड़े हों और बाहर में दिखे तो कहे, सेठ को मेहनत की है तो पैसे मिले हैं। धूल

भी मिली नहीं वहाँ। शोभालालजी! बहुत यह करते थे गाँव में साईकिल पर चारों ओर। अब जरा जम गया तो लड़के बैठने लगे। उसको ऐसा लगे कि हम कमाये हैं। ऐई! कहाँ गया नटु? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान! सुन तो सही भाई! यह बाह्य की चीज़ दूसरी है। तेरी कल्पना से कोई बाहर की चीज़ आ जाये या छूट जाये, ऐसी चीज़ नहीं है। परन्तु यहाँ आत्मा में अन्दर में तो दो अंश हैं। यह (शरीर) तो मिट्टी जड़ परवस्तु है। आत्मा की अपेक्षा से यह शरीर है ही नहीं। समझ में आया? आत्मा की अपेक्षा से—स्व चैतन्य की अपेक्षा से यह शरीर है ही नहीं। अद्रव्य है, यह द्रव्य है तो यह अद्रव्य है। यह वस्तु ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? और शरीर की अपेक्षा से आत्मा अद्रव्य है। परन्तु जिसको (-अज्ञानी को) जो काम करना है तो उसका वह काम नहीं। क्योंकि आत्मा आत्मा की अपेक्षा से है और आत्मा की अपेक्षा से (शरीर) है नहीं। है ही नहीं। दुनिया में है नहीं। दुनिया अर्थात् मैं। समझ में आया? आत्मा की अपेक्षा से आत्मा है तो आत्मा की अपेक्षा से कर्म जगत में है ही नहीं। इसी आत्मा की अपेक्षा से राग, विकार जगत में है ही नहीं, अवस्तु है।

इसी प्रकार यहाँ द्रव्य की अपेक्षा से एक समय की पर्याय है ही नहीं। देवीलालजी! आहाहा! कहते हैं... अहो! **विभावपर्यायें वास्तव में व्यवहारनय के कथन से विद्यमान हैं।** वर्तमान अंश जो द्रव्य का है, राग उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, वह अंश की अपेक्षा से अंश विद्यमान है। है, नहीं है—ऐसा नहीं। वह तो शुद्धनय की दृष्टि की अपेक्षा से 'नहीं है' ऐसा कहा था। आदरणीय है, इसका अर्थ—है, उसका ज्ञान करना चाहिए। पर्याय नहीं है, ऐसा ज्ञान करे तो द्रव्य का पता लगेगा नहीं। समझ में आया? ऐसा कठिन धर्म का रूप। वरना यह तो तावकाये ठाणेणं माणेणं जाणेणं... कर दिया। कायोत्सर्ग हो गया।... कायोत्सर्ग कर लिया। ऐई! धूल में भी नहीं कायोत्सर्ग, सुन न!

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा में पर्याय नहीं है, ऐसी दृष्टि हुए बिना कायोत्सर्ग सच्चा है ही नहीं तेरा। आहाहा! द्रव्य की दृष्टि करने से पर्याय का उत्सर्ग हो जाता है। भाई! आहाहा! उसका नाम कायोत्सर्ग है। समझ में आया? ऊँगली ऐसे करे। लो, हो

गया। क्या धूल हुई ? यह तो राग है विकल्प करते हैं। राग है, उसको धर्म मानते हैं और देह की क्रिया, वह मैंने की। वह तो जड़ की क्रिया है। जड़ तो उसके कारण से ऐसी होती है। तेरे कारण से ऐसी होती है ? पण्डितजी! आहाहा! माना कि मैंने ऐसा किया। वह तो अजीव की क्रिया का स्वामी हुआ, मिथ्यादृष्टि (हुआ)। अजीव को जीव माना। और दूसरा अन्दर विकल्प आया। णमो अरिहंताणं... वह राग है, आस्रव है। उसमें मेरा संवर हुआ, निर्जरा हो गयी, धर्म हो गया। अजीव को जीव माना और आस्रव को संवर माना। मिथ्यात्व का पाप लगता है और मिथ्यात्व की पुष्टि होती है। ऐई! जुगराजजी!

मुमुक्षु : धर्मध्यान भी....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्मध्यान तो अन्दर राग से भिन्न होकर द्रव्य का आश्रय करे तो धर्मध्यान होता है, वरना कहाँ से धर्मध्यान होता है ? आहाहा! समझ में आया ? देखो!

कहते हैं कि **पहले जो विभावपर्यायें विद्यमान नहीं हैं...** देखो! विभाव अर्थात् चार पर्याय मौजूद नहीं है। **ऐसी प्रतिपादित की गई हैं, वे सब....** यही सब, जो नहीं है—ऐसा जो कहा था; नहीं है—ऐसा जो कहा था, **वे सब विभावपर्यायें...** चार पर्यायें **वास्तव में व्यवहारनय के कथन से हैं।** पहले ना कहा था, वही है। समझ में आया ? कितनी बात है! ओहोहो! अलौकिक बात है। शरीर, वाणी, मन, राग—वह तो अपनी अपेक्षा से है ही नहीं। समझ में आया ? तो है नहीं, उससे धर्म होता है और उसमें धर्म होता है ? समझ में आया ?

परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय विद्यमान नहीं है। तो पर्याय नहीं है, उसके आश्रय से धर्म हो ? कभी नहीं होता। आहाहा! समझ में आया ? यह धर्म की पर्याय प्रगट हुई द्रव्य के आश्रय से, उसके (शुद्धपर्याय के) आश्रय से भी धर्म की नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। त्रिकाली भगवान सच्चिदानन्द प्रभु महासागर, अनन्त शक्ति—स्वभाव का सागर वस्तु त्रिकाल है। उसका आश्रय करने से, उसके सन्मुख होने से, उसके अवलम्बन से, उस ओर झुकने से सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली पर्याय उत्पन्न होती है। समझ में आया ? इस अपेक्षा से कहा कि चार विभाव पर्यायें हैं ही नहीं। ऐसा कहा था।

वे सब... 'है नहीं' कहा था, वह सब.... **विभावपर्यायें वास्तव में व्यवहारनय के कथन से विद्यमान हैं।** व्यवहारनय के कथन से वास्तव में है। आहाहा! ऐई! समझ में आया? अहो! अनादि-सान्त दु:ख संसारदु:ख का अन्त आना और सादि-अनन्त आनन्द प्रगट होना, वह कोई अपूर्व चीज़ है। समझ में आया? अनादि संसार का अन्त आना और मोक्ष की पर्याय का उत्पन्न होकर अनन्त काल रहना, समझ में आया? यह तो कोई अपूर्व दृष्टि का विषय है। समझ में आया? पूर्व में कभी ऐसा सुना नहीं, ऐसा कहते हैं आचार्य तो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, चौथी गाथा में कहा है कि ऐसी बात तूने कभी सुनी नहीं। तो परिचय में कहाँ से आवे? और तेरे अनुभव में तो कहाँ से आवे? नये हैं। नये पहले सुने तो पुराने होवे न? आहाहा! सुने तो (सही कि) यह क्या कहते हैं? यह कहते हैं न्याय से, युक्ति से सिद्ध करते हैं तो उसमें कुछ लगता है। वह तो समझे बिना गड़बड़... गड़बड़... जाओ, करो मिच्छामी पडिक्कम्मा करो, तस्सउत्तरी करो, स्त्री-पुत्र छोड़ो, सिर पर मुंडन करो। भेड़ भी मुंडन कराते हैं, सुन न! मुंडन करने से कहाँ धर्म होता है? समझ में आया? उसमें राग की मन्दता का शुभ परिणाम हो, तो वह विकार है। उसमें कहाँ धर्म था? समझ में आया? भगवान आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, वस्तु... वस्तु... वस्तु... 'वहोरजो रे डोसीडाने हाटे।' ऐसा कुछ गाते हैं न? शादी में गाते हैं या नहीं?

मुमुक्षु : वह शादी के गीत हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी शादी के गीत हैं। जहाँ वस्तु है, वहाँ जाना और वहाँ से माल निकालना। 'डोशीने हाटे....' जहाँ माल हो तो लेने जाये, माल बिना जाते होंगे? यह भगवान अन्दर हाट अन्दर चिदानन्दमूर्ति ध्रुव दुकान है। हाट-हाट समझे न? बाजार, घर, दुकान। हमारे यहाँ शादी में स्त्रियाँ बोलती हैं। कुछ बोलती हैं, नहीं? आपकी भाषा होगी हिन्दी में कुछ। दूसरी भाषा होगी सब। चूल्हे में राख हो तो सबके वहाँ होता होगा। समझ में आया? आहाहा!

भगवान विराजते हैं न, परमात्मा स्वयं पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु तुम।

वहाँ जा, उस दुकान पर जायेगा तो माल मिलेगा। बाकी कहीं से माल मिलेगा नहीं। आहाहा! ऐसा जो कथन किया था, वहाँ तो चार पर्यायें नहीं, ऐसा कहा था। वह त्रिकाली द्रव्य विद्यमान चीज़ जो त्रिकाली है, उसका आश्रय कराने को, उसकी दृष्टि कराने को त्रिकाली को सत्य कहा और पर्याय को असत्य वहाँ कहा था। समझ में आया?

तो यहाँ कहते हैं कि कही थी वही बात... **विभाव पर्यायें वास्तव में....** निश्चय से **व्यवहारनय के कथन से हैं।** वह पर्याय है, पर्याय है, क्षायिकभाव है, दया, दान, परिणाम हैं। शुभ-अशुभ परिणाम है, उदयभाव है, विद्यमान है। ऐसी बात व्यवहारनय से कही। **और जो (व्यवहारनय के कथन से) चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं,....** क्या कहते हैं? पर्यायपने परिणमित होनेवाले जीव में चार विभावरूप पर्याय से परिणमन होनेवाली संसारी पर्याय है। संसार जीव में... संसारी जीव में पर्याय में उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकरूपी परिणतवाली पर्याय है। समझ में आया? आहाहा! कहाँ तक लिखा है! बहुत कठिन बात।

वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं। जिसको संसारदशा में चार पर्याय सम्पन्न कहा, संसारी जीव को। संसारी प्राणी (अर्थात्) पहले से चौदह गुणस्थान तक। समझ में आया? उसको रागादि विकार है, उपशम है, क्षयोपशम ज्ञानादि है, क्षायिक समकित आदि है और (क्षायिक) चारित्र आदि है (जो) वह केवलज्ञानी हो। तो ऐसे संसारी प्राणी पर्याय में चार प्रकार की पर्याय सहित है। समझ में आया? वह वस्तु—पर्याय विद्यमान है।

वे सब जीव.... जिसको वर्तमान में चार पर्याय विद्यमान—अस्ति—मौजूद कहने में आती है, वे सब **शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं।** वह तो सिद्ध भगवान-समान ही है। उसमें कोई चार पर्याय है नहीं। परमपारिणामिक-भावमात्र है, ऐसा बताते हैं। आहाहा! ऐई! शुद्ध की अपेक्षा से कहने में आता है। शुद्ध। वे शुद्ध हैं, ऐसा ही शुद्ध है ऐसे। समझ में आया?

संसारी जीव—एकेन्द्रिय से लेकर चौदह गुणस्थान तक। उसकी चार विभावभाव—

चार विभावपर्यायरूप, चार विभावभाव अर्थात् पर्याय। चार विकारी अथवा विशेष। विकार अथवा विशेष। गुण का विकार, सो विशेष। इसलिए पर्याय भी विकार में (लेते) हैं। विकार अर्थात् विशेष कार्य। यह चार—उदयभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिकभाव और उपशम। विभावपर्यायरूप परिणत होने से... क्योंकि गुणरूप तो परिणमने की बात यहाँ नहीं। वह चार भावरूप—चार पर्यायरूप—चार दशारूप परिणत पर्यायरूप होने से संसार में संसारी जीव को पर्यायदृष्टि से चार पर्यायें विद्यमान हैं। समझ में आया ? यह क्या है ?

वे सब.... उसी संसारी जीव को **शुद्धनय के कथन से....** जैसे शुद्ध गुण-पर्याय द्वारा (शोभित) सिद्ध भगवान हैं, ऐसा ही सिद्ध भगवान जैसा यह आत्मा है। शुद्धनय जैसा (अर्थात्) यह सिद्ध जैसा है। भले वहाँ पर्याय शुद्ध है, ऐसी यहाँ वस्तु शुद्ध ही है। उसमें चार पर्याय के भाग हैं नहीं। आहाहा! समझ में आया ? ज्ञान में भाव में यह बात पहली ख्याल में आनी चाहिए। समझ में आया ? क्या चीज़ है ? कैसे कहते हैं ? कैसा होता है ? कैसा होना चाहिए ? समझ में आया ? सच्चा ज्ञान नहीं और उल्टे ज्ञान से काम ले तो वह उल्टा ज्ञान है। मिथ्यात्व बन्ध पड़ता है। भले कषाय राग मन्द हो और मुनिपना ले लिया हो पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण। समझ में आया ? वस्तु की खबर नहीं। तो क्षण-क्षण में अंशबुद्धि में मिथ्यात्व का पोषण होता है। पण्डितजी! आहाहा! लो!

वह नीचे कहा न ? नीचे (फुटनोट) का लो थोड़ा। **वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं। (अर्थात् जो जीव व्यवहारनय के कथन से औदयिकादि विभावभावोंवाले होने से संसारी हैं, वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्ध गुण तथा शुद्ध पर्यायोंवाले होने से सिद्ध सदृश हैं)।** लो। समझ में आया ?

अब नीचे नोट। **प्रमाणभूत ज्ञान में शुद्धात्मद्रव्य का तथा उसकी पर्यायों का — दोनों का सम्यग्ज्ञान होना चाहिए।** प्रमाणभूत अर्थात् द्रव्य का और पर्याय / अवस्था का—दोनों का प्रमाणभूत ज्ञान में **शुद्धात्मद्रव्य का....** त्रिकाली द्रव्य जो ज्ञायकभाव भगवान पूर्णानन्द है, उसका भी और उसकी पर्यायें चार, उनका भी—दोनों का सम्यग्ज्ञान तो होना चाहिए। समझ में आया ? पर्याय का ज्ञान नहीं, तब तो मिथ्यादृष्टि हो गया। समझ में आया ? मिथ्याभासी हो गया। पर्याय नहीं... पर्याय नहीं... पर्याय नहीं तो फिर कार्य तो पर्याय से लेना है। समझ में आया ?

दोनों का सम्यग्ज्ञान होना चाहिए। ''स्वयं को कथंचित् विभावपर्यायें विद्यमान हैं'' ऐसा स्वीकार ही जिसके ज्ञान में न हो... स्वयं को कथंचित् विभावपर्याय अर्थात् चार पर्याय विद्यमान हैं, ऐसा स्वीकार ही जिसके ज्ञान में न हो, **उसे शुद्धात्मद्रव्य...** त्रिकाली है, उसका **भी सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता।** समझ में आया? ऐसी धर्मकथा? कि ऐसी ही है। वह कहे, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय... श्रीमद् ने भी कहा है। भाई हर रोज आप बात करते हो आप एकेन्द्रिय आदि की। परन्तु यह समकित की बात करो। गोठवण करो, ऐसा लिखा है। श्रीमद् में। किसी को कहा होगा श्रीमद् राजचन्द्र ने कि आप हररोज एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौ इन्द्रिय न मारना, बचाना। यह सब बहुत कही। हजार बार सुनी। अब यह समकित का विचार करना कुछ कि समकित कैसे होता है? समकित क्या चीज़ है? और किसके आश्रय से होता है? ऐसा लिखा है। श्रीमद् में आता है। समझ में आया कुछ? सारे दिन छह काय के जीव हैं, यह भगवान है, पंच परमेष्ठी हैं। परन्तु हैं तो क्या करना है आपको? समकित कैसे होता है? समकित का आश्रय, ऐसी बात करनी है या नहीं आपको? ऐई! पोपटभाई! है कहीं पर। समकित के योग्य (विचार) करना, ऐसा कुछ है।

मुमुक्षु : सत्य धर्म की शुरुआत करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य धर्म क्या है, उसकी तो बात करते नहीं। बहुत बात की, जब जन्मे तब से कि छह काय के जीव हैं, उनको नहीं मारना।

मुमुक्षु : ऐसा ही भगवान ने कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा भगवान ने कहा नहीं। समझ में आया कुछ? देखो न, दोनों को चर्चा चली थी। तेरापंथी और स्थानकवासी में। तेरापंथी है न तुलसी? उसकी और स्थानकवासी को। एक सूत्र है प्रश्नव्याकरण में। छह काय जीव रखण... ऐसा शब्द है। तब तेरापंथी कहे कि छह काय जीव रखण है, उसका अर्थ? जीव को नहीं मारना ऐसा भगवान ने कहा है। तब वह कहे, छह काय जीव रखण (का अर्थ) छह काय की जीव की रक्षा के लिये भगवान ने प्रवचन कहा है। मारना नहीं। रक्षा करना, ऐसा नहीं। रक्षा करना, वह तो तेरापंथी को गड़बड़ हो जाये।

वह तो ऐसा कहे, देखो! कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं कि छह काय जीव की रक्षा आत्मा से हो नहीं सकती। ऐसी बात करते हैं। परन्तु वह तो पर की दया पाल नहीं सकता, ऐसी बात है। रक्षा कर सके और मार सके—दोनों बात नहीं है। परद्रव्य की पर्याय को कौन मारे? कौन रक्षा करे? एक महीने तक चर्चा, हों! उबले, कषाय में उबले। वह कहे—नहीं, छह काय जीव की रक्षा करना, ऐसा भगवान ने कहा है। यह बाईस सम्प्रदायवाले। प्रवचन में ऐसे कहा है। वह कहे, ऐसा नहीं। वही सूत्र की तकरार एक महीने तक (चली)। लीलाधरजी थे, वह कहते थे। हमारे पक्ष की बात कुछ आवे और सामनेवाला नीचे आये तो हमें आहार लेने को ठीक पड़े। परन्तु हमारे विरुद्ध की आवे तो कषाय होवे और आहार लेना (ठीक न पड़े)। आहार लेने को जाते थे... लीलाधरजी थे, एक तेरापंथी साधु। साधु थे, बाद में श्रावक हो गये। आहाहा! अब दोनों की बात झूठी है।

भगवान ने जो प्रवचन कहा है, वह आत्मा का आश्रय करके वीतरागता प्रगट करने के लिये कहा है। विवाद के लिये नहीं। छह काय की रक्षा के लिये नहीं और छह काय की... दोनों की मान्यता झूठी है। अरे रे! आहाहा! बड़ा विवाद। तब कहते थे। ऐई! शान्तिभाई! सुना है या नहीं यह? स्थानकवासी और तेरापंथी दोनों के बीच में एक महीने तक चर्चा चली थी। यहाँ तो कहे, तुम दोनों की बात झूठी है। भगवान की वाणी वीतरागता होने के लिये आयी है और वीतरागता स्वद्रव्य के आश्रय से होती है। किसी पर के आश्रय से नहीं होती। सारा प्रवचन चौदह पूर्व और बारह अंग भगवान ने कहा, वह इसीलिए कहा है। समझ में आया न? पंचास्तिकाय में आता है न? सारा शास्त्र का तात्पर्य क्या? वीतरागभाव। पंचास्तिकाय में आता है। एक सूत्रतात्पर्य, एक शास्त्रतात्पर्य। सूत्रतात्पर्य का अर्थ गाथा-गाथा में क्या कहना है, वह गाथा में कहा वह। यह तो कहे कि सारा शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है। तो वीतरागता का अर्थ? पर की अपेक्षा छोड़कर त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा करे तो वीतराग सम्यग्दर्शन होता है। वीतरागी ज्ञान, वीतरागी चारित्र हो, उसके सिवा वीतरागी ज्ञान होता नहीं। समझ में आया?

दोनों का सम्यग्ज्ञान होना चाहिए। 'स्वयं को कथंचित् विभावपर्यायें विद्यमान

हैं'... पर्यायदृष्टि से व्यवहारनय से व्यवहार कथंचित्... द्रव्य में नहीं, परन्तु पर्याय में पर्याय है। **ऐसा स्वीकार ही जिसके ज्ञान में न हो, उसे शुद्धात्मद्रव्य का भी सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए ''व्यवहारनय के विषयों का भी ज्ञान तो ग्रहण करनेयोग्य है''....** यह आया ग्रहण। उपादेय की व्याख्या। जानना। व्यवहारनय का अर्थ ज्ञान है जानना कि है... है... पर्याय है, राग है, उपशम है, क्षयोपशम है, क्षायिक है। समझ में आया? **ऐसी विवक्षा से ही यहाँ व्यवहारनय को उपादेय कहा है,...** ऐसा कथन करने में व्यवहारनय को उपादेय कहने में आया है।

''उनका आश्रय ग्रहण करनेयोग्य है'' ऐसी विवक्षा से नहीं। उनका आश्रय ग्रहण करनेयोग्य है। क्या? पर्याय का आश्रय करनेयोग्य है, उस कथन से ग्रहण करनेयोग्य कहा नहीं। **आश्रय ग्रहण करनेयोग्य है'' ऐसी विवक्षा से नहीं। व्यवहारनय के विषयों का आश्रय...** पर्याय का आश्रय, पर्याय का आलम्बन, पर्याय का झुकाव, पर्याय की सन्मुखता और पर्याय की भावना **तो छोड़नेयोग्य है ही....** समझ में आया? आहाहा! निमित्त का आश्रय, निमित्त का अवलम्बन, निमित्त का झुकाव, सन्मुखता तो छोड़नेयोग्य है ही, परन्तु एक समय की पर्याय का झुकाव, पर्याय की सन्मुखता, पर्याय का आलम्बन, पर्याय की एकाग्रता भी छोड़नेयोग्य है। धन्नालालजी! ऐसी बात, भाई! आहाहा! गुना में तो ऐसी बात चली नहीं हो कभी। गुना में तो अवगुण की बात हो, गुण की कहाँ से हो? आहाहा! अनादि से यह बात सुनी नहीं... सुनी नहीं। आहाहा!

भगवान चैतन्य नित्यानन्द प्रभु, उसका आश्रय कराने को और उसके आश्रय से धर्म की दशा होती है, परन्तु पर्याय के आश्रय से आश्रय करनेयोग्य है, आलम्बन करनेयोग्य है, झुकाव करनेयोग्य है, ऐसा है नहीं। वह तो छोड़नेयोग्य है, ऐसा समझाने के लिये है। ५०वीं गाथा आयेगी अभी। व्यवहारनय को **व्यवहारनय को स्पष्टरूप से हेय कहा जायेगा।** चारों पर्याय उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक को हेय कहा है। अभी ५०वीं गाथा में आयेगा। यह ४९ है। चार पर्याय है, वह परद्रव्य है, परभाव है, हेय है। ऐसे तीन बोल ५० (गाथा) में आयेंगे। आहाहा! चिल्लाने लगे या नहीं इसमें? क्षायिक समकित की पर्याय वह परद्रव्य है, परभाव है, उसके लिये परद्रव्य है, इसलिए हेय है। तीन बोल आयेंगे ५०वीं गाथा में। समझ में आया?

जिस जीव के अभिप्राय में शुद्धात्मद्रव्य के आश्रय का ग्रहण और पर्यायों के आश्रय का त्याग हो,... देखो! **जिस जीव के अभिप्राय में...** श्रद्धा में **शुद्धात्मद्रव्य के आश्रय का ग्रहण...** करनेयोग्य है। पर्याय के आश्रय का त्याग हो। **उसी जीव को द्रव्य तथा पर्यायों का ज्ञान सम्यक् है, ऐसा समझना, अन्य को नहीं।** हमारे पण्डितजी ने बहुत स्पष्ट कर दिया है। समझ में आया? कहो, बराबर हुआ। भगवानजीभाई! आहाहा!

भगवान आत्मा ध्रुव वस्तु द्रव्य—वस्तु त्रिकाली वस्तु... एक समय की पर्याय के लक्ष्य बिना त्रिकाली चीज़ है, वह आश्रय करनेयोग्य है, ग्रहण करनेयोग्य है और एक समय की पर्याय उसकी है। हो प्रमाण के विषय की अपेक्षा से। उस पर्याय का आश्रय, झुकाव, सन्मुखता छोड़नेयोग्य है। क्योंकि द्रव्यदृष्टि में पर का आश्रय बिल्कुल काम करेगा नहीं। आहाहा! बहुत बात! द्रव्यदृष्टि क्या उसमें कुछ समझे नहीं; ऐई! नटु! नया सुने। स्थानकवासी हो, मन्दिरमार्गी हो, कहे कि यह क्या कहते हैं? कुछ समझते नहीं। एक व्यक्ति कहता था।

द्रव्य अर्थात् वस्तु भगवान अन्दर पूर्णानन्द वस्तु, एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में त्रिकाली तत्त्व सारा ध्रुव है, उसमें अन्तर आश्रय करे, अवलम्बन करे, सन्मुख हो, झुकाव हो तो धर्म होता है। नहीं तो दया पाले, अहिंसा पाले, वह कोई धर्म-बर्म है नहीं। आहाहा! ऐई! सेठ! पैसे-बैसे का दान करे तो धर्म नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : दान नहीं करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं करे क्या? वह करता है? उसको तो विकल्प आता है। वह तो लक्ष्मी जानेवाली हो तो जाये बिना रहेगी नहीं। रखे क्या वह? वह तो जड़ है। जड़ जहाँ रहनेवाली हो, वहाँ रहेगी। जड़ क्षेत्रान्तर होकर जानेवाली होगी तो जायेगी... जायेगी... और जायेगी। समझ में आया? देखो न!

मुमुक्षु : झूठा मान करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मान करे। बराबर है। हमने रखे, हमने दिया। वह तो परवस्तु है। देखो न, अहमदाबाद में कितना नुकसान हुआ? लोगों को बेचारों को... वह पर्याय होनेवाली है, उसको कौन रोके? समझ में आया?

मुमुक्षु : रोकने का प्रयत्न करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रयत्न करे तो वह जब होनेवाली होगी, तब बनती है। बाकी उसका कोई उपाय नहीं। सूक्ष्म बहुत, भाई! विवाद करनेवालों ने भाव किया तो उसको नुकसान है। वह तो बाह्य की क्रिया तो होनेवाली होगी। कठिन काम है, भाई! वीतरागमार्ग समझना।

मुमुक्षु : वीतरागमार्ग समझने में न आवे...

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे?

मुमुक्षु : वीतराग समझना हो तो पुण्य करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य करे... वह करता है अनादि का मिथ्यात्व। पुण्य करूँ, राग करूँ, वह तो मिथ्यात्वभाव है। पर्यायदृष्टि है। मिथ्यात्व तो करते ही हैं। वह तो करते हैं अनादि से। वह कोई नयी चीज़ नहीं है। आहाहा!

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में पाँचवें श्लोक द्वारा) कहा है कि — लो। देखो! अपने आधार के लिये कहते हैं।

(मालिनी)

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहित-पदानां हन्त हस्तावलम्बः।
तदपि परम-मर्थं चिच्चमत्कार-मात्रं,
परविरहित-मन्तः पश्यतां नैष किञ्चित्॥

ओहोहो!

मुमुक्षु : उसको देखता भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ जहाँ अन्दर देखे तो पर्याय पर्याय है नहीं अन्दर, ऐसा कहते हैं मूल तो। आहाहा!

श्लोकार्थः—यद्यपि व्यवहारनय इस प्रथम भूमिका में जिन्होंने पैर रखा है—

अर्थात् जहाँ पूर्ण दशा नहीं और पर्याय जहाँ है, उस पर लक्ष्य है तो **ऐसे जीवों को, अरे रे! हस्तावलम्बनरूप भले हो,...** जाननेयोग्य है पर्याय, ऐसा कहने में आया है। है, जाननेयोग्य है कहा। **तथापि जो जीव चैतन्यचमत्कारमात्र, पर से रहित...** तथापि जीव चैतन्यचमत्कारमात्र भगवान आत्मा... जिसमें तीन काल तीन लोक एक समय में जानने का चैतन्यचमत्कार स्वभाव पड़ा है, ऐसा अपना स्वभाव पर से रहित है।

जीव चैतन्यचमत्कारमात्र.... अस्ति और रागादि से रहित, अरे! पर्याय से भी रहित। **ऐसे परम पदार्थ को अन्तरंग में देखते हैं,...** ऐसे त्रिकाली ध्रुव पर दृष्टि करके अनुभव करते हैं, **उन्हें यह व्यवहारनय कुछ नहीं है।** पर्याय-फर्याय कुछ है नहीं। आहाहा! बहुत कठिन है, भाई! हमारे सेठ कहते हैं कि कोई नये आये तो भड़क जाये, ऐसा है।

मुमुक्षु : विभाविक पर्याय आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय अन्दर आती है, परन्तु पर्याय देखती है द्रव्य को। समझ में आया? पर्याय देखती है द्रव्य को, तब पर्याय का अनुभव होता है। समझ में आया? पर्याय अनुभव करे पर्याय का, परन्तु पर्याय देखती किसको है? त्रिकाली द्रव्य को देखती है तो पर्याय में आनन्द का अनुभव आता है। पर्याय को देखे तो पर्याय में राग का अनुभव होता है। बात बहुत अलौकिक है। गाथा बहुत अच्छी आ गयी है। समझ में आया? बहुत गाथा, अलौकिक गाथा है। ५० में भी थोड़ी अलौकिक बात है।

उन्हें यह व्यवहारनय कुछ नहीं है। पर्याय-फर्याय कुछ है नहीं। द्रव्य का जहाँ अनुभव करे, तब पर्याय कहाँ? द्रव्य में तो पर्याय दिखती ही नहीं, भेद दिखते ही नहीं। अरेरे! अर्थात् क्या करे? ऐसे। अरे रे! पर्याय ख्याल में तो आती है, परन्तु क्या करे? खेद करते हैं कि पर्याय है, व्यवहार है, खेद है। समझ में आया? अरेरे! पर्याय यह है क्या करे? परन्तु हम तो द्रव्य का आश्रय करते हैं। हो पर्याय पर्याय में, क्या करे? पर्याय नहीं, ऐसा तो हम नहीं कहते हैं, ऐसा कहते हैं। परन्तु आश्रय करनेयोग्य नहीं है। समझ में आया? हमें तो खेद है। खेद है, ऐसा अर्थ करते हैं उसमें। समझ में आया?

कहते हैं कि जाननेयोग्य पर्याय तो होती है। आता है न? व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान। यह बात कहते हैं। यह बात है। जब तक (पर्याय में) पूर्णता न हो तब

तक पर्याय है, उसको जाननेयोग्य है, परन्तु जहाँ द्रव्य के अनुभव में गये तो पर्याय कुछ है नहीं। अन्दर है नहीं और अनुभव में आनेयोग्य चीज़ है। पर्याय का अनुभव हो, परन्तु अनुभव का आश्रय तो द्रव्य है तो उस द्रव्य में पर्याय है नहीं। आहाहा! समझ में आया? व्यवहारनय कुछ नहीं। अर्थात् है नहीं, ऐसा। निश्चय की अपेक्षा से व्यवहार है नहीं, ऐसा कहते हैं मूल तो। व्यवहार की अपेक्षा से व्यवहार है, जाननेयोग्य है। क्या करे? जाननेयोग्य चीज़ तो रहती है विद्यमानता। अरेरे! क्या करे? कि व्यवहार पर्याय है, जाननेयोग्य है, परन्तु आदरनेयोग्य नहीं।

अन्दर द्रव्यस्वभाव निर्विकल्प अभेद भगवान की अन्दर रुचि करने से अनुभव में वह पर्याय तो कुछ है नहीं। केवल द्रव्य ही है। आहाहा! समझ में आया? ऐई नटु! ऐसी बात है, यह सब समझना पड़ेगा। उस दुकान में कुछ नहीं है। यह सब चढ़ा दे कि यह होशियार हुआ है, ऐसा है। धूल में भी नहीं होशियारी। यह तो सब गहलपन-पागलपना है। भीखाभाई! आहाहा!

अब टीका करनेवाले मुनि स्वयं श्लोक कहते हैं।

(स्वागता)

शुद्धनिश्चयनयेन विमुक्तौ
सन्सृतावपि च नास्ति विशेषः।
एवमेव खलु तत्त्व-विचारे
शुद्ध-तत्त्व-रसिकाः प्रवदन्ति॥७३॥

श्लोकार्थः—शुद्धनिश्चयनय से मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है;... दोनों पर्याय हैं। **ऐसा ही वास्तव में, तत्त्व विचारने पर (परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा निरूपण करने पर), शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं।** शुद्ध निश्चय से मुक्ति में और संसार में अन्तर नहीं अर्थात् दोनों पर्याय है, ऐसा कहते हैं। ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा की अन्तर्दृष्टि करने से, शुद्ध ध्रुव की दृष्टि सम्यक् करने से पर्याय-फर्याय उसमें है ही नहीं। मोक्ष की पर्याय नहीं और बन्ध की पर्याय भी नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

शुद्धनिश्चयनय से मुक्ति में.... मुक्ति की पर्याय में **तथा संसार में अन्तर नहीं है;...** अन्तर अर्थात् दो पर्याय। दोनों पर्याय हैं। हमारे आश्रय करनेयोग्य नहीं। **ऐसा ही वास्तव में, तत्त्व विचारने पर...** तत्त्व का सम्यक् विचार करने पर... **(परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा निरूपण करने पर), शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष (ऐसा) कहते हैं।** आहाहा! मुक्ति में और संसार में अन्तर नहीं। अरे! केवलज्ञान प्रगटे, परन्तु केवलज्ञान प्रगटे तो ध्रुव में कहाँ शुद्धि बढ़ गयी है? और संसार में महा अशुद्धता हो निगोद जैसी, तो ध्रुव में कहाँ घुस गयी है मलिनता? ऐसा कहते हैं मूल तो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा का ऐसा है। ऐसा है। बराबर है। सेठ ठीक कहते हैं। ...ऐसी बात की। पकड़े न, अब तो पकड़े या नहीं। किसलिए... समझ में आया? कहो, सेठी! क्या कहा?

कि भगवान आत्मा परमपारिणामिक ध्रुवस्वरूप जो चिदानन्द नित्य है... वह मुक्ति की पर्याय हो, तब भी हेय ही है, संसार की पर्याय हो तो हेय ही है। संसार की तीव्र मिथ्यात्व की पर्याय हो तो वहाँ ध्रुव में कुछ बिगाड़ हो जाता है और मुक्ति—केवलज्ञानपर्याय हो तो ध्रुव में सुधार हो जाता है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ध्रुव तो ऐसा का ऐसा रह जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव तो ऐसा का ऐसा है। समझ में आया? ऐसा तत्त्व विचारनेवाले पुरुष, वस्तु के विचारवाले कहते हैं। अज्ञानी को तो खबर है नहीं, ऐसा कहते हैं। बाद में ५० गाथा आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण २, शनिवार, दिनांक - २७-०९-१९६९
गाथा-५०, प्रवचन-१८

५० गाथा। नियमसार। **यह, हेय-उपादेय अथवा त्याग-ग्रहण के स्वरूप का कथन है।** बहुत ऊँची गाथा, सर्वोत्कृष्ट गाथा है। सार-सार।

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सग-दव्व-मुवादेयं अंतर-तच्चं हवे अप्पा॥५०॥

पर-द्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही।
अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तस्तत्त्व हैं आदेय ही॥५०॥

टीका। इस गाथा में हेय कौन है और अंगीकार करनेयोग्य उपादेय कौन है, इसकी गाथा है। मोक्षमार्ग के अधिकार की और त्याग-ग्रहण का स्वरूप... हेय का त्याग और उपादेय का ग्रहण। जो ४९वीं गाथा में व्यवहार से (कहा) था, व्यवहार से है (ऐसा) जो कहा था, **जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं,...** व्यवहार से है, पर्याय से है, इतना हो। आदरणीय-फादरणीय का प्रश्न नहीं। अस्ति धराती है। सुबह आया था न? परमार्थ से नहीं। व्यवहार से पर्याय में राग, उदय पर्याय, क्षयोपशम पर्याय है, बस इतना। समझ में आया?

व्यवहारनय से विभावगुण पर्याय अर्थात् चारों भावों की पर्याय—दया, दान, आदि विकल्प, उपशम, समकित आदि पर्याय, क्षयोपशम ज्ञान आदि पर्याय और क्षायिक समकित आदि पर्याय, वह चार। चारों विभावगुण पर्याय है। समझ में आया? **विभावगुणपर्यायें हैं, वे पहले (४९वीं गाथा में) व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं,...** जाननेयोग्य है, ऐसा जाननेयोग्य जो कहा था। **किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं।** लो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ना कही न। है ही नहीं उसमें।

मुमुक्षु : तुम नहीं मैं। तुम नहीं मैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो एक क्षायिक केवलज्ञान भी अपना स्वरूप नहीं। समझ में आया? मिथ्यात्वभाव, शुभाशुभरागभाव और उपशम समकित आदि भाव, क्षायिक समकित आदि भाव या उपशम चारित्र आदि पर्याय और केवलज्ञानादिक पर्याय—जितने उदयभाव, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक है, वह सब पर्याय है। तो पर्याय से वह जाननेयोग्य है, ऐसा व्यवहारनय से कहा था। है, पर्याय है, इतना। परन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से—अन्तर द्रव्यस्वभाव की दृष्टि करनेवाले ज्ञान से वे हेय हैं, चारों पर्यायें हेय हैं। ओहोहो! अभी तो यहाँ शुभराग हेय मानने में उसको पसीना आता है। ऐई! शोभालालजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो चारों पर्याय। यहाँ तो अभी शुभोपयोग हेय है, यह मानना भी कठिन लगता है।

मुमुक्षु : मानना कहाँ, सुनना (कठिन) पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुने कि अरे रे! अरे!

यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य एक आत्मा शुद्ध द्रव्यस्वभाव त्रिकाली ध्रुवस्वभाव, त्रिकाली कारणपरमात्मा, वही आदरणीय है, उसके अतिरिक्त शुभभाव या उपशम या क्षयोपशम, क्षायिक आदि भाव, वह आदरणीय नहीं। पाठ में ऐसा लिया है। '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं।**' अर्थ में '**परसहाव परदव्वं हेयं।**' टीका में '**हेयं परसहाव परदव्वं**' ऐसा लिया है। टीका में पहले हेय लिया है। बाद में परस्वभाव और परद्रव्य लेंगे। पाठ में '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं।**'

मुमुक्षु : अन्तिम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। उसको टीका में पहले डाला। क्योंकि (जो) उपादेय (है उसे) हेय करना है न? समझ में आया? शान्ति से समझने की चीज़ है। बहुत अलौकिक गाथा है। वस्तु एक समय में ध्रुव चैतन्य कन्द निर्विकल्प निष्क्रिय है। निष्क्रिय शब्द से जिसमें क्षायिकभाव की पर्याय नहीं, उपशम की नहीं, क्षयोपशम की नहीं और राग की नहीं, वह तो साधारण बात है। समझ में आया? ऐसा आत्मा त्रिकाली निष्क्रिय ध्रुव,

वही सम्यग्दृष्टि को उपादेय और आदरणीय है। है उसमें ? देखो! समझ में आया ? आहाहा!

व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं,... ४९ में। उपादेय अर्थात् जाननेयोग्य कही गयी थी। जानना (अर्थात्) ग्रहण करना, ऐसा कहने में आया था। परन्तु यहाँ कहते हैं, वास्तविक दृष्टि से भगवान आत्मा में दो अंश है। नय तो अंश को विषय करता है न ? नय पूरे को विषय नहीं करता। द्रव्य, पर्याय दो का विषय करे तो प्रमाणज्ञान होता है। समझ में आया ? सारा—पूर्ण द्रव्य और एक समय की अवस्था—दो का ज्ञान करे, वह तो प्रमाणज्ञान हुआ। परन्तु नय में तो एक अंश का ज्ञान है, तो व्यवहारनय है, वह वर्तमान राग, चार पर्याय है, ऐसा जानता है। द्रव्य में वर्तमान पर्याय में चार प्रकार की अवस्था है, ऐसा व्यवहारनय, प्रमाण का अंश है, इस कारण से व्यवहारनय अंश को अस्ति है, ऐसा जानता है। समझ में आया ?

परन्तु निश्चयनय वह पर्याय के अंश बिना का त्रिकाली द्रव्य जो है... वह शुद्ध निश्चयनय के बल से। देखो! **व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थी, किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से...** संस्कृत है, देखो अन्दर में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। '**व्यवहारनयादेशादुपादेयत्वेनोक्ताः निश्चयनयबलेन हेया भवन्ति।**' संस्कृत है। वह तो अनादि सनातन सत्य है। लोगों को (बात) समझ में आती नहीं और ऐसा पकड़कर...

यहाँ तो कहते हैं कि एक समय के अंश में जो वहाँ रुका तो द्रव्य का अनादर हो जाता है। राग में तो नहीं, राग पुण्य शुभभाव तो दूसरी चीज़ रही, परन्तु क्षयोपशमज्ञान—राग को जाननेवाली जो पर्याय है, वह अंश है। वहाँ खड़ा होकर... वहाँ खड़ा रहा तो द्रव्य का अनादर किया। समझ में आया ? पर्याय में रहकर द्रव्य को देखना ऐसा हो सकता नहीं, ऐसा कहते हैं। पर्याय से द्रव्य में देखना, परन्तु वह द्रव्य ध्रुव है, उसमें पर्याय को स्थापना। आहाहा! समझ में आया ? राग में, निमित्त में रहकर तो द्रव्य का लक्ष्य होता नहीं, द्रव्य की दृष्टि होती नहीं, परन्तु एक समय की पर्याय में रहकर द्रव्य की दृष्टि होती नहीं। आहाहा! समझ में आया ? गम्भीर बात, भाई!

शुद्धनिश्चयनय के बल से (शुद्धनिश्चयनय से)... ऐसे। बल कहा न? (अर्थात्) उस कारण से। **वे हेय हैं।** चार प्रकार का—उदयभाव जो २१ प्रकार, १८ आदि है न सब? क्षायिक के ९ प्रकार। आ गये हैं पहले। क्षायिक के ९ प्रकार, उपशम के समकित दर्शन, (चारित्र) दो प्रकार। क्षयोपशम के कितने हैं? उदय के २१ और क्षयोपशम के १८। वह सब प्रकार धर्मी को दृष्टि में हेय है। आहाहा!

मुमुक्षु : हेय का ज्ञान कराया?

पूज्य गुरुदेवश्री : और क्या करे? समझ में आया?

एक परमपारिणामिक त्रिकाली ध्रुवस्वभाव, वही धर्मीजीव को सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में आदरणीय है। आहाहा! समझ में आया? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ऐसा बताया... क्या बताया है? बराबर कहा है। ४९ (गाथा) में कहा था कि जाननेयोग्य है, उस अपेक्षा से ग्रहण करनेयोग्य है। उस अपेक्षा से कहा था। वह यहाँ कहते हैं कि हेय हैं चारों पर्याय। एक द्रव्यस्वभाव त्रिकाली ध्रुव ही सम्यग्दृष्टि को उपादेय है। आहाहा! क्या हो? पूरा मार्ग ही गुलांट खा गया। सम्प्रदाय में तो पूरी चीज़ ही विपरीत कर दी। शास्त्र देखे नहीं, शास्त्र पढ़े नहीं और अपनी दृष्टि से लगावे अन्दर। पण्डितजी! यह पण्डित लोगों को फुरसत नहीं। अपनी दृष्टि से पढ़े। निवृत्ति नहीं। समझे? फुरसत नहीं। और पढ़े तो अपनी दृष्टि से। क्या तत्त्व है...?

यहाँ तो कहते हैं कि पहले धड़ाके (अर्थात्) सम्यग्दर्शन के काल में—सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, उस काल में... केवल द्रव्य ज्ञायकस्वभाव ध्रुव अखण्ड अक्रिय—निष्क्रिय, चार प्रकार की पर्याय तो सक्रिय है, पलटन क्रिया है। समझ में आया? एक समय की अवस्था... केवलज्ञान भी एक समय की अवस्था है। समझ में आया? उपशम समकित भले असंख्य समय रहे, परन्तु एक समय की अवस्था है, दूसरे समय में दूसरी, तीसरे समय में तीसरी। तो कहते हैं कि भगवान आत्मा... जिसको सम्यग्दर्शन प्राप्त करना हो अथवा जिसको आत्मद्रव्य अंगीकार करना हो। समझ में आया? तो आत्मा में जो पर्याय दिखती है वर्तमान अंश, वह सब अंश—चार प्रकार की पर्यायें सब

हेय हैं। आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! कहो, भीखाभाई! आहाहा! बहुत कठिन।

मुमुक्षु : .... बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह देह की क्रिया तो कहीं रह गयी जड़ में। यह दया, दान, व्रत के परिणाम तो कहीं रह गये विकार में। आहाहा! क्या करे? महासागर ध्रुव प्रभु एक समय में चिदानन्द, परमानन्द अनन्त सिद्धपर्याय जिसमें अन्तर पड़ी है, ऐसा भगवान ध्रुवस्वरूप एक समय के अंश से रहित है। वह अंश में द्रव्य नहीं और द्रव्य में वह अंश नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि जो वहाँ ४९ में विभावगुण... विभाव अर्थात् चारों, हों! निमित्त के अभाव की अपेक्षा का अभाव होकर होता है तो केवलज्ञान को भी एक न्याय से यहाँ विभावपर्याय कहा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण की पर्याय है न वह? वह गुण शब्द से कहने में आया? गुणपर्याय। गुणपर्याय कहा न? गुण नहीं, गुण की पर्याय। समझ में आया? आहाहा! ज्ञानगुण की केवलज्ञान एक समय की पर्याय है। ज्ञानगुण की क्षयोपशम एक समय की पर्याय है और चारित्रगुण की एक समय की विरुद्धरूप शुभराग पर्याय है और समकितरूपी श्रद्धा नाम के गुण की क्षायिक समकित एक समय की पर्याय है। वह क्षायिक समकित की पर्याय भी हेय है, ऐसा कहते हैं यहाँ। आहाहा! क्योंकि पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती। समझ में आया?

मुमुक्षु : विभाव क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त की अपेक्षा आयी न? विशेषभाव। सामान्यभाव नहीं, त्रिकाली सामान्यभाव नहीं। समझ में आया? पहले शब्दार्थ करते हैं। टीका लेने से पहले शब्दार्थ करें। देखो!

अन्वयार्थ है न, अन्वयार्थ? '**पूर्वोक्तसकलभावाः**' अन्वयार्थ यह ऊँची गाथा है न तो अन्वयार्थ पहले लेते हैं। '**पूर्वोक्त**' पूर्व में कहा, ऐसे सर्व भाव। भाव अर्थात्

पर्याय। वह '**परस्वभावा:** ' '**परस्वभावा:** ' वह **परस्वभाव है...** आत्मस्वभाव नहीं। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय परस्वभाव है। क्षायिक समकित की पर्याय परस्वभाव है। त्रिकाली स्वभाव की अपेक्षा से परस्वभाव है। आहाहा! पूनमचन्दजी! कठिन बात है। दुनिया में खलबली मच जाये। कठिन लगे। यहाँ तो थोड़ा बहुत परिचय हुआ न! न सुननेवाले कभी सुनते नहीं। सुनने आये तो वह भड़कते हाय... हाय... दया, दान, व्रत का परिणाम कर्तृत्व मिथ्यात्व? अरे! सुन तो सही! वह दया, दान परिणाम कर्तृत्वयोग्य है, ऐसी मान्यता वह मिथ्यात्व है, विकार है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि **पूर्वोक्त सर्व भाव....** पर्याय। भाव अर्थात् यहाँ पर्याय है। कितना? कि उदयभाव का जो बोल है, क्षयोपशम (भाव) का बोल है, उपशम का और क्षायिक का। सर्व पर्याय '**परस्वभावा:** ' द्रव्यस्वभाव—अपना स्वभाव नहीं। परस्वभाव अर्थात् पर्याय मानो पर है। देखो तो सही। ओहोहो! मैं नहीं यह। केवलज्ञान की पर्याय मैं नहीं। आहाहा! चिल्लाने लगे। पर्याय व्यवहारनय का विषय है, वह मेरा नहीं। मैं तो ध्रुव त्रिकाली शुद्ध द्रव्य हूँ, ऐसे धर्मी की दृष्टि में ध्रुव ही उपादेय है। आहाहा! भगवानजीभाई! यह तो अलौकिक गाथा आयी है। इस बार सब अधिकार पर्यूषण में अच्छे आये हैं। सुबह में समयसार संवर (अधिकार), दोपहर में यह नियमसार। आहाहा!

कहते हैं कि पूर्व उक्त.... जो सर्वज्ञ परमेश्वर ने द्रव्य की पर्याय में कहा था, वह सर्व पर्याय परस्वभाव है। इसका अर्थ ही कि स्वस्वभाव नहीं। आहाहा! पाठ में पहले परद्रव्य है, बाद में परस्वभाव लिया है। परन्तु यहाँ उसमें परस्वभाव है, इसलिए परद्रव्य ऐसा लिया है। समझ में आया? आहाहा! टीका में पहले हेय कहकर बाद में परस्वभाव और परद्रव्य (कहा)। बाद में परद्रव्य लेंगे।

मुमुक्षु : परस्वभाव विभाविक....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो एक ही है। परस्वभाव है विशेष पर्याय हुई न? विशेष अवस्था। सामान्य नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर का ही स्वभाव है। वह द्रव्य के स्वभाव रहित है तो

पर का ही स्वभाव है। समझ में आया? '**ववहारोऽभूदत्थो**' व्यवहार असत्यार्थ है तो वह पर्याय सब असत्यार्थ है। त्रिकाली की अपेक्षा से असत्यार्थ है। ११वीं गाथा में भी वही कहा है। यह बात। आहाहा! दूसरी तरह से बात करते हैं। पर्यायमात्र व्यवहार है। क्या? परिणाममात्र व्यवहार है। चाहे तो केवलज्ञान परिणाम हो या चाहे तो क्षयोपशम या समकित का परिणाम हो। परिणाममात्र... पर्यायमात्र व्यवहार है।

मुमुक्षु : व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार असत्यार्थ, हेय है। आदरणीय नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : समकित को लेकर। जिसे समकित ग्रहण करना हो उसके लिये। यह तो क्या कहा? समकित की बात चलती है, मोक्षमार्ग की बात चलती है। जिसको सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो, पहले चौथा गुणस्थान जिसको प्रगट करना हो... आहाहा! उसको सर्व पर्याय परस्वभाव है। आहाहा! बात तो बात है न! द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से पर्यायस्वभाव परस्वभाव गिनने में आया है। निश्चय स्वभाव की अपेक्षा से पर्यायस्वभाव व्यवहारस्वभाव कहने में आया है। तो व्यवहारस्वभाव कहकर उसको परस्वभाव कहने में आया है। आहाहा! शोभालालजी! कभी सुना नहीं। ऐई! गड़बड़... गड़बड़....

भगवान परमात्मा शुद्ध चैतन्य ध्रुव महासागर अनन्त पुरुषार्थ का सागर, अनन्त ज्ञान का सागर, अनन्त दर्शन का सागर है। लो, यह सागर आया तुम्हारा।

मुमुक्षु : सागर उछला।

पूज्य गुरुदेवश्री : सागर उछला न... कुछ आता है न? गाते थे। लेहरियु उछळयुं, क्या कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय है। स्वसमय की एक समय की पर्याय है, वह परस्वभाव है। यहाँ तो बहुत उत्कृष्ट बात है। जरा सूक्ष्म बात है। आहाहा! स्वसमय की

जो पर्याय है न केवलज्ञान, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र? वह पर्याय है, वह परसमय है अथवा पर्याय, वह परभाव है, परस्वभाव है, अपना निजस्वभाव नहीं। आहाहा! चिल्लाने लगते हैं। यह गाथा तो बहुत सार—मक्खन है। यह तो (समयसार की) ११वीं गाथा में कहा है, उसका यहाँ स्पष्टीकरण दूसरी तरह से कहा है। समझ में आया?

परस्वभाव है अर्थात् द्रव्यस्वभाव नहीं। द्रव्यस्वभाव जो ध्रुवस्वभाव, वह यह भाव नहीं। आहाहा! **परद्रव्य है,...** देखो! यह चार प्रकार की पर्याय परद्रव्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : अखण्ड में परद्रव्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : अखण्ड में नहीं। पर्याय है, वह परद्रव्य है।

मुमुक्षु : अखण्ड में पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : अखण्ड द्रव्य तो एकरूप ध्रुव है। उसमें है नहीं वह। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : आमने-सामने लिया स्वद्रव्य और परद्रव्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे। आत्मा त्रिकाली स्वभावभाव जो है, वह स्व—अपना भाव है, पारिणामिकभाव जो त्रिकाली भाव ध्रुवभाव, वह अपना भाव और एक समय की पर्याय का भाव, वह परभाव है। जब स्वद्रव्य जो है त्रिकाली ज्ञायक, उसको द्रव्य कहा तो पर्याय को परद्रव्य कहा। यह शरीर और कर्म तो कहाँ रह गये परद्रव्य! सुन न! आहाहा! समझ में आया? भाई! जड़, (अन्य) चेतन (द्रव्य) आत्मा से भिन्न है, उनको तो परद्रव्य कहो, परन्तु अपनी पर्याय, प्रमाण के विषय में अपनी पर्याय को परद्रव्य?—कि, हाँ।

स्वद्रव्य का ज्ञान हो तो परद्रव्य का प्रमाणज्ञान सच्चा है। परद्रव्य अर्थात् पर्याय। पण्डितजी! देखो! उसमें है। आहाहा! राग तो परद्रव्य है, यह तो क्षायिक केवलज्ञान परद्रव्य है, क्षायिक समकित परद्रव्य है। चिल्लाने लगते हैं न। आहाहा! क्योंकि आश्रय करनेयोग्य नहीं है, वहाँ टिकने योग्य नहीं। दृष्टि तो ध्रुव पर देना है। त्रिकाली द्रव्य पर दृष्टि पसरने से सम्यग्दर्शन होता है। पर्याय के ऊपर दृष्टि देने से तो विकल्प उत्पन्न होता है। समझ में आाय?

पूर्वोक्त सर्व भाव परस्वभाव हैं, परद्रव्य हैं, इसलिए हेय हैं;... इसलिए हेय हैं।

मुमुक्षु : कारण बताया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण बताया। आहाहा! समझ में आया कुछ? परिणाममात्र हेय है। राग की तो कहाँ बात रही? और लड़के, स्त्री, वह तो हेय कहा, वह तो ज्ञेय है, वह तो पर है। आहाहा! समझ में आया? वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ धर्म अलौकिक है। वह चीज़ कोई दूसरे स्थान में नहीं होती और वह भी एक दिगम्बर सम्प्रदाय में है, दूसरे में है नहीं। समझ में आया? उसमें भी समझते नहीं तो वह भी अन्य सम्प्रदाय जैसा हो गया। दूसरे जैसा हो गया। बाबूलालजी! आहाहा!

'**पूर्वोक्तसकलभावाः**' शब्द पड़ा है न देखो पाठ में। '**पुव्वुत्तसयलभावा**' पूर्व में कही वह सकलपर्याय। ४९ में कहा था न? देखो!

एदे सव्वे भावा ववहारणयं पडुच्च भणिदा दु।
सव्वे सिद्धसहावा सुद्धणया संसिदी जीवा॥४९॥

फिर भी द्रव्यस्वरूप तो सिद्ध समान ही सबका है। यहाँ हेय-उपादेय का व्याख्यान किया। पाठ में ऐसा लिया कि '**पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं**' वह तो शब्द की सन्धि करना है न? '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं**' वह परद्रव्य है इसलिए परभाव है, इसलिए हेय है। परन्तु वह सन्धि में नहीं आता कि यहाँ स्वस्वभाव है, उस अपेक्षा से पर्याय परस्वभाव है, उस अपेक्षा से परद्रव्य है, उस अपेक्षा से परद्रव्य को हेय कहने में आया है। आहाहा! यहाँ तो शुभराग को भी हेय माने तो पसीना छूटता है, हाय... हाय... अरर! शुभ उपयोग! पूनमचन्दजी! सहन न हो। दया, व्रत का परिणाम? अरे! समकिती को, महाव्रत मुनि है, उसको महाव्रत का परिणाम? मुनि को, समकिती को, हों! अज्ञानी को तो कहाँ होता है? महाव्रत परिणाम? कि महाव्रत परिणाम हेय, हेय और हेय। परन्तु वह महाव्रत के परिणाम का ज्ञान किया अपने से अपने में, वह ज्ञान की पर्याय भी हेय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : श्रद्धा में है या चारित्र में?

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा में हेय, चारित्र-फारित्र कहाँ था वहाँ? श्रद्धा में हेय है

न? और राग आता है, राग है, तो श्रद्धा-ज्ञान का काम श्रद्धा-ज्ञान करते हैं या नहीं? राग आया, लो और उस समय श्रद्धा-ज्ञान खाली पड़ी है? श्रद्धा-ज्ञान काम करते हैं या नहीं? कि यह उपादेय है, ऐसी दृष्टि वहाँ है। और यह आदरणीय नहीं, ऐसा तो काम श्रद्धा-ज्ञान करता ही है। भले राग हो, शुभराग हो, अशुभ हो, उसमें क्या है? आहाहा! समझ में आया? आप कहो कि चारित्र की बात, श्रद्धा की बात, उसके लिये चलता है।

श्रद्धा-ज्ञान... द्रव्यस्वभाव ध्रुव। केवल निजानन्द प्रभु ध्रुव, उसका जहाँ श्रद्धा-ज्ञान हुआ, पश्चात् विकल्प हो, तो विकल्प के काल में भी श्रद्धा-ज्ञान, श्रद्धा-ज्ञान का काम करते हैं या नहीं? या श्रद्धा-ज्ञान कूटस्थ पड़े हैं? समझ में आया? जैसे द्रव्य कूटस्थ है। ऐसे श्रद्धा-ज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ कि ध्रुव, वह आदरणीय है। ऐसा भान हुआ। राग आया, अशुभराग आया। विषय-वासना का राग आया। उस समय श्रद्धा-ज्ञान काम करते हैं या मुफ्त में पड़े हैं? श्रद्धा-ज्ञान काम करते हैं कि यह आदरणीय है और यह आदरणीय नहीं है। ऐसा श्रद्धा-ज्ञान निरन्तर समय-समय काम करते हैं। आहाहा! क्या करे? मनुष्य को मूल रीति और मूल मार्ग की ख्याल में आया नहीं और बाहर से मान लिया है।

तो कहते हैं पूर्वोक्त सर्व पर्याय परस्वभाव है, परद्रव्य है। पहले परस्वभाव लिया। उस कारण से वह परद्रव्य है, इसलिए हेय है अर्थात् वहाँ लक्ष्य देनेयोग्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? देखो! यह भगवान सर्वज्ञ ने कहा हुआ तत्त्व! पहली सम्यग्दर्शन दशा में ही चौथे गुणस्थान से। सम्यग्दर्शन की पर्याय जब ध्रुव के ऊपर गयी, तब सम्यग्दर्शन हुआ। तो कहते हैं कि पर्याय जो है, वह परस्वभाव है। गजब बात है न! वह परद्रव्य है, इसलिए हेय है। अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य... भाषा देखो! पहले स्वभाव लिया न? तो परद्रव्य। तो अन्तःतत्त्व है, वह भाव, वह स्वद्रव्य। अन्तःतत्त्व का स्वभाव, वह स्वद्रव्य। आहाहा!

मुमुक्षु : आश्रय करनेयोग्य नहीं, इसलिए परद्रव्य या वास्तव में परद्रव्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : वास्तविक परद्रव्य है। यथार्थ में आश्रय करनेयोग्य नहीं। स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य है, कहो। स्वद्रव्य द्रव्यपने है और पर्याय अवस्तु है, द्रव्य

की अपेक्षा से पर्याय अवस्तु है, उसकी अपेक्षा से भले वस्तु हो। स्वद्रव्य की अपेक्षा पर अवस्तु है। तो अवस्तु कहो या परद्रव्य कहो। आहाहा! समझ में आया? कठिन बात, भाई! गजब किया है। सम्प्रदाय में तो सुनने को न मिले।

कहते हैं कि भगवान! तुम तो द्रव्य हो न? वह द्रव्य ही वस्तु का स्वरूप है। द्रव्य का स्वरूप वह (असली) स्वरूप है। पर्यायस्वरूप, वह द्रव्य का स्वरूप नहीं। इसलिए उसको परभाव कहकर, परद्रव्य कहकर हेय (कहा)। पर्याय मैंरूप नहीं। उस पर्याय की एकताबुद्धि, वही मिथ्यात्व है। सुनो! पर्याय का अंश है, वह मुझमें है, ऐसी एकताबुद्धि, आहाहा! वही मिथ्यात्व है। पर्याय से सर्वथा द्रव्य भिन्न है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो नाशवान पर्याय है। नाशवान पर्याय की अपेक्षा से अविनाशी सर्वथा भिन्न है। आहाहा! यह कोई बात है! वीतराग सर्वज्ञ का मार्ग... केवली पण्णंतो धम्मो शरणं, ऐसा बोले सही। सुबह-शाम मांगलिक में बोलते हैं न? परन्तु क्या धर्म है और कैसे होता है, उसकी खबर नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि हेय है। अन्तःतत्त्व... अर्थ में लेंगे सब भाव। शास्त्र सहज ज्ञानादि भाव उसको अन्तःतत्त्व कहेंगे। यहाँ भाव लिया है न? यहाँ न्याय समझो। एक समय की पर्याय को परभाव कहकर, परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा। बाद में हेय (कहा वह) तो ठीक। इसलिए हेय है। अन्तःतत्त्व... जो आत्मा है, उसका अन्तःतत्त्व जो अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द जो ध्रुवस्वभावभाव, वह अन्तःतत्त्व है। अन्तःतत्त्व वह स्वद्रव्य है। वह भाव जो अन्तःतत्त्व है, वह स्वद्रव्य है। त्रिकाली जो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, ध्रुव गुण, ध्रुवस्वभाव। समझ में आया?

अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य... विशिष्टता देखो न! अर्थ में बहुत अच्छा कहा है। अन्तःतत्त्व अर्थात् जो त्रिकाली ज्ञान ध्रुव, त्रिकाली दर्शन ध्रुव, त्रिकाली आनन्द ध्रुव। वह अन्तःतत्त्व, अन्तःभाव। वह अन्तःतत्त्व, वह स्वद्रव्य। जैसे पर्याय परभाव, इसलिए परद्रव्य; अन्तःतत्त्व स्व, इसलिए स्वद्रव्य। आहाहा! अलौकिक बात है, भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : तादात्म्यस्वरूप है या....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, तादात्म्यस्वरूप है ही नहीं पर्याय और द्रव्य। अनित्य तादात्म्यसम्बन्ध है। नित्य तादात्म्यसम्बन्ध है ही नहीं। भारी कठिन! प्रमाण, वह निश्चय को स्वीकार रखकर प्रमाणज्ञान करता है। प्रमाण ऐसा ज्ञान नहीं करता कि निश्चय अभेद है, उसको छोड़कर ज्ञान करता है। निश्चय को तो रखता है ही ऐसा। निश्चय को ऐसा रखकर व्यवहार का ज्ञान साथ में करता है तो उसका नाम प्रमाण है। आहाहा! समझ में आया?

प्रमाण में! प्रमाण का अर्थ क्या? निश्चय जो है, वह द्रव्य का आश्रय करता है और द्रव्य को ही स्वीकारता है। तो वह स्वीकार प्रमाण में भी है। परन्तु एक अंश का (स्वीकार) है, साथ में दूसरा अंश लेकर प्रमाण करते हैं। ऐसा कहते हैं। पर्याय है ऐसा ज्ञान करते हैं। पर्याय कहाँ है? पर्याय पर्याय में है, द्रव्य में नहीं। समझ में आया? ऐई! वजुभाई! कठिन बात, भाई! यह सब विचारना पड़ेगा।

मुमुक्षु : पर्याय का आश्रय....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय का आश्रय पर्याय में। आत्मा में नहीं। पर्याय का कारण पर्याय, पर्याय का षट्कारक पर्याय में पर्याय के कारण से; आत्मा के कारण से नहीं। आत्मा सत् है, वह पर्याय का कर्ता नहीं और पर्याय सत् है, वह द्रव्यसत् का कर्ता नहीं। गजब बात है! ऐसा वीतराग का मार्ग! समझ में आया?

मुमुक्षु : अनादि अनस्पर्शित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अनस्पर्शित है। द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं। असंख्य प्रदेश में एक होने से स्पर्शती नहीं, भिन्न कह दिया न? आहाहा! वह तो पर्याय का प्रदेश भिन्न है एक न्याय से। आहाहा! गजब बात है।

मुमुक्षु : रागादि के कारण....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...नहीं, वह तो राग के कारण से कहा था। परन्तु यहाँ तो पर्याय का आधार द्रव्य नहीं और द्रव्य का आधार पर्याय नहीं, ऐसी बात है जरा। वसन्तभाई! आहाहा! भाई! यह सत् है या नहीं? सत् है, द्रव्य भी सत् है या नहीं? तो सत् है तो उसका पर्याय आधार कैसे? और पर्याय भी सत् है तो पर्याय को द्रव्य का

आधार कैसे? आहाहा! गजब बात! सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने जो तत्त्व जाना, वह ऐसा जाना है भगवान ने। ऐसा कहे कि भगवान सच्चे, भगवान सच्चे। परन्तु सच्चे क्या कहते हैं, उसकी खबर नहीं। कहाँ सच्चा तुझे आया? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह है, ऐसा तो मान तो भगवान सच्चे। आहाहा! और तेरा भगवान सच्चा हो, वह भगवान सच्चे तो पर में गये। आहाहा! भगवान तो कहते हैं कि हमारे सामने देखने से तो तुझको विकल्प उठता होगा और विकल्प तो कषाय है। हम कहते हैं कि तेरी द्रव्य की अपेक्षा है, वह तो तुझे हेय है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर ऐसा कहते हैं। इन्द्रों और गणधर के समक्ष में परमात्मा ऐसा फरमाते हैं। परमात्मा वर्तमान विराजमान हैं महाविदेहक्षेत्र में। समझ में आाय? उन परमात्मा की यह वाणी है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे, भगवान के पास। वाणी यहाँ भी उनको परम्परा से मिली थी परन्तु उनको साक्षात् परमेश्वर की यात्रा हुई। महाविदेह में गये। कोई कहे, महाविदेह में गये नहीं। अरे! भगवान! क्या कहते हो तुम? यह विवाद। आया था न अभी कोई? सनावद में ऐसा कहते हैं कि महाविदेह में गये नहीं। ऐई! कुँवरचन्दजी! कोई बात करते थे। पत्र आया था। महाविदेह में गये नहीं। परन्तु यह आचार्य पाठ में लिखते हैं न कि महाविदेह में गये थे? पंचास्तिकाय में। समझ में आया? यह पंचास्तिकाय में है, लो!

मुमुक्षु : ८०० वर्ष का है....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु आचार्यों ने कहा है या नहीं? ८०० वर्ष क्या करना है तुझे? देखो! पहली टीका में है। पंचास्ति न? है न? जयसेनाचार्य में है। जयसेनाचार्य में है। यह लिखा है, देखो। श्रीमद् भगवत्देव उनके दूसरे नाम पद्मनन्दि आदि... अब... देव शिष्य... जिसके दूसरे नाम भी... वीतराग सर्वज्ञ सीमन्धरस्वामी तीर्थंकर परमदेव के दर्शन करके... पंचास्तिकाय जयसेनाचार्य की टीका है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। एक यहाँ आया है। और एक दूसरी जगह देवसेनाचार्य

में आया है। बस, दर्शनसार में और तीसरी जगह अष्टपाहुड़ की टीका श्रुतसागर, तीनों जगह। दूसरे नहीं आया। एक यहाँ आया है पंचास्तिकाय में, एक आया दर्शनसार देवसेन आचार्य। अहो! कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास नहीं गये होते तो ऐसी चीज़ हमको कहाँ से मिलती? ऐसा लिखा है। यहाँ पंचास्तिकाय की टीका, जयसेनाचार्य की टीका। वह दर्शन... और सूत्रपाहुड़ में। अष्टपाहुड़ में। अष्टपाहुड़ है न, उसमें श्रुतसागर कहते हैं। अन्त में सब में।

यहाँ तो कहते हैं कि अहो! तीर्थंकर परमदेव के दर्शन करके उनके मुख में से निकली हुई दिव्यवाणी के श्रवण द्वारा अवधारित पदार्थ द्वारा शुद्धात्मतत्त्व आदि सारभूत अर्थ ग्रहकर... फिर से वहाँ से आकर अन्तःतत्त्व और बहिर्तत्त्व... देखो! भाषा ऐसी है। अन्तःतत्त्व और बहिर्तत्त्व के गुण मुख्य प्रतिपादन अर्थे... देखो! अन्तःतत्त्व ज्ञायकभाव। बहिर्तत्त्व पर्याय आदि पर। आहाहा! गौण-मुख्य प्रतिपादन अर्थे शिवकुमार महाराज तीर्थंकर नामकरण के लिये रचा है। लो।

मुमुक्षु : वहीं रहते तो मोक्ष दे देते।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष वहाँ जाये? यहाँ का प्राणी वहाँ मोक्ष को जाता है? पंचम काल में जन्मे हुए प्राणी किसी जगह मोक्ष जाते हैं? क्षायिक समकित न हो तब। भगवान के पास गये, परन्तु क्षायिक समकित नहीं था। यह कहा न। आहाहा! गजब!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ कहाँ उनकी योग्यता थी? ...साढ़े तीन हाथ के। क्या कहते हैं? तीड... तीड जैसे लगे। तीड... तीड। पाँच सौ धनुष—दो हजार हाथ ऊँचे। इतने तो तीड लगे। कौन है तीड? चक्रवर्ती कहे। यह मनुष्य आकार से पक्षी जैसा, तीड जैसा कौन है? भगवान कहते हैं कि यह पंचम काल के भरतक्षेत्र के प्रमुख आचार्य महाराज हैं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, अहो! इसलिए हेय है। अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य, वह आत्मा, वापस ऐसा कहकर। तीन शब्द लिये हैं। अन्तःतत्त्व अर्थात् अनन्त ज्ञान, दर्शन जो ध्रुव ऐसा अन्तःतत्त्व, वह स्वद्रव्य और स्वद्रव्य, वह आत्मा। यह तो आधार-आधेय लेंगे।

समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा, वह आत्मा उपादेय है। '**भवेत्**' है। वही उपादेय है। यह श्लोक—एक मूल गाथा का इतना अर्थ है। आहाहा!

भगवान अन्तःतत्त्व जो ध्रुव ज्ञान-दर्शन-आनन्द जो भाव, वह अन्तःभाव, वह द्रव्य, वह आत्मा। वही अंगीकार करनेयोग्य है। सम्यग्दृष्टि की दृष्टि में वही आदरणीय है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा उपादेय है। '**उपादेयम् भवेत्**' ऐसा है न? '**भवेत्**' है न? '**भवेत्**' '**अन्तस्तत्त्वं भवेत् आत्मा**' अन्तःतत्त्व वही आत्मा, ऐसे। '**स्वकद्रव्यम् उपादेयम्**' अन्तःतत्त्व वही आत्मा। वही आत्मा। आहाहा! ऐसा है। पर्याय-बर्याय आत्मा नहीं। ऐसा कहे। आहाहा! यह तो कोई बात! वह व्यवहार आत्मा है। पाँच पर्याय व्यवहार आत्मा है। व्यवहार आत्मा अर्थात् त्रिकाल की अपेक्षा से असत्यार्थ आत्मा है। अरे! गजब बात है न! ऐसे वीतराग की वाणी ऐसा कहे, हों! जगत को रुचे, न रुचे; बैठे, न बैठे परन्तु मार्ग तो ऐसा है।

अब यहाँ आयी टीका। कि जो व्यवहारनय से कही थी पर्याय, वही शुद्धनिश्चय के बल से, अन्तर की दृष्टि ध्रुव पर दृष्टि देने से वह (पर्याय) हेय है। वह लक्ष्य में रहती नहीं। पर्याय अन्दर में लक्ष्य में आती नहीं, इसलिए हेय कहने में आया है। आहाहा! **किस कारण से?** अब कहते हैं कि हेय कहा, वह किस कारण से? समझ में आया? **शुद्ध निश्चयनय के बल से हेय है।** चार पर्याय हेय है। ओहोहो! अनन्त केवलाान, अनन्त केवलदर्शन, आनन्द अनन्त पर्याय जो पर्याय में... समझ में आया? केवलज्ञान की एक समय की (पर्याय) में अनन्त सिद्ध और तीन काल-तीन लोक जानने में आता है। एक समय की पर्याय है, उस कारण से हेय है। आहाहा! श्रुतज्ञानी को तो है नहीं, परन्तु जिसको केवलज्ञान है, वह केवलज्ञान भी धर्मी जीव को आश्रय करनेयोग्य नहीं। समझ में आया?

किस कारण से? किस कारण से हेय है, ऐसा कहना है अब। पाठ में तो ऐसा लिया है कि परद्रव्य परस्वभाव हेयं। टीका में-अन्वयार्थ में लिया है कि '**परस्वभावाः परद्रव्यम् इति हेयाः**' '**अन्तस्तत्त्वं स्वकद्रव्यम् उपादेयम्**' अर्थ में। अब टीका में। **किस कारण से (हेय है)?** किस कारण से हेय कहते हो? चार पर्याय—केवलज्ञानादि की

पर्याय, परन्तु क्षायिक समकित की पर्याय, अरे! चारित्र की पर्याय, धर्म चारित्र। चारित्तं खलु धम्मो। ऐसी चारित्र पर्याय तीन कषाय के अभाव की पर्याय, वह शुद्ध त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से हेय है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यथाख्यातचारित्र भी हेय है। यहाँ तो अभी है नहीं, इसलिए यह लिया। यथाख्यात। वह यथाख्यातचारित्र आ गया नहीं क्षायिक में? आहाहा!

किस कारण से? क्योंकि वे परस्वभाव हैं,... इस कारण से। क्योंकि वह परस्वभाव है। ओहोहो! वह अपना द्रव्यस्वभाव नहीं। अंश—भेद, वह अपना द्रव्यस्वभाव नहीं। हसमुख... भाई! ऐसी बात कोई मुम्बई में मिले ऐसा नहीं, हों! कहीं भी? लो, सेठी! आपके चिरंजीवी कहते हैं कि ऐसी बात कहीं नहीं है। आहाहा! बात तो ऐसी है। भगवान के घर की यह बात है।

मुमुक्षु : मुम्बई में बात होती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात ऐसी होती नहीं। दस-दस हजार लोग चिल्लाने लगते हैं। क्या कहे, वह समझे नहीं। एक व्यक्ति ने कहा था। आया था प्रेम से सुनने। महाराज कहते हैं अच्छा, परन्तु मुझे कुछ समझ में नहीं आया। श्वेताम्बर था कोई। कुछ बात चलती ही नहीं, सम्प्रदाय में है नहीं। है तो उल्टी सब है। ऐसा करना, ऐसा खाना, ऐसा पीना, ऐसा रहना, ऐसा छोड़ना। आहाहा! समझ में आया? परद्रव्य के ग्रहण-त्याग की बुद्धि तो मिथ्यात्वभाव है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निजद्रव्य है। उसके सिवा... पर, हेय क्यों कहा? पर्याय को हेय क्यों कहा? चार प्रकार के भाव की जो पर्याय है, उसको हेय क्यों कहा? इस कारण से कि यह परस्वभाव है, वह द्रव्यस्वभाव नहीं। आहाहा! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शान्ति, आनन्द जो ध्रुवस्वभाव है, वह पर्याय नहीं। समझ में आया? यह तो अलौकिक गाथा है। अमरचन्दभाई! आहाहा!

अरे! परस्वभाव! भगवान! परस्वभाव, परद्रव्य की पर्याय को परस्वभाव कहो।

बहुत तो विकार दया, दान के विकल्प को परस्वभाव कहो। क्षायिक समकित और चारित्र की पर्याय परस्वभाव? परस्वभाव, त्रिकाली स्वस्वभाव की अपेक्षा से वह परस्वभाव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षणिक है, एक समय की पर्याय है और त्रिकाली द्रव्यस्वभाव ध्रुव है। त्रिकाली द्रव्य का स्वभाव तो ध्रुव है। परमपारिणामिक भगवान आत्मा सहजस्वभावरूप वस्तु, वह स्वस्वभाव है; पर्याय है, वह परस्वभाव है। आहाहा! यह बात! बाबूलालजी! कभी सुनी नहीं होगी। लो, यह पण्डित लोगों ने सुनी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच है। समझ में आया? परन्तु यह अनुभूति कैसे हो— यह बात चलती है। कि द्रव्य पर दृष्टि देने से अनुभूति होती है। पर्याय पर, विकल्प पर, निमित्त पर दृष्टि देने से अनुभूति होती नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि अनुभूति है और उसको देखना, वह भी पर्यायबुद्धि हो गयी। ऐई! अनुभूति यह है और यह विकार है—वह तो पर्याय की दृष्टि हुई। यहाँ तो द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि देने से अनुभूति होती है, परन्तु इस अनुभूति का लक्ष्य करना, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अनुभूति का लक्ष्य हुआ तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय का लक्ष्य हो गया, तो द्रव्य का लक्ष्य छूट गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आया है। सुनते हैं या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं? उतनी सत्यार्थ यह है। ... दूसरा है, ऐसा नहीं। चिमनभाई! ... बात सम्यग्दर्शन होने में ध्रुव का ही शरण है, पर्याय का शरण नहीं।

मुमुक्षु : प्रारम्भिक पाठ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रारम्भिक पाठ है। लो, हमारे सेठी ने कहा। प्रारम्भिक पहला पाठ है यह। आहाहा! अलौकिक बात है, भाई! ओहो!

कहते हैं कि यह चार पर्याय हेय लिया। उसमें लिया था स्वभाव में परस्वभाव है, इसलिए परद्रव्य, इसलिए हेय। यहाँ तो पहले से कहा कि हेय। अब हेय किस कारण से? कि परस्वभाव है, इसलिए हेय है। परस्वभाव है। आहाहा! क्षयोपशमज्ञान, ज्ञान का उघाड़, नौ-नौ पूर्व का, दस-दस पूर्व का, चौदह-चौदह पूर्व का, बारह अंग का। पर्याय जो उघाड़ है, वह सम्यग्दृष्टि को है। तो कहते हैं कि वह बारह अंग का विकास जो पर्याय में हुआ, कहते हैं कि वह परस्वभाव है।

त्रिकाल महासागर पड़ा है ध्रुव, उसकी अपेक्षा से एक अंश की गिनती क्या? आहाहा! समझ में आया? महासागर पड़ा है, प्रभु महासागर अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... केवलज्ञान का पेट जिसमें पड़ा है, उसके भाव में। आहाहा! ऐसा अपना अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द ऐसा स्वभाव—स्वतत्त्व, इस अपेक्षा से; उस पर्याय को हेय क्यों कहा? कि परस्वभाव है इस अपेक्षा से हेय कहा। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो कहे कि भगवान की वाणी हेय! हाय... हाय... दिव्यध्वनि हेय! परन्तु वह तो परद्रव्य है। उसको सुनने से विकल्प आता है, वह तो राग है। परन्तु ज्ञान करते हैं ज्ञान, अपने सम्यग्दर्शनपूर्वक में जो स्व का ज्ञान हुआ, उसमें राग आया, उस राग का ज्ञान पर्याय करती है, वह पर्याय भी परस्वभाव है। त्रिकाली ध्रुवस्वभाव की अपेक्षा से परस्वभाव है। अपना निजस्वभाव नहीं। आहाहा! यह कोई बात है! करसनभाई! ऐसा भी सुना ही नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... लो भाई! यह तो शब्द शब्द का अर्थ होना चाहिए न? ऐसे-ऐसे मान ले, ऐसा नहीं चाहिए। न्याय उसके ख्याल में आना चाहिए न?

मुमुक्षु : स्वसमय है.... वह परसमय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वसमय-परसमय की बात यहाँ है ही नहीं। वह दोनों

पर्याय हैं। यहाँ उसकी बात है नहीं। यहाँ तो द्रव्य और पर्याय—दोनों की बात है। स्वसमय तो केवल '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण।**' यहाँ तो पर्याय हुई। उस पर्याय को यहाँ कहते हैं कि परस्वभाव है क्योंकि दृष्टि का विषय यह नहीं। आहाहा! गजब काम, भाई! समझ में आया?

क्योंकि वे परस्वभाव हैं और इसीलिए परद्रव्य हैं,... ऐसे। **इसीलिए परद्रव्य हैं,...** जैसे शरीर, वाणी, कर्म परद्रव्य है तो उसमें से अपनी धर्मपर्याय नयी प्रगट नहीं होती। इसी प्रकार पर्याय जो प्रगट है, उसमें से नयी प्रगट नहीं होती, तो वह स्वद्रव्य नहीं हुआ। द्रवे वह द्रव्यं। समझ में आया? पर्याय द्रवे और पर्याय में से नयी पर्याय आती है, ऐसा नहीं है, इसलिए वह परद्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए हेय, ऐसा कहा। हेय से लिया न, हेय से? सर्व पर्याय हेय है क्योंकि परस्वभाव है, इसलिए परद्रव्य है। वह उपादेय कौन है, उसकी बात करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

● भाई! तू पंचम काल में भरतक्षेत्र में और गरीब घर में जन्मा है, इसलिए हमारे आजीविका आदि का क्या करना, ऐसा न देख! तू अभी और जब देखे तब सिद्धसमान ही है। जिस क्षेत्र में और जिस काल में जब देखे, तब तू सिद्धसमान ही है। मुनिराज को खबर नहीं होगी कि सब जीव संसारी है? भाई! संसारी और सिद्ध, वह तो पर्याय की अपेक्षा से है; स्वभाव से तो वे संसारी जीव भी सिद्धसमान शुद्ध ही हैं। (17)

— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, दृष्टि के निधान

भाद्र कृष्ण ३, रविवार, दिनांक - २८-०९-१९६९
गाथा-५०, प्रवचन-१९

नियमसार, शुद्धभाव अधिकार। गाथा 50।

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सग-दव्व-मुवादेयं अंतर-तच्चं हवे अप्पा॥५०॥

पर-द्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही।
अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तस्तत्त्व हैं आदेय ही॥५०॥

इसका **अन्वयार्थ—पूर्वोक्त सर्व भाव...** भाव अर्थात् पर्याय। शुद्धभाव हे न शुद्ध ? शुद्ध तो त्रिकाली ध्रुव है। इसके अतिरिक्त के पूर्वोक्त सर्व भाव... क्षायिकभाव के नौ भेद। केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक समकित इत्यादि यथाख्यातिचारित्र, दान, लाभ भोग, उपभोग। (वीर्य) उपशम के दो भेद—उपशम समकित, उपशम चारित्र। क्षयोपशम के अठारह भेद—चार ज्ञान और तीन अज्ञान इत्यादि आते हैं न? वे सभी पर्यायें हैं। वे सभी पर्यायें... और उदयभाव के २१ बोल, क्षयोपशम के अठारह। वे सब परपर्याय है। उनका यहाँ त्याग बताते हैं। समझ में आया ?

सर्व पर्यायें पूर्व में कहीं, वे परस्वभाव हैं। परस्वभाव हैं, स्वस्वभाव नहीं। आहाहा! केवलज्ञानादि और क्षयोपशम आदि या उदय आदि या उपशम, वे सब पर्यायें हैं एक समय की, वह परस्वभाव है। तब द्रव्य, वह स्वस्वभाव है। समझ में आया ? वे सर्व परस्वभाव हैं। इस गाथा में, परद्रव्य है इसलिए परस्वभाव है, ऐसा लिया है। परन्तु उसका अन्वयार्थ करते हुए वे परस्वभाव हैं, वे परद्रव्य हैं, ऐसा लिया। परस्वभाव है। ओहोहो! देखो तो एक पर्याय... यहाँ तो कहते हैं कि पर्याय हेय है, उसका त्याग है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि की दृष्टि में एक त्रिकाली ध्रुवस्वभाव ही एक उपादेय अर्थात् आदरणीय है। पर्याय जिसमें .... उसका त्याग है उसे। आहाहा! गजब त्याग! जेठालालभाई! बाहर के त्याग की तो बात ही कहाँ? वह तो अन्दर में है नहीं। यह तो उसकी जो पर्याय है,

उस पर्याय में जो केवलज्ञानादि क्षायिकभाव, उपशम आदि पर्यायभाव या क्षयोपशम... उदय तो रागादि ठीक, गति आदि, वे भाव परस्वभाव हैं; इसलिए वह परद्रव्य है। **इसलिए हेय है....** वह त्याग करनेयोग्य है। दृष्टि में उनका त्याग चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, देखो न यह। इसका नाम त्याग। दृष्टि में, पहला सम्यग्दर्शन में इन चारों ही प्रकार की पर्यायों का दृष्टि में त्याग है। आहाहा! करसनभाई! गजब बात कहे। दूसरा तो त्याग है अर्थात् दूसरी चीज़ तो इसकी पर्याय में नहीं। शरीर, वाणी, कर्म, लक्ष्मी आदि वह तो इसकी पर्याय में भी नहीं। इसलिए उनकी बात तो नहीं।

मुमुक्षु : त्याग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसका क्या त्याग? है ही नहीं, उसमें नहीं फिर उसका त्याग क्या? यह तो उसकी पर्याय में है। है सही। यह कहेंगे आगे। विभावगुणपर्यायें हैं, ऐसा शब्द है। अस्ति है। वह हेय है। आहाहा! देखो, यह कुन्दकुन्दाचार्य के वचन। सम्यग्दृष्टि को पर्याय हेय है। ऐई! नवरंगभाई! आहाहा! गजब बात, भाई!

और **अन्तःतत्त्व...** अर्थात् कि अन्तःस्वभाव जो त्रिकाली ज्ञान, दर्शन, आनन्द जो ध्रुवस्वभाव, ज्ञान, दर्शन, आनन्द जो त्रिकाली सहज स्वभाव, ऐसा जो अन्तःतत्त्व, ऐसा जो स्वद्रव्य... समझ में आया? अन्तःतत्त्व, वह स्वद्रव्य और वह आत्मा। वह आत्मा सम्यग्दृष्टि को उपादेय है। आहाहा! वे पंच महाव्रत के परिणाम ग्रहण करे और पालन करे (ऐसा) इसमें तो कहीं आया नहीं। वह तो हो उसका मात्र ज्ञान कराया है। समझ में आया?

पहले जो अन्तःभाव जो त्रिकाली अनन्त ज्ञान-दर्शन-स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... वह अन्तःतत्त्व है। अन्तर का भाव है, वह ध्रुव। वह भाव वह अन्तःतत्त्व का द्रव्य। वह भावस्वभाव वह द्रव्य और उस द्रव्य का आधार वह आत्मा। समझ में आया? यह तो अलौकिक गाथा है। आत्मा, वह उपादेय है। कहो, शोभालालजी! सवेरे प्रश्न किया था रास्ते में, कि यह पर्याय पर? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो राग से भिन्न किया था। अब यहाँ तो पर्याय और द्रव्य को भिन्न करना है। सवेरे कहा था।

मुमुक्षु : वे यह भिन्न पड़े तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भिन्न पड़े तब 'वह होता है' ऐसा बतलाते हैं। बात तो एक, दृष्टि में अकेला ध्रुव, दृष्टि जो है, वह तो अकेले ध्रुव में ही पसरती है, ध्रुव में ही व्यापती है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन की पर्याय वह ध्रुव में पसरती है, व्यापती है, फैलती है, सम्पूर्ण ध्रुव को दृष्टि कब्जे में ले लेती है। थोड़ी सूक्ष्म बात है। समझ में आया? यह मोक्षमार्ग का अधिकार है। तो मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन की पर्याय का क्या विषय है? कि वह तो त्रिकाली ध्रुव, वह उसका विषय है। समझ में आया? लो, माणेकलाल! यह सब तुम्हारे चलता था न गड़बड़ सब। मुम्बई में चलती थी। डेढ़ वर्ष चली। पर्याय देखे, सम्यग्दर्शन में पर्याय देखें। आहाहा!

कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि को अथवा धर्म दृष्टि में धर्मी को, धर्मी ऐसा जो त्रिकाली ध्रुव ज्ञायकभाव, वह एक दृष्टि में लेकर आदरणीय है। समझ में आया? आहाहा! यह गुजराती हुआ। गुजराती में तो जो भाव हो, वह आवे या दूसरे आते होंगे? समझ में आया? **ऐसा स्वद्रव्य....** तत्त्व जो है भाव। बेहद ज्ञान, बेहद आनन्द, शान्ति, श्रद्धा त्रिकाली, ऐसा जो अन्तःस्वभाव, ऐसा जो स्वद्रव्य उसका आधार आत्मा अर्थात् एकरूप पारिणामिकभाव त्रिकाली, वह आत्मा ही सम्यग्दर्शन में उपादेय अर्थात् आदरणीय और उसका लक्ष्य और ध्येय करनेयोग्य है। आहाहा! देखा! **उपादेय है।** ऐसा शब्दार्थ हुआ न? अन्वयार्थ का। उसमें हेय है, ऐसा कहा था। अब वह परद्रव्य है, परस्वभाव है, ऐसा कहा था न? है, है।

अब इसकी टीका—**यह हेय-उपादेय...** संस्कृत में है, देखो! '**हेयोपादेयत्यागोपादानलक्षणकथनमिदम्।**' इस गाथा में हेय अर्थात् त्यागयोग्य, उपादेय अर्थात् ग्रहणयोग्य क्या है, इसके स्वरूप का लक्षण अथवा इस स्वरूप का उसमें कथन है। हेय का लक्षण क्या और उपादेय का लक्षण क्या? हेय का स्वरूप क्या और उपादेय का स्वरूप क्या—

ऐस पद्मप्रभमलधारिदेव ने पहला इसका टीका का उपोद्‌घातभाव किया। इस गाथा में जैनशासन में-वीतरागदर्शन में हेय क्या और उपादेय क्या? आहाहा! अर्थात् कि त्याग किसका और ग्रहण किसका? समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्त्र-फस्त्र कहाँ थे यहाँ? आहाहा! लोगों को मूल तत्त्व की खबर नहीं होती, इसलिए यह वस्त्र उतारे और नग्न हो गये और .... क्रिया कुछ की अहिंसा-फहिंसा की और हो गये मुनि। बापू! मुनि तो कहाँ, परन्तु अभी गृहीत मिथ्यात्व का त्याग उसमें नहीं है। समझ में आया? वस्तु—व्यवहार का ठिकाना नहीं और उसमें मुनि माने, वह तो गृहीत मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? यह तो अगृहीत मिथ्यात्व का त्याग कैसे हो? और ध्रुवपने का अंगीकार कैसे हो, उसकी यहाँ बात है। आहाहा! दूसरी प्रकार से कहें तो पर्यायबुद्धि का त्याग और द्रव्यबुद्धि का आदर है। द्रव्य में द्रव्य का आदर। आहाहा! समझ में आया?

पर्यायबुद्धि नहीं। सम्यग्दृष्टि की पर्यायबुद्धि नहीं। जाने अवश्य। है, ऐसा जानता है। है, ऐसा जानता है। पर्याय है, (ऐसा) जाने प्रमाणज्ञान करने के लिये, परन्तु प्रमाणज्ञान में द्रव्य निश्चय जो उपादेय है, उसका निषेध करके प्रमाणज्ञान करता नहीं। समझ में आया? एक ध्रुव उपादान एक ही आदरणीय है। वह वस्तु निश्चय की स्वीकार रखकर... उसका निषेध करके प्रमाणज्ञान प्रमाण नहीं करता, तब तो प्रमाण रहता नहीं। निश्चय और व्यवहार दोनों का जैसा है, वैसा ज्ञान करे तो प्रमाण कहलाता है। समझ में आया?

निश्चय तो, ज्ञायकभाव अकेला ध्रुवबिम्ब, वज्रबिम्ब चैतन्य शाश्वत्, वही उपादेय अर्थात् दृष्टि वहाँ करनेयोग्य है, यह निश्चय। प्रमाणज्ञान, वह निश्चय को तो इस प्रकार से ही स्वीकार करता है। तो तदुपरान्त पर्याय में जो भाव हैं पर्याय के, उन्हें जानता है... जानता है। उसका नाम प्रमाण है। वह पर्याय को आदरता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? क्योंकि नय को आदरना, वह नहीं। नय तो जानना है। निश्चयनय जानना है। परन्तु जानने में सामान्य सन्मुख ढलता है, वहाँ उपादेय हो जाता है। समझ में आया?

पर्याय सन्मुख ढलना, ऐसा अर्थ कुछ नहीं। वह तो पर्याय ऊपर है, उसका जानना हो, कि यह है, इतना। समझ में आया? यह तो अलौकिक बात है। सवेरे के, दोपहर की सब। देवराजभाई! यह तो भाग्यशाली के कान में पड़े, ऐसी बात है।... आहाहा!

यह... यह अर्थात् इस गाथा में। **हेय...** अर्थात् त्याग किसका? और ग्रहण किसका? **हेय-उपादेय अथवा...** ऐसा कहा है न? ऐसा। त्याग किसका और ग्रहण किसका? उसके स्वरूप का कथन इसमें है। **जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं...** अर्थात् कि चार पर्यायों को यहाँ विभावगुणपर्यायें कहा है। चार भाव। एक ओर भगवान परम पारिणामिकभाव, ध्रुवस्वभाव, नित्यानन्द सहजानन्द, नित्य अखण्ड अक्रियबिम्ब और एक ओर चार प्रकार के भाव की पर्यायें। समझ में आया? वे **विभावगुणपर्यायें हैं...** देखो! भाषा ऐसी है। संस्कृत में भी ऐसा है। '**विभावगुणपर्यायास्ते**' है। नहीं है, ऐसा नहीं। परन्तु वह है, **व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थी....** ४९ (गाथा) में। व्यवहारनय से उपादेय अर्थात् जानना, ऐसा ग्रहण करना। उपादेय अर्थात् ग्रहण करना; ग्रहण करना अर्थात् जानना। वह जानना, ऐसा वहाँ कहा गया था, ग्रहण करना अर्थात् जानना, ऐसा कहा गया था। उसे यहाँ **शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं।** आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा उपादेय। कहा न उन्होंने। उपादेय अर्थात् जानना। इसलिए तो स्पष्टीकरण किया है भाई ने मोक्षमार्गप्रकाशक में। कि वहाँ ग्रहण करने को कहा है न व्यवहारनय को? कि ग्रहण करने का अर्थ जानना, ऐसा उसका अर्थ है। ग्रहण करने का अर्थ आदरणीय, ऐसा अर्थ नहीं है। यह तो मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा। दोनों नयों को ग्रहण करना, ऐसा है न शास्त्र में? तो इसका अर्थ कि ग्रहण अर्थात् जानना, ऐसा इसका अर्थ है। ग्रहण का नाम आदरणीय और आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। समझ में आया? नय है न? तो नय अंश को ही मानता है, तो पूरे को तो प्रमाण माने। तब व्यवहारनय है, वह वर्तमान पर्याय को ही जानता है। निश्चय है, वह भी एक अंश है। क्योंकि इस अंश बिना का पूरा रह गया न! समझ में आया?

अंश है न? नय है यह। शुद्धनिश्चयनय के बल से, ऐसा है न? नय का विषय पूरा नहीं होता। द्रव्य और पर्याय—दो नय का विषय अंश ही होता है। परन्तु यह अंश कैसा? आहाहा! कि त्रिकाली ध्रुव है वैसा। भीखाभाई! आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा... कहते हैं कि हो, पर्याय हो, पर्याय के काल में पर्याय हो। है, वह जाननेयोग्य है। परन्तु कब? कि निश्चय के बल से त्रिकाल का आदर हो, त्रिकाल वस्तु जो शुद्धनिश्चय के बल से... बल का अर्थ शुद्धनिश्चय के कारण से। **वे हेय हैं।** लक्ष्य में लेनेयोग्य नहीं है। लक्ष्य में अर्थात्? ध्येय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! यह त्याग कहीं कितना त्याग है? पूरी दुनिया का—लोकालोक का तो त्याग हो गया, परन्तु उसकी पर्याय में जो लोकालोक का ज्ञान हो क्षयोपशम में (उस पर्याय का भी त्याग)।

श्रुतज्ञान की पर्याय में लोकालोक का—छह द्रव्य का एक समय की पर्याय में ज्ञान होता है। जानने की पर्याय का इतना स्वभाव है एक समय का। उसका भी यहाँ त्याग है, कहते हैं। आहाहा! प्रसन्नभाई! लो, प्रसन्नभाई ने कहा था गुजराती में लेना। सेठीजी! तुम्हारे चिरंजीवी ने कहा था। यह तो लेना था फिर से। कल हिन्दी में आया था न।

मुमुक्षु : विषय ऐसा ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही है। आहाहा!

कहते हैं कि भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर की वाणी में ऐसा आया है, वह बात कुन्दकुन्दाचार्य शास्त्र द्वारा कहते हैं और वही वस्तु का स्वभाव है। कि जो ४९ (गाथा) में, चार प्रकार पर्यायें हैं, चार भाव की पर्यायें हैं, वह हैं, उन्हें उपादेय कहा था। उपादेय अर्थात् कि ग्रहण करना। ग्रहण करना अर्थात् कि जानना, ऐसा कहा था। परन्तु उस जानने में उसे हेयबुद्धि से जानना। समझ में आया? और **शुद्धनिश्चय के बल से वे हेय हैं।** आहाहा! कितना त्याग! इस त्याग की कीमत नहीं लगती। और बाह्य में कुछ थोड़ा छूटे और छोड़ा, त्यागा और त्यागी हो गये। धर्म के त्यागी हैं। शोभालालजी! बात तो कठिन है, भाई! आहाहा! वस्तु सत्। परन्तु इसमें कहाँ कोई... वस्तु त्रिकाल है, वह स्वभाव स्वद्रव्य का स्वभाव है और पर्यायस्वभाव, वह परस्वभाव है, परस्वभाव है। परस्वभाव स्वस्वभाव में नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जो पर्याय का धर्म है, पर्याय का स्वभाव है... चाहे तो क्षायिकभाव की पर्याय केवलज्ञान का स्वभाव, परन्तु है वह परस्वभाव। स्वस्वभाव में नहीं। उस परस्वभाव से स्वस्वभाव अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! राग से तो अत्यन्त भिन्न है। समझ में आया? यह तो अलौकिक बात है, बापू! यह केवलज्ञान होने का कक्का है। आहाहा! मोक्षमार्ग है या नहीं? केवलज्ञान को बुलाता है, कहा था एक बार। मति-श्रुतज्ञान, मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। आओ, नजदीक आओ, नजदीक आओ। क्योंकि ऐसी अनन्त केवलज्ञान की पर्यायों को ज्ञान ने सम्हाल रखा है, ऐसे पूरे ज्ञान को मैंने प्रतीति में लिया है, कब्जे में लिया है तो अब उसमें से केवलज्ञान होकर ही रहेगा। पोपटभाई!

पूरा मुक्तस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, सम्यग्दर्शन में कब्जे में ले लिया है। समझ में आया? प्रतीति में कि यह ही हूँ। श्रद्धा से केवलज्ञान हुआ है, ऐसा आया है न भाई! श्रीमद् में आता है न? केवलज्ञान... केवल ज्ञान—अकेला ज्ञानस्वभाव, अकेला ज्ञानस्वभाव। श्रद्धा में तो जोर वर्तता है। केवलज्ञान तो अब अल्पकाल में आयेगा ही। क्योंकि केवलज्ञान जिसके पेट में है, उसकी तो प्रतीति और अनुभव किया है। अब पसरे बिना रहेगा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा हिन्दी में नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हिन्दी में नहीं था। बात सच्ची। भाषा रचनी पड़े न! और यह (गुजराती) तो चली ही आती है अन्दर से। आहाहा! समझ में आया?

केवलज्ञान और क्षायिक समकित आदि की पर्यायें अनन्त... अनन्त... जिसके श्रद्धागुण में और ज्ञानगुण में सब पड़ी है। वह स्वभाव ऐसा अन्तःतत्त्व, ऐसा जो द्रव्य, उसका आधार परमपारिणामिक, उस भाव की अपेक्षा से पर्यायधर्म परस्वभाव है, परस्वभाव है। वह इसमें नहीं। यह सामान्यपना है, और वह तो विशेष अंश है। सामान्य में विशेष के अंश का त्याग है। आहाहा! समझ में आया? यह तो अभी सिरपच्ची में पड़े कि दया पालना, व्रत पालना, अपवास करना। कहीं के कहीं... ऐई! मिथ्यात्व के पोषण में पड़े और माने कि हम धर्म करते हैं। आहाहा! क्या हो? जगत भी निराधार अशरण... करता है।

भगवान आत्मा **शुद्धनिश्चयनय के बल से...** अर्थात् कि जहाँ ध्रुवस्वभाव का आश्रय करता है, वहाँ वह पर्याय साथ में नहीं आती, हेयरूप से वर्तती है। पर्याय उसका आश्रय करती है, तथापि वह पर्याय हेयरूप वर्तती है। अरे! कठिन बात, भाई! ऐई! यह तो सामान्य-विशेषपना करे तो निकले उसमें से, ऐसा कहना है। सामान्यपने कहे, तब तो पर्याय पर्याय से नयी होती है। पर्याय का कर्ता पर्याय, पर्याय का कर्म पर्याय, पर्याय का आधार पर्याय, पर्याय के षट्कारक पर्याय के आधार से है। ध्रुव के कारण नहीं। आहाहा! वह ध्रुव पर्याय का कर्ता ही नहीं। उस ध्रुव का पर्याय कार्य ही नहीं। आहाहा! गजब बात है न! यहाँ तो अभी राग कार्य, दया, दान, व्रत और शुभ उपयोग जीव का कार्य। भाई! तूने सुना नहीं भगवान को। तेरा भगवान कितना है और भगवान कहते हैं, तूने सुना नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि शुभराग की तो पर्याय में गन्ध नहीं, परन्तु पर्याय जो है निर्मल शुद्ध, कहते हैं कि वह भी शुद्धनिश्चयनय के बल से अर्थात् ध्रुव में जहाँ दृष्टि जाती है, पर्याय साथ में आती नहीं। वह पर्याय भले लक्ष्य वहाँ करे, पर्याय उसका आश्रय लेने जाये, परन्तु उस पर्याय का आश्रय करना है, ऐसा वहाँ रहता नहीं। समझ में आया? पर्याय की पीठ है और द्रव्य के सन्मुख है। पीठ समझते हो न?

मुमुक्षु : पराङ्मुख

पूज्य गुरुदेवश्री : पराङ्मुख है,पीठ दी है, नहीं कहते?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यहाँ सन्मुख और यहाँ से विमुख। द्रव्य के सन्मुख और पर्याय से विमुख। आहाहा! आचार्य की रचना! संक्षिप्त में तत्त्व का आश्रय कौन है और कैसा आश्रय करनेयोग्य नहीं। तथापि वह चीज़ है अवश्य (-ऐसा सिद्ध किया)। वेदान्त की भाँति (पर्याय) नहीं, ऐसा नहीं है। न हो तब तो फिर द्रव्य भी नहीं। क्योंकि करनेवाला तो पर्याय निर्णय करनेवाली है। समझ में आया? निर्णय करनेवाली तो पर्याय है, कहीं द्रव्य निर्णय नहीं करता। वह क्या करे? वह तो ध्रुव है। देवराजभाई! देखो! यह विषय आया मौके से तुम आये न, देखो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर रह गया? महेन्द्रभाई और प्रसन्नभाई तो कहीं रह गये?

मुमुक्षु : पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूर। ध्रुवतत्त्व पर्याय से दूर है। आहाहा! जो अपने आ गया है पहले। सर्व तत्त्व में, ध्रुवतत्त्व से दूसरे तत्त्व दूर हैं। आ गया है न पहले, नहीं? ३९। ३९ (गाथा से पहले)। ३८ का सार। श्लोक ही है न, कलश है। **जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है।** केवलज्ञान की पर्याय से द्रव्य दूर है। अरे... अरे! चिल्लाहट करे या नहीं यह? समझ में आया? एक क्षायिक समकित की पर्याय से द्रव्य दूर है। पहला कलश है, ५४वां कलश है। शुरुआत में शुद्धभाव अधिकार का। इस शुद्धभाव का अर्थ पर्याय नहीं। पहले कहा था। शुद्धभाव वह त्रिकाली परमपारिणामिक ध्रुवस्वभाव को यहाँ शुद्धभाव कहते हैं। वह शुद्धभाव ही निश्चयनय से आदरणीय है। समझ में आया? आहाहा! ऐई! बलुभाई! ऐसा कभी कहीं भावनगर में भी नहीं मिलता। आहाहा!

कहते हैं, हो, पर्याय है। वह उपादेय कहने में, जानने में कहने में आयी थी। परन्तु शुद्धनिश्चय... त्रिकाली शुद्ध, उसका जो सत्पना त्रिकाली, उसे जो ज्ञान का नय अर्थात् अंश पकड़ता है, ऐसे नय की अपेक्षा से तो वे सब पर्याय हेय हैं। उस दृष्टि के विषय में पर्याय का त्याग वर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसकी तो कुछ कीमत नहीं होती और बाहर में यह छोड़ा, लिया, किया, व्रत पालन किये। आहाहा! समझ में आया? यह तो सादी गुजराती भाषा में है। बहुत कहीं ऐसा नहीं। गुजराती सादी भाषा है।

वस्तु है... एक समय में वस्तु के दो अंश। पर की यहाँ बात नहीं। एक समय में वस्तु—द्रव्य भगवान आत्मा के दो अंश—एक ध्रुव अंश, एक पर्याय अंश, बस। यह पर्याय अंश है, वह पर्यायबुद्धिवाले को उपादेय है मिथ्यादृष्टिरूप से। उसे यह केवलज्ञानादि नहीं होते, क्षायिक समकित भी नहीं होता, वहाँ समकित नहीं होता। परन्तु पर्याय का जो अंश है, क्षयोपशम का अंश, राग का अंश, ज्ञान का उघाड़—क्षयोपशम का अंश, वीर्य का अंश, दर्शन का उघाड़ का अंश—वह पर्यायबुद्धिवाले को उसका उपादेयपना

है, वही मिथ्याबुद्धि है, वही मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? पन्नालालजी! ऐसी बात कहाँ! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सोनगढ़ के नाम से कहते हैं। भगवान कहते हैं ऐसा कह न पहले तू। सोनगढ़ ऐसा कहता है, सोनगढ़ ऐसा। परन्तु सोनगढ़ में घर का कहते हैं या यह अन्दर का है, वह कहते हैं? कहो, देवराजजी! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस। ऐसा करके यह... नहीं किया। वहाँ तो विशेष लोग होते हैं न हजारों में, तो पकड़ नहीं सकते, इसलिए ऐसी बात रखना कठिन। बाकी वस्तु तो यह है। दूसरे प्रकार से आवे। विशाल (समुदाय में) दूसरे प्रकार से आवे, परनतु इस प्रकार से आवे कि लपेटकर आवे। आहाहा! समझ में आया?

अब कहते हैं कि ये चार प्रकार की जो पर्यायें, पर्याय—अवस्था में है, वे हेय कहे। देखो! पाठ में था '**परद्रव्यम् परस्वभावाः इति हेयाः**' अन्वयार्थ में था कि परस्वभाव, वह परद्रव्य हेयं। तब टीका में पहले हेय डालकर फिर परस्वभाव और परद्रव्य डालेंगे। समझ में आया? क्योंकि पहले हेयपना बतलाना है। पश्चात् क्या हेय? आहाहा!

कहते हैं, **किस कारण से ?** हेय हैं? क्यों? '**हेया भवन्ति। कुतः ?**' संस्कृत है। किस कारण से वे हेय हैं? **क्योंकि वे परस्वभाव हैं,...** आहाहा! यह चार प्रकार की पर्यायों के जितने प्रकार, १८ और २१ = ३९ हुए न? ३९ और २=४१ और ९=५० और ३ पारिणामिक के भेदवाले थे। ५३ बोल हुए। पारिणामिक के तीन लिये हैं न? यह मूल ५३ हैं। भाव के बोल ५३ हैं। उनमें अभी एक पारिणामिक ध्रुव त्रिकाल एक लेना है। बाकी तो भव्य-अभव्य की पर्याय भी हेय है। समझ में आया? एक जीवत्व पारिणामिकभाव त्रिकाल एक उपादेय है। इसके अतिरिक्त के बावन बोल, वे हेय हैं। आहाहा! समझ में आया? यह पहले आ गये हैं अपने। क्षायिकभाव के और उपशम के। यह ५३ बोल हैं, ५३ हुए न भगवानजीभाई? पारिणामिक के ३, पश्चात् १८, पश्चात् २१ और पश्चात् ९ तथा २=५३ हुए।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले ९। ९ पहले २ बाद में ९, १८, २१ पश्चात् ३=५३-५३। ५३ में एक एक ध्रुव और बावन, वह पर्याय। आहाहा! इसकी कहाँ खबर है? बावन क्या और त्रेपन क्या? यह पहले आ नहीं गये अपने? पहले आये न? (गाथा) ४१ में आये हैं, देखो! ४१, गाथा ४१।

णो खइयभावठाणा णो खयउवसमसहावठाणा वा।
ओदइयभावठाणा णो उवसमणे सहावठाणा वा॥४१॥

'**णो**' अर्थात् आत्मा में यह चार भाव नहीं, ऐसा कहा था। तब जड़ को होंगे? आत्मा अर्थात् द्रव्य, उसमें नहीं अर्थात् उसे नहीं। पर्याय में पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? देखो! इसमें नीचे। उपशम के दो भेद—उपशम समकित और उपशम चारित्र। नीचे है न, नीचे? इसमें उस ओर **क्षायिकभाव के नौ भेद इस प्रकार हैं—क्षायिक सम्यक्त्व, यथाख्यातचारित्र, केवलज्ञान और केवलदर्शन, तथा अन्तरायकर्म के क्षयजनित दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य।**

क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद इस प्रकार हैं... चार ज्ञान, वह परस्वभाव है। केवलज्ञान परस्वभाव है, क्षायिक परस्वभाव है, यथाख्यातिचारित्र परस्वभाव है। परस्वभाव है, वह द्रव्यस्वभाव नहीं। आहाहा! है? तीन अज्ञान, तीन दर्शन चक्षु-अचक्षु (अवधि)। ठीक, यह एक अधिक का। क्षायोपशमिक है और काललब्धि क्षायोपशमिक। करणलब्धि। यहाँ कहते हैं कि करणलब्धि परस्वभाव है। वे कहते हैं कि करणलब्धि के कारण सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? उपदेशलब्धि—देशनालब्धि और विशुद्धि—यह सब परस्वभाव है।

और संयमासंयम तथा वेदक क्षयोपशमसमकित और क्षयोपशमचारित्र—वह सब परपर्याय, पर्याय परस्वभाव है। द्रव्य का स्वभाव नहीं। मैंपना जिसमें है, उसके वह नहीं। आहाहा! मैंपना जिसमें है, ध्रुवपना, वह स्वद्रव्यस्वभाव, उसमें यह नहीं। समझ में आया? उदयभाव में है न चार गति और चार कषाय और उसमें लोभ तथा राग आ गये। तीन लिंग, पश्चात् मिथ्यात्व, एक अज्ञान, एक असंयम और असिद्ध तथा छह

लेश्या और पारिणामिक के तीन भेद—जीवत्वपारिणामिक, भव्यत्वपारिणामिक और अभव्यत्वपारिणामिक, लो! जीवत्वपारिणामिक एक त्रिकाली भाव है। जीवपने का भाव, ऐसा जीव... जीवपने का भाव, ऐसा जीव, वह त्रिकाली है। एक ही पारिणामिकभाव। ५३ में एक बोल उपादेय और बावन बोल हेय हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! स्त्री, पुत्र....

मुमुक्षु : ५३ में....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही है भगवान आत्मा ध्रुव। उस द्रव्यस्वभाव को बावन भाव है ही नहीं। बावन भाव परस्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

हेय क्यों? वह तो परस्वभाव है न! अपना स्वभाव नहीं। भाषा देखो! परस्वभाव अर्थात् अपना स्वभाव नहीं। आहाहा! अपना अर्थात् द्रव्य का, ऐसा। वही स्वयं स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। यह स्वभाव नहीं। आहाहा! बलुभाई! आहाहा! आहाहा! वे परस्वभाव हैं, वे मेरे स्वभाव नहीं। मैं जिस स्वभाव से हूँ, वे उस भाव से नहीं। वे भाव परभाव हैं। आहाहा! समझ में आया?

क्योंकि वे परस्वभाव हैं, और इसीलिए वे परद्रव्य हैं। यहाँ से लिया है न यह? परस्वभाव हैं, इसलिए परद्रव्य है, वह मेरा स्वद्रव्य नहीं। आहाहा! वह मेरा स्वभाव नहीं, इसलिए मेरा स्वद्रव्य नहीं। परस्वभाव, इसलिए परद्रव्य है। मेरा ध्रुवस्वभाव त्रिकाली, वह स्वद्रव्य मैं हूँ। उसमें (—परस्वभाव में) मेरा द्रव्य भी नहीं और वह मेरा स्वभाव भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बात यह। ध्रुव, वही तू—ऐसा यहाँ तो कहते हैं। ध्रुवपना, वही आत्मा। पर्याय-बर्याय वह परस्वभाव, वह आत्मा नहीं। चिल्लाहट मचाये। ऐई! वजुभाई!

भगवान सच्चिदानन्दस्वरूप (अर्थात्) सत्—शाश्वत्, चिद्—ज्ञान और आनन्द ऐसा जिसका स्वभाव, ऐसा जो ध्रुवतत्त्व। जो स्व अर्थात् अपना भाव और अपना द्रव्य। पर्याय परभाव, इसलिए परद्रव्य; इसलिए उसे हेय कहा जाता है। हेय पहला लेकर फिर कहा है। आहाहा! गजब बात, भाई! लोग स्वाध्याय अपनी दृष्टि आगे रखकर पढ़े न,

परन्तु अपनी दृष्टि रखकर पढ़े उसे जो हो, उसे बैठ जाये। अन्दर आचार्य, शास्त्र क्या कहते हैं और भाव क्या है, यह उसे पकड़ने में नहीं आता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सम्यग्दृष्टि के लिये। किसकी बात है यहाँ? जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो, उसे ध्रुव उपादेय है और वह भी निरन्तर वही उपादेय रहे। किसी समय भी सम्यग्दृष्टि को निज द्रव्य उपादेय के अतिरिक्त पर्याय उपादेय नहीं होती। आहाहा! नवरंगभाई! वह तो अभी पानी छानने के लिये गये थे वहाँ। पाँच के वर्ष में। नवरंगभाई! एक है न! एक स्थिति थी न! भाव था। आहाहा! कहो, पन्नालालजी! क्या कहते हैं, समझ में आया? आहाहा!

भगवान! तू तीन लोक का नाथ, तेरी एक समय की पर्याय में लोकालोक, अनन्त केवली ज्ञात हों। श्रुतज्ञान की पर्याय में, हों! श्रुतज्ञान की पर्याय में इतना पर्याय का स्वभाव सामर्थ्य है। तथापि वह परस्वभाव है। परस्वभाव है। आहाहा! यह वह कहीं बात है! समझ में आया? भगवान आत्मा, वह सम्यग्दर्शन का विषय अर्थात् ध्येय। विषय कुरु—उसे ध्येय बना, भगवान! सम्यग्दर्शन में द्रव्य को ध्येय बना। क्यों? पर्याय तो हेय है। क्यों? कि परस्वभाव है, इसलिए तेरा स्वभाव नहीं। इसलिए तेरा द्रव्य नहीं। कहो, नवरंगभाई! है या नहीं उसमें भी?

वह भाई का वाँचन किया जाता था तो भड़के लोग। रात्रि में अपने वाँचन होता था न। निहालभाई नहीं? भड़के कितने ही। परन्तु उन्हें कहाँ वहाँ उपदेश करना था? उन्हें तो बात थी तो किसी समय लिख गया था। उन्हें कहाँ खबर थी कि मेरा पत्र बाहर आयेगा? वस्तु तो यह थी, वह आ गयी थी। इसलिए कितने ही तो उन्हें निश्चयाभासी कहते थे। बात सच्ची। है हों... में। पचे नहीं तो निश्चयाभासी हो जाये, ऐसा है। पचे नहीं तो। पचे ऐसी जठर चाहिए। आहाहा!

कहते हैं कि पर्याय तो परस्वभाव है न? क्यों? कि हेय है न? क्योंकि वह परस्वभाव है न? मेरा स्वभाव नहीं... मेरा स्वभाव नहीं। आहाहा! देखो! यह तो मानो पर... पर का स्वभाव। मैं वह नहीं। आहाहा! देखो तो सही! ध्रुव वस्तु परमपारिणामिक चैतन्य भगवान वह मैं, वह मैं। पर्याय आवे, जाये, हो, वह सब हेय है। शोभालालजी!

इतने वर्ष में कभी सागर में सुना नहीं हो वहाँ। दाँत निकालते हैं (हँसते हैं) भाई। आहाहा!

क्योंकि वे परस्वभाव हैं, और इसीलिए परद्रव्य हैं। पाठ में आया न? '**परस्वभावाः परद्रव्यं इति हेयाः**' **इसीलिए परद्रव्य है।** चिल्लाहट मचाये न! क्षायिक समकित, वह परद्रव्य और क्षायिक समकित, वह परस्वभाव। आहाहा! कहो, प्रसन्नभाई! जो क्षायिक-समकित हुआ, वह तो केवलज्ञान हो और उसमें और उसी में सिद्ध तक सादि—अनन्त रहनेवाला है। वह की वह पर्याय नहीं, हों! क्योंकि पर्याय की व्याख्या है न? क्षायिक समकित भी पर्याय है, गुण नहीं, द्रव्य नहीं। गुण त्रिकाली और द्रव्य त्रिकाली है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि किस कारण से हेय है? त्यागनेयोग्य है? इस हेय का अर्थ ही ऐसा अन्दर है। क्योंकि उसमें दो अर्थ किये थे न? इसलिए हेय है अर्थात् त्यागनेयोग्य है, किस कारण से? ऐसा लेना। हेय है अर्थात् त्यागनेयोग्य है, वह किस कारण से? कि वे परस्वभाव हैं। निजस्वभाव नहीं। आहाहा! चन्दुभाई! तुम कल याद आये थे पूरा हुआ तब। वहाँ आये बराबर आज। रात्रि में जरा हुआ कौन जाने लोगों को कुछ... ऐई! रतिभाई! तुम्हारी बात हुई थी, हों! पश्चात् रामजीभाई कहे कि कौन जाने कल... बात यह है और आयी है मौके से। देखो, कल हिन्दी थी और आज गुजराती हुई। हर्ष जीमण में पहुँच गये। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! मतिज्ञान पुकार... पुकार... (करता है कि) आओ... आओ... केवलज्ञान आओ। अटकने की बात नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : वह कहता है कि मैं ऐसा हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, केवलज्ञान तो आयेगा ही। मतिज्ञान ने पकड़ा द्रव्य को और वह जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान थोड़े काल में केवलज्ञान लेकर ही रहेगा। आहाहा! यह परमात्मा होनेवाला है। इसमें उसे शंका बीच में आ जाये या गिर जाये, यह बात है नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई!

कहते हैं कि चार प्रकार के भाव जो पर्याय है, उसे हेय कहते हो। किस कारण से? क्योंकि वे परस्वभाव हैं न! तेरा स्वभाव नहीं। तू स्वभाव नहीं तो तू कौन? और वे परद्रव्य हैं, तब स्वद्रव्य कौन? वह जब परद्रव्य तब स्वद्रव्य कौन? आहाहा! अब यह बात करते हैं इसके सामने। **सर्व विभावगुणपर्यायों से रहित...** सर्व विभावगुणपर्यायें अर्थात् चार प्रकार की पर्यायें। समझ में आया? दस मिनिट है न? कहते हैं कि **सर्व विभावगुणपर्यायों से रहित...** अर्थात् कि वे चार प्रकार के जो बावन बोल कहे, उन्हें यहाँ विभावगुणपर्यायरूप से शब्द प्रयोग किया है। पण्डितजी! यह बावन बोल। त्रेपन है न? त्रेपन। और यह बावन बोल। एक ओर भगवान पारिणामिकभाव ध्रुव। जीवत्वभाव, त्रिकाली भाव। इन त्रेपन में एक ही भाव ध्रुव। बावनभाव उपादेय नहीं। ओहोहो! वह तो जीवत्व पारिणामिकभाव त्रिकाली। यहाँ जीव का है। जीवत्वपना त्रिकाली। देखो! जीवत्वपना उसका भाव। जीवद्रव्य, उसका जीवत्वपना अर्थात् पारिणामिक ध्रुवभाव। जो यहाँ अन्तःतत्त्वरूप का भाव (कहा)। उसे करके वापस वह द्रव्य कहकर, उस द्रव्य का आधार पारिणामिक, ऐसा लेंगे। आहाहा! समझ में आया?

जो सर्व विभावगुणपर्यायों से रहित... कैसा हूँ मैं? और जो उपादेय है, वह कैसा तत्त्व है? कि **शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप...** शुद्ध-अन्तःभावस्वरूप... शुद्ध-अन्तःस्वभावस्वरूप। वे परस्वभाव कहे थे न? उनके सामने यह है। सामने वे परस्वभाव कहे थे, उसके सामने शुद्ध-अन्तःस्वभावस्वरूप। तत्त्व कहो या शुद्ध अन्तःस्वभावस्वरूप। उन्हें परस्वभाव कहा था न? और यहाँ अन्तःतत्त्वस्वरूप भाव त्रिकाली और वह स्वद्रव्य। आमने-सामने है। वे परस्वभाव थे, वे परद्रव्य और त्रिकाली जो अन्तःतत्त्व, अन्तरभाव, ध्रुवस्वभाव ऐसा जो स्वद्रव्य, वह उपादेय है, वह आदरणीय है। लो! चार पर्याय त्यागयोग्य है और ध्रुवस्वभाव उपादेय है। आहाहा! शान्तिभाई!

शुद्ध अन्तःभाव... तत्त्व का भाव है न? तत्त्वार्थश्रद्धान में नहीं आता? अर्थ अर्थात् द्रव्य, गुण और पर्याय तथा तत्त्व अर्थात् उसका भाव, उसका भाव। वह शुद्ध अन्तःभाव, त्रिकाली भाव, वह अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है। समझ में आया? स्वद्रव्य उपादेय। '**अन्तस्तत्त्वं स्वकद्रव्यं उपादेयम्**' ओहोहो! एक ही उपादेय है। ध्रुव

परमपारिणामिकस्वभाव जीवत्वस्वभाव त्रिकाली। समझ में आया? जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन बेहद जिसका स्वभाव, वस्तु है, उसका स्वभाव बेहद जो है ऐसा जो अन्तःस्वभावरूप, अन्तःभावरूप, ऐसा जो स्वद्रव्य। उस सब भाव को स्वद्रव्य कहा है। अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य ही उपादेय है। सम्यग्दृष्टि को अन्तःभावस्वरूप एक आत्मद्रव्य त्रिकाली, वही उपादेय है। आहाहा! कहाँ ग्रहण-त्याग? इसमें अशुभ को छोड़कर शुभ को ग्रहण करो, यह ग्रहण-त्याग। अरे! यह ग्रहण-त्याग कहाँ था उसमें—आत्मा में? स्त्री, पुत्र को छोड़ो और नग्नपना अंगीकार करो। अरे! यह कहाँ था उसमें? उसमें कहाँ? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान... और भगवान होने का रास्ता जो परम भगवान उपादानस्वरूप शुद्ध ध्रुवस्वभाव उसमें अन्तःतत्त्व उसका जो भाव है, उसे अन्तःद्रव्य कहा जाता है और उसे आदरणीय और उपादेय और वहाँ नजर डालनेयोग्य है। उस निधान पर नजर डालनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? अब जरा उस अन्तःतत्त्व की व्याख्या करेंगे। सामान्य भाषा थी न अन्तःतत्त्व? सामान्यभाव था न? उसमें जो परस्वभाव में सामान्य था और परस्वभाव के भेद बावन थे। समझ में आया? परस्वभाव के भेद बावन थे। अब यह अन्तःतत्त्व सामान्य, इसके भेद कैसे? आहाहा!

सहजज्ञान... त्रिकाली स्वाभाविक ज्ञान... त्रिकाली स्वाभाविक ज्ञान, जिसमें अनन्त-अनन्त केवलज्ञान की पर्यायें—गुण पड़ी हैं, ऐसा सहजज्ञान, ध्रुवज्ञान। **सहजदर्शन...** स्वाभाविक दृष्टापना त्रिकाली, जिसमें त्रिकाली महासत्ता का भान। पर्याय में नहीं, यहाँ तो महासत्ता के भान के समय ऐसी अनन्त शक्ति दर्शन-गुण में पड़ी है। ऐसा जो दर्शनस्वभाव त्रिकाली। स्वाभाविक ज्ञान, स्वाभाविक दर्शन, स्वाभाविक चारित्र। यह त्रिकाली स्वाभाविक चारित्र। वीतरागभाव। आत्मा में स्वाभाविक वीतरागभाव शान्तभाव—उपशमरसभाव, शान्तरस त्रिकाली को स्वाभाविक चारित्र ध्रुवभाव वह स्वाभाविक चारित्र त्रिकाली ध्रुव।

सहज परमवीतराग-सुखात्मक... भाषा। सुख को डालना है न? इसलिए सहज परमवीतराग सुखस्वरूप। त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु... कैसा सुख है वह? स्वाभाविक

परमवीतराग-सुखात्मक... परम वीतराग सुखस्वरूप, ध्रुवस्वरूप, परमवीतराग सुखस्वरूप, ध्रुवस्वरूप। यह चतुष्टय लिये चार। वास्तव में सहज ज्ञान त्रिकाली, त्रिकाली दर्शन, सहज चारित्र और सहज परमवीतराग (सुख)—ऐसा शुद्धतत्त्वस्वरूप। लो! ऐसा शुद्ध अन्तःतत्त्वभाव, ऐसा अन्तर तत्त्वस्वरूप। आहाहा!

वह **इस स्वद्रव्य....** अब इसका आधार अन्तिम वह '**अप्पा**' शब्द पड़ा है न? पाठ में पड़ा है न, देखो न! '**सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्च**' अर्थात् अन्तःतत्त्व का ऐसा स्वद्रव्य उपादेय। अर्थात् कि वह आत्मा। '**अप्पा**' अन्तिम शब्द पड़ा है न? उस '**अप्पा**' का अर्थ निकाला परमपारिणामिकभाव अकेला। समझ में आया? है सब भाई पहले से ठेठ तक सूक्ष्म। परन्तु है इसके घर की चीज़। उसे इस प्रकार से जाने और पहिचाने और अनुभव करने से ही छुटकारा है। इसके बिना किसी रास्ते से जन्म-मरण का अन्त लानेवाला नहीं है। समझ में आया?

ऐसा **शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप इस स्वद्रव्य का आधार...** और आधेय-आधार... आधेय-आधार भेद नहीं जिसमें, ऐसा यहाँ समझाते हैं। तब गुणस्वभाव, उसका आधार द्रव्य—ऐसा भेद भी नहीं उसमें, ऐसा बतलाना है मूल तो। समझ में आया? इस स्वद्रव्य का आधार, स्वद्रव्य अर्थात् यह स्वज्ञान, दर्शन आदि अन्तःतत्त्व, वह स्वद्रव्य वह **(सहज परमपारिणामिकभाव जिसका लक्षण है ऐसा)....** स्वाभाविक परमपारिणामिकभाव। परमपारिणामिकभाव। चारों पर्याय को भी पारिणामिक तो कहते हैं। यह तो परमपारिणामिकभाव। पर्यायरूपी पारिणामिकभाव, पारिणामिकभाव, वह हेय और परमपारिणामिकभाव, वह उपादेय। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पारिणामिक पर्याय है न चार, उसे पारिणामिक की पर्याय कहते हैं। उदय, उपशम, क्षयोपशम को भी पर्याय कहते हैं। पर्याय। उस पर्याय के बावन बोल वे हेय हैं और एक सहज परमपारिणामिकभाव जिसका लक्षण, ऐसा **कारणसमयसार है।** वह यह '**अप्पा**' अन्तिम शब्द है न ५० में? वह आत्मा, यह आत्मा उपादेय है। लो! आहाहा! समय हो गया। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ४, सोमवार, दिनांक - २९-०९-१९६९
गाथा-५१ से ५५, श्लोक-७४, प्रवचन-२०

नियमसार। मोक्षमार्ग का अधिकार है। शुद्धभाव अधिकार। नीचे ५० वीं गाथा की टीका हो गयी।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्र सूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नाम की टीका में १८५वें श्लोक द्वारा) कहा है कि—

(शार्दूलविक्रीडित)

सिद्धान्तोऽय-मुदात्त-चित्त-चरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां,
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम्।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि॥

कहते हैं कि धर्मात्मा उसे कहते हैं कि **जिनके चित्त का चरित्र (अभिप्राय) उदात्त हैं....** जिसके ज्ञानस्वभाव में अभिप्राय की उदारता है। **(उदार, उच्च, उज्ज्वल) हैं—ऐसे...** जीव। **ऐसे मोक्षार्थी...** पूर्ण पवित्र आनन्ददशा की प्राप्ति के अभिलाषी जीव **इस सिद्धान्त का सेवन करो कि मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ;....**

मुमुक्षु : सिद्धान्त यह?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सिद्धान्त यह। मैं तो शुद्ध चैतन्यमय, ज्ञानमय, अकेला परमब्रह्म स्वभाव ऐसा चैतन्यमय और एक परम ज्योति सदा हूँ, ऐसा। चैतन्यमय एक परम ज्योति सदा हूँ। सम्यग्दृष्टि जीव को—जिसका अभिप्राय सम्यक् है, उस जीव को—यह सिद्धान्त सेवन करना कि मैं तो शुद्ध चैतन्यमय... वापस चैतन्यवाला नहीं, चैतन्यमय—ज्ञानमय, एकरूप... वापस एकरूप। पर्याय के अनेकरूप को गौण करके यहाँ बात करते हैं। शुद्धचैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदा हूँ.... तीनों काल में। यहाँ तक तो... यहाँ तक तो इस गाथा के साथ मेल बराबर है। समझ में आया?

देखो! यह धर्मी जीव को अर्थात् जिसके चित्त में-अभिप्राय में उज्ज्वलता—निर्मलता है, उसे यह सिद्धान्त सदा सेवन करना।

मुमुक्षु : सदा?

पूज्य गुरुदेवश्री : सदा—निरन्तर, अखण्ड। मैं तो चैतन्यमय वस्तु जो है, वह चैतन्यमय वस्तु है, वह मैं हूँ। लो, यह सम्यग्दृष्टि का अभिप्राय और सम्यग्दृष्टि का ध्येय और सम्यग्दृष्टि का विषय आत्मा पूर्ण एकरूप है। समझ में आया? इस सिद्धान्त का सेवन करो, ऐसा आचार्य कहते हैं। इस निर्णय का सेवन करो। यह सिद्धान्त है त्रिकाली। नियमित नियम वस्तु का यह है कि परमात्मस्वरूप चिन्मय वस्तु—चैतन्यमय वस्तु वह मैं हूँ—ऐसे सिद्धान्त का सेवन करो। लो! इसमें, मैं शुभराग हूँ या कर्मवाला हूँ, यह बात आती नहीं। क्योंकि जिसे जो होना हो, तत्प्रमाण उसकी श्रद्धान / भावना करे। रागरूप होना हो, वह राग की भावना करे अर्थात् कि संसार की भावना। मोक्षार्थी है न यहाँ? मोक्ष का अधिकार है न? जिसे जैसा होना हो, वैसा वह माने, वैसा हो। रागवाला हूँ, विकल्पवाला हूँ, विकारवाला हूँ—ऐसा यदि माने तो विकारवाला हो, तो संसार में जाये। सेठिया क्यों नहीं आये? तबियत ठीक नहीं? ठीक। समझ में आया?

मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदा हूँ... 'ही' आया न। 'ही' आया या नहीं?

मुमुक्षु : 'ही' का अर्थ भी होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : 'भी' नहीं होता। वह 'भी' तो पूरा द्रव्य बतलाना हो, तब। वस्तु बतलानी हो सम्यक् एकान्त वहाँ 'ही' आता है। सम्यक् एकान्त चिन्मय ज्योति बतलानी हो वहाँ 'ही' आता है। और मैं चिन्मय हूँ और रागमय हूँ, ऐसा आवे द्रव्यस्वभाव में? समझ में आया? अनेकान्त ऐसा होता है? निश्चय से द्रव्य शुद्ध ध्रुव त्रिकाल है, वह एकान्त ध्रुव है। तथा वहाँ कथंचित् निश्चय से ध्रुव है और कथंचित् अध्रुव है, ऐसा आवे? ऐसा नहीं आवे। ऐसा नहीं हो सकता। तब तो वस्तु सिद्ध नहीं होती। समझ में आया?

आत्मा द्रव्य और पर्याय, उसमें द्रव्य.... द्रव्यार्थिकनय से द्रव्य एकान्त नित्य और ध्रुव है। उसमें फिर द्रव्यार्थिकनय से नित्य भी है और द्रव्यार्थिकनय से पर्याय अनित्य भी है, ऐसा आवे उसमें? ऐसा नहीं आता। एक ही बात आती है। पर्यायार्थिकनय से

पर्याय ही है। पर्यायार्थिकनय से फिर पर्याय भी आवे और त्रिकाली द्रव्य भी आवे— ऐसा आवे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा करते हैं, इसलिए चलता है। वह तो पूरा पूर्ण द्रव्य बतलाना हो, तब उसे कहे, द्रव्य कैसा है पूरा? कि कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है। परन्तु जब एक पक्ष में से नय को बतलाना हो तो द्रव्यार्थिकनय से तो द्रव्य नित्य ही है। समझ में आया?

मुमुक्षु : जैनों में 'ही' होता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'ही' होता है। यह क्या आया यह? आता है, श्रीमद् में भी आता है। मेरा महावीर... करे। वह तो दूसरे प्रकार से बात है। है न, देखो न! परन्तु पाइ क्या है? देखो! '**सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः**' ऐसा सिद्धान्त सेवन करो, ऐसा कहते हैं यहाँ तो आचार्य। '**शुद्धं चिन्मयमेकमेव**' '**एव**' है न '**एव**'? एक ही... एक ही... एक ही... आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि जो आत्मार्थी हो... आत्मार्थी कहो या मोक्षार्थी कहो। उसे अमृतचन्द्राचार्यदेव कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा का सार कहकर... कहने में आता है। अरे! धर्मात्मा को—धर्मियों को—मोक्षार्थियों को यह सिद्धान्त सेवन करना कि मैं तो... मैं तो शुद्धचैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदा हूँ। आहाहा! अब इसमें 'ही' आया, चैतन्य का अभेद आया, एकरूप आया, परमपना आया और सदा ही आया। आहाहा! कहो, शुद्ध तो एक ओर डाला। शुद्ध आया एक ओर, एक ओर चैतन्यमय। रागादि नहीं, एक (हूँ), अनेक नहीं, परम उत्कृष्ट ज्योति ही एकान्त सदा ऐसा हूँ। समझ में आया?

और.... अब दूसरा बोल। **यह जो भिन्न लक्षणवाले....** पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, शुभ आदि, अशुभ विकल्प जो हैं, वे यह... फिर विद्यमानता है। मोक्ष का मार्ग, बापू! अलौकिक है। समझ में आया? यह जो... अर्थात् विद्यमानता है। रागादि, पुण्य-पाप के विकल्प शुभ, अशुभराग है सही। है, तब निषेध होता है न? न हो, उसका निषेध क्या करना? आहाहा! यह और **यह जो भिन्न लक्षणवाले...** अर्थात् क्या

कहा? चैतन्यमय लक्षणवाला मेरा तत्त्व शुद्ध एक परमज्योति ही त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... उसके सामने भिन्न लक्षण... मेरे चैतन्य लक्षण के अतिरिक्त जितने दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध के विकल्प उठते हैं, वे सब भिन्न लक्षणोंवाले हैं। एक बात। वह एक था, उसके सामने विविध प्रकार के। समझ में आया? स्वयं था शुद्ध चैतन्यमय लक्षणवाला (और) यह भिन्न लक्षणवाले। आहाहा! अशुद्ध है, भिन्न है और एकरूप नहीं। विविध प्रकार की पर्याय—भाव हैं वे तो। किसी समय शुभ, असंख्य प्रकार के शुभ में आया। शुभ (में), किसी समय कोई हो, कोई दया का, कोई दान का, कोई भक्ति का। यह भिन्न लक्षणवाले विविध नाम भिन्न-भिन्न प्रकार की पर्यायें। भिन्न-भिन्न प्रकार की अनेक प्रकार की विकारी पर्यायें प्रगट होती हैं।

प्रगट होते हैं... अर्थात् किसलिए ऐसा कहा? कि मेरे स्वरूप में तो नहीं, परन्तु पर्याय में प्रगट होते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह पर्यायें जो प्रगट शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम हैं... यहाँ तो मुख्य तो यह बात लेनी है। अशुभ तो कहीं गया। यह जो विविध प्रकार के... सम्यग्दृष्टि अपने आत्मा को शुद्ध एक सदा ही चैतन्यमय मानता, जानता हुआ और उससे विरुद्ध के विकल्प जितने शुभ-अशुभ के होते हैं, वे प्रगट भाव, वह मैं नहीं हूँ। यह मैं हूँ और वह मैं नहीं। लो! सवेरे चलता है या नहीं अपने भेदज्ञान? वही बात है। यह तो सर्वत्र दूसरे प्रकार से, तीसरे प्रकार से वस्तु तो पर से भिन्न है, वह बतलाना है न! समझ में आया?

यह जो भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के... पर्यायें हैं। पर्याय है न भाव अर्थात्? **वह मैं नहीं....** वह व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उठे उसे, समकिती मानता है कि वह मैं नहीं। आहाहा! समझ में आया? मुझमें नहीं, वह मैं नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : समकिती, चौथे गुणस्थान की बात यहाँ तो चलती है। समझ में आया? वे तो मुनि हैं, इसलिए मुनिपने की मुख्यता से बात की है। बाकी तो सम्यग्दृष्टि की ही बात है। भले तीन कषाय के भाव रहे, परन्तु वे विविध प्रकार के भाव, वह मैं नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी यह बात नहीं इसमें। इस कलश में उन्होंने तो मात्र एक चैतन्यमय के साथ और परद्रव्य के साथ मिलान के लिये यह कलश लिया है। इस कलश में जो निर्मल पर्याय है, उसे परद्रव्य यहाँ नहीं कहा और ५० में तो निर्मल पर्याय को परद्रव्य कहा है। अपने चलता है उसमें तो। समझ में आया? इतना इसमें मेल है। चैतन्यमय मैं सदा हूँ एकरूप, यह तो हो गयी—वस्तु हो गयी। अब पर्याय में जो रागादि अनेक प्रकार के उत्पन्न होते हैं, विविध प्रकार के, वह मैं नहीं। वह एक समय की पर्याय निर्मल है, वह बात इसमें नहीं लेना है। परन्तु वह आ जाती है इसके साथ। समझ में आया? यह चिन्मय वस्तु हूँ तो द्रव्य हो गया।

मुमुक्षु : पर्याय पृथक् पड़ी न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय पृथक् पड़ी रह गयी। समझ में आया?

वस्तु की अन्तर्मुख दृष्टि करने से मैं एक चिन्मय ज्योति परमस्वरूप ही सदा हूँ। यह तो फिर वस्तु में पर्याय आयी नहीं परन्तु यहाँ निषेध करना है उस विकार का। समझ में आया? मोक्ष के अधिकार की गाथा है न, यह कलश? इसलिए मोक्ष का कारण, विकल्प-व्यवहाररत्नत्रय मोक्ष का कारण नहीं है, यह सिद्ध करना है यहाँ। जितने दया, दान, व्रत, शुभ उपयोग आदि हो, वह सब मोक्ष का कारण नहीं, बन्ध का कारण है। आहाहा! कठिन काम, भाई! जगत को वीतराग का तत्त्व अभी समझण में लेना कि ऐसा है, यह बात महँगी हो पड़ी है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि अरे! **मैं तो शुद्धचैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदा हूँ....** इस सिद्धान्त का सेवन करो। इस मान्यता का सेवन करो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **और यह जो भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं,...** वह मैं नहीं। विकल्प आदि है, वह मैं नहीं। **क्योंकि वे सब मुझे परद्रव्य हैं।** आहाहा!

मुमुक्षु : मोक्षमार्ग परद्रव्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्षमार्ग परद्रव्य। यह तो पहले आ गया न अन्दर? यह तो आ गया है (गाथा) ५० में। चार पर्यायें हैं... मोक्षमार्ग की पर्यायें परद्रव्य, क्योंकि

स्वद्रव्य नहीं, वह परद्रव्य; स्वस्वभाव नहीं, वह परभाव। स्वस्वभाव उपादेय तो परस्वभाव हेय। कैसे जँचे? आहाहा! समझ में आया?

अन्तर्मुख भगवान आत्मा... बहिर्मुख के लक्ष्य से छूटकर अन्तर्मुख के लक्ष्य में जाता है, तब तो चिन्मय ही वस्तु एक दृष्टि में होती है। और सामान्य सन्मुख दृष्टि गयी ऐसे बहिरात्म से अन्तर्मुख गयी तो सामान्य एक ही चिन्मय हूँ, ऐसा सिद्धान्त, ऐसा कहते हैं मूल तो। क्योंकि उसका शरण है और उसके आश्रय से निर्मल पर्याय मोक्ष की नयी प्रगट होती है। समझ में आया? एकान्त है रे... एकान्त है रे... ऐसा कहे। व्यवहार से भी कुछ लाभ होता है, ऐसा कहो तो अनेकान्त कहलाये। क्योंकि व्यवहार को साधन कहा है न पंचास्तिकाय में, परमात्मप्रकाश में। कितनी जगह कहा, लो! द्रव्यसंग्रह में। भावना, छहढाला। 'हेतु नियत को होई' आता है या नहीं? नियत अर्थात् निश्चय का व्यवहार हेतु है, कारण है, साधन है। वह सब बात निमित्त क्या है, उसका ज्ञान कराने के लिये बात है। व्यवहारनय से साधन, व्यवहारनय से हेतु, व्यवहारनय से कारण अर्थात् असद्भूतनय से वह सब कारण कहा जाता है। आहाहा! कठिन काम!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान का अर्थ अलग बात है, यहाँ तो आदरणीय और हेयपने की बात है। ज्ञान तो दोनों का है। यह तो कहते हैं कि राग है। राग नहीं? राग है तो ज्ञान किया। परन्तु ज्ञान में वह 'है' वह मैं नहीं, वह परद्रव्य है। दो कब हों? वह भी एक वस्तु तो है न? शुभोपयोग वस्तु है या नहीं? है न? है परन्तु वह हेयबुद्धि से है। वह परद्रव्यरूप से है। यहाँ तो व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प को परद्रव्य यहाँ तो स्पष्ट कह दिया।

इस ५०वीं गाथा में तो निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय को भी परद्रव्य कह दिया। एक कदम आगे जाकर यह नियमसार में है। समझ में आया? यहाँ तो आचार्य आदेश करते हैं। जैन, सारे जैनदर्शन का सार, ऐसा सेवन करना हो तब तो, ऐसा सेवन करो। आदेश करते हैं, देखो! आहाहा! कि भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार की पर्यायें होती हैं, पर्याय, विकल्पादि है। **वह मैं नहीं....** यह मैं हूँ और यह मैं नहीं।—यह इसका नाम

अनेकान्त हुआ। कहो, देवीलालजी! यह चैतन्यमय हूँ, वह मैं—ऐसा अनेकान्त हुआ। दो हैं परन्तु यह मैं हूँ और यह मैं नहीं।—इस प्रकार अनेकान्त है।

मुमुक्षु : दोनों में हूँ, ऐसा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों मैं हूँ, ऐसा नहीं। दोनों का ज्ञान करे परन्तु यह मैं हूँ, ऐसा ज्ञान, यह मैं नहीं ऐसा ज्ञान, ऐसा। आहाहा! समझ में आया?

जिसे व्यवहाररत्नत्रय का साधन कहा, साध्य का साधन कहा, निश्चय का कारण कहा, निश्चय का हेतु कहा। समझ में आया? निश्चय का उपचारमार्ग कहा। पुरुषार्थसिद्धि उपाय आदि में। उपचार... वह सब मैं नहीं, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। शोभालालजी! ऐसी बात है। आहाहा! मैं जहाँ हूँ, वहाँ यह नहीं और यह जो है, वहाँ मैं नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लक्ष्य अनेकान्त का कहाँ लेना है? लक्ष्य तो एकान्त का हुआ, तब उसे अनेकान्त का ज्ञान होता है। मैं सदा चिन्मय एकरूप हूँ, ऐसा द्रव्य का ज्ञान होने पर, पर्याय का ज्ञान द्रव्य का ज्ञान होने पर होता है। तब कहे—यह है, वह मैं नहीं—ऐसा ज्ञान वहाँ होता है। समझ में आया? बहुत... कहो, कान्तिभाई! समझ में आया या नहीं यह? उसमें तो कुछ नहीं था। ...ऋद्धि में। आहाहा! ऐसा मार्ग पवित्र सनातन मार्ग लोगों को कान में पड़े नहीं बेचारों को और आग्रह में ऐसे के ऐसे जिन्दगी चली जाती है। वह तो चींटी की भाँति मनुष्यपना मिला नहीं और निरर्थक ही है, इसी प्रकार इसे मनुष्यपना मिला परन्तु निरर्थक है। आहाहा! समझ में आया?

त्यागी हो बाहर से, तो भी वह मनुष्यपना उसका निरर्थक है। क्योंकि वस्तु है, वह दृष्टि में तो आयी नहीं और दृष्टि में लाने जैसी यह है और यह नहीं, यह बात अभी ज्ञान में भी आयी नहीं। समझ में आया? ओहोहो! मुझे सब विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं। एक बात कहते हैं। वह मैं नहीं, परन्तु वे सब परद्रव्य हैं। लो, यह तो समयसार की गाथा—कलश समयसार का है। एक-एक कलश में और एक-एक गाथा में पूरा भेद... उसे कुछ अधिक पढ़ना या अधिक विचारना पड़े नहीं। सब मुझे परद्रव्य है।

और (इस ५०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) —स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव स्वयं कहते हैं।

(शालिनी)

न ह्यस्माकं शुद्धजीवास्तिकाया-
दन्ये सर्वे पुद्गलद्रव्यभावाः।
इत्थं व्यक्तं वक्ति यस्तत्त्ववेदी
सिद्धिं सोऽयं याति तामत्यपूर्वाम्॥७४॥

क्या कहते हैं? अहो! **श्लोकार्थ—शुद्ध जीवास्तिकाय से अन्य....** लो! द्रव्य अकेला शुद्ध जीवास्तिकाय है। अस्तिकाय लेकर और असंख्य प्रदेशी इकट्ठा लेना है। शुद्ध, जीव-अस्ति-काय। असंख्य प्रदेशी और अनन्त गुण का पिण्ड ऐसा जो शुद्ध जीवास्तिकाय, वह मैं हूँ। **अन्य ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव हैं, वे वास्तव में हमारे नहीं हैं।** लो! ५० गाथा के कलश में ऐसा डाला।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें से निकाल दिया है। उत्पाद-व्यय... उत्पाद-व्यय होता है, वह मेरे परिणाम हैं। मेरे नहीं, ऐसा कहा है न? मेरे नहीं, मैं नहीं, वह ऐसे डाल दिया है। आहाहा! समझ में आया?

जैसे कि कर्म और शरीर में से कहीं आत्मा की धर्मपर्याय नहीं आती, उसी प्रकार पुण्य-पाप के विकल्प हैं, उसमें से भी कहीं धर्म की पर्याय नयी नहीं आती, तथा धर्मपर्याय प्रगट हुई है, उसमें से धर्म की नयी पर्याय नहीं आती। इसलिए तीनों को परद्रव्य कह दिया है। समझ में आया? यह क्या कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् क्या कहा यह? पर्याय में से पर्याय? जैसे जड़ में से पर्याय आती नहीं। इस शरीर में से..., समकित दर्शन हुआ और फिर चारित्र की पर्याय कहीं शरीर में से आवे? और कर्म में से आवे? राग में से आवे? पर्याय हुई है सम्यग्दर्शन, उसमें से चारित्र की पर्याय आवे? इस अपेक्षा से जड़ परद्रव्य, राग परद्रव्य

और एक समय की पर्याय भी परद्रव्य है। वहाँ नयी पर्याय निकलने के लिये तीनों समान हैं। समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : वह जड़ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जड़ ही है, पर ही है। एक अंश है, वह परद्रव्य व्यवहार है। व्यवहार है, वह असत्यार्थ है। अपनी अपेक्षा से द्रव्य है, वह सत्यार्थ है। स्व की अपेक्षा से सत्यार्थ है।

मुमुक्षु : मूल वस्तु अलग रह गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : रह गयी। पूरा तत्त्व ही अलग है पूरा। एक समय का अंश? या नहीं। जिसके आश्रय से विकल्प उठे, उसके आश्रय से नयी पर्याय प्रगट नहीं होती। दो बात। मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट हुई, उसके आश्रय से लक्ष्य करने जाये, तब तो विकल्प उठते हैं। निर्विकल्प नयी पर्याय उसके आश्रय से प्रगट नहीं होती तो जैसे मेरे (लिये) शरीर परद्रव्य है, वैसे वह पर्याय भी इस अपेक्षा से (परद्रव्य है क्योंकि) नयी पर्याय उसके आश्रय से नहीं होती और उसका आश्रय करने जाये तो नयी पर्याय राग की होती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग होता है। आदर करे तो राग होता है, परन्तु धर्म की नयी पर्याय नहीं होती। वह तो परद्रव्य है। आहाहा! ऐसी बात! आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इस अपेक्षा से कहा न? उत्पाद-व्यय विनष्टदान पर्याय है न? त्रिकाल की अपेक्षा से विनष्टदान है। पुद्गल गले और पूरे, गले और पूरे। गले अर्थात् व्यय हो और पूरे (पूरण) अर्थात् उत्पन्न हो। प्रसन्नभाई! तेरे पिता माँगेंगे घर में, हों! वहाँ क्या सुना?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह कहा न, यह कहा न अभी। एक तो पहले से तुमको

कहा कि पुद्-गल। पुद् अर्थात् पूरण अर्थात् उदय—उत्पाद। और गल अर्थात् व्यय। जैसे उस पुद्गल का अर्थ ऐसा है, ऐसा यह उत्पाद-व्यय का ऐसा अर्थ है। त्रिकाली द्रव्य नहीं, इसलिए उसे पुद्गलद्रव्य कहा गया है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, भाई!

शुद्ध जीवास्तिकाय से.... अकेला द्रव्य ध्रुव, ऐसा। वही स्वरूप मेरा, ऐसा। **अन्य ऐसे जो समस्त पुद्गलद्रव्य के भाव...** है, **वे वास्तव में हमारे नहीं...** आहाहा! **ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से कहता है...** 'कहता है' का अर्थ तो कथन है। यह तो ठीक। **ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से...** मानता है, जानता है। **वह अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होता है।** ऐसा। क्या कहा? शुद्ध जीवास्तिकाय अर्थात् शुद्ध जीव, अस्ति और काय अर्थात् असंख्य प्रदेशी वस्तु। शुद्ध... शुद्ध... ध्रुव। उससे अन्य ऐसे जो सभी पुद्गलद्रव्य की पर्यायें, वे वास्तव में हमारी नहीं है। ऐसा जो तत्त्ववेदी... यह वेदी है, वह पर्याय हुई। तत्त्व जो त्रिकाली ध्रुव जीवास्तिकाय, उसका वेदन करनेवाला स्पष्टरूप से जानता है। प्रत्यक्ष जानता है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया? '**व्यक्तं**' है न? ऐसा स्पष्टरूप से कहता है। कहता है तो वाणी है, परन्तु वास्तव में तो ऐसा मानता है, ऐसा परिणमता है—ऐसा इसका अर्थ है। समझ में आया?

जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से कहता है... यह तो वेदी हुआ न, यह तो परिणमता ही है। आहाहा! भगवान आत्मा में शुद्ध जीवस्वरूप, जीवास्तिकायस्वरूप वह मैं—ऐसी दशा... 'यह मैं' ऐसा तो पर्याय ने निर्णय किया न? निर्णय तो पर्याय ने किया न? यह पर्याय का वेदन हुआ। मैं शुद्ध जीव हूँ, शुद्ध जीवास्तिकाय हूँ, आनन्द का धाम हूँ। ऐसा जो आनन्द का धाम हूँ, ऐसा जो निर्णय हुआ पर्याय में, उस पर्याय में आनन्द का वेदन आया, उस पर्याय ने निर्णय किया कि मैं तो ध्रुव हूँ। निर्णय तो पर्याय करती है न? ध्रुव कहाँ निर्णय करता है? आहाहा!

जो पर्याय ऐसा निर्णय करती है। अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा तो पर्याय में चलती है न? ध्रुव में चलती है? परन्तु उस विचार का अवलम्बन ध्रुव है। 'यह ध्रुव, वह मेरा स्वरूप है' ऐसा जिस पर्याय ने निर्णय किया, ऐसा पर्याय में जो भाव आया, तब तत्त्ववेदी हुआ। उस तत्त्व की व्यक्त अवस्था उसके वेदन में आ गयी। समझ में आया? इस प्रकार जो 'मैं त्रिकाली शुद्ध जीवास्तिकाय हूँ' उसमें सम्यग्दर्शन आया, उसमें

सम्यग्ज्ञान आया, उसमें स्थिर हुआ, यह चारित्र भी आया। समझ में आया?

यह शुद्ध जीवास्तिकाय वस्तु द्रव्य ध्रुव... ध्रुव... ध्रुवधाम, वह मैं हूँ। 'मैं हूँ' उसमें दर्शन आया, ज्ञान आया, चारित्र, तीनों आ गये। अर्थात् इन तीन का वेदन करनेवाला... तीन का वेदन करनेवाला अर्थात् परिणमता हूँ, इसका अर्थ कि वेदन करनेवाला। वह स्पष्टरूप से वेदता है कि वह अति अपूर्व... यह उसे मुक्ति अल्पकाल में होनेवाली है, ऐसा कहते हैं। **वह अति अपूर्वसिद्धि को प्राप्त होता है।** महामुक्ति को अल्प काल में प्राप्त करता है। द्रव्य से तो मुक्ति हो गयी दृष्टि में। समझ में आया?

वस्तु है, वह तो मुक्तस्वरूप है। ऐसा जीवास्तिकाय यह मैं हूँ। वह तो मुक्त हुआ दृष्टि में तो मुक्ततत्त्व आया। मुक्ततत्त्व दृष्टि में आया। इसलिए मुक्त हूँ, जीवास्तिकाय यह हूँ, यह तो पर्याय में वेदन हुआ न? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, द्रव्य तो द्रव्य रहा। द्रव्य में वेदन कहाँ आता है? यह मैं हूँ... रागादि नहीं, व्यवहारादि नहीं, 'यह हूँ'—ऐसा अन्दर श्रद्धा, ज्ञान और एकाग्रता हुई—ऐसा जो मोक्ष के मार्ग का स्वरूप तत्त्व का वेदन करनेवाला, तत्त्व का अनुभव करनेवाला हुआ। लो!

वह अति अपूर्व... अल्प काल में अति अपूर्व। आनन्द... आनन्द... आनन्द... पूर्णानन्द ऐसी जो मुक्ति, उसे प्राप्त करता है। पर्याय में मुक्ति को प्राप्त करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! लो, इस कारण से। तत्त्ववेदी है इससे मुक्ति को प्राप्त करता है। वह व्यवहारमोक्षमार्ग रागादि आवे, इसलिए उससे मुक्ति को प्राप्त करता है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है। अभी तक माना, उसे धो डालो। स्लेट धो डालो। बराबर है। स्कूल में ऐसा आता था। लड़कों को तब तो लिखने का बहुत नहीं था। पेन (चोक) स्लेट... स्लेट थी और एक डिब्बी रखी जाती थी डिब्बी, उसमें गीले कपड़े का पोता रखे। गीला कपड़ा रखते, हम उस समय। खबर है। लिख गया हो तो मिटा डाले।

मुमुक्षु : पानी डालकर धो डाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : पोता फिरा दे। पोता कहते हैं न? डिब्बी छोटी हो। पहले की मान्यता हो, उसका पोता फिरा डालो तो यह बैठेगी, कहो, शोभालालजी!

मुमुक्षु : सब मान्यता में अन्तर पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक-एक मान्यता अज्ञानी की अन्तर है। एक भी बात में ज्ञानी को और अज्ञानी को मिलान नहीं है। भटकाऊ बुद्धि हो, ऐसा है।

ओहो! स्पष्टरूप से तत्त्व को वेदता है। प्रत्यक्षरूप से ज्ञान और आनन्द परिपूर्ण हूँ, ऐसा श्रद्धान किया, ज्ञान किया और अनुभव किया, उसे तो अल्प काल में मुक्ति होनेवाली है। उसकी सिद्धि तो अल्प काल में है। समझ में आया? इसलिए उपाय भी साथ में कहा। मोक्ष का उपाय, यह आत्मा त्रिकाली ज्ञायक है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता वह मोक्ष का उपाय। वह व्यवहाररत्नत्रय... व्यवहाररत्नत्रय बहुत कहते हैं। पुरुषार्थसिद्धि में आता है न? दो से मोक्ष प्राप्त करते हैं निश्चय और व्यवहार से... यह तो प्रमाण का ज्ञान कराया। ऐसी गाथा आती है पुरुषार्थसिद्धि उपाय में। यह डालते हैं वे लोग। भाई! प्रमाण क्या, उसका ज्ञान कराया है। बाकी मुक्ति का उपाय तो एक ही है। इस तत्त्व का वास्तविक ज्ञायकतत्त्व, वस्तुतत्त्व की दृष्टि होने पर, उसका ज्ञान होने पर, उसमें रमणता आने से आनन्द और शान्ति का वेदन आवे, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा!

इस मोक्ष के मार्ग से अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त करेगा। उसमें कोई शंका है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! लो, यह ५० (गाथा) हुई। अब पाँच रही। पाँच गाथायें।

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।
संसयविमोहविब्भमविवज्जियं होदि सण्णाणं॥५१॥

चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।
अधिगम-भावो णाणं हेयोवादेय-तच्चाणं॥५२॥

सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतर-हेऊ भणिदा दंसण-मोहस्स खयपहुदी॥५३॥

सम्मत्तं सण्णाणं विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं।
ववहार-णिच्छएण दु तम्हा चरणं पवक्खामि॥५४॥

ववहारणयचरित्ते ववहार-णयस्स होदि तवचरणं।
णिच्छय-णय-चारित्ते तवचरणं होदि णिच्छयदो॥५५॥

मिथ्याभिप्राय विहीन जो श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
संशय, विमोह, विभ्रान्ति विरहित ज्ञान सुज्ञानत्व है॥५१॥

चल, मल, अगाढ़पने रहित श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
आदेय, हेय पदार्थ का अवबोध सुज्ञानत्व है॥५२॥

जिनसूत्र समकितहेतु है, अरु सूत्रज्ञाता पुरुष जो।
वह जान अंतर्हेतु जिसके दर्श-मोहक्षयादि हो॥५३॥

सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान अरु चारित्र मोक्ष उपाय है।
व्यवहार निश्चय से अतः चारित्र मम प्रतिपाद्य है॥५४॥

व्यवहारनयचारित्र में व्यवहारनय तप जानिये।
चारित्र निश्चय में तपश्चर्या नियत-नय मानिये॥५५॥

पहले गाथा का अर्थ करते हैं—अन्वयार्थ। क्योंकि यह गाथा विवादास्पद गाथा है। ५३वीं गाथा है न, वह विवादित गाथा है। गाथा कहीं विवादित होगी? परन्तु उसके उल्टे अर्थ करनेवाले होते हैं। इसका अन्वयार्थ—**विपरीत अभिनिवेश...** अर्थात् **अभिप्राय; आग्रहरहित श्रद्धान, वही सम्यक्त्व है।** व्यवहार, यह व्यवहारसमकित की व्याख्या है। **विपरीत अभिनिवेशरहित श्रद्धान, वही सम्यक्त्व है; संशय, विमोह, वह विभ्रमरहित (ज्ञान), वह सम्यग्ज्ञान है।** यह भी व्यवहार है।

चलता, मलिनता और अगाढ़तारहित श्रद्धान, वही सम्यक्त्व है... यह भी व्यवहार है। **हेय और उपादेय तत्त्वों को जाननेरूप भाव, वह सम्यग्ज्ञान है।** यह भी व्यवहार है। समझ में आया? अब इस गाथा का.... **सम्यक्त्व का निमित्त जिनसूत्र है...** सम्यग्दर्शन

पाता है उस जीव को सर्वज्ञ की, वीतराग की वाणी निमित्त है। और '**तस्य ज्ञायकाः पुरुषाः**' उन **जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को (सम्यक्त्व के) अन्तरंग हेतु कहा है....** क्या कहते हैं?

सम्यग्दर्शन तो स्वद्रव्य के आश्रय से प्राप्ति होती है। यह तो पहली बात बहुत दृढ़ करके, निमित्त कौन है, उसका ज्ञान कराते हैं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन तो स्वद्रव्य के आश्रय से ही प्रगट होता है। यह तो बहुत जोर से लिया, पर्याय को परद्रव्य गिनकर। समझ में आया? भीखाभाई!

मुमुक्षु : ....समय आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया समय अब।

मुमुक्षु : नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आया। वहाँ ज्ञान कराते हैं उसे। कहते हैं कि निश्चय सम्यग्दर्शन की पर्याय की प्राप्ति तो अखण्डान्द परिपूर्ण द्रव्य के आश्रय से होती है। वह तो बहुत बात आ गयी। पर्याय के आश्रय से नहीं, विकल्प के आश्रय से नहीं, निमित्त के आश्रय से नहीं। त्रिकाल ध्रुवस्वरूप का ध्येय बनाकर पर्याय प्रगट हो सम्यग्दर्शन की, उसे मोक्षमार्ग का एक अवयव कहने में आता है। परन्तु उस सम्यग्दृष्टि को निमित्त कौन होता है? कि वीतराग की वाणी निमित्त होती है। ऐसा उपदेश, इस प्रकार से हो, वह वीतराग का उपदेश है। समझ में आया? वीतराग की वाणी, जिसमें वीतरागपना बतावे, वह राग से लाभ न बतावे, निमित्त से लाभ नहीं बतावे, वह वीतराग की वाणी है।

मुमुक्षु : निमित्त से लाभ न बतावे?

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ बतावे तो वीतराग की वाणी कहाँ रही? क्या कहा?

कहते हैं... पाठ ऐसा है, देखो! जीव **सम्यक्त्व का निमित्त....** यह निश्चय समकित है। पहले अभी व्यवहार तक की बात थी। निश्चय सम्यक्त्व जो आत्मा का दर्शन... आत्मा अखण्ड पूर्णानन्द, उसके आश्रय से होता समकित, उसमें वीतराग की वाणी निमित्त होती है। क्योंकि वीतराग... वीतराग... वीतरागभाव आत्मा के आश्रय से

प्रगट किया है, और उनकी वाणी में आत्मा का आश्रय लेना, यह बात उसमें आती है। वीतराग की वाणी वीतरागपना बताती है। वीतरागपना अर्थात्? निमित्त और विकल्प की और पर्याय की उपेक्षा करके द्रव्य की अपेक्षा करना, ऐसा वीतराग की वाणी बतातीहै। ऐसी वाणी अन्य में—जैन परमेश्वर के अतिरिक्त अन्यत्र—नहीं होती। समझ में आया?

सम्यक्त्व का निमित्त जिनसूत्र है; जिनसूत्र के ज्ञाता पुरुषों को.... यह समकिती और ज्ञानी पुरुष... समकिती को—प्राप्त करनेवाले को **अन्तरंग हेतु कहा है....** वाणी बाह्य निमित्त है और यह इनका अभिप्राय है, वह अन्तरंग निमित्त कहा गया है। कर्मग्रन्थ में दर्शनमोहादिक का (क्षय) अन्तरंग कारण (कहा) है, वह यहाँ बात नहीं है। ऐसा आत्मा कहते हैं, वहाँ पण्डित लोग। कि **जिनसूत्र के ज्ञाता पुरुषों को...** अर्थात् समकित होनेवाले को, जो जिनसूत्र के जाननेवाले ज्ञानी हैं, वे समकित के अन्तरंग हेतु हैं (और) वाणी है, वह बाह्यहेतु है। और ज्ञानी का अभिप्राय का अन्तरभाव, उसका ज्ञान हुआ समकिती को, वह है तो बाह्य, परन्तु उस वाणी की अपेक्षा से उसके अभिप्राय को अन्तरंग हेतु कहा गया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जरा... इसलिए धीरे-धीरे यह लेते हैं न? पंचास्तिकाय की १४८वीं गाथा में आत्मा का योग जो कँपता है और जो कषाय है—वे दो तो उसकी—जीव की पर्याय है, तथापि वहाँ ऐसा लिया है कि योग है, वह बाह्यहेतु है और कषाय, वह अन्तर हेतु है बन्ध के। ऐसा लिया है। पंचास्तिकाय की १४८वीं गाथा। समझ में आया? है तो इसकी और इसकी पर्याय। योग—कंपन विकारी और राग की विकारी पर्याय। परन्तु कंपन है, उसे बाह्य निमित्त कहा गया है और कषाय को अन्तरंग हेतु कहा गया है। इसी प्रकार यहाँ है तो दोनों बाह्य। वह है उसकी पर्याय, तथापि उसके दो भाग किये। इसी प्रकार यह है तो बाह्य, परन्तु समकित पानेवाले को वीतराग की वाणी का निमित्त बाह्यहेतु है और उनका कहने का आशय जो वीतरागभाव है, वह उसे अन्तरंग निमित्त होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तरंग हेतु ऊपर आया। अन्तरंग हेतु, परन्तु दूसरे का (भाव), उसे यहाँ अन्तर हेतु उसका कहा जाता है। आहाहा! ऐसे समकित प्राप्त करने का अन्तर हेतु तो निश्चय का—स्वभाव का आश्रय, वह अन्तर हेतु है, परन्तु यहाँ वाणी की अपेक्षा से बाह्य निमित्त में वीतराग की ही वाणी उसे होती है कान में। अज्ञानी सिवाय, सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव त्रिलोकनाथ, पश्चात् उनकी वाणी भले मुनि कहे, समकिती कहे, समझ में आया? परन्तु वीतराग की वाणी होनी चाहिए। समझ में आया?

देखो! जिसने कल्पित शास्त्र बनाये वीतराग के बहाने, वे उसे निमित्त नहीं हो सकते सम्यग्दर्शन को, ऐसा कहते हैं। ऐई! ...भाई! ऐसी बात है। यह पक्ष नहीं, हों! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया? क्योंकि इसके कान में, इसके संस्कार में कान में यह बात पड़ती है कि आत्मा अखण्डानन्द पूर्ण है, उसका आश्रय ले। पर की उपेक्षा कर, स्व की अपेक्षा (कर)। ऐसी वीतराग की वाणी में—बारह अंग में यह आता है। वीतराग के अतिरिक्त की वाणी में ऐसा नहीं आता। कुछ गड़बड़... गड़बड़ हुए बिना रहती ही नहीं। या तो राग से लाभ मनावे, या पर्याय का आश्रय करने से लाभ मनावे, या निमित्त से लाभ मनावे, वह वीतराग की वाणी नहीं। व्यवहार से निश्चय का लाभ मनावे, वह वीतराग की वाणी नहीं। कहो, देवीलालजी!

मुमुक्षु : इसके बिना तो भटकता है सर्वत्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : भटकता है। भूले तो भटके ही न। जो सूत्र भगवान के नहीं और उसे भगवान के कल्पित किये और माने, वह समकित पानेवाले को वे निमित्त नहीं होते, ऐसा कहते हैं। दूसरा वह कहनेवाला जो है, वह भी समकित को प्राप्त करनेवाले को निमित्त नहीं होता। आहाहा! गजब! यह तो ऐसा है, हों! इससे पहले इन्होंने प्रश्न लिखा था ...में, कि जो अपने श्वेताम्बर में से यदि ऐसा निकले तो मुझे बदलना मिटे। ऐसा कि यहाँ कानजीस्वामी यह कहते हैं ऐसा... वे ५० प्रश्न निकाले थे। ५०। श्वेताम्बर के आचार्यों को प्रश्न रखे थे सबको। ...५०। एकाध जवाब दिया नहीं कोई? एक भी दिया नहीं और एकाध दिया, वह खोटा।

उन्होंने लिखा हुआ ऐसा हो कि यदि ऐसे प्रश्न के उत्तर अपने में से यदि मिले तो मुझे बदलना मिटे। यदि अपने में से मिले तो मुझे बदलना मिटे। अमरचन्दभाई! नहीं तो मुझे बदलना पड़ेगा। बहियों के जाँचनेवाले ऑडिटर थे न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें ऑडिटर का तर्क डाला। धीरुभाई! कहीं कुछ नहीं, बापू! वीतराग की वाणी जो परम्परा सर्वज्ञ परमेश्वर से सन्तों ने ग्रही है, ज्ञान हुआ है। उन सन्तों की, उन ज्ञानियों की वाणी समकित प्राप्त करनेवाले को बाह्य निमित्त होती है और उन ज्ञानी का अभिप्राय, वह अन्तरंग हेतु है। समझ में आया?

क्योंकि उन्हें दर्शनमोह के क्षायादिक हैं। किसे? पण्डितजी! किसे? दर्शनमोह का क्षय है, वह किसे? क्या अर्थ करते हैं? देखो! किसे? समकित प्राप्त करनेवाले को या समकित प्राप्त करने में निमित्त हो उसे? निमित्त सही परन्तु किसे?

मुमुक्षु : ज्ञानी को।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानी को। ज्ञानी जो है, वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने में उनकी वाणी निमित्त है और उनका अन्तरंग अभिप्राय निमित्त है। किसका? कि जिस ज्ञानी को दर्शनमोह का उपशम-क्षयोपशम-क्षय हुआ है, उस ज्ञानी को। प्राप्त करनेवाले को दर्शनमोह का अन्तरंग क्षय होता है, इसलिए—ऐसा नहीं। अटपटी बात है। समझकर बराबर (अर्थ) करना, नहीं तो इसमें बड़ी गड़बड़ है।

मुमुक्षु : इसमें गड़बड़ है या न समझे उसमें गड़बड़?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें इसे समझने में गड़बड़ हुई न? देखो न इसमें पाठ है न! वे लोग ऐसा अर्थ करते हैं कि जिनसूत्र जाननेवाले पुरुष निमित्त हैं और समकित प्राप्त करनेवाले को दर्शनमोह का क्षय प्रवर्ते। उनको दर्शनमोह आदि के क्षय का अन्तरंग कारण प्राप्त करनेवाले को है, ऐसा वे कहते हैं। ऐसा यहाँ नहीं है। समकित प्राप्त करनेवाले को जो बाह्य सूत्र निमित्त हैं, कहनेवाले वे सूत्र। उस कहनेवाले को जो सम्यग्दर्शन है, वह कैसा है उसका? कि उसे दर्शनमोह का उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक हुआ है, ऐसा। उसका अभिप्राय उसे अन्तर हेतु कहा जाता है। यह अटपटी बात है।

मुमुक्षु : निमित्त का ज्ञान भी कठिन लगे। उपादान....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। क्योंकि कर्मग्रन्थ में ऐसा आता है, समकित प्राप्त करनेवाले को अन्तरंग हेतु दर्शन-मोह का उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक है। वह यहाँ बात नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है, वह दूसरी बात है।

यहाँ तो धर्मीजीव—धर्म को प्राप्त करनेवाले को निमित्त कैसा होता है? कि एक तो उसकी वाणी—वीतराग ने कही, वह वाणी निमित्त। वह निमित्त, बाह्य निमित्त कहने में आती है। और उनका जो अभिप्राय है, वह धर्म प्राप्त करनेवाले को अन्तर हेतु कहा जाता है। है तो बाह्य, परन्तु उस वाणी की अपेक्षा से उसे अन्तर हेतु उपचार से कहा गया है। और अन्तर हेतु जिसे हुआ, उसे यह दर्शनमोह, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक हो, ऐसा नहीं। परन्तु जो निमित्त अन्तर हेतु कहने में आये, ऐसे जो ज्ञानी... जो इसे अन्तर हेतु कहने में आये, ऐसे ज्ञानी को दर्शनमोह आदि का क्षय, उपशम और क्षायिक वर्तता हो तो वह उनका अभिप्राय दूसरों को निमित्त होता है और वाणी उसे बाह्य निमित्त होती है।

मुमुक्षु : वाणी अन्तरंग नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वाणी अन्तरंग हेतु नहीं, वह बहिरंग हेतु है। अभिप्राय अन्तरंग हेतु है। जो ज्ञानी को—धर्म प्राप्त करनेवाले को जो निमित्त हो, वह निमित्त कैसा है? ऐसा कहते हैं। एक तो उनकी वाणी वीतरागवाणी है और एक तो उनके अभिप्राय में सम्यग्दर्शन, उपशम, क्षयोपशम या क्षायिक हुआ है। निमित्त में। आहाहा! **जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को...** ऐसा कहा है। उन्हें कहना। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी बात है। यह अभिप्राय की बीच की बात तो ठीक, परन्तु अभिप्रायवाला जीव, उसके यह दर्शनमोह का क्षयोपशम, क्षायिक की बात है।

प्राप्त करनेवाले को दर्शनमोह का उपशम, क्षयोपशम, (क्षय)—ऐसी यहाँ बात नहीं है। समझ में आया? **क्योंकि उनके दर्शनमोह के क्षयादिक हैं।** इसलिए वे बाह्य निमित्त अथवा अन्तर हेतु कहने में आये हैं। वरना तो अन्तर हेतु निमित्त-उपचार भी नहीं होता और उनकी वाणी भी बाह्य हेतु नहीं होती। मिथ्यादृष्टि जीव है, उनकी वाणी ज्ञान प्राप्त करनेवाले को बाह्य निमित्त भी नहीं और उसका अभिप्राय अन्तर हेतु भी नहीं।

मुमुक्षु : प्राप्ति हो जाये तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं प्राप्ति हो जाये नहीं। प्राप्ति हुई हो, वह दूसरे को निमित्त होता है, ऐसा कहते हैं। जरा अन्तर है, बड़ा अन्तर है। आहाहा!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

- जैसे लड़का रोता हो, उसे उसका पिता कहता है, भाई! तू रो नहीं! देख, तेरा पेड़ा पूरा ऐसा का ऐसा ही है, देख! प्रसन्न हो! उसी प्रकार आचार्यदेव भव्य को कहते हैं कि हे आत्मा! तू प्रसन्न हो! खुशी हो! देख! तेरा आत्मा तीनों काल ऐसा का ऐसा शुद्ध ही है, देहादि या रागादि आत्मा को स्पर्शे ही नहीं हैं, स्पर्शे ही नहीं हैं। रागादि तो ऊपर-ऊपर लोटते हैं। इसलिए भाई! तू प्रसन्न हो! और प्रसन्न होकर देख! तेरा आत्मा शुद्ध चैतन्यघन ही है। (19)
- जीव आत्मा के गुण गाते-गाते भगवान हो जाता है। कोई क्रियाकाण्ड करते-करते भगवान नहीं हुआ जाता परन्तु गुणी ऐसे भगवान के गुण गाते-गाते—महिमा करते-करते भगवान हो जाता है। अनन्त गुणों की महिमा करते-करते अनन्त जीव केवली हो गये। अनन्त गुणरत्नों के कमरे खुल्ले हो गये। भाई! तू पामर नहीं, परन्तु भगवान है, उसके स्वरूप का गुणगान कर। (20)

— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, दृष्टि के निधान

भाद्र कृष्ण ५, मंगलवार, दिनांक - ३०-०९-१९६९
गाथा-५१ से ५५, प्रवचन-२१

शुद्धभाव अधिकार है। मोक्षमार्ग (अर्थात्) नियमसार। शुद्धभाव का अर्थ, आत्मा त्रिकाली ध्रुव जो है त्रिकाली, सामान्य ज्ञायकभाव, परमस्वभावभाव नित्यानन्द ध्रुव, उसे यहाँ शुद्धभाव कहा जाता है। समझ में आया? नजदीक आओ, यहाँ जगह है। जगह... यहाँ। समझ में आया? यह नियमसार का अर्थ मोक्षमार्ग है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग। वह मोक्ष का मार्ग कैसे प्रगट होता है? कहाँ से प्रगट होता है? कि ध्रुव चैतन्य ज्ञायकभाव एकरूप स्वभाव का आश्रय करने से, उसके अवलम्बन से, उसके लक्ष्य से, उसके ध्येय से, उसे ध्यान में लेने से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। समझ में आया? इसलिए आचार्य महाराज उसे शुद्धभाव (कहते हैं)। शुद्धभाव अर्थात् यह पर्याय की बात नहीं।

जैसे कि हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग वासना, वह अशुभभाव है; दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति वह शुभभाव है और इन भाव बिना की आत्मा की शुद्ध परिणति—राग बिना की शुद्ध परिणति, वह शुद्धभाव है, वह पर्याय का शुद्धभाव है। यह अधिकार पर्याय के शुद्धभाव का नहीं; त्रिकाली शुद्ध ध्रुवभाव का अधिकार है। समझ में आया? तीन प्रकार के भाव हैं न? शुभ, अशुभ और शुद्ध। यह तो पर्याय के तीन बोल हैं। यह अधिकार है, वह उसका नहीं परन्तु यह शुद्ध पर्याय अर्थात् मोक्ष का मार्ग किसके लक्ष्य से, किसके ध्येय से, आश्रय से प्रगट होता है? इसका यह अधिकार है।

तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति ध्रुव चैतन्यमूर्ति अखण्ड आनन्दकन्द एकरूप निष्क्रिय... वर्तमान पर्याय का परिणमन भी जिसमें नहीं। निमित्त तो नहीं, राग-विकल्प शुभभाव तो नहीं, परन्तु एक समय की जो निर्मल पर्याय है, वह भी जिसमें नहीं—ऐसे ध्रुवभाव को यहाँ शुद्धभाव कहने में आता है। उस शुद्धभाव को दृष्टि में लेने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? अब उस सम्यग्दर्शन होने के परिणाम में निमित्त कौन है, यह गाथा अपने चलती है।

उपादान तो है शुद्ध ध्रुव चैतन्य भगवान निजस्वभाव। उसके अन्दर में श्रद्धा को

पसारने से, श्रद्धा को उसमें जोड़ने से सम्यग्दर्शन होता है। इसके बिना सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति (तीन) काल में किसी दूसरे कारण से नहीं होती। समझ में आया? अब इस सम्यग्दर्शन के परिणाम में निमित्त कौन है? इतनी बात यहाँ ५३वीं गाथा (में करते हैं)। कि **सम्यक्त्व का निमित्त जिनसूत्र है...** वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव ने कही हुई वाणी, वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेवाले को वह वाणी निमित्त है। समझ में आया?

मुमुक्षु : शास्त्र या उपदेश?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश। पृष्ठ नहीं। ज्ञानी का उपदेश जो वाणी है... वीतरागी सम्यग्दर्शन हुआ है, वीतरागी मुनिपना प्रगट हुआ है और या वीतरागीदशा केवलज्ञान की प्रगट हुई है—ऐसे ज्ञानी की वाणी को यहाँ जिनसूत्र और उनकी वाणी को यहाँ बहिरंग निमित्तरूप से, शुद्ध स्वभाव के आश्रय से प्रगटे उसमें यह निमित्तरूप से कहने में आया है। समझ में आया? देखो! इसमें अकेले शास्त्र अपने आप पढ़े और निमित्त हो, ऐसा भी नहीं कहा।

यह जिनसूत्र अर्थात् वीतराग की वाणी। वीतरागभाव से निकली हुई वाणी। अज्ञानी की वाणी, सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के अन्तर कारण में बाह्य निमित्त उसे होता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और **जिनसूत्र के ज्ञाता पुरुषों को...** अर्थात् वीतरागी भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहे जो शास्त्र, उनका जिसे अन्तर में आत्मज्ञान है, वे जिनसूत्र के जाननेवाले उन्हें कहा। समझ में आया? **जिनसूत्र के ज्ञाता पुरुषों को (सम्यक्त्व के) अन्तरंग हेतु कहे हैं,...** है तो वह ज्ञानी का अभिप्राय। सम्यग्दर्शन प्राप्ति के लिये वह तो बाह्य निमित्त है। परन्तु उसकी वाणी है, उसे बाह्य निमित्तरूप से कहा और उसका अभिप्राय है कि यह आत्मा वीतरागस्वरूप है, स्व का आश्रय करनेयोग्य है, ऐसी वाणी मुनियों की, ज्ञानी की, समकिती की, तीर्थंकर की निकले। समझ में आया? इसलिए उस वाणी को बाह्य हेतु कहा और उनका जो अभिप्राय है... उसे—समकित प्राप्त करनेवाले को निश्चय आश्रय तो द्रव्य का है। अन्तरंग हेतु... है तो बाह्य, परन्तु उसे उस वाणी की अपेक्षा उनका अभिप्राय नजदीक में समझना है, इसलिए उसे अन्तरंग हेतु कहने में आया है। समझ में आया?

जिनसूत्र के ज्ञाता पुरुषों को.... अर्थात् कि वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ तत्त्व जिसे अनुभव में आया है, उन पुरुषों की वाणी... धर्मी जीव धर्म प्राप्त करते हैं अपने स्वभाव से, परन्तु उसे वाणी बाह्य निमित्तरूप से है और उनका कहा हुआ वीतराग अभिप्राय है, वह अन्तरंग निमित्तरूप से कहने में आया है। समझ में आया? **क्योंकि उनके दर्शनमोह के क्षयादिक हैं।** कौन? समकित में जो निमित्त उपदेशक हैं। उपदेशक अन्दर में सम्यग्दर्शन प्राप्त हैं, उन्हें दर्शनमोह का उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक हुआ है। उस जीव की वाणी बाह्य निमित्त है और उसका अभिप्राय अन्तर निमित्त है। है तो दोनों निमित्त। कहो, समझ में आया? उसमें से कोई ऐसा कहे कि भाई! अज्ञानी की वाणी भी निमित्त होकर समकित पावे, (तो) ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : शास्त्र वाँचे....

पूज्य गुरुदेवश्री : वाँचे भले। वह वाँचे भले, कहे भले, परन्तु उसकी वाणी.... उसे ही खबर नहीं जहाँ चीज़ की। आत्मा अत्यन्त दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के विकल्परहित है, ऐसे तत्त्व का जिसे अन्तर ज्ञान और श्रद्धा नहीं, वह वाँचता है, वह राग को वाँचता है। वीतराग के शास्त्र को वाँचता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, है वह अन्तरंग, परन्तु बाह्य के दो प्रकार लिये। है तो वाणी भी बाह्य, है तो उनका अभिप्राय (भी) बाह्य, परन्तु अभिप्राय को उपचार से अन्तरंग हेतु कहा और बहिरंग तो है ही व्यवहार। यह स्पष्टीकरण टीका में अधिक आयेगा।

फिर कहते हैं, **सुन, मोक्ष के लिये सम्यक्त्व होता है,...** यह निश्चय की बात है। जिसे मुक्ति होती है, उसके लिये सम्यग्दर्शन वह कारण है कि जो सम्यग्दर्शन ध्रुव चैतन्य के—द्रव्य के आश्रय से प्रगट होता है। देखो! आचार्य कहते हैं, सुन! ऐसा कहते हैं। देखो, उसमें कहा तब कहे, सुन! मोक्ष अर्थात् पूर्णानन्द की प्राप्ति का कारण तो समकित है और सम्यग्ज्ञान होता है। आत्मज्ञान और आत्मदर्शन, यह मोक्ष का कारण है। शास्त्र का ज्ञान और शास्त्र की श्रद्धा, वह मोक्ष का कारण नहीं। समझ में आया?

देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह मोक्ष का कारण नहीं। इतनी बात पहले रखी और

फिर वह बात करेंगे। टीका में पहली लेंगे व्यवहार की। समझ में आया? देव अरिहन्त, वीतरागी गुरु निर्ग्रन्थ और शास्त्र सर्वज्ञ के कहे हुए—उनकी श्रद्धा भी शुभविकल्प और राग है। वह मोक्ष का कारण नहीं। समझ में आया? होता है, परन्तु मोक्ष का कारण नहीं।

मुमुक्षु : देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा सच्ची हो तो.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची हो तो राग है। सच्ची की बात है, खोटे की कहाँ बात चलती है? सर्वज्ञ परमेश्वर, गुरु निर्ग्रन्थ और वीतराग की वाणी—उसकी जो श्रद्धा है, वह तो विकल्प है, राग है। उसकी श्रद्धा अर्थात् कहीं सम्यग्दर्शन नहीं। वह तो राग है। गजब बात! समझ में आया? सेठ! क्या कहते हैं। ऐसा बोलते हैं, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह श्रद्धा विकल्प है, राग है। बन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो स्वयं से होता है, पर से नहीं। पर तो निमित्त है, परसन्मुख का विकल्प है, वह तो निमित्त है। आहाहा!

मोक्ष के लिये सम्यक्त्व होता है। कौन सा? निश्चय, स्व-आश्रय। निश्चय ज्ञान होता है, आत्मज्ञान, वह मोक्ष के लिये होता है। शास्त्रज्ञान वह लाख, करोड़ शास्त्र पढ़े परन्तु वह मोक्ष का कारण नहीं। क्योंकि शास्त्रज्ञान, सर्वज्ञ के शास्त्र, हों! वीतराग के शास्त्र। अन्य के शास्त्र की तो बात है नहीं। परमेश्वर के शास्त्र पढ़े ग्यारह अंग, नौ पूर्व, वह मोक्ष का कारण नहीं। क्योंकि वह तो विकल्प है। आहाहा! और **चारित्र (भी) होता है....** कौन सा चारित्र? भगवान आत्मा शुद्ध ध्रुव चैतन्य निष्क्रिय प्रभु का सम्यग्दर्शन-ज्ञान और उसमें रमणता—शुद्ध ध्रुव में रमणता, वह चारित्र है। वह पंच महाव्रत के परिणाम और दया, दान का विकल्प, वह चारित्र नहीं। पंच महाव्रत के परिणाम, वे चारित्र नहीं, वह मोक्ष का कारण नहीं। ओहो! समझ में आया?

इसलिए मैं व्यवहार और निश्चय से चारित्र कहूँगा। चारित्र के दो प्रकार—एक

व्यवहारचारित्र विकल्परूप, निश्चयचारित्र निर्विकल्प वीतरागरूप। दोनों कहूँगा, ऐसा आचार्य कहते हैं। बतलाऊँगा मैं। **व्यवहारनय के चारित्र में व्यवहारनय का तपश्चरण...** मुनिपना। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, नग्नदशा—यह दशा व्यवहारनय से व्यवहारचारित्र कहने में आती है। अर्थात् कि चारित्र नहीं, उसे चारित्र कहना, इसका नाम व्यवहारनय।

मुमुक्षु : नहीं, उसे किसलिए कहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : है न वस्तुरूप से निमित्त। है, उसे यथार्थरूप से जानना, वह निश्चय। नहीं है, उसे कहना और जानना, इसका नाम व्यवहार। पंच महाव्रत के परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण के मुनि हों, उसे हों। एक बार आहार, खड़े रहकर आहार, नग्नपना, छह आवश्यक—ऐसे अट्ठाईस मूलगुण हों, वह विकल्प है, राग है। परन्तु वह निश्चय जिसके हो अनुभव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। किसके आश्रय से हुआ हो? उसे ऐसा निमित्त होता है, इसलिए उसे व्यवहार से चारित्र कहने में आता है। चारित्र नहीं, उसे कहना, वह व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया?

चारित्र में व्यवहारनय का मुनिपना। व्यवहारनय का मुनिपना अर्थात् अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत के परिणाम, एक बार आहार, छह आवश्यक की क्रिया, अन्दर में सामायिक—यह विकल्प सब। वह व्यवहार मुनिपना कहा जाता है। परन्तु किसे? कि जिसे निश्चय मुनिपना हो उसे। तो उसको व्यवहार कहा जाता है। नहीं तो व्यवहार नहीं कहा जाता। आहाहा! समझ में आया? वीतरागदर्शन में तो मुनि उसे कहते हैं कि जिसे आत्मदर्शन सम्यक् हुआ, तदुपरान्त स्वरूप में तीन कषाय का अभाव होकर वीतरागदशा होती है और उसे अट्ठाईस मूलगुण होंते हैं, बाह्य में नग्नदशा होती है। वह बाह्य में नग्नदशा और अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प, वह व्यवहार मुनिपना कहा जाता है और रागरहित आत्मा का दर्शन, ज्ञान और स्थिरता, वह निश्चय साधुपना कहा जाता है। वह निश्चय है, वह मोक्ष का कारण है। व्यवहार है, वह बीच में आता है परन्तु वह बन्ध का कारण है। समझ में आया?

इसलिए.... व्यवहार... निश्चय अर्थात् निश्चय से... चारित्र में... निश्चय मुनिपना

होता है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सम्यग्दर्शन प्रगट करके उसका—आत्मा का ज्ञान प्रगट करके और स्वरूप में वीतरागी रमणता होती है, वह सच्चा चारित्र है और वह मोक्ष का कारण है। समझ में आया?

अब टीका। **यह रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है।** अब पहली व्यवहार की बात करते हैं। **प्रथम भेदोपचार रत्नत्रय...** भेदवाला व्यवहार से रत्नत्रय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो शुभरागरूप है, वह बन्ध का कारण है। वह निश्चय सम्यक् दृष्टि, ज्ञान, चारित्रवाले को (पूर्ण) वीतरागपना जब तक प्रगट नहीं होता, तब उसे ऐसा भाव होता है। उसे व्यवहाररत्नत्रय (कहते हैं)। यह कहते हैं, देखो! **विपरीत अभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप ऐसा जो सिद्धि के परम्पराहेतुभूत....** जिसके अभिप्राय में उल्टा अभिप्राय न हो। भगवान ने आत्मा कहा है, जड़ कहा है, राग इत्यादि। उनके तत्त्वों में विपरीत अभिनिवेश अर्थात् आग्रह। **रहित श्रद्धानरूप ऐसा जो सिद्धि के परम्पराहेतुभूत...** मुक्ति का परम्परा कारण, सीधा कारण नहीं। परम्परा क्या? कि व्यवहार है, उसे छोड़कर जब निश्चय करेगा, तब उसे मुक्ति होगी, इसलिए उसे परम्परा कारण कहने में आया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा कहा न! परन्तु कहा इसका अर्थ क्या? यह तो अर्थ किया न यह। कि निश्चय आत्मज्ञान, आत्मदर्शन और आत्मरमणता जहाँ है, वहाँ ऐसा विकल्प होता है, वह वर्तमान में तो अशुभ से बचने के लिये है। पश्चात् शुभ में से जब शुद्धता में जाये, तब शुभ को छोड़कर जायेगा, इसलिए उसे परम्परा हेतु कहने में आया है।

क्या परम्परा हेतु? **भगवान पंच परमेष्ठी के प्रति...** पंच परमेष्ठी—अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु—वीतराग परमेश्वर के कहे हुए। समझ में आया? कितने ही कहते हैं कि णमो लोए सव्वसाहूणं। इसमें कहाँ आया? कि जैन के साधु हों और दूसरे न हों? जैन में भी जिसे आत्मदर्शन... वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी तीर्थंकर देव ने (कहे हुए) आत्मदर्शन—रागरहित सम्यग्दर्शन स्वरूप का हुआ है,

उसका आत्मा का ज्ञान हुआ है और आत्मा में रमणता हुई है, उसे यहाँ आचार्य, उपाध्याय और साधु कहने में आता है। और उसके फलरूप से पूर्ण केवलज्ञान होकर उसे अरिहन्त और सिद्ध कहा जाता है। तो उस वीतरागमार्ग में ही यह होता है, इसके अतिरिक्त अन्यत्र नहीं हो सकता। समझ में आया?

अन्यलिंग से मुक्ति, ऐसा कहते हैं न? भगवान इनकार करते हैं। ऐसा नहीं हो सकता। उसे व्यवहारलिंग भी नग्नदशा और अट्ठाईस मूलगुण का व्यवहार होता है और निश्चय तो स्वभाव के आश्रय से वीतरागदशा प्रगट हुई हो, उसे ऐसा निमित्त होता है। समझ में आया? भारी विवाद! परन्तु शरीर में वस्त्र रखने का भाव हो और वस्त्र पहने हो और उसे वहाँ मुनिपना प्रगट हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? और वस्त्र छोड़े, इसलिए मुनिपना प्रगट हुआ है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई!

मुमुक्षु : वस्त्र छोड़े तो भी मुनि नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्त्र तो अनन्त बार छोड़े हैं, उसमें क्या आया? पंच महाव्रत तो अनन्त बार पालन किये हैं। उसमें क्या आया?

आत्मा अन्दर रागरहित शुद्ध चिदानन्द का सम्यक् अनुभव हुए बिना और स्वरूप की रणमता बिना मुक्ति का कारण उसे जरा भी नहीं। समझ में आया? भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रति... भगवान पंच परमेष्ठी—अरिहन्त प्रभु, सिद्ध भगवान, आचार्य भगवन्त, उपाध्याय भगवन्त और मुनि परमेश्वर, ये पाँच भगवन्त कहे। देखो! पाँचों को भगवन्त कहा। आहाहा! है? आचार्य, उपाध्याय, साधु को भगवन्त कहा। भगवान है न पाँचों ही? आहाहा! अहो! अरिहन्त, सिद्ध तो केवलज्ञानी परमात्मा हैं, परन्तु आचार्य, उपाध्याय, साधु, वे अरिहन्तपद प्राप्त होने के निकट में हैं। जिन्हें एक थोड़ा विकल्प उठता है, पंच महाव्रत का, उसे छोड़कर केवलज्ञान पानेवाले हैं। ऐसी जिनकी अन्तर में स्वरूप की रमणता और आनन्द आदि की लीनता है, उसे यहाँ निमित्तरूप से नग्नपना और अट्ठाईस मूलगुण होते हैं। समझ में आया? उन सबको उस भाव की अपेक्षा से भगवान पंच परमेष्ठी कहे हैं। उस विकल्प की अपेक्षा से नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : भक्ति तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या?

मुमुक्षु : भक्ति....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भक्ति अर्थात् श्रद्धा। श्रद्धा का अर्थ भक्ति। ... आता है यह। के प्रति.... अभी तो आया नहीं, अभी आया नहीं। अभी वहाँ तक आने दो। यह शब्द आया नहीं।

पंच परमेष्ठी भगवन्त... यहाँ तो भगवान की व्याख्या अभी चलती है कि भगवन्त परमेष्ठी को भगवन्त कहा है। आचार्य, उपाध्याय, साधु, वे भगवान हैं। क्योंकि तीन कषाय का अभाव होकर वीतरागदशा जिन्हें वर्तती है, तथा अरिहन्त और सिद्ध तो परमेश्वर साक्षात् हैं। ऐसे **भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रति चलता-मलिनता-अगाढ़ता रहित....** यह चल-मल नहीं कि भगवान यह होंगे या दूसरे होंगे? कहीं चलित होना नहीं। मलिनता और अगाढ़ता अर्थात् अस्थिरता नहीं, ऐसा जिसका **निश्चल भक्तियुक्तपना....** वह भगवान पंच परमेष्ठी की भक्ति और उसका नाम राग और उस राग को समकित व्यवहार कहने में आता है।

मुमुक्षु : व्यवहार समकित राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग ही है परन्तु देखो न! उनकी **भक्तियुक्तपना वही सम्यक्त्व है।** व्यवहार समकित। पंच परमेष्ठी का प्रेम है। उस निश्चय समकितसहितवाले की बात है, हों!

मुमुक्षु : दूसरे की नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे की बात भी कहाँ थी? व्यवहार कैसा? माल बिना बारदान... माल बिना बारदान कहना किसे? यह तो गेहूँ की बोरी है या चावल की, परन्तु माल हो तो कहलाये न? समझ में आया? कोथला समझते हो? बोरा। परन्तु वह बोरा किसका कहना? कि माल डाले उसका। माल हो तो बोरा कहलाये। नहीं तो माल बिना बोरा खाली कोथला कहलाये; इसी प्रकार आत्मा अन्दर शुद्ध ध्रुव चैतन्य...

शुद्धभाव अधिकार है न ? शुद्धभाव ध्रुवबिम्ब चैतन्य निष्क्रिय—राग की क्रिया बिना का आत्मा, उसका जो सम्यग्दर्शन, उसका अनुभव, उसकी जो रमणता, वह मोक्ष का कारण है। उसके साथ पंच परमेष्ठी की भक्तिरूप शुभराग को व्यवहार समकित कहा जाता है। है राग, वह श्रद्धागुण की पर्याय नहीं। व्यवहार समकित श्रद्धागुण की पर्याय नहीं। वह चारित्र के विपरीतभाव का एक राग है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न ? वह राग छोड़कर... पहले कहा न। राग छोड़कर वीतराग होगा, इसलिए निश्चय है, उसकी बात है। जिसे निश्चय अनुभव सम्यग्दर्शन है, रागरहित दृष्टि। अनुभव-सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र निश्चय के आश्रय से प्रगट हुआ, उसका जो राग है, उसे छोड़ेगा इसलिए परम्परा हेतु कहा है। अकेले अज्ञानी की बात नहीं है। छोड़ने की बात है न ! निर्विकल्प हो तब छूटेगा, इसलिए परम्परा हेतु (कहा) है। क्योंकि शुभ में अशुभ छूटा है और शुद्ध होकर शुभ छूटेगा, ऐसा। समझ में आया ?

पंच परमेष्ठी की निश्चलभक्तियुक्त.... ऐसा। चलित नहीं, ऐसा उसका विकल्प है, पंच परमेष्ठी की भक्ति का। उसे व्यवहार समकित। ऊपर आता है न भेद उपचार। उसे व्यवहार समकित कहा जाता है। किसे ? भक्ति को। परन्तु किसे ? जिसे निश्चय आत्मा अखण्ड आनन्दकन्द ध्रुव का जहाँ अनुभव होकर सम्यग्दर्शन निश्चय प्रगट हुआ है, उसे यह व्यवहार समकित कहा जाता है। समझ में आया ?

निश्चल भक्तियुक्तपना वही सम्यक्त्व है... यह व्यवहार। अब इसमें विशेष अर्थ करते हैं। **विष्णु ब्रह्मादि कथित विपरीत पदार्थसमूह...** समझ में आया ? ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि से कथित तत्त्व, वे विपरीत तत्त्व हैं। उनके प्रति के आग्रह का अभाव... उनके प्रति के आग्रह का अभाव। **वह सम्यक्त्व है।** व्यवहार। ऐसा अर्थ है। उसके जैसा किया। प्रवचनसार में आता है न वह ? 'स्वरूपेचरणं चारित्रं' उसका अर्थ यह है, यह पद्धति ली है। समझ में आया ?

कहते हैं कि व्यवहार समकित निश्चय समकितवाले को होता है परन्तु वह व्यवहार समकित—राग कैसा होता है ? कि जिसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश के कहे हुए

पदार्थ की श्रद्धा का उसे अभाव होता है। समझ में आया? ब्रह्मा, विष्णु, महेश के कहे हुए पदार्थ की श्रद्धा हो तो व्यवहार समकित वह नहीं और वहाँ निश्चय भी नहीं। समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहे हुए—उनके मुख में से निकली हुई वाणी। समझ में आया? आयेगा टीका में। वीतराग सर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ है, ऐसा। आहाहा!

जिसे विष्णु, ब्रह्मा, बौद्ध आदि कथित विपरीत... सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त जितने अभिप्राय जगत में विपरीत हैं, उन विपरीत के आग्रहरहित का भाव... और आग्रह बिना के भाव को निश्चय सम्यक्त्व दृष्टिवाले को व्यवहार समकित का आरोप दिया जाता है। समझ में आया? यह मोक्षमार्गप्रकाशक में आ गया है। भेद-उपचार दोनों आ गया है। समकित में आया नहीं? कि उपचार है। निश्चय एक सम्यग्दर्शन है और निश्चय सम्यग्ज्ञान है, निश्चय वीतरागता है, वहाँ विकल्प को—व्यवहार श्रद्धा को, व्यवहार ज्ञान को और व्यवहार रागादि को सहचर देखकर, साथ में रहे हुए देखकर व्यवहार को उपचार से मोक्षमार्ग कहा है। वह मोक्षमार्ग है नहीं। कहो, मोक्षमार्ग में आ गया है—मोक्षमार्गप्रकाशक में। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्षमार्ग तो एक ही है, परन्तु ऐसा एक विकल्प साथ में होता है, उसे आरोप से व्यवहार मोक्षमार्ग कहा, वह मोक्षमार्ग है नहीं। वास्तव में बन्धमार्ग है। समझ में आया? है न इसमें, मोक्षमार्गप्रकाशक में? अपने आ गया इसमें—कक्षा में। बहुत चला था। देखो!

'निश्चय मोक्षमार्ग तो, सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग निरूपण किया, वह निश्चय मोक्षमार्ग है तथा जहाँ मोक्षमार्ग तो नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है, सहचारी—साथ में राग है या विकल्प, उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहते हैं। यह व्यवहार मोक्षमार्ग है। निश्चय—व्यवहार का सर्वत्र ऐसा लक्षण है।' सच्चा निरूपण वह निश्चय; उपचार कथन, वह व्यवहार। निरूपण अपेक्षा से दो प्रकार से मोक्षमार्ग जानना। परन्तु एक निश्चय मोक्षमार्ग और एक व्यवहार मोक्षमार्ग है—ऐसे दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। दो मोक्षमार्ग नहीं हैं।

तथा निश्चय-व्यवहार दोनों को उपादेय मानता है, वह भी भ्रम है। व्यवहार भी आदरणीय है और निश्चय भी आदरणीय है—यह भी अज्ञानी का भ्रम है। कहो, भीखाभाई! निश्चय-व्यवहार दोनों को आदरणीय मानता है। निश्चय मोक्षमार्ग भी आदरणीय और व्यवहार भी आदरणीय (माने तो) भ्रम है। क्योंकि निश्चय-व्यवहार का स्वरूप तो परस्पर विरुद्धता सहित है। वीतराग श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र वह वीतराग है और रागादि श्रद्धा, वह तो विकल्प व्यवहार है। उससे विरुद्ध है। बहुत सरस बात की है, देखो! समझ में आया?

व्यवहार असत्यार्थ है। सत्य का निरूपण करता ही नहीं। किसी अपेक्षा से उपचार से अन्यथा निरूपण करता है। अन्यथा निरूपण करता है। मोक्षमार्ग नहीं, उसे मोक्षमार्ग व्यवहार (कहता है)। यह चलता है वह। भगवान की भक्ति, वह समकित नहीं, वह तो राग है। परन्तु व्यवहार उसे आरोप देकर, निश्चय सम्यग्दर्शन का अनुभव है, उसे ऐसा राग है इसलिए साथ में निमित्त देखकर व्यवहार का उपचार कहा है। गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्टीकरण सब मोक्षमार्गप्रकाशक में बहुत किया है। दो मार्ग नहीं हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? देखो, पश्चात् भी है न? जिनमार्ग में तो दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है न? जिनमार्ग में किसी जगह निश्चय की मुख्यता से व्याख्यान (हो), उसे सत्यार्थ ऐसा मानना। किसी जगह व्यवहार की मुख्यता से व्याख्यान (हो), उसे ऐसा नहीं है। देखो! यह व्यवहार समकित कहा, (परन्तु) ऐसा नहीं है। कठिन जगत को भी। निमित्तादि की अपेक्षा से उपचार किया है, इस प्रकार जानना। दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जाने (कि) इस प्रकार भी है और इस प्रकार भी है—ऐसे भ्रमरूप प्रवर्तना... दोनों नय ग्रहण करना कहा नहीं। भगवान ने कहा ही नहीं। आहाहा! खबर नहीं होती और ऐसे के ऐसे अंधी दौड़ से चलता जाता है। मोक्षमार्गप्रकाशक (कार ने) इसका सब स्पष्टीकरण किया है। देखो! कैसा सरस किया! सातवाँ अध्याय बहुत अलौकिक है मोक्षमार्ग में। सातवाँ अध्ययन।

कहते हैं कि जिसे आत्मा ध्रुव का... यहाँ शुद्धभाव अधिकार है न? शुद्धभाव

ध्रुव त्रिकाल का अवलम्बन लेकर, आश्रय करके जो सम्यग्दर्शन हुआ, निर्णय हुआ— निर्विकल्प निर्णय हुआ, वह निश्चय समकित। उसके साथ पंच परमेष्ठी की भक्तिरूप विकल्प जो राग है, वह समकित नहीं, वह तो राग है। परन्तु उस राग को समकित का आरोप देकर व्यवहार से समकित कहा है। उसे ब्रह्मा, विष्णु आदि कथित पदार्थ की श्रद्धा का आग्रह नहीं होता।

मुमुक्षु : आग्रह नहीं होता परन्तु समन्वय....

पूज्य गुरुदेवश्री : समन्वय नहीं होता। समन्वय किसका होगा? भगवान ने कहा सच्चा और उनने कहा सच्चा—ऐसा समन्वय (नहीं होता)। वीतरागमार्ग के अतिरिक्त किसी मार्ग के साथ समन्वय हो, क्यों? वह भी 'है' और यह भी 'है'—इस अपेक्षा से समन्वय (होता है)। परन्तु यह सच्चा और वह सच्चा, ऐसा समन्वय नहीं हो सकता। समझ में आया? कहते हैं कि उसका नाम व्यवहारसमकित कहा है। लो! ऐसा अर्थ है।

अब व्यवहारज्ञान। जिसे आत्मज्ञान है, आत्मा का ज्ञान है, ऐसे निश्चय ज्ञानवाले को व्यवहारज्ञान कैसा होता है, उसकी बात करते हैं। जिसे आत्मा का ज्ञान ही नहीं, आत्मा का अनुभव नहीं, उसे तो व्यवहारज्ञान हो सकता नहीं। समझ में आया?

संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान) ही सम्यग्ज्ञान है। यह व्यवहार, हों! संशय नहीं। ऐसा होगा या ऐसा होगा? विमोह नहीं। उलझन नहीं। कुछ होगा, ऐसा भी नहीं। विभ्रम—विपरीतता नहीं। वह सम्यग्ज्ञान व्यवहार से कहने में आता है। किसे? कि जिसे आत्मज्ञान निश्चय है, उसके ऐसे ज्ञान को व्यवहारज्ञान पुण्यबंध का कारण कहने में आता है। जिनदेव होंगे या शिवदेव होंगे? यह संशय। समझ में आया? कौन जाने भाई! कुछ दूसरा भी देव होगा। सर्वज्ञदेव के अतिरिक्त दूसरे में भी परमात्मा हुए होंगे। समझ में आया? ऐसी संशयदशा, निश्चय समकिती जीव को व्यवहारज्ञान में भी संशय नहीं होता। समझ में आया?

शाक्यादिकथित वस्तु में निश्चय... शाक्य अर्थात् बौद्ध। बौद्ध भी धर्मी थे। बौद्ध भी मोक्ष में गये हैं।

मुमुक्षु : उन्हें बहुत माननेवाले थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत माननेवाले थे तो क्या हुआ? चींटियाँ बहुत होती हैं। चींटियाँ बहुत होती हैं, इसलिए मनुष्य हो जाये? बहुत माननेवाले इसलिए कहीं सच्चा हो जाये? समझ में आया?

(अर्थात् बुद्धादि (वेदान्तादि कथित पदार्थ का निर्णय), वह विमोह है;... समझ में आाय? और **अज्ञानपना (अर्थात् वस्तु क्या है तत्सम्बन्धी अजानपना) ही विभ्रम है।** क्या होगा कुछ खबर नहीं पड़ती। कौन जाने सर्वज्ञ ने कहा हुआ तत्त्व (सच्चा) होगा या दूसरे ने कहा हुआ होगा? कुछ खबर नहीं पड़ती। ऐसी विभ्रमदशा—विपरीतता समकिती को सम्यग्ज्ञान में, व्यवहारज्ञान में होती नहीं। समझ में आया? और सम्यग्दर्शन—आत्मा का दर्शन है, आत्मा का ज्ञान है और निश्चय चारित्र है। स्वरूप में रमणतारूप चारित्र जहाँ निश्चय है, उसके व्यवहारचारित्र कहना, इसकी व्याख्या चलती है। वह पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम, वह चारित्र। अशुभभाव से छूटकर सावद्ययोग से छूटकर निश्चय चारित्रवन्त जीव को—सम्यक् निश्चय-ज्ञानचारित्रवाले को पाप से छूटकर शुभभाव में वर्तता है अहिंसा, सत्य, अचौर्य, (ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) पंच महाव्रत में, उसे व्यवहार चारित्र कहा जाता है। जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागी हो उसे। समझ में आया?

मुमुक्षु : निश्चय हो उसे व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु बात किसकी चलती है यह? व्यवहारवाले को व्यवहार, निश्चयवाले को निश्चय। निश्चय हो, वहाँ व्यवहार होता है। निश्चय नहीं, वहाँ व्यवहार कैसा? होता ही नहीं। व्यवहार का आरोप, निश्चय के सहकार बिना आरोप दे कौन? इससे सहकारी कहा है न? साथ में हो, आरोप आता है व्यवहार का, उपचार का, (परन्तु) वास्तविक मार्ग वह नहीं है। आहाहा!

पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम, वह चारित्र है। देखो परिणाम है व्यवहार परन्तु निश्चयचारित्र वह वीतरागी परिणाम है और व्यवहारचारित्र वह शुभराग के परिणाम हैं। **ऐसी भेदोपचार-रत्नत्रयपरिणति है।** लो! भेदोपचार अर्थात् व्यवहार। ऐसे व्यवहाररत्नत्रय परिणति अर्थात् पर्याय में राग है। **उसमें, जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों**

का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। बहुत संक्षिप्त किया वापस। भगवान ने कहे हुए तत्त्वों में, यह हेय है और उपादेय है, ऐसा ज्ञान, उसे व्यवहारज्ञान कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे उसे अन्दर। आये बिना रहे कहीं? व्यवहारनय हेय है, निश्चयनय उपादेय है, उसका ज्ञान होता ही है। समझ में आया? सामने है न पुस्तक? देखो न! पुस्तक के शब्द देखो, अर्थ देखो।

जिनप्रणीत... वीतराग परमेश्वर, त्रिलोकनाथ, तीर्थंकरदेव ने कहे हुए जो तत्त्व, उसमें रागादि हेय है, आत्मादि उपादेय—ऐसा भेद, वह ज्ञान है। उस ज्ञान को व्यवहारज्ञान कहा जाता है। ऐसा व्यवहार ज्ञान निश्चयज्ञान—आत्मज्ञान हो, उसे होता है। समझ में आया?

अब इस ५३ गाथा का अर्थ। **इस सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण...** लो! निश्चय समकितरूपी जावे परिणाम है... देखो! उसे लिया साथ में। निश्चय शुद्ध चैतन्यध्रुव में श्रद्धा को पसारकर जो निर्णय सम्यक् निर्विकल्प अनुभव में हुआ, ऐसा जो सम्यग्दर्शन, वह परिणाम है। सम्यग्दर्शन एक परिणाम है, सम्यग्दर्शन एक पर्याय है, सम्यग्दर्शन गुण नहीं। समझ में आया? गुण नहीं। गुण तो त्रिकाली गुण को गुण कहा जाता है। जो ध्रुव है उसे। सम्यग्दर्शन पर्याय है—परिणाम है। गुण नहीं। गुण तो त्रिकाली हो, उसे कहा जाता है।

मुमुक्षु : ....भाई को खबर हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे भी खबर नहीं। वह कहता था न कि समकित को तुम पर्याय कैसे कहते हो? समकित को गुण कहा जाता है। एक क्षुल्लक का प्रश्न था। ...तुम समकित को पर्याय कहते हो? भगवान ने तो उसे गुण कहा है, सिद्ध के आठ गुण में? कहो, गुण का अर्थ वहाँ पर्याय है। अब गुण कब प्रगटे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, गुण का अर्थ उस पर्याय को गुण कहा है। गुण तो त्रिकाली

है। त्रिकाली ज्ञानगुण जो एकरूप, उसे गुण कहते हैं और सम्यग्दर्शन तो नयी पर्याय है। प्रगट होती है, वह पर्याय प्रगट होती है। गुण प्रगट हों? श्रद्धागुण की पर्याय। निश्चयपर्याय हों! यह निश्चय सम्यग्दर्शन की बात चलती है। निश्चय सम्यग्दर्शन, वह श्रद्धा जो त्रिकाल आत्मा का गुण है, उसकी पर्याय है और व्यवहार समकित, वह राग की पर्याय है। वह तो चारित्रगुण की विपरीत पर्याय का भाग वह राग, उसे व्यवहार समकित का आरोप दिया है। कितना सीखना इसमें? इसे बहुत छोड़ना है निर्मोह होने के लिये। परन्तु खबर नहीं होती, कुछ का कुछ कसकर-पकड़कर बैठे अनादि से। जैन सम्प्रदाय में आकर भी उल्टी मान्यता और उल्टी श्रद्धा (हो) और माने कि हम धर्मी हैं।

इस सम्यक्त्वपरिणाम का.... देखो! परिणाम, यह निश्चय समकित की बात है। वीतरागी दृष्टि, शुद्ध चैतन्यमूर्ति को अवलम्बनकर निष्क्रिय द्रव्य को अवलम्बकर सक्रिय शुद्ध परिणाम हुए... शुद्ध परिणाम हुए। रागरहित निर्विकल्प प्रतीति हुई, उसे यहाँ निश्चय समकित के परिणाम कहते हैं। समझ में आया? उस परिणाम का बाह्य सहकारी कारण। देखो आया। संस्कृत में है देखो अन्दर। '**अस्य सम्यक्त्वपरिणामस्य बाह्यसहकारिकारणं वीतरागसर्वज्ञमुखकमलविनिर्गतसमस्तवस्तुप्रतिपादनसमर्थद्रव्य-श्रुतमेव तत्वज्ञानमिति।**' यह तत्त्व (ज्ञान) व्यवहार की बात है।

सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण... बाह्य सहकारी, हों! साथ में रहा हुआ। सहकारी अर्थात् साथ में रहा हुआ। **वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ...** परमेश्वर की दिव्यध्वनि में से आया हुआ। **मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में...** ऐसा कहते हैं। भगवान की वाणी में तो यह तीन लोक, तीन काल के सब पदार्थों को जाने हुए का ज्ञान आता है। अज्ञानी को तो ऐसा हो नहीं सकता। जिसे सर्वज्ञपना नहीं, उसकी वाणी में सर्व पदार्थों का ज्ञान आवे कहाँ से? सर्व पदार्थों (का ज्ञान) हे नहीं तो वाणी में आवे नहीं। समझ में आया?

समकित के परिणाम का बाह्य बारदान—सहकारी कारण—निमित्त **वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में...** देखो! दुनिया तीन काल-तीन लोक के पदार्थों को कहनेवाली वाणी परमात्मा की है। इसके अतिरिक्त—

वीतराग की वाणी के अतिरिक्त दूसरे की ऐसी वाणी नहीं होती। **ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है।** देखो! यह व्यवहार! यह द्रव्यश्रुतज्ञान तत्त्व, वह बाह्य सहकारी कारण है। सम्यग्दर्शन ध्रुव के अवलम्बन से प्राप्त हो, उसे ऐसा द्रव्यश्रुत निमित्त कहा जाता है। समझ में आया? क्योंकि वाणी में ही ऐसा आया है कि आत्मा त्रिकाली परिपूर्ण प्रभु है, उसका आश्रय ले तो सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा वाणी में आया है। इससे वाणी सुनी, तब तो विकल्प था। समझ में आया? परन्तु जब उस वाणी में कहा हुआ भाव इसके लक्ष्य में आया और वाणी में उसका—कहनेवाले ज्ञानी का हृदय का भाव था, वह भाव उसे अन्तरंग हेतु—निमित्तरूप से आया और जब ध्रुवस्वभाव पर दृष्टि होकर सम्यग्दर्शन हुआ, तब उसे—वाणी को बाह्य कारण और उसके अभिप्राय को उपचार से अन्तरंग कारण कहा जाता है।

समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है। ऐसा कहने में ऐसा है कि वीतराग की वाणी निमित्त न हो और कोई समकित पा जाये, ऐसा है नहीं। अज्ञानी की वाणी निमित्त हो और समकित पा जाये, ऐसा है नहीं (और) वह वाणी है, इसलिए समकित पा जाये—ऐसा भी नहीं। गजब बात! क्योंकि वाणी सुनता है, तब विकल्प है, राग है। व्यवहार ज्ञान है। परन्तु वह व्यवहारु ज्ञान निमित्त कब कहलाये? कि निश्चय अन्तर आश्रय करके सम्यग्दर्शन हो, उसे इस परिणाम को, इस भाव को निमितत, बाह्यकारण कहा जाता है। आहाहा!

अब यह विवादित बोल है यह। **जो मुमुक्षु हैं...** मुमुक्षु अर्थात् समकित प्राप्त करनेवाले की यह बात नहीं है। जो उपदेश में निमित्त होते हैं, उनकी बात है। **जो मुमुक्षु हैं, उन्हें भी...** अर्थात् मुमुक्षु अर्थात् ज्ञानी। जो वाणी उपदेश में आती हे, ऐसे जो ज्ञानी, उन ज्ञानी का आत्मा **उन्हें भी उपचार से...** देखो, उपचार से। **पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण (सम्यक्त्वपरिणाम के)....** बाह्य निमित्तरूप से होने से **अन्तरंग हेतु कहा है....** है तो परिणाम बाह्य के, परन्तु उसे उपचार से... भाषा प्रयोग की है न? उपचार से अन्तरंग हेतु कहा है। संस्कृत है, देखो। '**ये मुमुक्षवः तेऽप्युचारतः पदार्थनिर्णयहेतुत्वात् अंतरंगहेतव इत्युक्ताः दर्शनमोहनीयकर्मक्षयप्रभृतेः**' समझ में आया?

क्या कहा ? कि भगवान आत्मा... सम्यग्दर्शन के जो धर्मरूप परिणाम अपूर्व—अनन्त काल में नहीं प्रगट हुए, ऐसे द्रव्यस्वरूप के आश्रय से प्रगट हुआ सम्यग्दर्शन, वह परिणाम है—वह पर्याय है। उसे निमित्त कौन था ? वीतराग की सर्वज्ञ की तीन काल—तीन लोक की वस्तुओं को प्रतिपादन करनेवाली वाणी वह समकिती को हो तो भी उसे तीन काल की वस्तु को प्रतिपादन करनेवाली वाणी है। समझ में आया ? क्योंकि यहाँ तो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक लिया है न वापस ? केवली को तो अकेला क्षय ही होता है। समझ में आया ? केवलज्ञानी को तो अकेला क्षायिक समकित होता है, उन्हें उपशम, क्षयोपशम समकित नहीं होता। यहाँ तो यह लिया है, जिसे उपशम समकित है, वह निचला छद्मस्थ जीव... क्षयोपशम है या क्षायिक है। उस जीव को दर्शनमोह आदि का क्षायिक, उपशम हुआ है, ऐसे जीव के परिणाम... कहना चाहते हैं कि वह आत्मा अन्तर आश्रय करे, तब उसे धर्म होता है। ऐसा जो उसका भाव है, उसे पकड़ा विकल्प से, तब उसके भाव को अन्तरंग हेतु कहा गया है, परन्तु उसे छोड़कर जब स्वभाव का आश्रय करे, तब उसको अन्तरंग हेतु कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसी भूल हो जाती है मुमुक्षु से।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसी भूल हो जाती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लेते हैं। बस, बात यह है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो मुमुक्षु। यहाँ केवली नहीं लिये। यहाँ साधारण मुमुक्षु लिये हैं। तीन काल की बात लेते हैं न! वाणी भले उनकी है, परन्तु वाणी कहनेवाले हैं, वे ज्ञानी हैं और उनकी वाणी भी ऐसी ही है। सर्व पदार्थ को कहनेवाली। एक समय की पर्याय में द्रव्य तीन लोक जानता है। ऐसी पर्याय का स्वरूप है, ऐसा वे वाणी द्वारा कहते हैं। चाहे तो समकिती हो, श्रावक हो या सच्चे मुनि। मुमुक्षु लिये हैं न यहाँ तो ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। संस्कृत में ऐसा है। इसका अर्थ सब ऐसा करते हैं कि देखो, दर्शनमोह का क्षय समकिती को होता है, उसे कहते हैं। परन्तु इसका अर्थ बैठेगा नहीं।

मुमुक्षु : अर्थ बैठता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं बैठता। यह बैठता है। (संवत्) २००० में शुरु किया था। इससे विरुद्ध... फिर हमारे पण्डितजी कहते हैं कि ऐसा अर्थ है नहीं इसमें। यह अर्थ है। २००० के वर्ष में नियमसार शुरु किया था। समझ में आया?

यहाँ तो दूसरी एक बात कि मुमुक्षु है क्षयोपशम समकिती या क्षायिक समकिती, वह भी सर्व पदार्थ को जानने की ही बात करते हैं। भाई! क्योंकि श्रुतज्ञान में सर्व पदार्थ का स्वरूप उसके ख्याल में आ गया है। आहाहा! एक परोक्ष और प्रत्यक्ष जितना अन्तर है, परन्तु वस्तु में अन्तर नहीं। देखो न! **वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ ऐसा द्रव्यश्रुतरूप...** परन्तु वह द्रव्यश्रुत कहनेवाले कौन हैं? कि मुमुक्षु, ऐसा। वह सर्व तीन काल-तीन लोक के पदार्थ का उनके ज्ञान में ज्ञान वर्तता है। आहाहा! देखो न! किस प्रकार समाहित किया है! समझ में आया?

ऐसी जो वाणी, उसे बाह्यनिमित्त कहा, बाह्य सहकारी कारण कहा। सहकारी है न तीसरी लाईन में? और **जो मुमुक्षु हैं उन्हें भी....** ऐसा। उन्हें भी, ऐसा। **उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण (सम्यक्त्वपरिणाम के) अन्तरंग हेतु कहे हैं,...** हैं तो वे बाह्य, परन्तु उपचार से अन्तरंग हेतु (कहा)। उपचार शब्द पड़ा है न? उपचार से अन्तरंग हेतु कहा है। क्योंकि अन्तरंग हेतु वे नहीं हैं। अन्तरंग हेतु तो द्रव्यस्वभाव है। समकित प्राप्त करने में अन्तरंग कारण तो द्रव्यस्वभाव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्यों?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, है न!

मुमुक्षु : दर्शनमोहनीय....

पूज्य गुरुदेवश्री : होने से। निमित्त कहा। यह बात कहते हैं।

मुमुक्षु : दर्शनमोहनीय....

पूज्य गुरुदेवश्री : जिसे हुआ है, वह दूसरे को निमित्त होता है। उसमें गड़बड़ बहुत करते हैं।

मुमुक्षु : ....भूल करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : करते हैं।

मुमुक्षु : जिसे होना है, उसे कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : होना है, उसे कहते हैं।

मुमुक्षु : जिसे प्रारम्भ हुआ है....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। बस, वह है। ... प्रकाशा। समझ में आया? यह पद्मप्रभमलधारीदेव की टीका है। मुनि की टीका है। मुनि पंच महाव्रतधारी, अट्ठाईस मूलगुण, महा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रवन्त हैं। स्वयं कहते हैं कि मेरे मुख में से परमागम झरता है। परमागम झरता है। वे स्वयं कहते हैं, लो! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....अर्थ किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह टीका में ही है। एक-एक शब्द का अर्थ ऐसा है।

जो समकित—सम्यग्दर्शन है, वह परिणाम तो आत्मा की पर्याय है। वह तो ध्रुव के आश्रय से प्रगट हुई है। उसे बाह्य निमित्त के दो प्रकार है। उनकी वाणी है ज्ञानी की, वह बाह्य सहकारीरूप से उसे निमित्त कहा और उनका जो अभिप्राय है, उसे उपचार से अन्तरंग हेतु कहा। उपचार से अन्तरंग हेतु। नहीं तो वह तो बाह्य हेतु है। परन्तु ज्ञानी का अभिप्राय उसके ख्याल में आया विकल्प में कि ऐसा कहते हैं। ओहो! वह तो द्रव्य का आश्रय करे तो सम्यक्त्व हो, वस्तु का आश्रय करे तो सम्यग्ज्ञान हो, वस्तु के आश्रय में स्थिर हो तो चारित्र, ऐसा वे कहते हैं। ऐसा विकल्प द्वारा जहाँ ख्याल में आया, तब उसके (ज्ञानी के) परिणाम (-भाव) को समकित प्राप्त करनेवाले जीव के बाह्य हेतु

(होने पर भी) उपचार से अन्तरंग हेतु (कहा)। अन्तरंग अर्थात्? है तो बाह्य, परन्तु उपचार से अन्तरंग हेतु कहा जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा है, इसलिए उन्हें... समझ में आया? इस विवाद के बहुत उल्टे अर्थ करते हैं।

मुमुक्षु : गलती होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गलती होती है। नहीं, ज्ञानी की वाणी निमित्त हो—ऐसा नहीं। ऐसा इसमें नहीं, ऐसा कहते हैं। वस्तु की कुछ खबर नहीं होती। अज्ञानी की वाणी भी निमित्त होती है, अमुक निमित्त होता है। ऐसा होता नहीं, भाई! दीपक से दीपक प्रगट होता है। कहीं कोयले को छुआने से दीपक प्रगटता होगा? प्रगटता है स्वयं से, परन्तु वाणी का विकल्प, ज्ञानी का भाव निमित्तरूप से है। निमित्त है, इसलिए हुआ है—ऐसा नहीं। परन्तु सहकारी में ऐसा विकल्प होता है कि भगवान की वाणी यह है, उसे बाह्य सहकारी कारण कहा और उसका अभिप्राय है कि भगवान पूर्णानन्द नित्यानन्द आनन्दकन्द का आश्रय कर तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा। ऐसा जो उसका अभिप्राय था, वह विकल्प में आया, इसलिए उपचार से, उसे बाह्य कारण होने पर भी, अन्तरंग हेतु कहा गया है। परमार्थ से अन्तरंग हेतु तो ध्रुव है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धता ध्रुव।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तरंग हेतु उपचार से क्यों? कि उस अभिप्राय का भाव उसे पकड़ना है। अभी विकल्प से, हों! परन्तु वह कब निमित्त कहलाये? कि उस वाणी में, भाव में ऐसा कहने में... क्योंकि पूरा जैनदर्शन या उसकी वाणी वीतरागता को ही बताती है। चारों अनुयोग में वीतरागता को बताते हैं। तो वीतराग की वाणी या समकिती की वाणी वीतराग को ही बतलानेवाली वाणी होती है। राग करने की वाणी उनकी वाणी होती नहीं। राग हो, उसका ज्ञान करानेवाली वाणी होती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो विकल्प आवे। आवे, वह अलग बात है और वह वापस अन्तर का कारण हो, ऐसा नहीं। अन्तरंग कारण तो सम्यक् स्वभाव द्रव्य है, वह कारण है। आहाहा! गजब बात!

मुमुक्षु : वाणी निर्णय करावे?

पूज्य गुरुदेवश्री : वाणी निर्णय जरा भी कराती नहीं। चिमनभाई! ठीक धीरे से बोले। झवेरी है न। यह निर्णय करता है विकल्प द्वारा, तब उनका अभिप्राय अन्तरंग हेतु कहा जाता है और उनकी वाणी बाह्य हेतु कहने में आती है। ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

(सम्यक्त्वपरिणाम के) अन्तरंग हेतु कहे हैं, क्योंकि उन्हें दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं। उपदेश करनेवाले को दर्शनमोह का उपशम, क्षय हुआ है। इसलिए उनकी वाणी बाह्य हेतु और उनका अभिप्राय अन्तरंग हेतु कहने में आया है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

- पानी पीने से तृषा मिटती है, आहार करने से भूख मिटती है, दवा पीने से रोग मिटता है—इस प्रकार संसार में सभी चीज़ों का जीव विश्वास करता है। उस विश्वास के बल से उन-उन चीज़ों को प्राप्त करने में लक्ष्य जाता है। उसी प्रकार आत्मा का विश्वास आना चाहिए कि मैं स्वयं ही ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ। मैं स्वयं ही परमात्मस्वरूप हूँ और रागादि स्वरूप नहीं—ऐसा अन्तर से विश्वास का बल आना चाहिए। अपनी परमेश्वरता का विश्वास... विश्वास... इस विश्वास का जोर इसे अन्तर्मुख ले जाता है। (21)

— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, दृष्टि के निधान

भाद्र कृष्ण ६, बुधवार, दिनांक - ०१-१०-१९६९
गाथा-५१ से ५५, श्लोक-७५, प्रवचन-२२

मोक्ष का अधिकार। मोक्ष का मार्ग—मोक्ष का उपाय। शुद्धभाव अधिकार है। अभी तक उसमें ऐसा आया कि पंच परमेष्ठी की भक्तिरूप व्यवहार समकित वह है। विकल्परूप एक भाव है, ऐसा आया। और हेय-उपादेय का ज्ञान भी वीतराग ने कहा, वैसा वहाँ व्यवहार का ज्ञान है और पाप की निवृत्तिरूप उसके महाव्रत आदि के परिणाम हैं। इतना कहा था। है व्यवहार, इतना। परन्तु वह मुक्ति का कारण नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परम्परा का अर्थ कि वह मुक्ति का कारण नहीं। बाद में छोड़ेगा तब मुक्ति का कारण होगा। ऐसा अर्थ हुआ न? अब मुक्ति का कारण क्या, इसकी व्याख्या चलती है। लो!

अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को,... अब मूल मार्ग, मूल वस्तु आयी यह। कैसा है जीव? कि जिसे अभेद अर्थात् निश्चय, अनुपचार अर्थात् व्यवहार नहीं। वास्तविक रत्नत्रय परिणतिवाला जीव। अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र सत्यस्वरूप, निश्चयस्वरूप, स्व के स्वद्रव्य को अवलम्बकर हुई सम्यक्दशा, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ऐसे रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-(चारित्र) तीन रत्न, उनकी परिणति अर्थात् अवस्था—वे तीनों मोक्षमार्ग परिणति—पर्याय है। समझ में आया?

भगवान आत्मा की मुक्ति हो अर्थात् परम आनन्द की प्राप्ति हो। मुक्ति अर्थात् परम आनन्द की प्राप्ति। उसका उपाय अभेद रत्नत्रय... अभेद अनुपचार अर्थात् शुद्ध द्रव्यस्वभाव कहेंगे अभी। वह विकल्परहित अभेद अर्थात् शुद्ध चैतन्य द्रव्य का सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान और उसकी वीतराग परिणतिरूपी चारित्र। ये तीन रत्नत्रय परिणति; परिणति अर्थात् अवस्था। ऐसे अवस्थावाले जीव को... समझ में आया? मोक्षमार्ग, वह पर्याय है, गुण नहीं, तथा (व्यवहार) मोक्षमार्ग, वह विकल्प है, वह भी मोक्षमार्ग नहीं। समझ में आया?

अभेद-अनुपचार.... वास्तविक। अभेद और वास्तविक रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र—वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी चारित्र, ऐसी अवस्थावाले जीव को... अब तीन की व्याख्या करते हैं। समझ में आया? **टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है, ऐसे निज परम तत्त्व की श्रद्धा...** द्वारा मुक्ति होती है। अन्तिम शब्द इसका है। **अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है।** है? क्या कहा?

भगवान आत्मा ज्ञायक टंकोत्कीर्ण—अघढ़ित मूर्ति, चिदानन्द ध्रुव नित्य द्रव्यस्वभाव, 'आत्मा द्रव्य से नित्य है' ऐसा आता है न? वह नित्य जो द्रव्य वस्तु है, ज्ञायकस्वभाव है, ध्रुवस्वभाव है... जिसका एक ज्ञायकस्वभाव ऐसा निज परमतत्त्व, ऐसा जो निज आत्मभाव, ऐसे तत्त्व की श्रद्धा द्वारा... उसकी श्रद्धा द्वारा जीव को मुक्ति होती है। समझ में आया? पहले कहा था, परम्परा हेतुभूत। वह तो विकल्प है न? पहला अशुभ टला है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ है। परन्तु बीच में छठवें गुणस्थान में ऐसी श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत के परिणाम होते हैं, इसलिए उसे व्यवहार है, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया?

परन्तु यहाँ तो अब, उसे मुक्ति का कारण है, ऐसा सिद्ध करना है। निश्चय है मुक्ति अर्थात् परम शुद्धता परमात्मदशा। अभूतपूर्व सिद्धपर्याय। देखो! वह भी पर्याय है। मोक्ष का मार्ग भी पर्याय—अवस्था—हालत है और सिद्ध भी एक पर्याय है। सिद्ध कहीं गुण नहीं। पण्डितजी! सिद्ध पर्याय है। देखो! **अभेद-अनुपचार....** अर्थात् वास्तविक, उपचार नहीं-झूठा नहीं, परन्तु यथार्थ ऐसे रत्नत्रय परिणतिवाले जीव को सिद्धि होती है, मुक्ति होती है। किस द्वारा? कि **टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है—ऐसे निज परमतत्त्व...** द्रव्य—वस्तु। ध्रुव। यहाँ जो कहते हैं न शुद्धभाव? वह शुद्धभाव ध्रुव। जिसमें राग भी नहीं, निमित्त भी नहीं और एक समय की पर्याय नहीं—ऐसा ध्रुव। ऐसे तत्त्व की श्रद्धा द्वारा, ऐसे तत्त्व के सम्यग्दर्शन द्वारा तथा उस द्वारा... ध्रुव की श्रद्धा, वह पर्याय है। ध्रुव है, वह त्रिकाली द्रव्य है। परमतत्त्व है, वह तो त्रिकाली द्रव्य है। श्रद्धा द्वारा, वह उसकी पर्याय है। वह रत्नत्रय परिणति कही, वह उसकी एक पर्याय है। कितना इसमें!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ खबर ही नहीं होती कि क्या द्रव्य और क्या पर्याय। जय महाराज! गड़बड़-गड़बड़।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धीरे से तो कहा जाता है, जरा विचार कर सके इस प्रकार से। कि यह वस्तु है भगवान आत्मा ध्रुव द्रव्य। द्रव्य अर्थात् नित्यानन्द प्रभु, सच्चिदानन्द—सत् अर्थात् शाश्वत्, चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द, ऐसा जिसका शाश्वत् ध्रुवस्वभाव है, ऐसे तत्त्व की श्रद्धा—अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन की पर्याय, उस श्रद्धापर्याय से परिणत जीव को अभूतपूर्व—अनन्त काल में नहीं हुई, ऐसी सिद्धपर्याय को वह प्राप्त होता है। समझ में आया? मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष, संसार, वह भी एक विकारी पर्याय है। समझ में आया?

मिथ्यात्व अर्थात् जो स्वभाव में नहीं, ऐसा शुभराग विकल्प, दया, दान, भक्ति, व्रत इत्यादि... ऐसे रागवाला हूँ, यह मान्यता मिथ्यात्व है और यह मिथ्यात्व, वह संसार की एक विकारी पर्याय है। समझ में आया? और यह मोक्षमार्ग भी एक अपूर्ण निर्मल पर्याय है और सिद्ध, वह पूर्ण शुद्ध पर्याय है। है तो तीनों पर्याय—अवस्था है—हालत है।

मुमुक्षु : आत्मा तीन प्रकार का हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन प्रकार हैं। एक बहिरात्मा, एक अन्तरात्मा और एक परमात्मा—तीन प्रकार की पर्याय है। आत्मा तीन प्रकार से हो रहा है पर्याय में। सेठ!

भगवान आत्मा ध्रुव सच्चिदानन्द प्रभु, नित्यानन्द सहजानन्द की मूर्ति आत्मा है—वह वस्तु। उस वस्तु में राग का विकल्प है, वह मेरा है, वह परभाव है, विकार है, दुःख है। वह आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उसके धाम में राग का दुःख नहीं। उसके क्षेत्र में, उसके भाव में... राग चाहे तो शुभविकल्प भक्ति भगवान का नामस्मरण आदि (हो) वह सब राग हे और दुःख है। उस आत्मा को दुःखवाला मानना, इसका नाम बहिरात्मबुद्धि, मिथ्यात्वबुद्धि, वह संसारबुद्धि है। समझ में आया?

अब धर्मबुद्धि कि वह जो टंकोत्कीर्ण जो ज्ञायकभाव, ध्रुव नित्यानन्द प्रभु ऐसा जो परमतत्त्व... निज परमतत्त्व वापस, हों! भगवान का तत्त्व, वह नहीं, ऐसा। टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है, ऐसा निज परमतत्त्व—अपना तत्त्व। भगवान को—परमात्मा को मानना, वह तो विकल्प है। वह तो पहले में आ गया। पंच परमेष्ठी की श्रद्धा का विकल्प... यह पहले में आ गया। यह तो निज परमतत्त्व... परमतत्त्व अर्थात्? राग तो नहीं, (परन्तु) एक समय की पर्याय है, वह परमतत्त्व नहीं, वह अपरमभाव है। परमभाव तो त्रिकाली ज्ञायक ध्रुव एकरूप निष्क्रिय, जिसमें मोक्षमार्ग की पर्याय का... पर्याय का परिणमन भी जिसमें नहीं। गजब बात!

ऐसा जो परमतत्त्व स्वभावभाव, उसकी श्रद्धा... वह श्रद्धा, यह पर्याय हुई। परमतत्त्व वह द्रव्य हुआ। द्रव्य अर्थात् ध्रुववस्तु हुई। और उसकी श्रद्धा, उसके सन्मुख होकर निर्णय सम्यग्दर्शन हो, उसे यहाँ उसकी श्रद्धा—समकित कहा जाता है। कहो, समझ में आया? इसलिए निज परमतत्त्व शब्द प्रयोग किया है। कोई ऐसा कहे, भगवान को मानते हैं, परमेश्वर को मानते हैं, गुरु को मानते हैं तो? कि वह मान्यता रागवाली है, वह श्रद्धा धर्म की नहीं।

मुमुक्षु : आत्मा की श्रद्धा नहीं, ऐसा हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आत्मा की श्रद्धा नहीं। आहाहा!

इसलिए निज परमतत्त्व ऐसा त्रिकाली भगवान, उसकी श्रद्धा... उसकी श्रद्धा... वह जो राग मैं हूँ, ऐसी मान्यता थी, वह मिथ्यात्व मान्यता वह संसार पर्याय, बहिरात्मबुद्धि की थी। अब यह अकेला परमध्रुवस्वरूप हूँ, राग भी नहीं, निमित्त नहीं, कर्म नहीं, कुछ नहीं। एक समय की पर्याय में भी यह ध्रुव नहीं। ऐसा ध्रुव भगवान नित्यानन्द प्रभु अनादि-अनन्त शाश्वत् चीज़, उसकी श्रद्धा द्वारा... वह श्रद्धा समकित, वह पर्याय है—अवस्था है, निर्मल वीतरागी दशा है। उस द्वारा रत्नत्रय परिणत जीव को अभूतपूर्व सिद्ध पर्याय होती है। है इसमें अन्दर?

अनन्त काल में नहीं हुई, ऐसी सिद्ध की दशा ऐसे जीव को होती है। कहो, इसमें तो स्पष्ट बात है। जरा वाँचे तो... कहीं पुस्तक मिलायेगा या नहीं? दशहरे में बहियाँ

मिलाता है यह तुम्हारे कि कितनी आमदनी हुई है। ऐई! भगवानजीभाई! अब ८० लाख थे, उसमें २० लाख मिले उस आमदनी के। एक करोड़ हुए। समझे न? ५० हजार का खर्च कम करके। सब करते हैं या नहीं? ऐई! पोपटभाई!

मुमुक्षु : लड़के करें।

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़के करे, सब ध्यान रखे। डोरी हाथ में रखकर लड़के करे। पूछे सब। कहो, समझ में आया? आहाहा! यह तो सबकी बात है न सेठ!

मुमुक्षु : ....अधिक खर्च करे तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अधिक खर्च कर जाये तो? यह सेठिया देखो! डालचन्दजी तो होशियार व्यक्ति सब हैं, परन्तु अधिक कर डाले तो? ध्यान रखना चाहिए। ध्यान रखे तो, ऐसा होता नहीं, ऐसा कहते हैं।

यहाँ तो ध्यान रखना अर्थात्? ध्यान करना। किसका? कि ध्रुवतत्त्व का। आहाहा! यह है, भाई! अन्दर शब्द यह है, हों! विषय कुरु। ध्यानं विषय कुरु, ऐसा बहुत जगह आता है इसमें। कलश में ध्यान... अध्यात्मतरंगिणी में। बहुत जगह। ध्यान में विषय करना अर्थात् अन्तर में विषय द्रव्य ध्रुव है, उसे ध्येय बनाना। ऐसा जो ध्रुव भगवान, वर्तमान पर्याय में उसे पसराकर ध्रुव में जो निर्णय सम्यग्दर्शन होता है, वह वीतरागी निर्दोष आत्मा की पर्याय है, उसे समकित कहा जाता है। और उस समकित पर्याय द्वारा अभूतपूर्व—अनन्त काल में नहीं हुई सिद्ध की पर्याय, केवलज्ञान और आनन्द की पर्याय अस्तिरूप से प्रगट होती है। वह व्यवहार है तो होती है, ऐसा इसमें नहीं कहा। परम्परा कहा। अर्थात् परम्परा का अर्थ उसे निकाल देगा, तब होगा। समझ में आया?

मुमुक्षु : करते-करते होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : करते-करते धूल भी होगा नहीं। राग करते-करते होगा? राग का कर्तृत्व तो छूटा, परन्तु राग रहा, उसे छोड़े तब होगा। पहले सम्यग्दर्शन में तो राग का कर्तृत्व छूटे, तब सम्यग्दर्शन होता है। राग मेरा कर्तव्य है, करनेयोग्य है, तब तक तो बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव संसारी है। समझ में आया? इसलिए देखो न!

निज परम तत्त्व... द्रव्यस्वरूप त्रिकाली ध्रुवरूप से, अचलरूप से, अविनाशीरूप

से रहा हुआ भगवान आत्मा का निजस्वभाव, उसकी **श्रद्धा द्वारा...** देखो! यहाँ देव-गुरु की श्रद्धा द्वारा समकित, ऐसा नहीं कहा, छह द्रव्य की श्रद्धा द्वारा समकित नहीं कहा, पर्याय की श्रद्धा द्वारा समकित नहीं कहा। पर्याय की श्रद्धा द्वारा समकित नहीं कहा। श्रद्धा है पर्याय, सम्यग्दर्शन है अवस्था, परन्तु उसकी श्रद्धा द्वारा समकित, ऐसा नहीं कहा। त्रिकाली द्रव्य भगवान आत्मा ध्रुव नित्यानन्द सहजानन्द का सागर, अनादि-अनन्त स्वभाव से छलाछल भरपूर, परिणमन की पर्यायरहित—ऐसे निज परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा अर्थात् समकित.... अनादिकाल की सिद्धपर्याय उसे प्रगट होगी। समझ में आया? अर्थात् कि उसे मुक्ति होगी। आहाहा! एक बात।

अब दूसरी बात ज्ञान। **तद्ज्ञानमात्र....** तद्ज्ञानमात्र। तत् जो **(उस निज परमतत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप)....** शास्त्रज्ञान, वह नहीं। समझ में आया? शास्त्रज्ञान, वह बन्ध का कारण है। इसलिए कहते हैं, **तद्ज्ञानमात्र....** तत् है न? द आधा है, इसलिए तत् **(उस निज परमतत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप)....** ध्रुव भगवान आत्मा नित्यानन्द, जिसमें ज्ञान ठसाठस स्वभाव से भरपूर भगवान का ज्ञान। समझ में आया? निमित्त, शास्त्र का ज्ञान नहीं, राग हुआ, उसका ज्ञान नहीं, एक समय की पर्याय का ज्ञान नहीं। समझ में आया? मार्ग तो बापू! ऐसा है। इसने सुना नहीं, इसने ख्याल में लिया नहीं। ऐसा का ऐसा धर्म के बहाने जिन्दगी निकाली अनन्त काल ऐसे के ऐसे दिन गँवाये। समझ में आया? ओहोहो!

यह वस्तु है, उसकी वास्तविक श्रद्धा भी पहले समझण में नहीं करे तो उसे सम्यग्दर्शन होने का अवकाश नहीं है।

मुमुक्षु : ज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान कराते हैं, परन्तु यह सुनने को मिलता है या नहीं? शोभालालजी! आहाहा! त्रस की स्थिति तो बहुत की पूरी होने आयी है। त्रस में रहने का काल ही दो हजार सागर है। क्या कहा? यह दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, नारकी, मनुष्य, देव और ढ़ोर में रहे तो कितने (काल)? दो हजार सागर। बस, इतनी स्थिति पूरी हो तो उसे एकेन्द्रिय में जाना ही पड़े। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसलिए कहा न? यह समझे उसे जाना नहीं पड़े। न समझे, उसके (त्रस की स्थिति) पूरी होगी और वहाँ जायेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर का शरण चाहिए, ऐसा कहते हैं। गुरु का शरण नहीं यहाँ तो। तीन लोक के नाथ केवली का भी शरण नहीं। क्योंकि केवलज्ञानी परद्रव्य हैं। आहाहा! परद्रव्य का शरण लेने जाये, वहाँ विकल्प उठेंगे, राग उठेगा, पुण्य होगा और उसमें धर्म मानेगा या मुझे लाभ होता है, वहाँ तो मिथ्यात्व होगा।

'ऐसा मार्ग वीतराग का, कहा श्री भगवान।' समझ में आया? यह तो ढ़िंढोरा पीटकर कहा जाता है। अब कहाँ वहाँ गुप्त रखा है? वह पहले भाई था न? छाछ लेने जाये और बर्तन कैसे छुपाये? ऐसा कहते। पहले तो बहुत छाछ-बाछ लेने जाये न, हमारे ऐसा कहे। यह तो हमारे मामा के घर में जाते थे। हमारे मामा का घर था न! सात मामा थे और बड़ा परिवार था। सब गृहस्थ थे। फिर यहाँ साधारण घर हमारा। परन्तु फिर छाछ लेने जाये और उसमें मेहमान का घर हो (इसलिए) मेहमान आये हों तो कढ़ी-बढ़ी करनी हो तो बड़ा तपेला... एक सामने बतावे लोटा छोटा। लो, वह लोटा। वरना छोटा लेकर जाये। यह तो सब छोटी उम्र की बात है, ११ वर्ष की (उम्र) पहले की (बात है)। समझे? यह तुम्हारा मान बैठा हुआ तर्क।

साधनवाले सही न। भैंस रखे, वह रखे, छाछ लेने जाये तो छोटा... फिर दे। अधिक चाहिए तो कहे, जरा मेहमान हैं और कढ़ी बनानी है तो आज पाव सेर छाछ चाहिए। बतावे या नहीं? या पीछे रखता होगा? दे नहीं झट। रिश्तेदार हो तो भी दे नहीं। ऐसा देखा है, भाई! यह तो सब समझने जैसी बातें हैं। सगे कौन थे? सब स्वार्थ के सगे हैं। धूलधाणी और वा-पाणी है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, भगवान! **निज परम तत्त्व...** आनन्दकन्द प्रभु ध्रुवस्वरूप का ज्ञान। आहाहा! है? तद्ज्ञान। तत् अर्थात् वह। उसका ज्ञान। उसका किसका? कि जो परमतत्त्व जो ध्रुवस्वरूप है, उसका ज्ञान, वह निज परमतत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप **ऐसे अन्तर्मुख**

परम बोध द्वारा... भाषा देखो! शास्त्र का ज्ञान और पर का ज्ञान और भगवान ने कहा यह शास्त्र, वह ज्ञान नहीं। उस ज्ञान को ज्ञान ही कहते नहीं। आहाहा! गजब बातें! क्या कहा?

ऐसे अन्तर्मुख.... अन्तर्मुख परमतत्त्व जो ध्रुव, जो ज्ञान का सागर भरा है, उसकी ओर का अन्तर होकर, अन्तर्मुख होकर... अन्तर्मुख परमबोध। बहिर्मुख से हटकर, अन्तर्मुख में जाये, उसे परमबोध—सम्यक् बोध द्वारा—ऐसे सम्यग्ज्ञान द्वारा **अभूतपूर्व सिद्धपर्याय...** यह ज्ञान द्वारा प्राप्त होती है। आहाहा! समझ में आया?

अन्तर्मुख परम बोध द्वारा.... भाषा कितनी सरस की है, देखो न! ओहोहो! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : बहुत स्पष्ट।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट ही है। वस्तु स्पष्ट है। भगवान चिदानन्द प्रभु ध्रुव ज्ञान का कन्द है। ध्रुव हों, ध्रुव नित्य, उसका ज्ञान। नित्यानन्द प्रभु का ज्ञान, वह उसका ज्ञान। अन्तर्मुख हो, तब उसका ज्ञान होता है। बहिर्मुख का लक्ष्य छोड़कर... है या नहीं इसमें? देखो! संस्कृत में है। **'तत्परिच्छित्तिमात्रांतर्मुखपरमबोधेन' 'तत्परिच्छित्ति-मात्रांतर्मुख-परमबोधेन'** समझ में आया? यह अभी देरी है। यह तो ज्ञान की बात है। अभी ज्ञान की बात चलती है। चारित्र की बाद में। अरे रे! समझ में आया? जिसके ख्याल में यह नहीं कि यह क्या श्रद्धा, यह ज्ञान और मुक्ति का कारण। उसका ख्याल भी नहीं तो वह भटका भटक करता है बाहर में। समझ में आया?

वह निज परम भगवान जो ज्ञानमात्र स्वरूप प्रभु, ऐसा जो आत्मा। ऐसा। ऊपर आया था न? ज्ञायक जिसका एक स्वभाव... ऐसा आत्मा ध्रुव, उसका अन्तर्मुख। अन्तर्मुख होकर हुआ बोध—परम बोध। देखो! इसका नाम परमबोध। इसके द्वारा। उस ओर लेना। **अभूतपूर्व सिद्ध पर्याय होती है।** उस द्वारा आत्मा का मोक्ष और मुक्ति होती है। दूसरे ज्ञान द्वारा मुक्ति और मोक्ष होता नहीं। आहाहा! लोगों को ऐसा लगे व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार....

मुमुक्षु : यह तो किसी को स्वीकार हो, ऐसा बहुत कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन है, परन्तु कठिन स्वीकार करेगा, तब कल्याण है।

मुमुक्षु : इसी मार्ग से जाना है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग ही यह है वीतराग केवलज्ञानी परमात्मा का। त्रिलोकनाथ अनन्त तीर्थंकरों ने यह कहा है और यह इसके ख्याल में आ सके, ऐसी चीज़ है। ऐसी कहीं (कठिन) है नहीं। समझ में आया? ख्याल तो करे... ख्याल तो करे। ख्याल रख... ख्याल रख... ध्यान रख, नहीं कहते? ध्यान रख, भाई! यह भगवान आत्मा निज परमस्वरूप तत्त्व निज—अपना स्वरूप ध्रुव, उसकी श्रद्धा द्वारा मुक्ति होती है। निज परमतत्त्व ज्ञायकभावस्वरूप। उसमें ज्ञायक कहा था, यहाँ ज्ञानमात्र स्वरूप कोष्ठक में लिया। ऐसा ज्ञायकभाव चैतन्य ध्रुव का अन्तर्मुख ज्ञान, उस ज्ञान द्वारा मुक्ति होती है। दूसरे ज्ञान द्वारा मुक्ति-बुक्ति होती नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय द्वारा....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पर्याय द्वारा पर्याय प्राप्त होती है। पर्याय है वह। व्यवहार पर्याय है न! वह व्यवहार पर्याय है। निश्चय तो द्रव्य है। अभी तो मोक्ष का उपाय कहना है न? इसलिए। नहीं तो वह मोक्ष की पर्याय भी द्रव्य में से आवे, द्रव्य के कारण से आवे। परन्तु यहाँ तो पर्याय से मुक्ति.... मुक्ति का उपाय और मुक्ति... नियमसार में है सही न? नियमसार अर्थात् मोक्ष का उपाय। उपाय बतलाना है। अर्थात् वह उपाय यह पर्याय। त्रिकाली भगवान आत्मा की श्रद्धा, निर्विकल्प अनुभव, उसके ज्ञान में होती प्रतीति और अन्तर्मुख होता आत्मा का बोध, वह पर्याय है। उस पर्याय द्वारा सिद्ध की पर्याय प्राप्त होती है, अर्थात् मुक्ति होती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ ही यह हुआ। उसके द्वारा नहीं। इसीलिए लिया है। परन्तु वापस वह परम्परा रखा है न? अर्थात् परम्परा का अर्थ यह कि उसके द्वारा नहीं। उसे छोड़कर जब निश्चय ज्ञान, श्रद्धान, चारित्र करेगा, तब मुक्ति होगी। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव। फिर अभाव वर्तमान करेगा, इसका नाम परम्परा।

साक्षात् नहीं, इसका अर्थ क्या हुआ? बाद में होगा अर्थात् कि इसका अभाव करके होगा, ऐसा कहे। आहाहा! यह कहेंगे, देखो न अभी चारित्र में। दो बोल हुए। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान जो मोक्ष का कारण, वे दो बोल हुए।

अब तीसरा बोल। चारित्र। कौन सा चारित्र अब? आहाहा! कहते हैं... है न? **(अर्थात् निज परम स्वरूप)...** भगवान ध्रुवस्वरूप है, नित्यानन्द है, उसमें स्थिर होना। उसमें उसरूप में स्थिर होना, निजपरमतत्त्वरूप से अविचलरूप से स्थित, अविचलरूप से स्थित—उस स्वरूप में चलित नहीं, इस प्रकार से स्थित होनेरूप चारित्र द्वारा, ऐसा **सहजचारित्र द्वारा अभूतपूर्व सिद्ध पर्याय होती है।** समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....अर्थात् क्या? सहजचारित्र है। वह विकल्प है, वह राग है। पंच महाव्रत के परिणाम छठे गुणस्थान में होते अवश्य हैं, यह पहला कहेंगे। परन्तु वह तो राग है। सहजचारित्र, स्वाभाविक स्वरूप की रमणता। भगवान ध्रुव ऐसा है न? वह है न? उसरूप से अर्थात् तत्त्वरूप से, अविचल, उसरूप में, ध्रुव में अविचलरूप से स्थित... रमणता—वीतरागी रमणता। पंच महाव्रत के विकल्प के परिणामरहित की स्थिरता। आहाहा! समझ में आया?

तद्रूप से अर्थात् उसरूप से। है न? **(अर्थात् निज परमतत्त्वरूप से) अविचलरूप से...** उसमें चलित नहीं अर्थात् अविचल। अ—नहीं विचलपने। (नहीं) चलित, ऐसा स्थिर निर्विकल्प वीतरागदशा, ऐसे होनेरूप सहजचारित्र। सहज वीतरागीभाव... पंच महाव्रत के विकल्पवाले भावरहित स्वाभाविक अन्तर के वीतरागी चारित्र द्वारा। वे तीनों इकट्ठे कर डालना अब। परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा, अन्तर्मुख परमबोध द्वारा और सहजचारित्र द्वारा। अभूतपूर्व—पूर्व में कभी नहीं हुई ऐसी सिद्धपर्याय—मोक्षदशा होती है। यह उपाय और यह उसका कार्य—फल। समझ में आया? पकड़ना कठिन।

इसकी क्रीड़ा अन्दर में और अन्दर में है। कहते हैं। बाहर में कोई सम्बन्ध नहीं। जड़ के साथ क्या सम्बन्ध? शरीर तो शरीर जड़रूप होकर रहा है। वह कहीं आत्मा

होकर रहा है? यह वाणी, वाणी होकर रही है; कर्म, कर्म होकर रहे हैं। आत्मा के होकर रहे हैं? इसी तरह राग का भाग आस्रवतत्त्व भी आस्रवतत्त्वरूप होकर रहा है; आत्मा का होकर रहा नहीं। आहाहा! आत्मा रागरहित होकर रहा हुआ है, उसे आत्मा कहने में आता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! यहाँ पहले अनादि का रागरहित ही है। नहीं कहा था? सवेरे आया था न? सवेरे नहीं? क्या अधिकार था वह? संवर अधिकार। भेदज्ञान। राग के सूक्ष्म विकल्प से भी जहाँ भिन्न पड़ा, ऐसा आत्मतत्त्व, सदा मैं ज्ञानस्वभाव से ही रहा हूँ, रागरूप हुआ नहीं। रागरूप हो तो राग निकले नहीं, पृथक् पड़े नहीं। आहाहा! समझ में आया? वीतराग का मार्ग सूक्ष्म है। आहाहा! सहज और सरल।

मुमुक्षु : कड़क।

पूज्य गुरुदेवश्री : कड़क का अर्थ तो पुरुषार्थ उग्र है, ऐसा उसका कड़क। कड़क का अर्थ—न हो सके, ऐसी व्याख्या नहीं है। आहाहा!

तीन बोल हो गये। यह मोक्ष का मार्ग यह तीन—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। ये तीन ध्रुवस्वभाव की श्रद्धा, ध्रुव का ज्ञान और ध्रुव में रमणता। समझ में आया? यह तो वस्त्र-बस्त्र बदले, यह बदला, यह बदला, या नग्न हो गये, हो गया चारित्र। धूल में भी चारित्र नहीं, सुन न! और अन्दर कोई विकल्प रहा पर को नहीं मारने का—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, वह भी एक शुभराग और विकल्प है, अर्थात् आस्रवतत्त्व है। वह कहीं संवर और चारित्र नहीं, वह धर्म नहीं। पंच महाव्रत के परिणाम, वे धर्म नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : परम्परा धर्म....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी धर्म नहीं। धूल भी अर्थात्? सम्यग्दर्शन बिना के पंच महाव्रत में ऊँचा पुण्य भी नहीं बँधेगा। धर्म तो नहीं, परन्तु ऊँचा पुण्य भी नहीं बँधेगा। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! यह तो गम्भीर मार्ग है, गहरा मार्ग है। आहाहा! इस मार्ग का सुनना भी अभी महामुश्किल हो गया है। दूसरे रास्ते....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह तो सरल वस्तु ही ऐसी है। इसमें कहाँ... ? अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली, अनन्त सन्त, समकिती ऐसा कहते आये हैं। महाविदेह क्षेत्र में भगवान ऐसा ही कह रहे हैं। समझ में आया ?

अब व्यवहार की बात करते हैं कि छठवें गुणस्थान में आत्मा का सम्यग्दर्शन है—आत्मा—आश्रित दर्शन है, आत्मा—आश्रित ज्ञान है और आत्मा—आश्रित चारित्र की तीन कषाय के अभावरूप परिणति है। परन्तु अभी सातवें गुणस्थान के योग्य निश्चय चारित्र वहाँ नहीं है। सातवें गुणस्थान के योग्य... निश्चय स्वरूप की रमणता है। इसलिए कहते हैं। छठवें के योग्य उसकी आनन्द की रमणता है। जो परम जिनयोगीश्वर कहा न इसलिए ? परम जिनयोगीश्वर... परम जिन वीतराग योगीश्वर अर्थात् आत्मा के वीतरागस्वरूप में जिसने जुड़ाने किया है। परम जिनयोगीश्वर... अर्थात् यह मार्ग वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकता। समझ में आया ? क्योंकि वीतराग ने ऐसा कहा कि परमजिन योगी तू है भाई ! परम वीतरागमूर्ति ध्रुव, उसमें योग अर्थात् जिसने जुड़ान किया है—ऐसे परम जिन योगीश्वर। क्योंकि योग में ईश्वर महान। क्योंकि योगी तो समकिती भी योगी कहलाता है, पाँचवें गुणस्थानवाले को भी योगी कहा जाता है। स्वरूप में जितनी एकाग्रता हुई, योग हुआ, वह सब योगी कहलाते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा को सम्यग्दर्शन हुआ, वह भी अन्दर जुड़ान का योग हुआ है। योगी है। पंचम गुणस्थानवाला तो विशेष आनन्द में रमता है और विशेष शान्ति होती है, इसलिए बहुत योग में रमता है, इसलिए उसे योगी कहा जाता है। परन्तु यह तो परम जिनयोगीश्वर है। छठवें गुणस्थानवाला मुनि, निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान और चारित्र की तीन कषाय के अभाव की परिणति है। ऐसे जीव को परम जिनयोगीश्वर... पहले उसे छठे गुणस्थान में '**पाप क्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होता है....** उसे अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प छठे गुणस्थान में होता है। समझ में आया ? वह व्यवहार चारित्र है, अर्थात् राग है। ऐसा पहले छठे गुणस्थान में ऐसी

दशा होती है। बाह्य में नग्नदशा होती है... बाह्य में नग्नदशा होती है। अभ्यन्तर में बाह्य लक्ष्यवाले को अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प होते हैं, उसे यहाँ पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र पंच महाव्रतरूप व्यवहार होता है।

उसे वास्तव में व्यवहारनयगोचर तपश्चरण होता है। वह व्यवहारनय का मुनिपना है, छठवें गुणस्थान में राग है वह। आहाहा! समझ में आया? व्यवहारनय गम्य तपश्चरण... तपश्चरण अर्थात् मुनिपना। व्यवहार राग है न पंच महाव्रत का? इतना। अब निश्चय। सहजनिश्चयस्वरूप। निश्चय यहाँ नयात्मक है न? स्वाभाविक निश्चयस्वरूप परमस्वभावस्वरूप परमात्मा, वह पूरा द्रव्य का स्वरूप है। त्रिकाली भगवान स्वाभाविक निश्चय ज्ञानस्वरूप, परमस्वभावस्वरूप, परमात्मा ऐसा निज आत्मा उसमें प्रतपन... उसमें प्रतपन... आनन्द की उग्रता से तपना। जैसे सोने को गेरुं लगने से सोना शोभता है, उसी प्रकार आत्मा की एकाग्रतारूपी उग्रता, चारित्र होने पर भी विशेष उग्रता, पुरुषार्थ की तीक्ष्णता की झनझनाहट अन्दर में स्थिरता—ऐसा प्रतपन, वह तप है। उसे तप कहा जाता है। उस परमात्मा में प्रतपन, वह तप है। यह सब अपवास-बपवास करे, वह सब लंघन है। ... क्या कहते हैं यह? भगत!

देखो! स्वाभाविक—त्रिकाली, निश्चय—यथार्थ, नयस्वरूप से अर्थात् उस वस्तु को नयस्वरूप कहा। वस्तु जो ध्रुव है न त्रिकाल? वह निश्चयनयस्वरूप है। यह ग्यारहवीं गाथा में ऐसा आता है न? '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' ध्रुव है, वह शुद्धनय है। ध्रुव है, वह शुद्धनय है। त्रिकाली ध्रुव तत्त्व पर्याय बिना का, उसे शुद्धनय कहा जाता है। आहाहा! गजब भाषा! ऐसी यह कहीं सुनी न हो। अब प्राप्त कहाँ से करे? समझ में आया?

स्वाभाविक निश्चय ध्रुवस्वरूप वह नय अर्थात् ध्रुवस्वरूप, ऐसा परमस्वभाव-स्वरूप, ध्रुवस्वरूप ऐसा जो परमात्मा एक समय की पर्याय और राग बिना का ऐसा भगवान आत्मा अपना परमात्मा, हों! उसमें प्रतपन—उग्ररूप से रमणता... उग्ररूप से रमणता, उसे वह तप है। और **निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज निश्चयचारित्र इस तप से होता है।** लो! चारित्र भी इस तप से होता है। उन पंच महाव्रत के विकल्प से चारित्र नहीं होता।

निज स्वरूप में... निज आनन्दस्वरूप ध्रुव में अविचल—चलित नहीं, ऐसी स्थितिरूप सहज निश्चयचारित्र, स्वाभाविक निश्चय वीतरागदशा, वह परमात्मा में प्रतपन तप है, उससे यह चारित्र होता है। समझ में आया? छठवें गुणस्थान में राग की विकल्पदशा है, वह व्यवहारचारित्र कहा। स्वरूप की रणमता कम है, परन्तु निश्चय सम्यग्दर्शन है, ध्रुव को अवलम्ब कर, निश्चय ज्ञान है, तीन कषाय का अभाव है, परन्तु अभी स्वरूप का उपयोग अन्दर जमा नहीं। सातवें गुणस्थान के योग्य जो अभेद चारित्र होना चाहिए, वह जमा नहीं। इससे पहले के पंच महाव्रत के विकल्पवाले व्यवहार चारित्र को, व्यवहार तप अर्थात् व्यवहार मुनिपना कहा है। परन्तु उसी काल में फिर जब आत्मा अपने स्वाभाविक स्वरूप परमात्मा के उग्ररूप से अपने आत्मा... परम आत्मा अर्थात् परमस्वरूप ऐसा। परम आत्मा अर्थात् अपना परम स्वरूप। ऐसा कहा न? परमस्वभावरूप परमात्मा। अपना त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव स्वभावरूप अपना आत्मा, वह प्रतपन। लीनता की उग्रता की शोभा द्वारा जो तप है, उस सहज स्वरूप में अविचल स्थिति निश्चय चारित्र उस तप से होती है। वह स्वाभाविक निश्चय चारित्र इसे तप से होता है। आहाहा! है या नहीं पण्डितजी इसमें? देखो, संस्कृत है, अर्थ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, '**स्वस्वरूपाविचलस्थितिरूपं सहजनिश्चयचारित्रम् अनेत तपसा भवतीति।**' यह बारह प्रकार के तप के विकल्प करे, अनशन, अपवास, उनोदर, रसपरित्याग, भगवान का विनय—इन सबसे ऐसा चारित्र नहीं होता। ऐसा कहते हैं। कठिन बात!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा किसने कहा? भोजन करे, वह एक विकल्प है और छोड़े कि यह भोजन छोड़ा, वह भी एक विकल्प है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और अलग बात है। यह तो वहाँ चरणानुयोग के अधिकार में। यहाँ तो द्रव्यानुयोग के अधिकार में तो दूसरी बात है। समझ में आया? आहार करने

का और छोड़ने का विकल्प है, वह व्यवहारचारित्र में जाता है। निश्चय सहित, हों! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के रमणतासहितवाले की बात है। अज्ञानी को बारह प्रकार से... निश्चय नहीं, वहाँ व्यवहार कैसा और तप भी कैसा और चारित्र कैसा?

ऐसा तप, वह किसे होता है? तप अर्थात् मुनिपना। कि उस स्वरूप में—अपने निजस्वरूप में, वापस ऐसा। भगवान का ध्यान करना या भगवान है, वह तो विकल्प है। उस निजस्वरूप में अविचल ध्यान ऐसी स्थिति—रमणता, ऐसा स्वाभाविक निश्चय सच्चा चारित्र, वह इस परमात्मा अर्थात् अपने स्वरूप में उग्रतारूप से रहना, ऐसे तप से वह चारित्र होता है। ऐसे तप से चारित्र होता है। ऐसे चारित्र से ऐसा तप होता है, ऐसा नहीं कहा। मुनिपना लेना है न?

मुमुक्षु : चारित्र सिद्ध करने के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अर्थात् मुनिपना। ऐसे मुनिपने को ऐसा चारित्र होता है। समझ में आया? गजब!

इसी प्रकार एकत्वसप्तति में (श्री पद्मनन्दि-आचार्यदेवकृत...) पद्मनन्दि शास्त्र है। जिसे श्रीमद् भी वनशास्त्र (कहते हैं)। क्योंकि वन में सन्त रहते थे। मुनि तो जंगल में ही रहते थे। नग्न मुनि। एक वस्त्र का धागा भी मुनि को नहीं होता। एक भी वस्त्र का धागा रखकर मुनिपना माने तो, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि उसकी त्रस स्थिति पूरी होने को आयी है, निगोद में जायेगा। समझ में आया?

मुमुक्षु : कठोर सजा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठोर सजा नहीं। ककड़ी के चोर को फाँसी की सजा नहीं। वीतराग का चोर है, कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ धूल में भी सुविधा किसे कहना?

मुमुक्षु : बाहर की....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर की सुविधा के साथ क्या काम है? यह तो अन्तर की

रमणता की बात है, भाई! जो एक भी वस्त्र का धागा रखकर मुनिपना मानता है, उसे नौ तत्त्व की विपरीत श्रद्धा है। इसलिए उसे निगोदगामी कहा है। समझ में आया?

कहा था न एक बार, नहीं? यहाँ तख्तसिंहजी थे दरबार भावनगर में। यह श्रीकृष्णकुमार अभी हैं, इनके पिता थे भावसिंह, उनके पिता थे तख्तसिंहजी। वे राजा थे और रखी हुई थी एक स्त्री। क्या नाम भूल गया? मुसलमान की स्त्री थी। केसरबाई। केसरबाई मुसलमान स्त्री रखी हुई। और बड़े... ३०-४० लाख की आमदनी होगी। अधिक नहीं। तख्तसिंहजी। तो वे सो रहे थे अन्दर तो सोने की घड़ी, सोने के सब... गृहस्थ राजा न बड़े? सामने पहरेदार बैठे हुए दरवाजे पर। वह पीवे न क्या कहलाता है?

मुमुक्षु : ....कावो।

पूज्य गुरुदेवश्री : .... का कावो पीवे तो नींद न आवे। सामने पहरेदार बैठे हुए। परन्तु एक चोर ऐसा निकला कि जो गढ़ था, उतनी बड़ी निसरणी ले आया घर से। निसरणी समझे? सीढ़ी-सीढ़ी। तो लेकर बाहर रखी। ऊपर चढ़ा गढ़ के ऊपर। उस दरवाजे पर खड़ा रहे। वह निसरणी वहाँ से उठायी और अन्दर रखी, उसमें उतरा। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निसरणी से उतरे। उस ओर निसरणी रखकर चढ़े और इस ओर निसरणी उठाकर वापस अन्दर रखी, इसलिए यहाँ उतरा। उतरकर गया अन्दर दरबारगढ़ में। जहाँ राजा सो रहा था वहाँ। सोने की घड़ी और ऊँची (कीमती) चीज थी, वह ली। वहाँ वे जगे नहीं। लेकर निकल गया बाहर। वापस निसरणी चढ़कर नीचे उतरकर घर में रख आया। और लोभ हुआ, लाओ न दूसरी बार ले आऊँ, कहे। वहाँ तो चीज़ें सब बहुत होती हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी बार आता है तो क्या? बीजीबार अर्थात् दूसरी बार आया। दूसरी बार अर्थात्... इतना अनुमान तो करे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़कर आया। घर में रखकर आया, फिर वापस फिर से आया। फिर से चढ़कर जहाँ अन्दर गया, वहाँ वे दरबार जगे। दरबार जगे, तो खुल्ली तलवार थी। राजा थे न। वह तो उघाड़ी रखे। तलवार खींची। केसरीबाई (कहे), दरबार! यह साधारण प्राणी है। साधारण है? यहाँ दरबार है, उनके गढ़ में अन्दर आकर चोरी? ... काट दिया। केसरबाई ने इनकार किया। जाने दो। ... है जाने दो। ले गया है न? कहे, हाँ, फिर से आयेगा नहीं।

यहाँ क्या है? भगवान वीतरागी परिणति(स्वरूप) है, उसे राग की परिणति द्वारा लाभ हो, ऐसा मानता है, वह महागुनेहगार है। यह भगवान के घर में चोरी करने आया है? समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! मार्ग तो प्रभु का ऐसा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर वीतराग परिणति है, वह मुक्ति का कारण है। उसके बदले राग का भाव और वस्त्र को रखने का भाव, उससे मुक्ति माने, वह दरबार का चोर है। उसे नौ तत्त्व की विपरीत श्रद्धा है। समझ में आया? ऐसी बात... इसलिए कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है कि वस्त्र का तिलमात्र—तिलतुषमात्र वस्त्र रखे और मुनि माने, तो मिथ्यादृष्टि निगोद में जायेगा। समझ में आया? आहाहा! वस्त्र बाधक नहीं, परन्तु वह वस्त्र का भाव है राग, तब तक उसे चारित्र नहीं हो सकता। समझ में आया? भारी कठिन बात। दुनिया को तो झेलना कठिन है।

मुमुक्षु : राजा ने माफी दी तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो माफी किसकी दे? वहाँ फिर उसे छोड़ दिया कि गरीब व्यक्ति है। वह बाई थी तो कहे, जाने दो। वह न जाने दे। वह तो राजा कहलाये भाई? वह तलवार उघाड़ी रखकर सोता हो। क्योंकि उसे तो बहुत दुश्मन—विरोधी होते हैं न? तलवार पड़ी थी। उठे और खबर पड़ी कि यह... हाथ पकड़ा उसने, हों! यहाँ माफी हो, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : वह तो उसका पुण्य का योग था।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उसका पुण्य का योग था, नहीं तो मार डालता।

यहाँ कहते हैं कि भाई! ऐसा चारित्र जो वीतरागपना है, ऐसे प्रतपन से ऐसा चारित्र होता है। आहाहा! उसे वस्त्र नहीं होता, उसे पात्र नहीं होता, उसे नग्नदशा होती है, उसे अट्ठाईस मूलगुण विकल्प होते हैं, तो भी वह चारित्र सच्चा चारित्र नहीं है। उसके पीछे जो निश्चय सम्यग्दर्शन है... समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लगा दे। यह तुमने किया है सब। ... लगा दे। वह तो उपसर्ग किया। सेठ! उपसर्ग किया कहलाये या नहीं? यह सेठ कहे लगा दे। यहाँ हमारे लगाया था। ऊपर कपड़े का होता है न मोटा? शढ। शांति(सागर) आये थे न। (संवत्) १९९७ में आये थे। शान्तिसागर। आये थे। शढ लगाया था यहाँ ऊपर बड़ा। सर्दी थी। वह कहीं कपड़े का टुकड़ा चले नहीं तो शढ़ चले, यह कहाँ से आया, कहते हैं?

मुमुक्षु : शरीर को न छुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : न छुए अर्थात्? बिल्कुल विपरीत दृष्टि है। वस्तु की स्थिति ऐसी है नहीं। समझ में आया? यह तो वीतरागमार्ग है, इसमें किसी की सिफारिश नहीं। सिफारिश को क्या कहते हैं? सिफारिश कहते हैं।

मुमुक्षु : शिक्षा।

पूज्य गुरुदेवश्री : शिक्षा नहीं चलती। वीतराग मार्ग जैसा है, वैसा होना चाहिए। समझ में आया?

लो, अब पद्मनन्दि आचार्य वनवासी। श्रीमद् कहते हैं कि वनशास्त्र है। क्योंकि वन में रहते थे न जंगल में? उन्होंने बनाया हुआ यह पंचविंशति है। उसमें भी यह कहा है, देखो!

(अनुष्टुभ)

दर्शनं निश्चयः पुन्सि बोधस्तद्बोध इष्यते।
स्थितिरत्रैव चारित्रमिति योगः शिवाश्रयः॥

श्लोकार्थः—आत्मा का निश्चय वह दर्शन है,... है? पद्मनन्दि में आधार देकर

मुनि स्वयं बात करते हैं। वह शुद्ध ध्रुव जो पहला कहा आत्मा परमस्वभाव, उसका निश्चय अन्दर निर्णय होना अनुभव में, उसे भगवान सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? **आत्मा का बोध, वह ज्ञान है,...** देखो! पद्मनन्दि की गाथा देखो। '**बोधस्तद्बोध**' और **आत्मा में ही स्थिति, वह चारित्र है...** आत्मा में स्थिति, वह चारित्र है। पंच महाव्रत और विकल्प, वह चारित्र नहीं। स्वरूप में वीतरागी आनन्द में रमे, उसे चारित्र कहा जाता है।

ऐसा योग (अर्थात् इन तीनों की एकता) शिवपद का कारण है। तीन की एकता, वह मुक्ति का कारण है। ऐसा पद्मनन्दि आचार्य महाराज नग्नमुनि जंगल में बसनेवाले, उन्होंने भी यह कहा है।

अब गाथा अन्तिम है। अन्तिम कलश है। आज पूरा करना है न यह? फिर कल वह क्या लेना? नय? नय बाकी है न! नय बाकी है।

(मालिनी)

जयति सहज-बोधस्तादृशी दृष्टिरेषा,
चरणमपि विशुद्धं तद्विधं चैव नित्यम्।
अघकुलमलपङ्कानीकनिर्मुक्तमूर्तिः,
सहजपरमतत्त्वे सन्स्थिता चेतना च॥७५॥

ओहोहो! यह शुद्धभाव की बात अन्तिम कर दी। अन्तिम शुद्धभाव भगवान आत्मा कैसा है? कि **सहजज्ञान सदा जयवन्त है,...** यह त्रिकाली—स्वाभाविक ज्ञान ध्रुव सदा जयवन्त वर्तता है। जिसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। स्वाभाविक ज्ञान सदा... त्रिकाली ज्ञान की बात है, हों! पर्याय की बात नहीं। जयवन्त वर्तता है (ऐसी) पर्याय में भावना करता है। परन्तु जयवन्त वर्तता है कौन? कि सदा ज्ञान जयवन्त वर्तता है। आहाहा! स्वाभाविक ज्ञान सदा आत्मा में त्रिकाल जयवन्त वर्तता है। तथा सहज यह दृष्टि समकित, वह आत्मा में जयवन्त वर्तता है, ऐसा। सम्यग्दर्शन वह पर्याय नहीं। त्रिकाली दृष्टि अन्दर द्रव्यस्वभाव की दृष्टि त्रिकाल पड़ी है, वह जयवन्त वर्तती है। आहाहा! समझ में आया?

और **वैसा ही (सहज) विशुद्ध चारित्र भी सदा जयवन्त है;...** अन्दर में विशुद्ध

चारित्रस्वभाव हों! त्रिकाली चारित्र। वर्तमान पर्याय चारित्र की, वह तो पर्याय है। यह तो त्रिकाली विशुद्ध चारित्रस्वभाव में वह सदा जयवन्त वर्ते, ऐसा कहते हैं लो शास्त्रकार। शुद्धभाव त्रिकाल जयवन्त वर्तता है। सहजज्ञान... वह कौन सहजज्ञान? पर्याय का या ध्रुव का? ध्रुव... ध्रुव सहज स्वाभाविक ज्ञान सदा जयवन्त वर्तो। सहज यह दृष्टि सदा जयवन्त (वर्तो)। सम्यग्दर्शन पर्याय नहीं; त्रिकाली सम्यक् श्रद्धा जो त्रिकाल स्वभाव में है, वह त्रिकाल जयवन्त वर्तती है और वैसा विशुद्ध चारित्र भी सदा जयवन्त है।

पापसमूहरूपी मल की अथवा कीचड़ की पंक्ति से रहित जिसका स्वरूप है, ऐसी सहजपरमतत्त्व में संस्थित चेतना... त्रिकाली, हों! यहाँ तो ज्ञानचेतना प्रगट होती है न? परन्तु कहते हैं कि अन्दर ज्ञानचेतना त्रिकाली वर्तती है आत्मा में। समझ में आया? **सहजपरमतत्त्व में संस्थित चेतना भी सदा जयवन्त है।** आहाहा! ऐसा जयवन्त ध्रुव वर्तता है, ऐसी दृष्टि जो है, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसे ध्रुव का ज्ञान, उसे ज्ञान कहते हैं और ध्रुव में रमणता, उसे चारित्र कहते हैं। लो, यह शुद्धभाव अधिकार पूरा हुआ।

इस प्रकार सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य के समान है और पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था... मुनि है न? पद्मप्रभमलधारी मुइ५न थे। एक देहमात्र उन्हें होती है, दूसरा कुछ होता नहीं। आता है न श्रीमद् में नहीं आता? देहमात्र... 'मात्र देह वह संयम हेतु होय जब।' उसमें वह कह दिया है उन्होंने। मुनि को वस्त्र-पात्र होते नहीं। ऐई! जयन्तीभाई! अर्थ आवे नहीं। मात्र देह वह संयम हेतु... मात्र देह नग्न बस। निमित्तरूप से। दूसरा मुनि को होता नहीं। वह यहाँ कहते हैं।

पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित... पाँच इन्द्रियों का विस्तार रुक गया है। अतीन्द्रिय हो गये हैं। **देहमात्र जिन्हें परिग्रह था—ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य -देवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज... निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव-विरचित तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में) शुद्धभाव अधिकार नाम का तीसरा श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।** लो! मंगलवार से शुरु हुआ है, नहीं? पहले पर्यूषण से। २३ दिन इस अधिकार को हुए। प्रवचनसार का नय अधिकार चलेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

Vitragvani

www.vitragvani.com